स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें
उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक
जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी
सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट०

•

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय . दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
विक्रय केन्द्र ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

•

स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहु शान्तिप्रसाद जैन

THA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ PRĀKRITA GRANTHA No 1

MAHĀBANDHA

[First Part : Prakṛti Bandhādhikara]

of

Bhagavān Bhūtabali

Pt. Sumeruchandra Diwaker

Shastri, Nyāyatirtha, B A , LL B

HĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

First Edition— VIRA SAMVAT 2473, V S. 2004, 1947 A D

Second Edition—VIRA SAMVAT 2492, V S 2022, 1966 A D

Price Rs 11/

समर्पण

जिन्होंने समीचीन श्रद्धा, आत्म-विज्ञान और दुर्धर सकल संयमसे समलंकृत हो विषयासक्त विश्वको अपने विमल जीवन-द्वारा आदर्श दिगंबर श्रमण चर्याका दर्शन कराया,

जिन्होंने अपने आत्मतेज और प्रशस्त अध्यवसाय-द्वारा भव्यात्माओंके अंतःकरणमें रत्नत्रयकी दिव्य ज्योति प्रदीप्त करते हुए उन्हें श्रेयोमार्गमें संलग्न कराया,

जिन्होंने परमपूज्य महाबंधादि आगम ग्रन्थोंके संरक्षण हेतु उन्हें ताम्रपत्रपर उत्कीर्ण करा जिनवाणीकी चिरस्मरणीय सेवा की तथा जनसाधारणमें सम्यग्ज्ञानके प्रसार हेतु उपयोगी ग्रंथोंको मुद्रित करवाकर अमूल्य वितरण कराया,

जिन्होंने अपने नेत्रोंकी ज्योति मंद होनेपर अहिंसा महाव्रतके रक्षणार्थ वैयावृत्य रहित इंगिनीमरण रूप उच्च सल्लेखनाको धारण कर इस दुषमा कालमें ३६ दिवस पर्यन्त आहार त्यागकर श्रेष्ठ शांतिपूर्वक आदर्श समाधि-मरण किया,

जिनकी उच्च तप.साधना तथा अपूर्व आत्मतेजसे शरीरपर लिपटनेवाले भीषण सर्पराज भी बाधाकारी न हुए तथा व्याघ्र आदि क्रूर वन्य पशु जिनके पार्श्वमें आकर प्रशांत बने,

उन भयविमुक्त आध्यात्मिक चूडामणि, चारित्र चक्रवर्ती, साधुरत्न १०८ आचार्य श्री शांतिसागर महाराजकी पावन स्मृतिमें—

—सुमेरुचंद्र दिवाकर

प्रकाशकीय

[प्रथम संस्करण]

प्राचीन जैन ग्रन्थोंकी शोध-खोज, सम्पादन-प्रकाशन तथा आधुनिक लोकोपयोगी धार्मिक साहित्यिक ऐतिहासिक सुरुचिपूर्ण भव्य साहित्यके निर्माण और प्रकाशनकी भावनाओंसे प्रेरित होकर सेठ शान्तिप्रसादजी और उनकी सहधर्मचारिणी श्रीमती रमारानीजीने फाल्गुन कृष्ण ९ वि० सं० २००० शुक्रवार, १८ फरवरी १९४४ को बनारसमें भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना की।

उनकी धर्मनिष्ठ स्नेहमयी स्वर्गीय माता मूर्तिदेवीकी अभिलाषा जैन सिद्धान्त ग्रन्थों-विशेषकर जयधवल, महाधवलके उद्धार की थी। अतः उनकी अभिलाषाकी पूर्ति स्वरूप उनकी पवित्र स्मृतिमें ज्ञानपीठमें एक मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है।

ज्ञानपीठकी स्थापनाको ३–४ मास ही हुए थे कि श्री पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकरने स्वसम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थराज प्रथमखंडको ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी अभिलाषा प्रकट की। माताजीकी अभिलाषा पूर्तिस्वरूप जयधवलका प्रकाशन जैनसंघके तत्त्वावधानमें प्रारम्भ हो चुका था। अतः महाधवलको ज्ञानपीठसे प्रकाशित करना तुरन्त निश्चय कर लिया गया और वीरशासन जयन्तीकी शुभ वेलामें प्रेसमें दे दिया। परम सन्तोषकी बात है कि ३ वर्ष पश्चात् श्रुतपंचमीके पुण्य दिवसपर उत्सुक और भक्तिविभोर जनताको उसके पूजनका अवसर मिल रहा है। हमारी अभिलाषा इसे शीघ्रसे शीघ्र प्रकाशित करनेकी थी, पर प्रेस आदिकी कठिनाइयोंके कारण ऐसा नहीं हो सका।

दिवाकरजीने अनेक विघ्न-बाधाओंको पार करके जिस साहस और अदम्य उत्साहसे यह अलभ्य ग्रंथ प्राप्त किया, उतनी ही लगन और परिश्रमसे इसका सम्पादन किया है। ग्रंथराजकी उपलब्धि, अनुवाद और सम्पादनादि सब कुछ आत्मकल्याणकी पवित्र भावनासे किया है और इसी भावसे ज्ञानपीठको प्रकाशनके लिए भेंट कर दिया है। जिनवाणीके उद्धारकी दिवाकरजीकी यह निस्पृह भावना और लगन अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है।

हम उन धर्म-प्रेमी महाशयोंका विशेषतः मूडबिद्रीके पू० भट्टारकजीका स्मरण करके आत्म-विभोर हो उठते हैं, जिन्होंने घोर संकट कालमें, जब कि शास्त्रोंको जला-जलाकर स्नानके लिए पानी गरम किया जाता था, मन्दिर विध्वंस किये जाते थे, प्राणोंसे लगाकर इस ग्रंथरत्नकी रक्षा की और उपयुक्त समय आनेपर उनके उत्तराधिकारियोंने भगवन्त भूतबलिकी यह धरोहर समाजके कल्याणार्थ सौंप दी।

समाज उन सभी बन्धुओंका आभारी है जिन्होंने इस ग्रन्थराजकी गोपनीय भण्डारसे उपलब्धि और प्रतिलिपि करानेमें एक क्षणके लिए भी सहयोग दिया है, अथवा प्रयत्न किया है।

वे महानुभाव भी कम आदरके पात्र नहीं हैं जिन्होंने ग्रन्थकी प्राप्तिमें विघ्न नहीं डाला, क्योंकि बने-बनाये शुभ कार्य तनिक से विघ्नसे छिन्न-भिन्न होते देखे गये हैं।

पं० परमानन्दजी साहित्याचार्य और पं० फुन्दनलालजी शास्त्रीके हम विशेषतः आभारी है जिन्होंने उक्त ग्रंथके सम्पूर्ण आद्य अनुवादमें दिवाकरजीको नींवकी ईंटकी तरह सहयोग देकर इस ग्रन्थप्रासादकी जड़ जमायी।

ज्ञानपीठके प्राकृत विभागके सम्पादक ख्यातिप्राप्त डॉ० हीरालालजीने इस ग्रन्थका प्रास्ताविक लिखा है और संस्कृत विभागके सम्पादक न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजीकी देख-रेखमें मुद्रण और प्रकाशन हुआ है।

प्रास्ताविकं किंचित्

[प्रथम संस्करण]

जब मैंने षट्खडागमका सम्पादन प्रारम्भ किया था तब मेरे मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित थी। तो भी जब उक्त ग्रथका प्रथम भाग सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ और लोगोंने उसका आनन्दसे स्वागत किया, तब मुझे यह आशा हो गयी कि कठिनाइयोंके होते हुए भी यथासमय तीनों सिद्धात ग्रथ प्रकाशमें लाये जा सकेंगे। फिर भी मुझे यह भरोसा नहीं था कि मेरी आशा इतने शीघ्र सफल हो सकेगी और साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें ससार-युद्धके कारण अधिकाधिक बाधाओंके उपस्थित होते हुए भी, जयधवलका प्रथम भाग सन् १९४४ में तथा महाबधका प्रथम भाग सन् १९४७ मे ही प्रकाशित हो सकेगा। जैनसमाज और उसके विद्वानोंके इन सफल प्रयत्नोंसे भविष्य आशापूर्ण प्रतीत होता है।

मै षट्खडागमके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें बतला चुका हूँ कि धवल और जयधवल सिद्धान्तोंकी प्रतिलिपियाँ सन् १९२४ में ही मूडबिद्रीके शास्त्रभडारसे बाहर आ गयी थी और उसके पश्चात् कुछ वर्षोंमें उनकी प्रतियाँ उत्तर भारतमें उपलब्ध हो गयीं। किंतु महाधवल नामसे प्रसिद्ध सिद्धात ग्रथ फिर भी मूडबिद्री सिद्धात मदिरमें ही सुरक्षित था। जब मैंने सन् १९३८-३९ मे इन सिद्धात ग्रथोंके अन्तर्गत विषयोंको जाननेका प्रयत्न प्रारभ किया तब मुझे यह जानकर बडा विस्मय हुआ कि जो कुछ थोडा-बहुत वृत्तान्त महाधवलकी प्रतिके विषयमें प्राप्त हो सका था उसके आधारपर उस प्रतिमें केवल वीरसेनाचार्यकृत सत्कर्म चूलिकाकी एक पजिका मात्र है और महाबधका वहाँ कुछ पता नही चलता। तब मैंने इस विषयपर अपनी आशका और चिंताको प्रकट करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये और अधिकारियोंसे इस विषयकी प्रेरणा भी की कि वे मूडबिद्रीकी ताडपत्रीय प्रतिका सावधानीसे समीक्षण कराकर महाबधका पता लगावें। मुझे यह कहते हर्ष होता है कि मेरी वह प्रार्थना शीघ्र सफल हुई। मूडबिद्रीके भट्टारकजी महाराजने, प० लोकनाथ शास्त्री व प० नागराज शास्त्रीसे ताडपत्रीय प्रतिकी जाँच करायी और मुझे सूचित किया कि उक्त पजिका ताडपत्र २७ पर समाप्त हो गयी है, एव आगेके पत्रोंपर महाबधकी रचना है। देखिए जैनसिद्धात भास्कर (भाग ७, जून १९४०, पृ० ८६-९८) में प्रकाशित मेरा लेख 'श्री महाधवलमें क्या है ?' एव षट्खडागम भाग ३, १९४१ की भूमिका पृ० ६-१४ में समाविष्ट 'महाबधकी खोज'।

इस अन्वेषणसे उत्पन्न हुई रुचि बढ़ती गयी और शीघ्र ही, विशेषत प० सुमेरचद्रजी दिवाकरके सत्प्रयत्नसे, दिसम्बर १९४२ तक महाबधकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गयी व उन्होंने प्रस्तुत प्रथम भागका सम्पादन व अनुवाद कर डाला। उनके इस स्तुत्य कार्यके लिए मैं उन्हे बहुत धन्यवाद देता हूँ। पडितजीने अपनी प्रस्तावनामें जो सामग्री उपस्थित की है उसके साथ षट्खडागमके प्रकाशित ७ भागोंमें मेरे द्वारा लिखी गयी भूमिकाओंको पढ लेनेकी मै पाठकोंसे प्रेरणा करता हूँ। इससे इन सिद्धातोंके इतिहास व विषय आदिका बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा। पडितजीकी भूमिकाके पृ० ३० पर णमोकार मत्रके जीवट्ठाणके आदिमे अनिबद्ध मगल होनेके सबधका वक्तव्य मुझे बिलकुल निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि वह प्राचीन प्रतियोंके उपलब्ध पाठ एव आचार्य वीरसेनकी [1]टीकाकी युक्तियोंके सर्वथा विरुद्ध है। इस सबधमें षट्खडागम भाग २ की भूमिकाके पृ० ३३ आदिपर मेरा 'णमोकार मत्रके आदि कर्ता' शीर्षक लेख देखें।

---

(१) "इद पुण जीवट्ठाण णिबद्धमगल। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्ह जीवसमासाण' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्ध 'णमो अरिहताण' इच्चादि देवदाणमोक्कारदसणादो।"—ध० टी० पृ० ४१।

णिबद्धका अर्थ स्वरचित है, जिसे दिवाकरजीने स्वय अपनी भूमिकामें स्वीकार किया है। यथा—"अर्थात् सूत्रके आदिमें सूत्ररचयिताके द्वारा रचित देवता नमस्कार निबद्ध मगल है।"

महाबन्ध सिद्धान्त नामसे प्रसिद्ध शास्त्र यथार्थत षट्खडागमका ही महाबध नामक छठा खंड है, जैसा कि मैं उसके प्रथम भागकी भूमिकामें बतला चुका हूं। वहां मैं इस ग्रथके कर्ताओ व समय आदिके सम्बन्धमें भी विचार कर चुका हूं। तबसे अभीतक कोई ऐसी नवीन सामग्री प्रकाशमें नही आयी जिसके कारण मुझे अपने उस मतमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो।

यद्यपि महाबध षट्खडागमका ही एक अश है और उन्ही भूतबलि आचार्यकी रचना है जिन्होने [illegible] खडोंके बहुभागकी रचना की है, यहांतक कि उसका मगलाचरण भी पृथक् न होकर चतुर्थ खड वेदनाके आदिम [illegible] मगलाचरणसे ही सम्बद्ध है, तथापि यह रचना एक स्वतत्र ग्रथके रूपमें उपलब्ध होती है। इसके मुख्य दो कारण है—एक तो यह ग्रथ पूर्व पांचो भागोको मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, और दूसरे उसपर धवलाकार वीरसेनाचार्यकी टीका नही है, क्योकि उन्होने इतनी सुविस्तृत रचनापर टीका लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इस ग्रथका विषय बहुत ही शास्त्रीय है जिसमें केवल [illegible] उन्हीं मर्मज्ञोंकी रुचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धात सबधी सूक्ष्मतम व्यवस्थाओंकी जिज्ञासा हो।

[illegible] मूर्तिदेवी जैन ग्रथमालाके प्राकृत विभागके सम्पादक और नियामकके नाते मैं इस अवसरपर [illegible] शान्तिप्रसादजी जैनका अभिनदन करता हूं और उन्हे धन्यवाद देता हूं कि उन्होने भारतीय ज्ञानपीठ जैसी सस्था स्थापित की व भारतीय सस्कृतिकी छिपी हुई निधियोका ससारको परिचय करानेके हेतु अपनी माताजीकी स्मृतिमें यह मूर्तिदेवी जैन ग्रथमाला प्रारभ करायी। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धर्मपत्नी तथा ज्ञानपीठकी सचालक समितिकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानीजीकी रुचि तथा सस्थाके सचालक न्यायाचार्य प० महेन्द्रकुमारजी शास्त्रीके परिश्रम, अभियोग और उत्साहसे सस्थाका कार्य उत्तरोत्तर प्रगतिशील होगा। मेरी सब विद्वानोसे प्रार्थना है कि वे सस्थाके उद्देश्यकी पूर्तिमें सहयोग प्रदान करें।

मॉरिस कालेज,
नागपुर
[illegible]

हीरालाल जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

द्वितीय आवृत्तिका प्रधान-सम्पादकीय

हर्षका विषय है कि उन्नीस वर्षोंके पश्चात् महाबन्धके प्रथम भागकी द्वितीय आवृत्ति पाठकोंके हाथ पहुँच रही है। सयोगकी बात है कि इससे पूर्व सन् १९५८ में उधर षट्खडागमके प्रथम पांच खण्ड सोलह भागोंमें पूर्ण प्रकाशित हो गये और इधर छठा खण्ड भी सात भागोंमे पूर्ण प्रकाशित हो गया। महाबंधकी मूल प्रतिके प्रारम्भमें २७ पत्रोंमें जो 'सतकम्म पजिका' पायी गयी थी उसका भी सम्पादन करके षट्खडागम-के १५वें भागके परिशिष्ट रूप ११४ पृष्ठोमें प्रकाशन कर दिया गया है।

पाठक देखेंगे कि उक्त समस्त भागोमें हमने प्रत्येक भागके विषयका शास्त्रीय परिचय देनेका व उसका वैशिष्टच बतलानेका प्रयत्न किया है। महाबधके अन्य भागोंमें भी यही किया गया है। तदनुसार प्रस्तुत भागके सम्पादकसे भी यही अपेक्षा की जाती थी कि वे इस भागके विषयका शास्त्रीय परिचय प्रस्तुत करें और उन गूढ रहस्योको सामने लावे जो इस महान् आगमकी विशेषता हो। किन्तु उन्होंने वैसा न कर अपनी प्रस्तावनामें ऐसी चर्चायें की हैं जिनका इस भागसे लेश मात्र भी सबध नही है, जैसे गुरु-परपरा व प्रशस्ति-परिचय व मगल-चर्चा। यथार्थत प्रस्तुत ग्रथमें कोई मगलाचरण नही है। षट्खडागमके प्रथम व तृतीय खडोके प्रारम्भमें मगल आया है वहाँ प्रस्तावनाओंमे उनपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इनके सबधमें अपनी धारणाओ व कल्पनाओंका नही, किन्तु धवलाकार वीरसेन स्वामीके अभिमतका विशेष महत्त्व है। उन्होंने णमोकार मत्रको निबद्ध मगल और 'णमो जिणाण' आदिको अनिबद्ध मगल कहा है। इसीसे फलित होनेवाली व्यवस्थापर विवेकपूर्वक ध्यान देना योग्य है। कर्मबध मीमासापर विद्वान् सम्पादकने ३५ से ८५ तक पचास पृष्ठ लिखे हैं। किन्तु वह सब सामान्य चर्चा है और प्रस्तुत ग्रथके प्रतिपादनका वहाँ लेशमात्र भी परिचय नही है। इसके लिए सपादकसे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उन्होंने प्रस्तावनामें कोई हेरफेर करना स्वीकार नही किया। उन्होंने इस सस्करणके सबधमें यह तो कहा कि १७ वर्षके शास्त्राभ्यासके फल-स्वरूप अनेक बातें परिवर्तन तथा सशोधन योग्य लगी तथा सहारनपुर निवासी नेमीचन्दजी व रतनचन्दजीने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। किन्तु यह बतलानेकी कृपा नही की कि वे सशोधन कहाँ किस प्रकरणमें कैसे किये गये हैं। दो-चार सशोधन भी बतला दिये जाते तो उनसे पाठ सशोधन सबधी महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होतीं। अस्तु, हम विद्वान् सपादकके अनुगृहीत हैं कि उन्होंने ग्रथका यह द्वितीय सस्करण प्रस्तुत किया। ग्रथमाला अधिकारियोंको भी धन्यवाद है कि उन्होंने ग्रथको द्वितीय बार भी सुन्दरतासे प्रकाशित कराया।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

जबलपुर
२६-९-६६

The MAHABANDHA, popularly known as Mahādhavala Siddhanta forms the sixth section (khanda) of the Ṣatkhandagama, as I had already shown in my introduction to Vol I of that work where I had also discussed all the evidence available on the point of authorship and age of these works No new material has since been brought to light and therefore my views on the subject remain unaltered

Though Mahabandha is an integral part of the Satkhandagama, and is composed by the same author Bhutabali who did not even provide it with a separate benediction (Mangala), but made it share the one given at the beginning of the fourth Khanda Vedana, yet it has come down to us in a separate manuscript for two reasons Firstly, the composition is much larger in volume than even all the first five sections put together, and secondly, it contains no commentary by Virasena, the author of Dhavala, who thought it unnecessary to comment upon a work which was so exhaustively self-sufficient The subject-matter of the work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina philosophy who desire to probe the minutest details of the Karma Siddhanta

As the General Editor of the Series, I take this opportunity to congratulate and offer my best thanks to Mr Shantiprasad Jain for establishing the BHARATIYA JNANA-PITHA at Benares and starting this series of publications in memory of his mother Moortidevi, with the noble object of making known to the world the hidden treasures of ancient Indian culture I hope and trust that with the keen interest of Mrs Shantiprasad, Shrimati Rama Rani, the President of the Managing Committee, and the industry, zeal and enthusiasm of Nyayacharya Pandit Mahendrakumar Shastri, the acting Director of the institution, the work started would continue to advance steadily towards the goal I appeal to all scholars to cooperate with the institution in achieving its laudable object

Morris College,
Nagpur
15th March, 1947

H. L Jain,
M A , LL B , D. Litt
General Editor

प्राक्कथन

जैन ससारमें धवल, जयधवल, महाधवल (महाबध)-इन सिद्धातग्रथोका अत्यधिक समान और श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है। ये परम पूज्य शास्त्र मूडबिद्री, दक्षिण कर्णाटकके सिद्धात मदिरके शास्त्रभडारको समलकृत करते हैं। इन ग्रथरत्नोके प्रभाववश सपूर्ण भारतके जैन बन्धु मूडबिद्रीको विशेष पूज्य तीर्थस्थल सदृश समझ वहाँकी वदनाको अपना विशिष्ट सौभाग्य मानते थे, और वहाँ जाकर इन शास्त्रोके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतार्थ मानते थे। भगवद्भक्त जिस ममत्व, श्रद्धा तथा प्रेमभावसे पावापुरी, चपापुरी सम्मेदशिखर, राजगिरि आदि तीर्थस्थलोकी वदना करते है, प्राय उसी प्रकारकी समुज्ज्वल भावनाओ सहित उत्तर भारतके श्रुतभक्त श्रावक तथा श्राविकाएँ दक्षिण भारतके पश्चिम कोणमें मगलूर बन्दरके पार्श्ववर्ती मूडबिद्रीकी वदना करते थे। उसे वे श्रुतदेवताकी भूमि सोचते थे। जिन व्यक्तियोको सिद्धात ग्रथोके कारण पूज्य मानी गयी मूडबिद्रीको जानेका सौभाग्य नही मिला, वे उक्त स्थलकी परोक्षवदना करते हुए उस सुअवसरकी बाट जोहा करते थे, जब वे वहाँ पहुँचकर अपने चक्षुओको सफल कर सकेंगे।

कहते हैं ये सिद्धातशास्त्र पहले जैनबद्री—श्रमणबेलगोलाके महनीय ग्रथागारको अलकृत करते थे। पश्चात् ये ग्रथ मूडबिद्री पहुँचे। इन ग्रथोकी प्रतिलिपि भारतवर्ष-भरमें अन्यत्र कहीं भी नही थी। इन शास्त्रोका प्रमेय क्या है, यह किसीको भी पता नही था। बहुत लोग तो यह सोचते थे कि इन शास्त्रोमें आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार सदृश चमत्कारप्रद एव भौतिक आनदवर्धक सामग्री-निर्माणका वर्णन किया गया होगा। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, सोना बनाना आदि सब कुछ इन शास्त्रोमें होगे। इस काल्पनिक महत्ताके कारण साधारण व्यक्ति भी श्रुतदेवताकी वदनाको सोत्कण्ठ सनद्ध रहते थे।

दुर्लभ दर्शन

ये ग्रथ अपनी महत्ता, अपूर्वता तथा विशेष पूज्यताके कारण बडे आदरके साथ निधि अथवा रत्नराशिके समान सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखे जाते थे। जिस प्रकार विशेष भेंट लेकर भक्त गुरुके समीप जाता है, उसी प्रकार वदक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य-अर्पण करके ग्रथराजकी वदना करता था। शास्त्रभडार खुलवानेके लिए द्रव्यार्पण आवश्यक था। सिद्धात मदिर मूडबिद्रीके व्यवस्थापक लोग ही शास्त्रोपर अपना स्वत्व समझते थे, उनकी ही कृपाके फलस्वरूप दर्शन हुआ करते थे। शास्त्रोकी एकमात्र प्रति पुरानी (हळे कन्नड) कनडी लिपिमें थी, अत उस लिपिसे सुपरिचित तथा प्राकृत भाषाका परिज्ञाता हुए बिना ग्रथका यथार्थ रस लेने तथा देनेवाला कोई भी समर्थ व्यक्ति ज्ञात न था। ग्रथको उठाकर दर्शन करा देना और चोरोसे या बाधकोसे शास्त्रोको बचाना इतना ही कार्य व्यवस्थापक करते थे। इसका फल यह हुआ, कि अत्यन्त जीर्ण तथा शिथिल ताडपत्रपर लिखे ग्रथोकी पुन प्रतिलिपि कराकर सुरक्षाकी ओर ध्यान न गया, इससे दुर्भाग्य वश महाधवल-महाबधके लगभग तीन, चार हजार श्लोक नष्ट हो गये, किंतु इसका पता किसीको भी नहीं हुआ।

जैनकुलभूषण श्रावकरत्न स्व० सेठ माणिकचदजी जे० पी० बबईसे सन् १८८३ में वदनार्थ मूडबिद्री पहुँचे। वे एक विचारक दानी श्रीमान् थे। शास्त्रोंका दर्शन करते समय उनकी भावना हुई, कि ग्रथको किसी विद्वान्से पढवाकर सुनना चाहिए, किन्तु योग्य अभ्यासीके अभाववश उस समय उनकी कामना पूर्ण न हो पायी। उनके चित्तमें यह बात उत्कीर्ण सी हो गयी, कि किसी भी तरह इन शास्त्रोका उद्धार करके जगत्के समक्ष यह निधि अवश्य आना चाहिए। तीर्थयात्रासे लौटते हुए उक्त सेठजीने अपने हृदयकी सारी बातें अपने अत्यन्त स्नेही सेठ हीराचद्र नेमचदजी सोलापुरवालोको सुनायी। सेठ हीराचदजीके अत करणमें

अपने मनको काल्पनिक संतोष प्रदान करते थे कि हमने भी महाधवलजी आदिकी वंदना कर ली। अब जब महाबंधका यथार्थ दर्शन कठिन हो गया, तब प्रतिलिपिकी उपलब्धिकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

प्रतिलिपिमें समय

सेठ हीराचंदजीके सत्प्रयत्नसे महाबंधकी देवनागरी प्रतिलिपिका कार्य पं० लोकनाथजी शास्त्री मूडबिद्रीके ग्रंथागारके लिए करते जाते थे। यह कार्य सन् १९१८ से १९२२ पर्यन्त चला। इसी बीचमें पं० नेमिराजजीने इसकी कनडी प्रतिलिपि भी बना ली। तीनों सिद्धांत ग्रंथोंकी प्रतिलिपि करानेमें लगभग बीस हजार रुपये खर्च हुए और छब्बीस वर्षका लम्बा समय लगा।

तीनों ग्रंथोंकी देवनागरी तथा कनडी प्रतिलिपिके हो जानेसे अब सुरक्षण संबंधी चिंता दूर हो गयी, केवल एक ही जटिल समस्या श्रुतभक्त समाजके समक्ष सुलझानेको थी, कि महाबंधको बंधन मुक्त करके किस प्रकार उस ज्ञाननिधिके द्वारा जगत्‌का कल्याण किया जाये? इस कार्यमें महान् प्रयत्नशील सेठ माणिकचंदजी बंबई तथा सेठ हीराचंदजी सोलापुर सफल मनोरथ होनेके पूर्व ही स्वर्गीय निधि बन गये।

जैन महासभाका उद्योग

दिगम्बर जैन महासभाने इस विषयमें एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, किंतु वह अरण्यरोदन रहा। महासभाका एक वार्षिक उत्सव सन् १९३६ में इन्दौरमें रावराजा दानवीर श्रीमंत सर सेठ हुकुमचंदजीकी जुबलीके अवसरपर हुआ। वहाँ महाबंधके विषयमें हमने प्रस्ताव पेश करनेका प्रयत्न किया, तो महासभाके अनेक अनुभवी व्यक्तियोंने यह कहकर विरोध किया, कि यह अनावश्यक है, क्योंकि वह ग्रंथ मूडबिद्रीकी समाज देनेको बिलकुल तैयार नहीं है। विशेष श्रम करनेपर सौभाग्यसे पुनः प्रस्ताव पास हुआ और उसमें प्राण-प्रतिष्ठानिमित्त एक उपसमितिका निर्माण हुआ। उसके संयोजक जिनवाणीभूषण धर्मवीर सेठ रावजी सखारामजी दोशी बनाये गये। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी भाईने दो बार मूडबिद्रीका लम्बा प्रवास करके एवं हजारों रुपया भेंट करनेका अभिवचन देकर भी सफलता निमित्त प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बातें उत्पन्न हो गयीं, जिन्होंने परस्परके मधुर संबंधोंमें भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। महाबंध उपसमितिके समक्ष यहाँतक विचार आने लगा, कि जिनवाणी माताकी रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय-विनयका मार्ग छोडकर अब न्यायालयका आश्रय लेना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियोंके विचित्र ग्रंथ मोहकी पूर्ति निमित्त विश्वकी अनुपम निधिको अब अधिक समय तक बंधनमें नहीं रखा जा सकता।

न्यायालयके द्वार खटखटानेके विचारपर हमारी आत्माने सहमति नहीं दी। सहसा हृदयमें यह भाव उदित हुए, कि अदालतके द्वारपर मूडबिद्रीवालोंको घसीटकर कष्ट देना योग्य नहीं है, कारण इनके ही विवेकी, धर्मात्मा तथा चतुर पूर्वजोंके प्रयत्न और पुरुषार्थके प्रसादसे ग्रंथराज अबतक विद्यमान हैं, और अब भी वे यथामति उनकी सेवा कर ही रहे हैं। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवाके प्रति कृतज्ञतावश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुनः उनसे सस्नेह अनुरोध करेंगे, और अपनी सद्भावनापूर्ण बात समझावेंगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदयकी ध्वनिको ध्यानसे सुनेंगे। न मालूम क्यों, हृदय बार-बार यह कहता था, कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्नके पथमें ही सफलता है। यह सूक्ति महत्त्वपूर्ण है "मृदुना दारुणं हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम्। नासाध्यं मृदुना किंचित्, तस्मात् तीक्ष्णतरं मृदु ॥"

जटिल समस्या

कुछ समयके पश्चात् पुरुषार्थी धर्मवीर सेठ रावजी भाईका स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमने सोचा— भगवन्! अब यह महाबंधकी प्राप्तिकी अत्यन्त कठिन तथा जटिल समस्या कबतक और कैसे सुलझती है?

दिगम्बर जैन महासभाने इस विषयमें एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, [illegible] रहा। महासभाका एक वार्षिक उत्सव सन् १९३६ में इन्दौरमें रावराजा [illegible] हुकुमचदजीकी जुबलीके अवसरपर हुआ। वहाँ महाबधके विषयमें हमने प्रस्ताव पेश [illegible] तो महासभाके अनेक अनुभवी व्यक्तियोने यह कहकर विरोध किया, कि यह अनावश्यक [illegible] मूडबिद्रीकी समाज देनेको बिलकुल तैयार नही है। विशेष श्रम करनेपर सौभाग्यसे [illegible] और उसमें प्राण-प्रतिष्ठानिमित्त एक उपसमितिका निर्माण हुआ। उसके संयोजक [illegible] सेठ रावजी सखारामजी दोशी बनाये गये। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी [illegible] बार मूडबिद्रीका लम्बा प्रवास करके एव हजारो रुपया भेंट करनेका अभिवचन देकर भी [illegible] प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बातें उत्पन्न हो गयीं, [illegible] मधुर सबधोमें भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। महाबध उपसमितिके समक्ष यहाँतक विचार आने लगा, कि जिनवाणी माताकी रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय-विनयका मार्ग छोडकर अब न्यायालयका आश्रय लेना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियोके विचित्र ग्रथ मोहकी पूर्ति निमित्त विश्वकी अनुपम निधिको अब अधिक समय तक बधनमें नहीं रखा जा सकता।

न्यायालयके द्वार खटखटानेके विचारपर हमारी आत्माने सहमति नही दी। सहसा हृदयमें यह भाव उदित हुए, कि अदालतके द्वारपर मूडबिद्रीवालोको घसीटकर कष्ट देना योग्य नही है, कारण इनके ही विवेकी, धर्मात्मा तथा चतुर पूर्वजोके प्रयत्न और पुरुषार्थके प्रसादसे ग्रथराज अबतक विद्यमान है, और अब भी वे यथामति उनकी सेवा कर ही रहे हैं। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवाके प्रति कृतज्ञतावश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुन उनसे सस्नेह अनुरोध करेंगे, और अपनी सद्भावनापूर्ण बात समझावेगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदयकी ध्वनिको ध्यानसे सुनेंगे। न मालूम क्यो, हृदय बार-बार यह कहता था, कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्नके पथमें ही सफलता है। यह सूक्ति महत्त्वपूर्ण है "मृदुना दारुण हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम्। नासाध्य मृदुना किंचित्, तस्मात् तीक्ष्णतरं मृदु ॥"

जटिल समस्या

कुछ समयके पश्चात् पुरुषार्थी धर्मवीर सेठ रावजी भाईका स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमने सोचा– भगवन्! अब यह महाबधकी प्राप्तिकी अत्यन्त कठिन तथा जटिल समस्या कबतक और कैसे सुलझती है?

अधिकारमें रखनेकी बात सोचते थे। अर्थ-व्यवस्था निमित्त रावराजा श्रीमंत सर सेठ हुकमचंदजीके स्थानपर एक बैठक हुई। उसमें कर्णाटक प्रान्तके महान् प्रभावशाली व्यक्ति श्री डी० मंजैय्या हेगडे बी० ए० धर्मस्थल तथा उस प्रांतके विशेष श्रीमंत राजवंशीय श्री रघुचंद्र बल्लाल मेंगलोर भी शामिल हुए थे। वह मीटिंग उक्त दोनों महानुभावोंके साथ हमारे स्निग्ध संबंधोंके स्थापन तथा संवर्धनमें कारण पड़ी। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि 'महाबंध'के व्यवस्थापकोंमें उन लोगोंका प्रमुख स्थान था, इसलिए उनके साथका परिचय तथा मैत्री संबंध भावी सफलताके मार्गके लिए अनुकूलताको सूचित करते थे।

महाभिषेक-महोत्सव पूर्ण होनेके पश्चात् मूडबिद्री कार्कल आदिकी वंदना निमित्त हम पिताजीके साथ मेंगलोर पहुँचे। वहाँ माननीय श्रीबल्लाल महाशयसे अकस्मात् भेंट हो गयी। प्रसंगवश हमने उनसे कहा—"पहले तो आपके बल्लाल वंशने दक्षिण भारतमें राज्य किया था। आपको भी उस वंशकी प्रतिष्ठाके अनुरूप अपूर्व कार्य करना चाहिए। देखिए, आपके यहाँ मूडबिद्रीके शास्त्रभंडारमें संसारकी अपूर्व विभूति महाबंध शास्त्र है। इसका उद्धार कार्य करनेसे विश्व आपका आभार मानेगा।" इसके अनंतर कुछ और भी धार्मिक बातें हुई। शायद वे उन्हें पसंद आयी। उन्होंने हमसे कहा—"हम मूडबिद्रीमें आपका भाषण कराना चाहते हैं, क्या आप बोलेंगे?" हमने विनोदपूर्वक कहा—"जब भी आप भाषणके लिए कहेंगे, तब ही हम बोलनेको तैयार हैं, किन्तु इसके बदलेमें आपको महाबंध शास्त्र देना होगा।" वे हँसने लगे।

सक्रिय उद्योग

हम मूडबिद्री पहुँचे। वहाँ जैन नरेशोंके औदार्य तथा भक्तिवश निर्माण कराये गये त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय (चंद्रनाथबसदि) की भव्यता तथा विशालताको देख बड़ा आनंद आया। उस मंदिरमें अफ्रीकाके कारीगरोंने आकर प्राचीन समयमें शिल्पका कार्य किया था। हमें बताया गया कि पहले जैनियोंकी वहाँ बहुत समृद्धिपूर्ण स्थिति थी। बड़े-बड़े जहाजोंके वे अधिपति थे। उनसे वे विदेश जाकर रत्नोंका व्यापार करते थे और श्रेष्ठ वस्तु जिनशासनके उपयोगमें लाते थे। इस प्रकार वहाँकी अमूल्य अपूर्व मूर्तियाँ बनायी गयी थीं। पुरातन जैन वैभवकी चर्चा सुन सुनकर हृदय हर्षित हो रहा था, उस समय वयोवृद्ध परमधार्मिक श्री नागराज श्रेष्ठीसे भेंट हुई। उन्होंने बड़ा स्नेह व्यक्त किया। हमने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—"बड़ी दया हो, यदि इस बारके महाभिषेककी स्मृतिमें आप लोग महाबंधकी प्रतिलिपि करनेकी अनुज्ञा दे दें। आपके पूर्वजोंका ही पुण्य था, जो रत्नराशिसे भी अधिक मूल्यवान् इस ग्रंथरत्नकी अबतक रक्षा हुई।" हमारी बात सुनकर उन्होंने कहा—"प्रयत्न करो, आपको ग्रंथ मिल जायेगा।" हमने कहा, "आपके आशीर्वाद और कृपा द्वारा ही यह कठिन कार्य संभव हो सकता है।" उन्होंने हमें उत्साहित करते हुए कहा—"अगर आप मंजैय्या हेगडे तथा रघुचंद्र बल्लालको यहाँ ला सकें, तो सरलतासे काम बन जायेगा। उन लोगोंका यहाँकी समाजपर विशेष प्रभाव है। हेगडेजीका प्रभाव तो असाधारण है।" अत दूसरे दिन सवेरे हम अपने छोटे भाई चिरंजीव (प्रोफेसर) सुशीलकुमार दिवाकर (बी० काम०, एम० ए०, एल-एल० बी०) को तथा ब्र० फतेहचन्दजी परवारभूषण नागपुरवालोंको साथ लेकर धर्मस्थल गये तथा श्री मंजैय्या हेगडेसे मूडबिद्री चलनेका अनुरोध किया। बड़े आग्रह करनेपर उन्होंने हमारा निवेदन स्वीकार किया। धर्मस्थलमें धर्ममूर्ति हेगडेजीके वैभव, प्रभाव तथा पुण्यको देखकर आनंद हुआ।

धर्मस्थलसे वापस होते समय हम वेणूरकी बाहुबलि स्वामीकी विशाल तथा उच्च कलापूर्ण मूर्तिके दर्शनार्थ ठहरे। वहाँ सौभाग्यसे दानवीर रावराजा श्रीमंत सर सेठ हुकमचंदजीसे भेंट हो गयी। हमने उन्हें सिद्धान्तशास्त्र संबंधी चर्चा सुना संध्याके समय मूडबिद्री पहुँचनेका अनुरोध किया और अपने स्थानपर वापस आये। पश्चात् हम श्रीमंत बल्लाल महोदयसे मिलने मेंगलोर पहुँचे। उन्होंने पूछा कैसे आये? हमने विनोदपूर्वक कहा—"उस दिन आपने कहा था कि मूडबिद्रीमें हम आपका व्याख्यान कराना चाहते हैं। आप अबतक नहीं आये। हमें अपने देश वापस जल्दी जाना है, [illegible]

स्वीकृति

इसपर विवेकमूर्ति परम सज्जन श्री मजैय्या हेगडेने द्रवित होकर कहा "You have given us more than we wanted"—जो कुछ हम चाहते थे, उससे अधिक मूल्य आपने दे दिया। श्री हेगडेजीकी अनुकूलता होनेपर आदरणीय भट्टारक महाराज, श्री बल्लाल आदि सबने स्वीकृति प्रदान कर दी। हमारे पूज्य बडे भाई सिंघई अमृतलालजीने हमसे कहा "यह महान् कार्य है। परिणामोमें परिवर्तनका पदार्पण होते विलब नहीं लगता, अत लिखित स्वीकृति आवश्यक है। वह सर्व आशकाओको दूर कर देगी।" हमने सब समाजसे विनय की—"आज आप लोगोने महाधवलजीकी बिना मूल्य प्रतिलिपि प्रदान करनेकी पवित्र स्वीकृति दी है। समाचार पत्रोमें प्रामाणिकता पूर्वक समाचार प्रकाशित करनेके लिए आप लोगोकी लिखित स्वीकृति महत्त्वपूर्ण होगी, और लोगोको तनिक भी सदेह नही रहेगा।" सबका हृदय पूर्णतया पवित्र था। स्वीकृति अत करणसे दी गयी थी, अत प्रमुख पुरुषोने सहर्ष शीघ्र हस्ताक्षर करके स्वीकृति-पत्रक हमें दिया। उसे पा हमने अपनेको धन्य तथा कृतार्थ समझा। इस कार्यको सपन्न करनेमें हमें अपने पूज्य पिताजी (सिंघई कुवरसेनजीसे) विशिष्ट पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ था, कारण वे महान् शास्त्रज्ञ, लोक व्यवहार प्रवीण एव अपूर्व कार्यकुशलता सपन्न थे। उनका प्रभाव भी कार्य सपन्न करनेमें बडा साधन बना।

मूडबिद्रीके पचोकी महान् उदारताको घोषित करनेवाला समाचार जब जैन समाजने सुना, तब चारो ओर सबने महान् हर्ष मनाया और मूडबिद्रीकी समाजके कार्यकी प्रशसा की। किन्तु दुर्भाग्यसे एक समाचार पत्रमें कुछ ऐसे समाचार निकल गये, जिससे पुरातन विरोधाग्नि पुन प्रदीप्त हो उठी। इससे दक्षिणके एक प्रमुख पुरुषने हमें लिखा—"अब आप प्रतिलिपि ले लेना, देखें, कौन देता है?" इससे हमारी आत्मा काँप उठी। यह ज्ञातकर बडा दुख हुआ, कि व्यक्तिगत विशेष मानकी रक्षार्थ हमारे विज्ञबधु ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयको पुन विरोध और विवादकी भँवरमें फँसा रहे हैं। इसके अनतर ज्ञात हुआ कि न्यायदेवताके आह्वान निमित्त कानूनी कार्यवाही भी प्रारभ होने लगी। उस समय श्रुतभक्त ब्र० श्री जीवराज गौतमचदजी दोशी और मुनि समतभद्रजीके (जो उस समय क्षुल्लक थे) प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे विरोध शात किया गया। यह चर्चा हमने इससे की, कि लोग यह देख लें, कि बना-बनाया धर्मका कार्य किस प्रकार अकारण अवाछनीय सकटोसे घिर जाता है। सोमदेव सूरिकी उक्ति बडी अनुभवपूर्ण है। वे नीतिवाक्यामृतमें लिखते है—'धर्मानुष्ठाने भवति, अप्रार्थितमपि प्रातिलोम्य लोकस्य'।१।३५। 'धर्मकार्यमें लोग बिना प्रार्थना किये गये स्वयमेव प्रतिकूलता धारण करते हैं'।—ऐसी प्रवृत्ति पापानुष्ठानके विषयमें नहीं होती।

और भी विपत्तियोका वर्णन करके हम लेखको बढाना उचित नही समझते। सक्षेपमें इतना ही कहना है, कि बडे-बडे विचित्र विघ्न आये, किन्तु श्रुतदेवताके प्रसादसे वे शरदृतुके मेघोके सदृश अल्पस्थायी रहे।

आबाधाकाल

किया, तब नवीन रूपसे टीका निर्माण करना ही उचित जँचा। महाबंधकी टीकाको मुख्य कार्य समझ हम उसमें संलग्न हो गये। लगभग तीन वर्षमें यह कार्य बन पाया। बना या नहीं यह हम नहीं कह सकते। हमारा भाव यह है कि इसमें पूर्वोक्त समय लगा। इस अनुवादमें विशेषार्थ, टिप्पणी, शुद्ध पाठ योजना आदि भी कार्य हुए। इस अपेक्षासे यह टीका पूर्णतया नवीन समझना चाहिए।

सन् १९४५ के ग्रीष्मावकाशमें न्यायालंकार सिद्धान्त महोदधि गुरुवर पं० वंशीधरजी शास्त्री महरौनी-वालोंने सिवनी पधारकर अनुवादको ध्यानपूर्वक देखा। उनके संशोधनके उपलक्षमें हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। यह उनकी ही कृपा है, जो यह महान् कार्य हम जैसे व्यक्तिसे संपन्न हो गया।

पं० हीरालालजी शास्त्री साढ़मलने अनेक बहुमूल्य परामर्श तथा सुझाव प्रदान किये थे। पं० फूलचन्द्र-जी शास्त्रीने सिवनी पधारकर अनेक महत्त्वास्पद बातें सुझायी थीं। इसके लिए हम दोनों विद्वानोंके अनु-गृहीत हैं। अन्य सहायकोंके भी हम आभारी हैं।

हमें स्वप्नमें इस बातका भान न था, कि महाबंधकी प्रति मूडबिद्रीसे प्राप्त करनेका परम सौभाग्य हमें मिलेगा, और उसकी टीका करनेका भी अमूल्य अवसर आयेगा। जैन धर्मके प्रसादसे और चारित्र चक्रवर्ती प्रातःस्मरणीय पूज्य आचार्य १०८ श्री शांतिसागर महाराजके पवित्र आशीर्वादसे यह मंगलमय कार्य संपन्न हुआ। प्रमाद अथवा अज्ञानवश टीकामें जो भूलें हुई हों, उन्हें विशेषज्ञ विद्वान् क्षमा करेंगे और संशोधनार्थ हमें सूचित करनेकी कृपा करेंगे, ऐसी आशा है। ऐसे महान् कार्यमें भूलें होना असंभव नहीं है। 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।'

पौष कृ० ११, वीरसंवत् २४७३
१८ दिसम्बर, १९४६ सिवनी
(सी० पी०)

—सुमेरचन्द्र दिवाकर

द्वितीय संस्करण

यह परम आनंदकी बात है कि महाबंध सदृश दुरूह और गंभीर ग्रंथके प्रथम खंडका प्रथम संस्करण समाप्त हो जानेसे उसके पुनः मुद्रणका मंगल प्रसंग प्राप्त हुआ। हमने महाबंधका सूक्ष्मतासे पुनः पर्यालोचन करके भूमिका, अनुवाद आदिमें अत्यधिक आवश्यक तथा उपयोगी परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं।

इस ग्रंथकी कोई पूर्वमें टीका नहीं थी, अतः १७ वर्षके शास्त्राभ्यासके फलस्वरूप अनेक बातें परिवर्तन तथा संशोधन योग्य लगीं। सहारनपुरके श्रुतप्रेमी बंधु श्री नेमीचंदजी एडवोकेट तथा ब्र० रतनचंदजी मुख्तारने अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधनोंका सुझाव दिया। मूडबिद्री जाकर पुनः प्रतिलिपि मिलानेके कार्यमें हमारे अनुज अभिनंदनकुमार दिवाकर एम० ए०, एल एल० बी० एडवोकेटने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। हमारे भाई श्रेयांसकुमार दिवाकर बी० एस० सी० से भी उपयोगी सहायता मिली। भाई शांतिलाल दिवाकरके ज्येष्ठ चिरंजीव ऋषभकुमारने लेखन कार्यमें पर्याप्त श्रम उठाया है।

भारतीय ज्ञानपीठने इस ग्रंथके पुनः मुद्रणका भार उठाया। इन सबके प्रति हम अत्यंत आभारी हैं। चारित्र चक्रवर्ती क्षपक शिरोमणि १०८ आचार्य शांतिसागर महाराजकी इच्छानुसार संपूर्ण महाबंधकी ताम्रपत्रीय प्रतिके लिए पूर्ण ग्रंथ संशोधन, संपादन तथा मुद्रणका महान् कार्य करनेका पवित्र सौभाग्य मिला था, उस कार्यके अनुभवसे इस टीकाके कार्यमें विशेष लाभ पहुँचा। सन् १९५५ में उन ऋषिराजने सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरिमें ३६ दिन पर्यन्त सल्लेखना पूर्वक आदर्श देहोत्सर्ग किया, अतः उनके पुण्यचरणोंको कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हुए प्रणामांजलि अर्पित करते हैं। ऋषीश्वर धरसेन आचार्य तथा पुष्पदंत-भूतबलि मुनीन्द्रोंके चरणों-को शतशः वंदन है, जिनके कारण इस द्वादशांग वाणीके अंगरूप आगमका संरक्षण हुआ। 'जयउ सुयदेवदा।'

३० दिसम्बर, १९६४
दिवाकर सदन, सिवनी
मध्यप्रदेश

सुमेरचन्द्र दिवाकर

Mallikādevi for the purpose of presentation to an erudite Muniraj Māghanandi who was the disciple of Meghackandra Suri in commemoration of the successful completion of her Panchami-Vrita This throws light upon the fact that in ancient India the ladies of high family had refined taste and were attached to literature It is through the generosity of Mallikādevi that we have at least one copy amid us written in the Kannad script It is really a matter of profound regret that such important work has not been preserved in any other Bhandāra

The Dhavalā sheds light upon the descent of this work and the historicity of Monks Bhūtabali, Pushpadanta and their spiritual preceptor Dharasena Āchārya He was a great soul and an enlightened scholar well-versed in some portions of the Twelve Angas, which had been composed by the head of Jain hierarchy, Gautama Gaṇadhar, who had received direct Teaching from the Omniscient Tirthankara Bhagavān Mahavira Dharasena flourished after Lohāchārya, who died 683 years after Mahavira's Nirvana i e, in 137 A D What is the exact date of Dharasena is not definitely known, but it is surmised that he must have lived a couple of years after Lohāchārya It is just possible that he might have seen the demise of Lohacharya, who possessed the knowledge of entire Acharanga It appears, therefore, that Dharasena should belong to the later half of the second century after Christ

It transpires that Dharasena Āchārya was proficient in the occult science of Ashtānga Nimitta Shāstra, as also in 'Mahā-Karma-Prakriti-Prābhrita' On one occasion his mind was diverted towards the sudden disappearance of canonical Teachings of Mahavira Bhagavāna and this fact grieved him a great deal He made up his mind to preserve the Teaching, which was fresh in his memory He imparted instructions to Bhūtabali and Pushpadanta, who were sent to him by the religious head of the monks of the south on his requisition for sending disciples specially remarkable for their memory and retentive faculty After the termination of studies, the disciples left the place in accordance with the wishes of their master Pushpadanta went to Vanavas Desa (modern Wandewash), composed 177 sutras and sent them to Bhūtabali with his high souled disciple Jinapalita to Dramila Desa After going through the sutras Bhutabali could see into the mind of Pushpadanta Jinapalita communicated to him that his master is not expected to survive long, thereby suggesting him that he should speed up into the matter of compiling the teaching imparted to them by the preceptor, Dharasena Acharya

Bhūtabali devoted himself to writing with single mind and was successful in completing the whole of Shatkhandāgama Sutra Fortunately Pushpadanta was alive then, therefore he had sent the entire composition to his colleague Pushpadanta with the self-same saint Jinapalita Pushpadanta was extremely delighted to see his heartfelt wishes fulfilled and he performed the worship of the scripture with due eclat and grandeur accompanied by the huge assemblage of Jains on Jyestha sudi 5th day

Date of the author

The date of the author is not mentioned, but it appears that it must be assigned to the early part of the first century A. D

> "How can it be, that Brahma,
> Would make a world, and keep it miserable,
> Since, if all-powerful, he leaves it so,
> He is no good, and if not powerful,
> He is not God"

Due to these failings, the Jains believe in a God, who is Omniscient, who is passionless and who enjoys the bliss of perfection, and who does not bother about the creation or destruction of the world The manifold conditions of sentient beings are due to fruition of Karmas acquired by the Jiva in the past

Bondage of Karma

Some think that the soul is pure and perfect; therefore it is wrong to suppose it as the reaper of the harvest of its merits or demerits This view goes against our experience and reason The mundane soul is impure, since it is contaminated with matter assuming the form of good or bad karmas We see that the Jiva has been imprisoned in this body, which is a store-house of the filthiest of objects The pure, perfect and powerful soul would never have liked to reside in such an impure tabernacle even for a moment We, therefore, infer that the jiva is under forced-servility of some thing, which is instrumental to such an awkward position of the soul The main source of this downfall is the matter having assumed the form of a Karma

This karma is material since its effects, auspicious or otherwise, are visible either on the physical body or they are exhibited by means of association or separation of material objects

This soul, although immaterial, is recipient of good or evil effects of the karmas which are material This phenomenon should not bewilder any one, for we see that the intelligent being is subject to intoxication caused by drinking wine which is non-sentient It is to be noted that the very liquor does not cause any intoxication to the bottle which contains it Such is the nature of things

The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech The molecules which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the Jiva, whereby an infinite number of sublte atoms is attracted and assimilated by the Jiva This assimilated group of atoms is termed as Karma Its effect is visible in the multifarious conditions of the mundane soul As a red-hot iron-ball, when dipped into water, assimilates its particles, or as a magnet draws iron filings towards itself due to magnetic force , in the like manner the soul, propelled by its psychic experiences of infatuation, anger, pride, deceit and avarice, attracts karmic molecules and becomes polluted by the karmas The psychic experience is the instrumental cause of this transformation of matter into a karma, as the clouds are instrumental in the change of sun's rays into a rainbow

When karmas come in contact with the soul fusion occurs, whereby a new condition springs up which is endowed with marvellous potentialities and is more powerful than infinite atom bombs One can easily imagine the power of karmas, which have covered infinite knowledge, infinite power, infinite bliss of the soul and

ly the 'Gyanavarniya' karma obstructs the knowledge, the 'Darshanavarniya' obstructs darshana (form of consciousness, which precedes khowledge), 'Vedaniya' enables the soul to have sensations of pleasure or pain through senses, 'Mohaniya', the ring-leader of the karmas, causes delusion and perversed vision of the self and non-self, 'Ayuh' determines the length of life in a particular body, 'Nama' is responsible for physical form, complexion, constitution etc , 'Gotra' decides the birth in high or low family and the last one, 'Antaraya', acts as an impediment in the acquisition and enjoyment of things, possession of strength etc These eightfold karmas are further sub-divided into 148 varieties The present volume deals with this Prakriti Bandha from several stand-points The second one i e , 'Sthiti Bandha' determines duration of the bondage, the third, 'Anubhaga Bandha' deals with the potentiality of various karmas, the fourth, 'Pradesha Bandha' causes the division of karmic molecules into several varieties in accordance with the vibrations of the soul

Modern worldy-wise man perhaps may think that this work has no bearing upon life and it is a mere display of intellectual exercises

An aspirant for liberation will immediately differ from this viewpoint In Mahabandha he will find wonderful remedy for warding off the feelings of attachment or aversion and thereby uplift the soul to the sphere of equanimous contemplation, which ultimately leads to the final beatitude One who devotes himself to the study of this work is so deeply engrossed therein, that he forgets for a while the world of attachment and aversion His Holiness the Digamber Jain Ācharya Chāritra Chakravarti Sri Shāntisāgar Mahārāj had once remarked, "This Shastra must be thoroughly studied by those who are tired of transmigration and who long for liberation Proper knowledge of Bandha-Tattva is essential before proceeding towards the ultimate goal of purity and perfection "

---

vibrations operating through mind, body or speech, by means of which atoms and molecules assume several aspects and forms A group of atoms is termed Karma, whose effect is visible in exterior condition This theory, in fact, embodies a marvellous pre science of modern scientific developments The whole chapter is intensely interesting and is an attempt at rational exposition of Karmic bonds, as they affect the soul's evolution

"The final teaching that the Jeeva with attachment gets bound by Karma, but the one with detachment remains free from Karma, is not different from the Vedantic approach, but the process of reasoning and the background of the doctrine are inherently *sui generis* and it is to the glory of the great Jain teachers that they were able to evolve a philosophy of conduct uninfluenced by any reliance upon supernatural intervention or guidance " (Religion And Peace, P 318)

"For it is impossible that he who has once been made perfect by love and feasts eternally and insatiably on the boundless joy of contemplation, should delight in small and grovelling things For what rational cause remains any more to the man who has gained the 'light inaccessible' for reverting to the good things of the world ?" (Clement) A N C L Vol XII pp 346-347)

Preface to the Sêcond Edition

It is a matter of profound gratification that this sacrosanct Scripture, Mahābandha, is undergoing the second edition When it was first printed in 1947, it was revealed that more than three thousand slokas of the palm leaf manuscript were irrevocably destroyed by moths This information deeply pinched the soul of the greatest nude Jain Saint His Holiness Chāritra Chakravarti 108 Āchārya Shānti Sāgar Mahāraj, who was then spending his Chaturmās—period of rainy season in the Jain Tirtha, Kunthalgiri (Maharashtra State) When the saint's mental worry and disturbed internal condition became known, the devoted disciples humbly prayed for conveying them the internal difficulty His Holiness observed, "Look here, precious part of the most ancient and sacred Jain literature is lost for ever If immediate care is not taken for proper preservation of the remaining literary priceless treasure, we shall one day become a pauper I, therefore, feel it imperative that the entire Siddhanta literature comprising of One lakh and seventy thousand slokas should be inscribed in copper plates so that it may last for hundreds of years "

The master's bidding was immediately obeyed and about two lakhs of rupees were contributed by the generous, opulent and cultured disciples to fulfil the sublime desire of the saint

Fortunately, the sacred responsibility of critically editing and printing the entire Mahābandha comprising of forty thousand slokas was entrusted upon me

In view of my onerous responsibility and ardous duty, I had been to the Jain monastery at Mooddidri (South-Canara) with a view to critically examine and collate the press copy with the palm-leaf manuscript of the Shastra Bhandar with my younger brother Abhinandan Kumar Diwaker, M A , LL ,B , Advocate, Seoni This effort was very fruitful since several inaccuracies could be detected then Thus the work was accomplished in such a way that His Holiness was much pleased and he bestowed his valuable blessings on me I had made deep study of several Jain canonical compositions of master thinkers and literary luminaries This study equipped me with such new and novel material as necessitated to thoroughly revise the first edition and make necessary additions and alterations in order that the wisdom-lovers may be profited thereby I, therefore, have improved this second edition with several new explanatory notes appended to the translation and have equipped the Hindi introduction with many a new points of information

All this is due to the great benevolent saint His Holiness Āchārya Shāntisāgar Mahāraj who was graciously pleased to provide me the sublime opportunity to serve the cause of learning and thus purify and elevate my humble self Since the said great Āchārya left his mortal coil after a fast lasting for 36 days in 1955 by way of superb Sallekhanā—Ideal and pious death-because his eyesight grew dimmer

प्रस्तावना

महाबंधपर प्रकाश

जिनेन्द्र देवकी निर्दोष वाणीरूप होनेके कारण सपूर्ण आगम ग्रन्थ समान आदर तथा श्रद्धाके पात्र है, फिर भी जैन ससारमें धवल, जयधवल, महाधवल नामक शास्त्रोके प्रति उत्कट अनुराग एव तीव्र भक्तिका भाव विद्यमान है। इस विशेष आदरका कारण यह है, कि तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभुकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण कर गणधरदेवने ग्रन्थ-रचना की। वह मौखिक परपराके रूपमें, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रोकी चमत्कारिणी स्मृतिके रूपमें, हीयमान होती हुई भी, विद्यमान थी। महावीर निर्वाणके छह सौ तिरासी वर्ष व्यतीत होनेपर अगो और पूर्वोके एकदेशका भी ज्ञान लुप्त होनेकी विकट स्थिति आ गयी। उस समय अग्रायणीय-पूर्वके चयनलब्धि अधिकारके चतुर्थ प्राभृत 'कम्मपयडि'के चौबीस अनुयोग द्वारोसे षट्खण्डागमके चार खण्ड बनाये गये, जिन्हें वेदना, वर्गणा, खुद्दाबध तथा महाबध कहते है। बधक अनुयोग द्वारके अन्यतम भेद बध-विधानसे जीवट्ठाणका बहुभाग और तीसरा बधसामित्तविचय निकले। इस प्रकार षट्खण्डागमका द्वादशाग वाणीसे सबन्ध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रवाद नामक पचम पूर्वके दशम वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तीसरे पेज्ज-दोसपाहुडसे कषाय प्राभृतकी रचना की गयी। इन ग्रन्थोंका द्वादशागवाणीसे अविच्छिन्न सबन्ध होनेके कारण द्वादशागवाणीके समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। षट्खण्डागमके महाबधको छोडकर पाँच खण्डोपर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है उसे धवला टीका कहते हैं। महाबधपर कोई टीका उपलब्ध नही है।[1] कषाय प्राभृतमें गुणधर आचार्य रचित एक सौ अस्सी गाथाएँ है।[2] इनमें त्रेपन गाथाएँ और जोडनेपर गुणधर आचार्य रचित कुल गाथाओकी सख्या दो सौ तेंतीस हो जाती है। जयधवला टीकामें कहा है—"कसायपाहुडे सोलसपदसहस्साणि (१६०००)। एदस्स अवसहारगाहाओ गुणहर-मुह-कमल-विणिग्गियायो तेत्तीसाहिय-विसदमेत्तीओ (२३३)" (भाग १ पृ० ९६)। यतिवृषभ आचार्यने छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णि सूत्र बनाये। इसकी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामीने बनायी, उसका नाम जयधवला टीका है।

सूत्र-रचना—षट्खण्डागममें जीवट्ठाणके प्रारम्भिक सत्प्ररूपणा अधिकारके केवल एक सौ सतहत्तर सूत्रोकी रचना पुष्पदन्त आचार्यने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवट्ठाण, खुद्दाबध, बधसामित्त, वेदना और वर्गणा इन सूत्ररूप पाँच खण्डोकी श्लोक सख्या छह हजार प्रमाण है। छठे खण्ड महाबधमें चालीस हजार श्लोक प्रमाण सूत्र हैं। साधारणतया सपूर्ण धवला, जयधवला टीकाको द्वादशांगसे साक्षात् सम्बन्धित समझा जाता है।

महाबधका प्रमाण—द्वादशाग वाणीसे सबन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यकी दृष्टिसे गुणधर आचार्य रचित दो सौ तेंतीस गाथाओको जो विशेषता प्राप्त होगी, वह उनपर रची गयी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीकाको नही होगी। इसी दृष्टिसे यदि धवला टीकापर भी प्रकाश डाला जाय, तो कहना होगा, कि

---

१ बप्पदेवने आठ हजार पाँच श्लोक प्रमाण महाबधकी टीका रची थी।
व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपा सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।
अष्टसहस्रग्रन्था व्याख्या पञ्चाधिका महाबन्धे ॥ १७६ ॥ –इन्द्र० श्रुता०।

२ गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥ –जयध० १।१५१।

धवल, जयधवल तथा महाधवलके साथ 'विजयधवल' का नवीन उल्लेख है, जो अनुसधानका विषय है। आगे लिखा है—

"तत्पट्टे धरसेनकस्समभव सिद्धान्तग सेशुम (?)
तत्पट्टे खलु वीरसेनमुनिपो ग्रैंइचित्रकूटे परे।
येलाचार्यसमीपग कृततर सिद्धान्तमल्पस्य ये
वाटे चैत्यवरे द्विसप्ततिमति सिद्धाचल चक्रिरे ॥ १४ ॥"

सवत् १६३७ आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावस्यातिथौ शनिवासरे शिवदासेन लिखितम्।

कवि वृन्दावनजीने महाधवल नाम प्रयुक्त किया है।[1]

पडितप्रवर टोडरमलजीकी गोम्मटसार कर्मकाण्डकी टीकामें भी महाधवल नाम आया है। "तहाँ गुणस्थान विषै पक्षान्तर जो महाधवलका दूसरा नाम कषायप्राभृत (?) ताका कर्ता यतिवृषभाचार्य ताके अनुसार ताकरि अनुक्रम तैं कहिए है।" कषाय प्राभृतपर वीरसेनाचार्यने जो जयधवला टीका लिखी है, उससे विदित होता है कि कषायपाहुडके गाथा सूत्रोपर यतिवृषभ आचार्यने चूर्णिसूत्र बनाये थे। इसे पण्डित टोडरमलजीने 'महाधवल' ग्रन्थ रूपमें कह दिया। प्रतीत होता है, सिद्धान्तग्रन्थोका साक्षात्कार न होनेके कारण कषायप्राभृतका नामान्तर महाधवल लिखा गया।

महाधवल नाम प्रचारका कारण

यहाँ यह विचार उत्पन्न होता है कि महाबध शास्त्रका नाम महाधवल प्रचलित होनेका क्या कारण है ? इस सम्बन्धमें यह विचार उचित जँचता है, कि महाबधमें भूतबलि स्वामीने अपने प्रतिपाद्य विषयका स्वय अत्यन्त विशद तथा स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन किया है। इसी कारण वीरसेन आचार्य अपनी धवला टीकामें लिखते हैं—[2]इन चार बधोका विस्तृत विवेचन भूतबलि भट्टारकने महाबधमें किया है, अतएव हम यहाँ इस सबन्धमें कुछ नही लिखते। महाबधके विशेषण रूपमें महाधवल शब्दका प्रयोग अनुचित नहीं दिखता। यह भी सभव दिखता है कि विशेष्यके स्थानमें विशेषणने ही लोकदृष्टिमें प्राधान्य प्राप्त कर लिया हो। यह भी प्रतीत होता है, कि परपरा शिष्य सदृश वीरसेन, जिनसेन स्वामीने अपनी सिद्धान्तशास्त्रकी टीकाओके नाम धवला, जयधवला रखे, तब स्वय स्पष्ट प्रतिपादन करनेवाले गुरुदेव भूतबलिकी महिमापूर्ण कृतिको भक्ति तथा विशिष्ट अनुरागवश महाधवल कहना प्रारभ कर दिया गया होगा।

महाबधके महाधवल नामके बारेमें सन् १९४५ में, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर महाराजके समक्ष चर्चा करनेका अवसर आया था। इस ग्रन्थकी प्रस्तुत हिन्दी टीकाका आचार्य महाराज

---

१ अग्रणीपूर्व के, पाँचवें वस्तु का, महाकरमप्रकृति नाम चौथा।
इस पराभृत का, ज्ञान तिनके रहा, यहाँ लग अग का, अश तौ था ॥
सो पराभृत को भूतबलि पुष्परद, दोय मुनि को सुगुरु ने पढाया।
तास अनुसार, पट्खण्ड के सूत्र को, बाधि के पुस्तको में मढाया ॥ ४६ ॥
फिर तिमी सूत्र को, और मुनिवृन्द पढि, रची विस्तार सो तासु टीका।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु, सिद्धान्तवृत्तान्त परमान टीका ॥
तिहन हि सिद्धान्त को, नेमिचन्द्रादि आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता।
रचे गोमट्टसारादि बहुशास्त्र यह, प्रथम सिद्धान्त-उतपत्ति गीता ॥ ४७ ॥
—श्रीप्रवचनसार-परमागम, कवि वृन्दावन, पृ० ६, ७।

२ एदेसि चदुण्ह बधाण विहाण भूदबलिभडारएण महाबधे सप्पवचेण लिहिदत्ति, अम्हेहि एत्थ ण लिहिद"—ध० टी० सि० १४३७।

महाबंधके अवतरणका इतिहास

कविकी कल्पना या विचारोंके द्वारा जैसे काव्यकी रचना होती है, उसी प्रकार यह महाबंध-शास्त्र भूतबलि स्वामीके व्यक्तिगत अनुभव, विचार या कल्पनाओंकी साकार मूर्ति नहीं है। इस ग्रन्थका प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामीने अपनी दिव्य ध्वनि-द्वारा प्रकाशित किया था।[1] श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके प्रभातमें विपुलाचल पर्वतपर सर्वज्ञ महावीर तीर्थंकरकी कल्याणकारिणी धर्म-देशना हुई थी। उसे गौतमगोत्री चतुर्विध निर्मल ज्ञानसंपन्न, संपूर्ण दुःश्रुतिमें पारगत इन्द्रभूति ब्राह्मणने वर्धमान भगवान्के पादमूलमें उपस्थित हो सुना और अवधारण किया था। अनन्तर गौतम स्वामीने[2] उस वाणीको द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्वरूप ग्रन्थात्मक रचना एक मुहूर्तमें की "एक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा"। उत्तरपुराणमें गुणभद्र स्वामीने कहा है कि अंगोंकी रचना पूर्वरात्रिमें की गयी थी और पूर्वोंकी रचना रात्रिके अन्तिम भागमें की गयी थी —'अंगानां ग्रन्थसंदर्भं पूर्वरात्रे व्यधाम्यहम्। पूर्वाणां पश्चिमे भागे' (७४-३७१, ३७२) इस सम्बन्धमें भगवान् महावीरको अर्थकर्त्ता कहा गया है, और गौतम स्वामीको ग्रंथकर्त्ता। गौतमने द्रव्यश्रुतकी रचना की थी। तिलोयपण्णत्तिकारका कथन है—

"इय मूलतंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो।
उवतंते कत्तारो अणुतंते सेसआइरिया ॥ १।८०।"

'इस प्रकार श्री वीर भगवान् मूलतंत्रकर्त्ता, विप्रशिरोमणि इन्द्रभूति उपतंत्रकर्त्ता तथा शेष आचार्य अनुतंत्रकर्ता हैं।'

गणधरका व्यक्तित्व—इस द्वादशांग रूप परमागमका प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् वर्धमान जिनेन्द्रकी दिव्य-ध्वनिसे प्राप्त होनेसे वह प्रमाण रूप है। गणधरका भी व्यक्तित्व लोकोत्तर था। गौतम गणधरके विषयमें जयधवलामें लिखे गये ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं —

जो आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुए हैं, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार निर्मल ज्ञानोंसे संपन्न हैं, जिन्होंने दीप्त, उग्र और तप्त तपको तपा है, जो अणिमा आदि आठ प्रकारकी वैक्रियिक लब्धियोंसे संपन्न हैं, जिनका सर्वार्थसिद्धिमें निवास करनेवाले देवोंसे अनंतगुणा बल है, जो एक मुहूर्तमें बारह अंगोंके अर्थ और द्वादशांग रूप ग्रंथोंके स्मरण और पाठ करनेमें समर्थ हैं, जो अपने हाथरूपी पात्रमें दी गयी खीरको अमृत रूपमें परिवर्तित करनेमें या उसे अक्षय बनानेमें समर्थ हैं, जिन्हें आहार और स्थानके विषयमें अक्षीण ऋद्धि प्राप्त है, जिन्होंने सर्वावधिज्ञानसे समस्त पुद्गल द्रव्यका साक्षात्कार कर लिया है, जिन्होंने अपने तपके बलसे विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न कर लिया है, जो सप्त प्रकारके भयसे रहित हैं, जिन्होंने क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप कषायोंका क्षय किया है, जिन्होंने पाँच इन्द्रियोंको जीत लिया है, जिन्होंने मन, वचन तथा काय रूपी तीन दण्डोंको भग्न कर दिया है, जो छहकायिक जीवोंकी दया पालनेमें तत्पर हैं, जिन्होंने कुलमद आदि अष्टमदोंको नष्ट कर दिया है, जो क्षमा आदि दस धर्मोंमें निरन्तर उद्यत हैं, जो पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्टप्रवचन मातृकाओंका पालन करते हैं, जिन्होंने क्षुधादि बाईस परीषहोंको जीत लिया है और जिनका सत्य ही अलंकार है—"सच्चालंकारस्स" ऐसे आर्य इन्द्रभूतिके लिए उन

१ वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥—ति० प० १।६९।

२ पुणो तेणिंदभूदिणा भावसुदपज्जयपरिणदेण बारहण्णमंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भावसुदस्स अत्थपदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुदपज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्वसुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथरयणा जादेत्ति।—ज० टी० ११६५।

महाबंधके अवतरणका इतिहास

कविकी कल्पना या विचारोके द्वारा जैसे काव्यकी रचना होती है, उसी प्रकार [illegible] भूतबलि स्वामीके व्यक्तिगत अनुभव, विचार या कल्पनाओंकी साकार मूर्ति नहीं है। इस [illegible] भगवान् महावीर स्वामीने अपनी दिव्य ध्वनि-द्वारा प्रकाशित किया था। श्रावण [illegible] विपुलाचल पर्वतपर सर्वज्ञ महावीर तीर्थंकरकी कल्याणकारिणी धर्म-देशना हुई थी। [illegible] निर्मल ज्ञानसपन्न, सपूर्ण दु श्रुतिमें पारगत इन्द्रभूति ब्राह्मणने वर्धमान भगवान्के [illegible] और अवधारण किया था। अनन्तर गौतम स्वामीने उस वाणीकी द्वादशाग तथा [illegible] रचना एक मुहूर्तमें की "एक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा"। [illegible] है कि अगोकी रचना पूर्वरात्रिमें की गयी थी और पूर्वोकी रचना रात्रिके अन्तिम [illegible] 'अगाना ग्रथसदर्भं पूर्वरात्रे व्यधाम्यहम्। पूर्वाणा पश्चिमे भागे' ([illegible]) [illegible] भगवान् महावीरको अर्थकर्त्ता कहा गया है, और गौतम स्वामीको ग्रथकर्त्ता। [illegible] थी। तिलोयपण्णत्तिकारका कथन है—

द्वादशाग वाणीकी मर्यादा—द्वादशाग वाणीके अत्यन्त विस्तृत विवेचनके होते हुए भी समस्त पदार्थका प्रतिपादन उसके द्वारा नही हो सका। कारण—

"पण्णवणिज्जा भावा अणतभागो दु अणभिलप्पाणं
पण्णवणिज्जाण पुण अणतभागो सुदणिवद्धो ॥"–गो० जी० ३३४।

पदार्थोका बहुभाग वाणीके परे है। वह केवलज्ञान गोचर है। अनिर्वचनीय पदार्थोका अनन्तवाँ भाग सर्वज्ञ वाणीके गोचर है। इसका भी अनन्तवाँ भाग श्रुतरूपमें निवद्ध किया गया है। श्रुतकेवलीके ज्ञानके अगोचर पदार्थका निरूपण दिव्यध्वनिमें होता है। उस दिव्यध्वनिके भी अगोचर पदार्थ केवलज्ञानके विषय होते है।[1]

यह द्वादशाग वेद है, कारण यह किसी प्रकारके दोषसे दूषित नही है। हिंसाका वर्णन करनेवाला वेद नही है। उसे तो कृतान्त (यम) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेनका कथन है—

"श्रुत सुविहित वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम्।
हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥" –महापु० ३९।२२।

गुरु परंपरा—गौतम स्वामीने द्वादशाग ग्रथका सुधर्माचार्यको व्याख्यान किया। धवलाटीकामे सुधर्माचार्यके स्थानमें लोहाचार्यका नाम ग्रहण किया गया है। कुछ कालके अनन्तर गौतमस्वामी[2] केवली हुए। उन्होने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्योको द्वादशागका व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महावीर भगवान्के निर्वाणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन सकलश्रुतके धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मीके अधिपति बने। परिपाटी क्रमसे ये तीन सकलश्रुतके धारक कहे गये हैं और अपरिपाटी[3] क्रमसे सकलश्रुतके ज्ञाता सख्यात हजार हुए। जयधवलामे बताया है कि सुधर्माचार्यने अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया। इसे ही धवलाटीकामें स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटीकी अपेक्षा सख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बूस्वामीने विष्णु आदि अनेक आचार्योको द्वादशागका व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्यने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामीने अडतीस वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामीने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामीके बारेमें जयधवलाकार लिखते है—'एसो एत्थोसप्पिणीए अतिमकेवली।'–ये इस अवसर्पिणी कालके अतिम केवली हुए। इस कथनसे यही अर्थ निकाला जाता है कि जम्बूस्वामीके निर्वाणके पश्चात् अन्य महापुरुष निर्वाणको नहीं गये। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है कि जम्बूस्वामीके निर्वाण जानेके पश्चात् अनुबद्ध केवली नही हुए।

---

१ श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति। तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थ ग्रहणशक्ति केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थ –गो० जीव० सस्कृतटीका पृ० ७३१

२ 'तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद।' –ध० टी० १।६५।
तदो तेण गोअमगोत्तेण इदभूदिणा सुहमा (म्मा) इरियस्स गथो वक्खाणिदो। –ज० ध० १।८४।

३ 'परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयलसुदधारया भणिया।
अपरिवाडीए पुण सयलसुदपारगा सखेज्जसहस्सा ॥' –ध० टी० १।६८।

४ तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जवसामियादीणमणेयाणमाइरियाण वक्खाणिददुवालसगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। –ज० ध० १।८४।
"तद्दिवसे चेव जबूसामिभडारओ विट्ठु (विण्हु) आइरियादीणमणेयाण वक्खाणिददुवालसगो केवली जादो ॥" –ध० टी० १।६५।

महावीर भट्टारकने अर्थका उपदेश दिया। (जयधवला टीका भाग १, पृ० ८३, ८४)। ऐसी महनीय विभूति गुरु गौतम गणधर रचित होनेसे समस्त द्वादशागवाणी पूज्य तथा विश्वसनीय है।

यह द्वादशाग समुद्रके समान विशाल तथा गभीर है। सपूर्ण द्वादशागकी 'मध्यमपद'के रूपमें गणना करनेपर जो सख्या प्राप्त होती है, उसे कविवर द्यानतरायजी इस प्रकार वताते हैं—

"एक सौ बारह कोडि वखानो। लाख चौरासी ऊपर जानो॥
ठावनसहस पच अधिकानो। द्वादश अग सर्व पद मानो॥"

सम्पूर्ण श्रुतज्ञानमें पदोकी सख्या ११२,८४,५८००,५ होती है। बारह अगोमें निबद्ध अक्षरोंके अतिरिक्त अक्षरोका प्रमाण ८०१०८१७५ है। इनकी अनुष्टुप् छन्दरूप गणना करें, तो २५०३३८०$\frac{15}{32}$ श्लोकोका प्रमाण होता है।

प्रथम अगका नाम आचाराग है। इसमें अठारह हजार पद कहे गये है। ये मध्यम पद रूप हैं। एक मध्यम पदमें कितने श्लोक होगे इसके विपयमें कहा है—

"कोडि इक्कावन आठ हि लाख। सहस चुरासी छह सौ भाख॥
साढे इकीस शिलोक बताए। एक एक पदके ये गाए॥"

इन श्लोकोकी सख्यासे आचारागके १८००० पदोका गुणा करनेके अनन्तर आचारागके अपुनरुक्त अक्षर विशिष्ट श्लोकोकी प्राप्ति होगी। जिस व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पचम अगका उपदेश धरसेन आचार्यने भूतवलि पुष्पदन्तको दिया था और जो इस ग्रथराजके बीज स्वरूप है उसमें पदोकी सख्या इस प्रकार कही है-

"पचम व्याख्याप्रगपति दरस। दोय लाख अट्ठाइस सरस।"

धरसेन गुरु द्वारा दृष्टिवाद नामक बारहवे अगके चौथे पूर्व अग्रायणी सम्बन्धी उपदेश दिया गया था। उस दृष्टिवादका भी वडा विशाल रूप है।

"द्वादस दृष्टिवाद पनभेद, एक सौ आठ कोडिपन बेद।
अडसठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पच पद मिथ्याहन है॥"

[1]व्याख्याप्रज्ञप्ति अगमें जिनेन्द्र भगवान्के समीपमे गणधरदेवसे जो साठ हजार प्रश्न किये गये उनका वर्णन है। [2]दृष्टिवादमें तीन सौ त्रेसठ कुवादोका वर्णन तथा निराकरण किया गया है। इस अगके पूर्वगत भेदका उपभेद अग्रायणीपूर्व है। उसमें सुनय, दुर्नय, पचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व, [3]नवपदार्थों आदिका वर्णन किया गया है। इस पूर्वके विपयमें श्रुतस्कन्ध विधानमें इस प्रकार कथन आया है—पण्णवति–लक्षसुपद मुनि-मानसरत्न-काचनाभरणम्, अगाग्रार्थनिरूपकमर्च्यं चाग्रायणीयमिदम्॥ द्वादशाग वाणीमें दिव्यध्वनिका अधिकसे अधिक सार सगृहीत रहता है। सर्वज्ञ भगवान्ने विश्वके समस्त तत्त्वोका प्रतिपादन किया था, इस कारण द्वादशाग वाणीमें भी सभी विषयोका विशद प्रतिपादन किया गया है। जब रत्नत्रय धर्मकी विशुद्ध साधना होती थी, तब पवित्र आत्माओमें चमत्कारी ज्ञानकी ज्योति जगती थी। अब राग-द्वेष मोहके कारण आत्माकी मलिनता वट जानेमे महान् ज्ञानोकी उपलब्धिकी वात तो दूर है, वह चर्चा भी चकित कर देती है।

---

१ षष्टिसहस्राणि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम।

२ द्वादशमङ्ग दृष्टिवाद इति। दृष्टिशताना त्रयाणा त्रिपष्टयुत्तराणा प्ररूपण निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते। –त० रा० पृ० ५१।

३ अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुन अयन ज्ञान अग्रायण तत्प्रयोजन अग्रायणीयम्। तच्च सप्तशतसुनयदुर्नयपञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्व-नवपदार्थादीन् वर्णयति।--गो० जीव० जी० गा०३६५। पृ० ७७८

द्वादशांग वाणीकी मर्यादा—द्वादशाग वाणीके अत्यन्त विस्तृत विवेचनके होते हुए भी समस्त पदार्थका प्रतिपादन उसके द्वारा नहीं हो सका। कारण—

"पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं
पण्णवणिज्जाण पुण अणतमागो सुदणिबद्धो ॥"—गो० जी० ३३४।

पदार्थोंका बहुभाग वाणीके परे है। वह केवलज्ञान गोचर है। अनिर्वचनीय पदार्थोंका अनन्तवाँ भाग सर्वज्ञ वाणीके गोचर है। इसका भी अनन्तवाँ भाग श्रुतरूपमें निबद्ध किया गया है। श्रुतकेवलीके ज्ञानके अगोचर पदार्थका निरूपण दिव्यध्वनिमें होता है। उस दिव्यध्वनिके भी अगोचर पदार्थ केवलज्ञानके विषय होते है।[1]

यह द्वादशाग वेद है, कारण यह किसी प्रकारके दोषसे दूषित नही है। हिंसाका वर्णन करनेवाला वेद नही है। उसे तो कृतान्त (यम) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेनका कथन है—

"श्रुतं सुविहित वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम्।
हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥" —महापु० ३९।२२।

गुरु परंपरा—गौतम स्वामीने द्वादशाग ग्रथका सुधर्माचार्यको व्याख्यान किया। धवलाटीकामें सुधर्माचार्यके स्थानमें लोहाचार्यका नाम ग्रहण किया गया है। कुछ कालके अनन्तर गौतमस्वामी[2] केवली हुए। उन्होने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्योको द्वादशागका व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महावीर भगवान्‌के निर्वाणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन सकलश्रुतके धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मीके अधिपति बने। परिपाटी क्रमसे ये तीन सकलश्रुतके धारक कहे गये हैं और अपरिपाटी[3] क्रमसे सकलश्रुतके ज्ञाता सख्यात हजार हुए। जयधवलामें[4] बताया है कि सुधर्माचार्यने अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया। इसे ही धवलाटीकामें स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटीकी अपेक्षा सख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बूस्वामीने विष्णु आदि अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्यने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामीने अड़तीस वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामीने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामीके बारेमें जयधवलाकार लिखते है—'एसो एत्थोसप्पिणीए अतिम-केवली।'—ये इस अवसर्पिणी कालके अतिम केवली हुए। इस कथनसे यही अर्थ निकाला जाता है कि जम्बूस्वामीके निर्वाणके पश्चात् अन्य महापुरुष निर्वाणको नहीं गये। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है कि जम्बूस्वामी-के निर्वाण जानेके पश्चात् अनुबद्ध केवली नही हुए।

---

१ श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति। तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थ ग्रहण-शक्ति केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थ —गो० जीव० सस्कृतटीका पृ० ७३१

२ 'तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद।' —ध० टी० १।६५।
तदो तेण गोअमगोत्तेण इदभूदिणा सुहम्मा (म्मा) इरियस्स गयो वक्खाणिदो। —ज० ध० १।८४।

३ 'परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयलसुदधारया भणिया।
अपरिवाडीए पुण सयलसुदपारगा सखेज्जसहस्सा ॥' —ध० टी० १।६५।

४. तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जबूसामियादीणमणेयाणमाइरियाण वक्खाणिददुवालसगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। —ज० ध० १।८४।
"तद्दिवसे चेव जबूसामिभडारओ विट्टु (विण्हु) आइरियादीणमणेयाण वक्खाणिददुवालसगो केवली जादो ॥" —ध० टी० १।६५।

"तम्मि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो।
तम्मि सिद्धि पत्ते केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥" —४।१४७७।

गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध-क्रमबद्ध परिपाटीक्रम युक्त (In Success on) केवली हुए।[1] अननुबद्ध-अक्रमपूर्वक कैवल्य उपार्जन करनेवाले अन्य भी हुए हैं, जिनमें अतिम केवली धरमुनिने कुण्डलगिरिसे मुक्ति प्राप्त की।[2]

"कुडलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणरिसीसु चरिमो सुपासचदाभिधाणो य ॥" —ति० प० ४।१४७९।

तीन केवलियोमे बासठ वर्ष व्यतीत हुए और विष्णु, नदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु इन पाँच तकेवलियोंमें सौ वर्षका समय पूर्ण हुआ। इन पाँच श्रुतकेवलियोकी गणना भी परिपाटीक्रम-अनुबद्धरूपसे की गयी, ो इस बातको सूचित करती है कि यहाँ अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा नही ली गयी है। इन पच श्रुतकेवलियोंमें थम श्रुतकेवलीके नामके विषयमें तिलोयपण्णत्ति तथा उत्तरपुराणमें भिन्न कथन आया है। उक्त दोनों न्योंमें 'विष्णु'के स्थानपर 'नन्दि'का कथन किया गया है। धवला, जयधवला, हरिवशपुराण, श्रुतावतारमें ष्णु नाम दिया गया है। ये पाँच महापुरुष पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी हुए। इनके अनन्तर अनुक्रमसे एकादश हामुनि ग्यारह अग और दस पूर्वके पाठी हुए। निम्नलिखित इन एकादश मुनीश्वरोका काल एक सौ तिरासी र्ष कहा गया है—१ विशाखाचार्य, २ प्रोष्ठिल, ३ क्षत्रिय, ४ जय, ५ नागसेन, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिषेण, विजय, ९ बुद्धिल, १० गगदेव, ११ धर्मसेन। ये ग्यारह नाम गिनाये गये हैं। इन नामोके विषयमें त्तरपुराण, धवला, जयधवला, हरिवशपुराण एकमत हैं किन्तु तिलोयपण्णत्ति तथा श्रुतावतारमें विशाखाचार्य-ो जगह क्रमश विशाख तथा विशाखदत्त नाम आया है। बुद्धिलके स्थानपर श्रुतावतारमें बुद्धिमान शब्द युक्त हुआ है। तिलोयपण्णत्तिमें धर्मसेनकी जगह सुधर्म नाम आया है। इन मुनियोके विषयमें आचार्य णभद्रने लिखा है कि ये—"द्वादशागार्थ-कुशला दशपूर्वधराश्च ते।" (उ पु पर्व ७६, श्लोक ५२३)—ादशागमें कुशल तथा दस पूर्व धर थे।

इनके अनन्तर एकादशागके ज्ञाता नक्षत्र, जयपाल, पाडु, ध्रुवसेन और कस ये पाँच महापुरुष दो सौ ोस वर्षमें हुए। इन नामोके विषयमें तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण तथा धवला एकमत हैं। जयधवलामें जयपाल' के स्थानमें 'जसपाल' तथा हरिवशपुराणमें 'यश पाल' नाम आये हैं। श्रुतावतारमें 'ध्रुवसेन' की गह 'द्रुमसेन' नाम आया है।

---

१ जयधवलाकारने परिपाटीक्रमका पर्यायवाची 'अत्रुट्टसताणेण' (१, ८५) जिसकी सतान या परपरा अत्रुटित है, ऐसा कहा है।

२ अपने जैन साहित्य और इतिहासके पृ० १४, १५ पर श्री नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं—"भगवान् महावीरके बाद तीन ही केवलज्ञानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। ऐसी दशामें यह समझमें नही आता, कि यहाँ श्रीधरको क्यो अतिम केवली बतलाया और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अन्त कृत केवली हो।" इस शकाका निवारण पूर्वोक्त वर्णनसे हो जाता है, कारण श्रीधर मुनि अननुबद्ध अतिम केवली हुए हैं, जिनका निर्वाणस्थल कुडलगिरि है। इनको अन्त कृत केवली माननेमें कोई आगमका आधार नहीं है। सामान्यतया नदी, नदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली कहे गये हैं, किन्तु धवलाटीकासे ज्ञात होता है कि अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा ये द्वादशागके पाठी सख्यात हजार थे। जयधवलासे भी इस अधिक सख्याकी पुष्टि होती है। यही युक्ति केवलियोके विषयमें लगेगी। शास्त्रोमें अनुबद्ध केवली तथा श्रुतकेवलीकी मुख्यतासे प्रतिपादन किया गया है।

इनके पश्चात् आचारागके ज्ञाता सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य एक सौ अठारह वर्षमे हुए। इन नामोमें श्रुतावतारमें इतनी भिन्नता है कि 'यशोभद्र' की जगह 'अभयभद्र' तथा 'यशोबाहु' की जगह 'जयबाहु' नाम प्रयुक्त हुए हैं। शेप ग्रन्थकार भिन्नमत नही हैं।

महावीर भगवान्के निर्वाणके पश्चात् अनुबद्ध क्रमसे उपरोक्त अट्ठाईस महाज्ञानी मुनीन्द्र छह सौ तिरासी वर्षमें हुए थे। क्रमबद्ध परम्पराको ध्यानमें रखकर ही वीर निर्वाणके पश्चात् होनेवाले महापुरुषोका कथन किया गया है।

श्रुतावतार कथामें लोहाचार्यके पश्चात् विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि तथा माघनन्दि, इन छह महापुरुषोको अगपूर्वके एकदेशके ज्ञाता कहा है। अन्य ग्रन्थोमें ये नाम नहीं दिये गये है। सभवत ये नाम अनुबद्ध परपराके क्रममें नही होगे। इनके युगमें और भी अक्रमबद्ध परपरावाले मुनीश्वर रहे होगे।

अंग-पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता—जयधवला टीकामें लिखा है कि लोहाचार्यके पश्चात् अग और पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य परपरासे आकर गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ था। जयधवलाकारके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—"तदो अग-पुव्वाणमेगदेसो चेव आइरिय-परपराए आगतूण गुणहराइरियं सपत्तो" (जय०ध० भाग १ पृ० ८७)। धवलाटीकामें इस सम्बन्धमें लिखा है–, "तदो सव्वेसि-मग-पुव्वाणमेगदेशो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरिय सपत्तो"—(१, ६७)—लोहार्यके पश्चात् आचार्य परपरासे सपूर्ण अग और पूर्वोका एकदेशज्ञान धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ। आचार्य धरसेन अथवा गुणधर स्वामी भी विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि तथा माघनन्दि मुनीश्वरोके समान अग-पूर्वके एकदेशके ज्ञानी थे। ये नाम सभवत क्रमबद्ध परपरागत न होनेसे हरिवशपुराण, उत्तरपुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थोमे नही पाये जाते हैं। प्रतीत होता है कि इन मुनीश्वरोके समयमें कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर न रहनेसे इनके कालका पृथक् रूपसे वर्णन नहीं पाया जाता है। आचारागके पाठी आचार्य वीरनिर्वाणके पश्चात् छह सौ तिरासी वर्ष तक हुए। स्थूल रीतिसे वही समय धरसेनस्वामी तथा गुणधर आचार्यका रहा होगा।

विचारणीय विषय—इस विषयमें यह कथन विचारणीय है, वीर निर्वाणके छह सौ पांच वर्ष तथा पांच माह व्यतीत होनेपर शकराजाकी उत्पत्ति कही गयी है। त्रिलोकसारमें लिखा है—

"पण-छस्सयवस्स पणमास जुद गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तोक्क्की चदु-णव-तिय-महियसगमास ॥८५०॥"

वीरभगवान्के निर्वाण जानेके छह सौ पाँच वर्ष पाँच माह पश्चात् शक राजा हुआ। उसके अनन्तर तीन सौ चौरानवे वर्ष सात माहके पश्चात कल्की हुआ है। इस गाथाकी टीकामें माधवचद्र त्रैविद्यदेव कहते हैं, "श्रीवीरनाथनिर्वृत्ते सकाशात् पचोत्तरषट्शतवर्षाणि (६०५) पच (५) मासयुतानि गत्वा पश्चात् विक्रमाकशकराजो जायते"—यहाँ शकराजाका अर्थ विक्रमराजा किया गया है। इस कथाके प्रकाशमें आचारागके पाठी मुनियोका सद्भाव विक्रम सवत् ६८३-६०५ = ७८ आता है। विक्रम सवत्के सत्तावन वर्ष पश्चात् ईसवी सन् प्रारभ होता है, अतः ७८-५७ = २१ वर्ष ईसाके पश्चात् आचारागी लोहाचार्य हुए। उनके समीप ही धरसेन स्वामीका समय अनुमानित होनेसे उनका काल ईसवीकी प्रथम शताब्दीका पूर्वार्ध होना चाहिए।

दो परपरा—श्वेताम्बर परपराके अनुसार विक्रमके चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व भगवान् महावीरका निर्वाण कहा जाता है। इस प्रकार दिगम्बर परपरा श्वेताम्बर मान्यतासे एक सौ पैंतीस वर्ष पूर्व वीरनिर्वाणको मानती है। इतिहासकारोके मध्य प्रचलित वीरनिर्वाण काल ईसवी पूर्व पाँच सौ सत्ताईस वर्ष श्वेताम्बर परपराके आधारपर अवस्थित है। ४७० + ५७ = ५२७ वर्ष ईसाके पूर्व महावीर भगवान् हुए।

मुख्य विचारणीय विषय है कि, 'शकराज'का क्या अर्थ किया जाय ?[1] यदि शालिवाहन शक अर्थ केया जाता है तो महावीर भगवान्का निर्वाण काल ईसवीके पांच सौ सत्ताईस वर्ष पूर्व होता है। उसके ाधारपर यदि धरसेन स्वामीका समय निकाला जायगा, तो ईसवी सन् इक्कीसमें एक सौ पैंतीस और जोडने पडेंगे। इस प्रकार वह समय एक सौ छप्पन ईसवी होगा, अर्थात् ईसाकी दूसरी शताब्दी हो जायगा। देगम्बर आगमके कथनमें श्रद्धा करनेवालोकी दृष्टिमें वीरनिर्वाण काल विक्रम सवत्से छह सौ पांच वर्ष ांच माह पूर्व माना जायगा। अत विक्रम सवत् २०२०में वीरनिर्वाण सवत् २०२० + ६०५ = २६०५ गा। दिगबर श्वेताबर परपराओको ध्यानमे रखते हुए, डॉ० जेकोबीने लिखा था "The traditional date of Mahavira's nirvāna is 470 years before Vikrama according to the Svetambaras and 605 accordiny to the Digambaras"--श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार महावीरका निर्वाण विक्रमसे चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व हुआ था तथा दिगबरोकी परपराके अनुसार वह छह सौ पांच वर्ष पूर्व हुआ था।

पुरावृत्तज्ञ श्री राइसने अपने शिलालेख सग्रहकी प्रस्तावनामें महावीर भगवान्के निर्वाणके छह सौ ांच वर्ष बाद उज्जैनके विक्रमादित्यका उल्लेख करते हुए लिखा है --"There was born Vikramaditya in Ujjayini and he by his knowledge of astronomy, having made an almanac established his own era from the year Rudhirodgāri, the 605 year after the death of Vardhamāna"

उज्जैनोमें एक विक्रमादित्य राजा उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने ज्योतिष ज्ञानके बलपर एक पचाग नाकर रुधिरोद्गारी वर्षमे अपना सवत् चलाया था, जिसका समय वर्धमानके निर्वाणके छह सौ पांच वर्ष बाद था।

सूत्रकारका समय—

अत दिगम्बर परपराको ध्यानमें रखते हुए आचार्य धरसेनका समय ईसाकी प्रथम शताब्दीका पूर्वार्ध मानना होगा तथा वही समय उनके पासमें महाकम्म पयडि पाहुडके रहस्यका अभ्यास करनेवाले महाज्ञानी पुष्पदन्त भूतबलि मुनीश्वरोका मानना सम्यक् प्रतीत होता है। इस प्रकाशमें महाबधके रचयिता आचार्य भूतबलिका समय ईसाकी प्रथम शताब्दी स्वीकार करना होगा।

महाबध शास्त्रकी रचना भूतबलि आचार्यने की थी। इस सबन्धमें धवला टीकामें कहा है कि सौराष्ट्र देशके गिरिनगर पत्तनकी चन्द्रा गुफामें अग तथा पूर्वके[2] एकदेशके ज्ञाता धरसेन आचार्य विराजमान थे। वे अष्टाग महानिमित्त विद्याके पारगामी थे। उनके चित्तमें यह भय उत्पन्न हुआ कि आगे श्रुतज्ञानका विच्छेद हो जायगा, अत प्रवचनवत्सल उन महर्षिने दक्षिणापथके निवासी तथा महिमा नगरीमे एकत्रित आचार्योंके पास अपना एक लेख भेजा, जिसमें उनका मनोगत भाव सूचित किया गया था।

श्रुतावतार कथामें लिखा है—धरसेन आचार्यको अग्रायणी पूर्वके अन्तर्गत पचम वस्तुके चतुर्थ भाग महाकर्म प्राभृतका ज्ञान था। अपने निर्मलज्ञानमे जब उन्हे यह भासमान हुआ कि मेरी आयु थोडी

---

१ इस सम्बन्धमें विशेष विवेचन आस्थान महाविद्वान् पडित शान्तिराज शास्त्रीने मैसूर राज्य द्वारा मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्रको भास्करनन्दी रचित टीकाकी संस्कृत भूमिकामें किया है।

२ "तेण वि सोरट्ठविसय-गिरिणयरपट्टण-चन्दगुहाठिएण अट्ठगमहाणिमित्तपारएण गथवोच्छेदो होहदि त्ति जादभयेण पवयणवच्छलेण दक्खिणावहाइरियाण महिमाए मिलियाण लेहो पेसिदो।"

—ध० टी० ११६७

शेष रही है, यदि कोई प्रयत्न नहीं किया जायगा, तो श्रुतका विच्छेद हो जायगा। ऐसा विचारकर उन्होंने देशेन्द्र देशके वेणातटाकपुरमें निवास करनेवाले महामहिमाशाली मुनियोंके निकट एक ब्रह्मचारीके द्वारा पत्र भेजा। उस पत्रमें लिखा था—"स्वस्ति श्री वेणाकतटवासी यतिवरोंको उर्ज्जयन्त तट निकटस्थ चन्द्रगुहानिवासी धरसेनगणि अभिवन्दना करके यह सूचित करता है कि मेरी आयु अत्यन्त अल्प रह गयी है। इससे मेरे हृदयस्थ शास्त्रकी व्युच्छित्ति हो जानेकी संभावना है अतएव उसकी रक्षाके लिए आप शास्त्रके ग्रहण-धारणमें समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि दो यतीश्वरोंको भेज दीजिए।" पश्चात् योग्य विद्वान् मुनीश्वरोंके आनेपर धरसेन स्वामीने अपनी ज्ञाननिधि उन दोनोंको सौंप दी थी।

बृहत्कथाकोशमे विशेष कथन—आराधना कथाकोशमें दक्षिणापथसे आगत महिमा नगरीमें विराजमान संघके प्रमुख आचार्यका नाम महासेन दिया गया है। हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (पृ० ४२) में लिखा है, कि उस समय सौराष्ट्र देशमें धर्मसेन राजाका शासन था तथा उनकी रूपवती रानीका नाम धर्मसेना था। उसके गिरिनगरके समीप चन्द्रगुहामे धरसेन महामुनि रहते थे।

"तत्र सौराष्ट्रदेशेऽस्ति नगरं गिरिपूर्वकम्। धर्मसेननृपस्तत्र धर्मसेनास्य सुन्दरी ॥१॥
तत्पत्तनसमीपे च चन्द्रोपपदिका गुहा। स तिष्ठते गुरुस्तस्यां धरसेनो महामुनिः ॥२॥"

विबुध श्रीधर रचित श्रुतावतार (पृ० ३१६) से ज्ञात होता है, कि धरसेन महामुनिके समीप भेजे गये दो शिष्योंका नाम 'सुबुद्धि' और 'नरवाहन' था। सुबुद्धि दीक्षाके पहले श्रेष्ठिवर थे और नरवाहन नरेश थे।

जिस दिन मुनियुगल धरसेन मुनीन्द्रके समीप पहुँचे थे, उसके प्रभात कालमें धरसेन स्वामीने एक स्वप्न देखा था कि दो सुन्दर धवलवर्ण बैलोंने उनके समीप आकर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी और नम्रता-पूर्वक उनके चरणोंमें पड गये। इस स्वप्नको देखकर स्वप्नशास्त्रके अनुसार उन्होंने उसे अत्यन्त शुभ-सूचक स्वप्न समझा। उन्होंने "जयउ सुयदेवदा"—श्रुतदेवताकी जय हो, ये शब्द उच्चारण किये। कुछ क्षणके अनन्तर महिमानगरीसे आगत धारणा तथा ग्रहण शक्तिमे प्रवीण मुनियुगलने गुरुदेवको प्रणाम करके अपने आनेका कारण निवेदन किया, "अणेण कज्जेणम्हा दोवि जणा तुम्हं पादमूलमुवगया"। आचार्य महाराजने कहा "सुट्ठु, भद्द"—ठीक है, कल्याण हो। (ध० टी० १।६८) हरिषेण कथाकोश (पृष्ठ ४२) में लिखा है—

"उपविश्य क्षणं स्थित्वा प्रोचतुस्तौ मुनीश्वरम्।
नाथ ग्रहीतुमायातौ त्वत्तो विद्यां मनोद्भवाम् ॥६॥"

वे क्षण-भर गुरुके चरणोंमें बैठे, पश्चात् खडे होकर उन्होंने मुनीश्वर धरसेन स्वामीसे कहा, "नाथ! आपके अन्तःकरणसे प्रसूत विद्याको ग्रहण करनेको हम लोग आये हैं।"

यह सुनकर धरसेन स्वामीने समागत साधुयुगलकी सत्पात्रताकी परीक्षा करना उचित सोचा, क्योंकि श्रुतज्ञान सामान्य वस्तु नहीं है। वह अमृतसे भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। आज जो पात्रता-अपात्रताका विशेष विचार किये बिना श्रुतदानका कार्य चलता है, उसका फल प्रत्यक्ष दिखाई पडता है कि किन्हींके द्वारा पान किया गया श्रुतज्ञान रूप दुग्ध विषरूप परिणमनको प्राप्त होता है, अतः ऐसे लोग परमागमके द्वारा स्व-परकल्याण साधनके स्थानमें अपनी शक्तिका उपयोग आगम निषिद्ध कार्योंमे करते है। परम विवेकी धरसेन स्वामीने सोचा—'जहाछंदाईण विज्जादाणं संसारभयवद्धणं'—स्वच्छन्द वृत्तिवालोंको विद्यादान संसारभयका संवर्धक है अतः उन्होंने उन साधुयुगलकी सत्पात्रता, वीतरागता, विवेकशीलता तथा निर्भीकता आदिकी परीक्षाके हेतु कोई शास्त्रीय प्रश्न न पूछकर दो विद्याएँ सिद्ध करनेको दी। एकका मन्त्र हीनाक्षर था, दूसरेका मन्त्र अधिक अक्षरवाला था। आचार्यने कहा था दो उपवासपूर्वक इनको

सिद्ध करो। जब उन्होंने विद्या सिद्ध की तब एकके समक्ष कानी देवी आयी और अधिक अक्षरवाले साधकके समक्ष दन्तुरा—लम्बे दाँतोवाली देवी आयी। उस समय वे साधकयुगल विचार करने लगे—

"विलोक्य देवता व्यग्रामेताभ्या चिन्तित तदा। काणिकोदन्तुरा देवी दृश्यते न कदाचन ॥१०॥
शोधयित्वा पुनर्विद्या मन्त्रव्याकरणेन तु। ऊनाधिकाक्षरं दत्वा हित्वा ताभ्या विचिन्तितम् ॥११॥
भूयोऽपि चिन्तिता विद्या ताभ्या देवी समागता। सर्वलक्षणसंपूर्णा किंकर्तव्यसमाकुला ॥१२॥
विसृज्य देवता साधू सिद्धविद्यौ तपस्विनौ। गुरो. समीपता प्राप्य प्रोचतुस्तौ यथाक्रमम् ॥१३॥"

इन्होंने देवताके व्यग्र स्वरूपको देखकर विचार किया कि कोई भी देवी एकाक्षी नहीं होती तथा विकृत दन्तवाली नहीं होती इसलिए उन्होंने मन्त्रके व्याकरणके अनुसार विद्यासाधन हेतु दिये गये मन्त्रको शुद्ध किया। न्यूनाक्षर मन्त्रमे अक्षर जोडे और अधिक अक्षरवालेमें कम किये। इसके पश्चात् उन्होंने पुन मन्त्रका चितवन किया। उस समय सर्वलक्षणोसे समलकृत देवताका आगमन हुआ और उन्होंने उनसे अपने योग्य कर्त्तव्य बतानेका अनुरोध किया। उन तपस्वियोने विद्या सिद्ध कर उनका सम्यक् प्रकार विसर्जन किया और गुरुके समीप आकर निवेदन किया–

"भवद्भिर्दत्तविद्याया दत्तमेक मयाक्षरम्। तथा निरस्तमेक च महातीचारकारिणा ॥१४॥
कृतातीचारपापस्य प्रायश्चित्त त्वमावयोः। प्रदेहि साम्प्रत तेन स्वचेत शुद्धिमिच्छतो. ॥१५॥"

भगवन्! आपके द्वारा दी गयी विद्यामें मैंने एक अक्षर जोड दिया। दूसरे साधकने कहा मैंने एक अक्षर कम कर दिया। ऐसा करनेसे हमारे-द्वारा महान् दोष हुआ है। इस प्रकार अतीचाररूपी पाप करनेके कारण आप हमें अभी प्रायश्चित्त दीजिए, जिससे हमारी मानसिक मलिनता दूर हो।

उसे सुनकर धरसेन आचार्यने कहा—

"ऊनाधिकाक्षरे विद्ये परीक्षार्थं यथाक्रमम्।
वितीर्णे ते भवद्भ्या मे न वा दोषोऽल्पकोऽपि स ॥१७॥"

मैंने तुम्हारी परीक्षा करनेके लिए क्रमश ऊन अक्षर और अधिक अक्षर युक्त विद्या तुम्हे दी थी। इसमे तुम्हारा तनिक भी दोष नहीं है।

धरसेन स्वामीकी परीक्षामें वे दोनो साधु विशुद्ध सुवर्ण सदृश प्रमाणित हुए। उन्होंने यह देख लिया कि साधु-युगलका चरित्र अत्यन्त निर्मल है, वे अत्यन्त बुद्धिमान्, विवेकी ज्ञानवान् है तथा उनका मन विषयोके प्रति पूर्णतया विरक्त है। उन्हें विश्वास हो गया कि इनको दी गयी विद्याका मधुर परिणाम ही होगा इसलिए उन्होने—'सोमतिहि-णक्खत्त-वारे गथो पारद्धो'—शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिनमें ग्रन्थका पढ़ाना प्रारम्भ किया। आचार्य धरसेन स्वामीने यह नहीं सोचा कि हमें धर्मरूप पवित्र ज्ञाननिधि इन्हें सौंपनी है, इसमें मुहूर्त आदि देखना अर्थहीन है। ऐसा न सोचकर उन परम विवेकी महाज्ञानी गुरुदेवने शुद्ध काल रूप बाह्य सामग्रीको अपने ध्यानमें रखा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सत्कार्य करनेमें बाह्य योग्य सामग्रीकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूडामणि काव्यमें लिखा है, "पाके हि पुण्य-पापाना, भवेद् बाह्य च कारणम्" ॥११–१८॥ पुण्य तथा पापके उदयमे बाह्य सामग्री भी कारण रूप होती है। उन महामेधावी, प्रतिभाशाली तथा लोकोत्तर व्यक्तित्व समलकृत साधुयुगलको महाज्ञानी मुनीन्द्र धरसेन स्वामीने उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया, जिसे उन महर्षियोने अपने स्मृति पलटमें पहले पूर्णतया अकित कर लिया। इस प्रसगमें द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप सामग्रीचतुष्टय श्रेष्ठ रूपसे विद्यमान थी, अत धरसेनाचार्यका मनोरथ पूर्ण हो गया।

आषाढसुदी एकादशीका महत्त्व—आषाढसुदी एकादशीके पूर्वाह्णमें 'महाकम्म-पयडि पाहुड' गत कर्म साहित्यका उपदेश पूर्ण हो चुका। प्रवचन प्रेमवश धरसेन स्वामीके मनमें जो पहले भय उत्पन्न हुआ था,

वह भय अब दूर हो गया। उनकी श्रुतप्रेमी आत्माको अवर्णनीय आनन्द हुआ। उन्होने परम शान्ति तथा सतोषका अनुभव किया।

देवों-द्वारा पूजा—घवला टीकामें लिखा है—"विणएण गयो समाणिदोत्ति" (१।७०) विनयपूर्वक ग्रथ समाप्त हुआ। "तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्तु महती पूजा पुष्प-बलि सख तूर-रव सकुला कदा"—इससे सतोषको प्राप्त हुए भूतजातिके व्यतर देवोने पुष्प, बलि, शखोकी उच्च ध्वनि युक्त वैभवपूर्ण पूजा की। पवित्र कार्य पूर्ति होनेपर इस पचमकालमें देवताओका आगमन होकर पूजाका कार्य सपन्न होना असामान्य घटना थी।

नामकरण—उस मगल वेलामें घरसेनाचार्यके मनमे अपने श्रुतज्ञान निधिके उत्तराधिकारी उन शिष्य-युगलके नवीन नामकरणकी भावना उत्पन्न हुई।

घवला टीकामें लिखा है—"त दट्ठूण तस्स 'भूदबलि' त्ति भडारएण णाम कयं। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दत-पंति-मोसारिय भूदेहि समीकय दतस्स 'पुप्फयतो' त्ति णामं कय। (१।७१)

उस महान् पूजाको देवताओके द्वारा सम्पन्न हुई देखकर भट्टारक घरसेन स्वामीने भूतजातिके देवो-द्वारा पुष्पादिसे पूजा की जानेके कारण उन मुनीश्वरको 'भूतबलि', यह सज्ञा प्रदान की तथा अस्त-व्यस्त दन्तपक्ति दूर कर भूत देवोने जिनके दतोको समानरूपता प्रदान की ऐसे देवपूजित द्वितीय साधुराजका नाम पुष्पदत रखा।

विवुध[1] श्रीधर विरचित श्रुतावतारमे कहा है कि नरवाहन राजाने मुनि पदको स्वीकार किया था। वे 'भूतबलि' इस सज्ञा-युक्त किये गये तथा सद्बुद्धि नामक द्वितीय मुनिका नाम पुष्पदत रखा गया। पहले गृहस्थ जीवनमें वे श्रेष्ठिवर थे।

धरसेन स्वामीका मनोगत—अष्टाग-निमित्त-विद्याके पारगामी घरसेन स्वामीको यह ज्ञात हो गया कि अब रत्नत्रयका साधक उनका शरीर अधिक काल तक नहीं टिकेगा। अब उनका मरण समीप है। ऐसे अवसरपर ये दोनो मुनि यदि मेरे समीप रहेंगे, तो इनके चित्तमें मेरे वियोगकी व्यथा उत्पन्न होना सभव है, अत उन वीतराग गुरुदेवने मोहभावका त्याग कर उन शिष्योको उसी दिन प्रस्थान कर अन्यत्र चातुर्मास करनेका आदेश दिया। धवला टीकामें लिखा है—"पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा सतो-गुरुवयणमलंघणिज्जं इदि चिंतिऊणागदेहि अकुलेसरे वरिसाकालो कओ" (१।७१) गुरुकी आज्ञानुसार वे भूतवलि-पुष्पदन्त मुनिराज उसी दिन यह सोचकर कि 'गुरुके वचन अलघनीय होते हैं' वहाँसे रवाना हो गये और उन्होंने अक-लेश्वरमें चातुर्मास किया।

इद्रनदि आचार्यने लिखा है "दूसरे दिन गुरुने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु निकट है, यदि ये समीप रहेंगे तो दुःखी होंगे। उन दोनोको कुरीश्वर भेज दिया। तब वे ९ दिन चलकर इस नगरमें पहुँच गये और वहाँ पचमीको योग ग्रहण करके उन्होंने वर्षाकाल समाप्त किया।"

विवुध श्रीधरने घवलाकारके अनुसार उन मुनिद्वयका अकुलेसुरमें चातुर्मास लिखा है। इसका कारण

---

१ विवुध श्रीधरके शब्दोमें इन्द्रभूति गणधरने श्रेणिक महाराजसे षट्खण्डागम सूत्रकी उत्पत्तिके विषयमें प्रकाश डालते हुए कहा था —"धरसेनभट्टारक कतिपयदिनैर्नरवाहन सद्बुद्धिनाम्नो पठनाकर्णन चिन्तनक्रिया कुर्वतोरषाढ-श्वेतैकादशीदिने शास्त्र परिसमाप्ति यास्यति। एकस्य भूता रात्रौ वलिविधि करिष्यन्ति, अन्यस्य दन्तचतुष्क सुन्दरम्। भूतवलिप्रभावाद् भूतवलिनामा नर-वाहनो मुनिर्भविष्यति। समदतचतुष्टयप्रभावात् सद्बुद्धि पुष्पदतनामा मुनिर्भविष्यति।

—श्रुतावतार पृ० ३१७।

उन्होंने यह लिखा है कि धरसेन स्वामीने अपनी मृत्युको निकट ज्ञात किया तथा उससे इन मुनिद्वयको क्लेश न हो इसलिए उनका वहाँसे प्रस्थान कराया।[१]

वीतराग चित्तवृत्ति—इस प्रकरणसे जिनेन्द्रके शासनमें गुरुकी वाणीका महत्त्व घोषित होता है। धरसेन आचार्यकी वीतरागताका सजीव स्वरूप समक्ष आता है। अपने शिष्योंको मनोव्यथा न हो, यह विचार उनकी परम कारुणिक मनोवृत्तिको व्यक्त करता है। उनके वीतराग हृदयमें यह मोहभाव नहीं रहा कि मेरे स्वर्ग-प्रयाण करते समय मेरे शिष्य मेरे समीपमें रहें। समाधिमरणके लिए तत्पर धरसेन स्वामी अपनेको शरीरसे भिन्न चैतन्य ज्योति स्वरूप एकाकी आत्मा सोचते थे, इसलिए उन्होंने विशुद्ध भावोंके साथ उन अत्यत गुणी तथा महाज्ञानी साधुओंको सदाके लिए अपने पाससे अलग भेज दिया। अब उनका विशुद्ध मन जिनेन्द्र-चरणोंका स्मरण करते हुए कर्मजालसे विमुक्त चैतन्यकी ओर विशेष रूपसे केन्द्रित हो रहा था।

चातुर्मासका काल व्यतीत होनेपर भूतबलि भट्टारक द्रमिल देश – तामिल देशको गये—'भूदबलि-भडारओ दमिलदेस गदो' तथा पुष्पदन्ताचार्य वनवास देशको गये। प्रतीत होता है कि इस चातुर्मासके भीतर ही महामुनि धरसेन स्वामीका स्वर्गवास हो गया होगा, अन्यथा उनके जीवित रहते हुए कृतज्ञ शिष्य युगल गुरुदेवके पुण्य दर्शन हेतु गये बिना न रहते।

पुष्पदतस्वामीकी रचना—'धवलाटीका'में लिखा है कि[२] वनवास देशमें पहुँचकर पुष्पदन्त स्वामी-ने जिनपालितको दीक्षा दी। बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्र बनाये और उन्हें जिनपालितके द्वारा भूतबलि स्वामीके समीप भेजे।

जिनपालित—इन्द्रनंदि श्रुतावतारके कथनानुसार जिनपालित पुष्पदत स्वामीके भानजे थे। विबुध-श्रीधरके श्रुतावतारमें जिनपालितका नाम निजपालित आया है।[3] धर्मकीर्ति शिलालेख न० १ में (पट्टावली बागडा सघ या लालबागढ) जिनपालितको 'योगिराट्'—योगियोंके अधीश्वर लिखा है।

"तेषां नामानि वक्ष्मीत श्रृणु भद्र महान्वय।
भद्रो भद्रस्वभावश्च धरसेनो यतीश्वर ॥ ६ ॥
भूतबलि पुष्पदन्तो जिनपालितयोगिराट्।
समन्तभद्रो श्रीधर्मा सिद्धिसेनो गणाग्रणी ॥ ७ ॥"

भूतबलिकी रचना—[४]भूतबलि स्वामीने जिनपालितके पास बीसदि सूत्रोंको देखा उसमें अंतिम १७७ वाँ सूत्र यह है—'अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाण, केवलीण वा समुग्घादगदाण अजोगिकेवली, सिद्धा चेदि।' उन्हें जिनपालितके द्वारा ज्ञात हुआ, कि पुष्पदन्तका जीवन-प्रदीप शीघ्र बुझनेवाला है, इससे उनके हृदयमें विचार उत्पन्न हुए कि अब 'महाकम्मपयडिपाहुड' का लोप हो जायेगा, अत उन्होंने 'दव्वपमाणाणुगममादि काऊण गथरचणा कदा'—द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रंथरचना

---

१ आत्मनो निकटमरण ज्ञात्वा धरसेन एतयोर्मा क्लेशो भवतु इति मत्वा तन्मुनिविसर्जन करिष्यति।
—श्रुतावतार पृ० ३१७।

२ तदो पुप्फदन्ताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्ख दाऊण वीसदिसुत्ताणि कारिय पढाविय पुणो सो भूदबलिभयवन्तस्स पास पेसिदो। —ध० टी० १।७१।

३ Documents produced by Digambaris bebore the court of Dhwajadand Commissior Udaipur py 29–30

४ भूदबलिभयवदा जिणवालिदासे दिट्ठवीसदिसुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगयजिणवालिदेण महाकम्म-पयडिपाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण बुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादिं काऊण गथ-रचणा कदा। —ध० टी० १।७१।

की। षट्खण्डागममें भूतबलि स्वामी रचित आदिसूत्र यह है–'दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।' —ध० टी० २११।

इस सूत्रके प्रारंभमें वीरसेनाचार्य धवलाटीकामें लिखते हैं—

"संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाणपडिवोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह" (२११)

'अब चौदह जीवसमासोंके अस्तित्वको जाननेवाले शिष्योंको परिमाणका अवबोध करानेके लिए भूतबलि आचार्य सूत्र कहते हैं।'

पूर्वोक्त सूत्रको आदि लेकर शेष समस्त षट्खण्डागम सूत्र भूतबलि स्वामीकी उज्ज्वल कृति है।

श्रुत पचमी पर्व—इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारसे विदित होता है कि जब यह रचना पूर्ण[1] हो गयी, तब चतुर्विध सघ सहित भूतबलि स्वामीने ज्येष्ठ सुदी पचमीको ग्रथराजकी बडी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समयसे श्रुतपचमी पर्व प्रचलित हो गया जब कि श्रुत-देवताकी सर्वत्र अभिवन्दना की जाती है। इसके पश्चात् भूतबलि स्वामीने यह रचना जिनपालितके साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भेजी। सौभाग्यकी बात हुई, जो दुर्दैवने पुष्पदन्ताचार्यको उस समय तक नही उठाया था। आचार्य पुष्पदन्तने रचना देखी। अपना मनोरथ सफल हुआ ज्ञात कर वे अत्यन्त आनदित हुए। उन्होंने भी चातुर्वर्णसघ सहित सिद्धान्तशास्त्रकी पूजा की।[2]

इस महाशास्त्रके रक्षण कार्यमें जिनपालितकी भी महत्त्वपूर्ण सेवा विदित होती है। हम देखते हैं कि चातुर्मास पूर्ण होनेके पश्चात् पुष्पदन्त अपने साथी भूतबलिको छोडकर जिनपालितके पास वनवास देशमें पहुँचते है। वे विंशतिसूत्रोंकी रचना करके अपना मतव्य भूतबलिके पास प्रेषित करते है। भूतबलि जब ग्रथराजका निर्माण पूर्ण कर लेते हैं, तब वे इन्हीं जिनपालितके साथ अपनी अमूल्य जीवन निधि-ज्ञाननिधिको पुष्पदन्ताचार्यके समीप भेजते हैं, ताकि उनका भी इस आगम-रचनाके विषयमें अभिप्राय ज्ञात हो जाय। जिनपालित योगिराज थे तथा पुष्पदन्त-जैसे महामुनिके अत्यन्त विश्वासपात्र थे। भूतबलि स्वामीने भी उन्हें योग्य समझ अपने समीप स्थान दिया था और अपनी रचना उनके ही साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भिजवायी थी। इससे हमें प्रतीत होता है कि महान् ग्रथ-रचनाकार्यमें वे भूतबलि स्वामीके समीप अवश्य रहे होंगे। बहुत सभव है कि भूतबलि स्वामीके तत्त्व प्रतिपादनको लिखनेका कार्य जिनपालित-द्वारा सपन्न हुआ हो। कमसे कम इतना तो दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्तशास्त्रके उद्धार कार्यमें जिनपालित मुनिराजका विशेष स्थान रहा। इसका वर्णन इसलिए नहीं मिलता, कि पहले लोग कार्यको प्रधान मानते थे, नामकी ओर प्राय कम ध्यान रहता था। इतना बडा षट्खण्डागम महाशास्त्र निर्माण करते हुए भी ग्रन्थमें जब भूतबलि स्वामीका नाम कही भी नही आया, तब जिनपालितका नाम न आना विशेष आश्चर्यप्रद बात नही है।

---

१ ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसघसमवेत । तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥१४३॥ श्रुतपचमीति तेन प्रख्याति तिथिरियं परामाप। अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥१४४॥ —इ० श्रु०।

२ विबुध श्रीधरकृत श्रुतावतारसे ज्ञात होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यके साथ चतु सघने तीन दिन पर्यन्त बडे उत्साहपूर्वक पूजा प्रभावना की थी। धार्मिक समाजने व्रतादिका परिपालन भी किया था। पृ० ३१६।

ग्रंथकी प्रामाणिकता

महाबंध शास्त्रमें संपूर्ण चर्चा आगमिक तथा अहेतुवाद-आश्रित है। आगमकी निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत शास्त्रके विषयमें पूर्णतया चरितार्थ होती है—

> "पूर्वापरविरोधादेर्व्यपेतो दोषसन्तते ।
> द्योतक सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥" —ध० टी० पृ० ८७५।

—जो पूर्वापरविरोधादि दोषपरम्परासे रहित हो, सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हो तथा आप्तकी वाणी हो, उसे आगम कहते हैं।

कुंदकुंदस्वामीने नियमसारमें कहा है—

> "तस्स मुहग्गयवयण पुव्वावरदोसविरहिय सुद्ध ।
> आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥८॥"

अरहंत परमात्माके मुखसे विनिर्गत, पूर्वापर दोष रहित शुद्धवाणीको आगम कहा है। उस आगमके द्वारा तत्त्वार्थका कथन किया गया है। यह आगम सम्यक्त्वको उत्पत्तिमें निमित्त कारण कहा गया है (नियमसार गाथा ५३)

षट्खंडागम सूत्रोंकी, विशेषकर महाबंधकी चर्चा बहुत सूक्ष्म है। उसमें कहीं भी पूर्वापर विरोधका दर्शन नहीं होता। जितना सूक्ष्म चिन्तक एवं विचारक महाबंधका पारायण करेगा, वह ग्रंथके विवेचनसे उतना ही अधिक प्रभावित होगा। ग्रंथकी महत्ता यथार्थमें पूर्वापर अविरोधितामें है। अपने विषयपर प्रकाश डालनेमें आचार्यने किंचित् भी न्यूनता नहीं प्रदर्शित की है। ग्रंथराज आप्तकी कृति है, अतः यह स्वतः प्रमाण है। किसी हेतुवादरूप साधन-सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। आप्तमीमांसाकार समन्तभद्र स्वामीका कथन है—

> "वक्तर्यनाप्ते यद्धेतो साध्यं तद्धेतुसाधितम् ।
> आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥ ७८ ॥"

—वक्ता यदि अनाप्त है, तो युक्ति-द्वारा जो बात सिद्ध की जायगी, वह हेतुसाधित कही जायगी। और यदि वक्ता आप्त है, तो उनके वचनमात्रसे ही बात सिद्ध होगी। इसे आगमसाधित कहते हैं।

भूतबलिको आप्त किस कारण माना जाय, इस सम्बन्धमें धवला टीकामें सुन्दर तर्कणा की गयी है। ग्रन्थकार कहता है सूत्रकी परिभाषा है—

> "सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च ।
> सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥"

—गणधरका कथन, प्रत्येकबुद्ध मुनिराजकी वाणी, श्रुतकेवलीका कथन, अभिन्नदशपूर्वीका कथन सूत्र है।

"ण च भूदबलिभडारओ गणहरो, पत्तेयबुद्धो, सुदकेवली, अभिण्णदसपुव्वी वा येणेदं सुत्तं होज्ज ? जदि एदं सुत्तं ण होदि तो प्पमाणत्तं कुदो णव्वदे ?" 'भूतबलि भट्टारक गणधर नहीं हैं। न वे प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्न दशपूर्वी हैं, जिससे यह शास्त्र 'सूत्र' हो जाय। यदि यह शास्त्र सूत्र नहीं होता है, तो इसमें प्रामाणिकताका किस प्रकार ज्ञान होगा ?

इस शंकाके समाधानमें कहते हैं—"रागदोसमोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरंपराये आगत्तादो" (ध० टी० पृ० १०८७) 'यह ग्रन्थ प्रमाण है, कारण राग-द्वेष-मोहरहित प्रामाणिकता-प्राप्त पुरुषपरम्परासे यह प्राप्त हुआ है।'

इस ग्रंथमे अप्रामाणिकताका लेश भी नही है। इस सबधमें वीरसेनाचार्यका कथन महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं[1]–इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणालिकाके द्वारा प्रवाहित होता हुआ महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतरूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारकको प्राप्त हुआ। उन्होने भी गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें भूतबलि, पुष्पदनको सपूर्ण महाकर्म प्रकृति-प्राभृत सौपा। तदनतर श्रुतनदीका प्रवाह व्युच्छिन्न न हो जाय, इस भयसे भव्य जीवोंके अनुग्रहके लिए उन्होने 'महाकम्मपयडि पाहुड' का उपसहार करके षट्खण्ड बनाये। अत यह त्रिकालगोचर समस्त पदार्थोको ग्रहण करनेवाले प्रत्यक्ष तथा अनत केवलज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, प्रमाण-स्वरूप आचार्य प्रणालिकाके द्वारा आगत है और प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणसे अबाधित है। अत यह शास्त्र प्रमाण है। इसलिए मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओको इसका अभ्यास करना चाहिए।

पुन शकाकार कहता है[2]–"सूत्र विसवादी क्यो नही है?" उत्तरमें कहते हैं–"सूत्रमे विसवादीपना नहीं है, कारण यह विसवादके कारण सपूर्ण दोषोसे मुक्त भूतबलिके वचनोसे विनिर्गत है।" पुन. शकाकार तर्क करता है—"कदाचित् भूतबलिने असबद्ध देशना की हो?" इसके निराकरणमें वीरसेन स्वामी कहते हैं—"ण चासबद्ध भूदवलिभडारओ परूवेदि, महाकम्मपयडिपाहुड-अमियधाणेण ओसारिदासेसराग-दोस-मोहत्तादो"—भूतबलि भट्टारक असबद्ध प्ररूपण नही करेंगे, कारण उन्होने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके अवधारण करनेसे रागद्वेष तथा मोहका निराकरण कर दिया है।

महाधवल मनोवृत्ति—वक्ताका जब विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है, तब उनकी वाणीमें भी स्वय विशेषताका अवतरण हो जाता है। इस चर्चासे यह बात भी ज्ञात हो जाती है, कि महाकर्मप्रकृति प्राभृतके परिशीलनसे राग, द्वेष तथा मोहका विनाश होता है, तब उस महाशास्त्रके उपसहाररूप इस ग्रथराज-के द्वारा भी रागद्वेष-मोहकी विशेष मन्दता होती है। कषायादिकी विशेष तीव्र अवस्थामें तो मनोवृत्ति महाबधका अवगाहन भी नहीं कर सकेगी। इसके लिए अत करण वृत्तिकी निर्मलता तथा निश्चिन्तताकी परम आवश्यकता है। गृहस्थ सदृश आकुलतापूर्ण श्रमण भी इस शास्त्रका रसास्वाद नही कर सकता। श्रमणसदृश मनोवृत्ति तथा पवित्र परिणतियुक्त व्यक्ति इस महाशास्त्रका सम्यक् परिशीलन करनेमें समर्थ होगा। गार्हस्थिक आकुलतावाला व्यक्ति इस अमृतनिधिका आनन्द न ले सकेगा। प्रतीत होता है, इस बातको लक्ष्यमें रखकर सर्वसाधारणको इस ज्ञानसिन्धुमें अवगाहन करनेका पात्र नही कहा। महाबधका रसास्वादन करनेवालेकी मनोवृत्ति महाधवल होनी चाहिए। इस ग्रथराजके द्वारा जीवन महाबधसे मुक्त हो महाधवल रूप होता है।

मगल-चर्चा

जैन शास्त्रकार अपने शास्त्रके प्रारम्भमें जिनेन्द्र भगवान्के गुणस्मरणरूप मगल-रचना करते हैं। इसका कारण आचार्य विद्यानन्दि यह बताते हैं कि—

"अभिमतफलसिद्धेरभ्युपाय सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्य तत्प्रसादप्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति॥"

—श्लो० वा० पृ० २।

---

१ एव पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारय सपत्तो। तेण वि गिरिणयरचदगुहाए भूदवलिपुप्फदताण महाकम्मपयडिपाहुड सयल समप्पिद। तदो भूदवलिभडारएण सुद-णइ पवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्मपयडिपाहुड-मुवसहरियऊण छखडाणि कयाणि, तदो तिकालगोयरासेस-पयत्थविसय पच्चक्खाणत-केवलणाण-प्पभवादो पमाणीभूदआइरियपणालेणादत्तादो, दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गथो, तम्हा मोक्खत्थिणा अब्भसेयव्वो। –ध० टी० सि० पृ० ७६२।

२ विसवादी सुत्त किण्ण जायदे? ण, विसवादकारण-सयलदोसमुक्क भूदवलि वयणविणिग्गयस्स सुत्तस्स विसवादत्तविरोहादो। –ध० टी० सि० पृ० १०२३।

'अभिमतफल-सिद्धिका उपाय सुबोध है, वह शास्त्रसे प्राप्त होता है और शास्त्रकी उत्पत्ति आप्तसे होती है, अत शास्त्रके प्रसादसे प्रबोध प्राप्त पुरुषोका कर्तव्य है कि आप्तको अपनी प्रणामांजलि अर्पित करें, कारण सत्पुरुष अपनेपर किये गये उपकारको नहो भूलते ।'

मगलके विषयमें तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—

"पढमे मगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।
मज्झिम्मे णिव्विग्घं विज्जा, विज्जाफल चरिमे ॥१।२९।"

ग्रथके आरम्भमें मगल पाठसे शिष्य लोग शास्त्रके पारगामी होते हैं । मध्यमें मगलके करनेसे निर्विघ्न विद्याकी उपलब्धि होती है तथा अन्तमें मगल करनेसे विद्याका फल प्राप्त होता है । महाबधका प्रथम पत्र नष्ट हो गया है, अत ग्रथके आदिमें क्या मगल श्लोक या सूत्र रहे, इसका परिज्ञान नही हो सकता । यह भी कल्पना हो सकती है कि कषायप्राभृतके समान यहाँ भी मगल न किया गया हो ।

कषायप्राभृतमें मंगलका अभाव—कषायप्राभृतकी टीकामें वीरसेन स्वामी लिखते हैं—"ववहारणयमस्सिदूण गुणहरभडारयस्स पुण एसो अहिप्पाओ, जहा-कीरउ अण्णत्थ सव्वत्थ णियमेण अरहंतणमोक्कारो, मगलफलस्य पारद्धकिरियाए अणुवलभादो । एत्थ पुण णियमो णत्थि, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मगलफलोवलभादो । एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठ गुणहरभडारएण गंथस्सादीए ण मगल कय ।" (१।९) ।

"व्यवहार नयकी अपेक्षा गुणधर भट्टारकका यह अभिप्राय है कि परमागमके अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र नियमसे अरहत-नमस्कार करना चाहिए, कारण प्रारब्धक्रियाओंमें मगलफलविघ्नध्वसकताकी अनुपलब्धि है। यहाँ इस बातका नियम नहीं है । परमागममें उपयोग लगनेपर नियमसे मगलके फलकी प्राप्ति होती है। इस अर्थविशेषका परिज्ञान करानेके लिए गुणधर भट्टारकने ग्रथके आदिमें मगल नहीं किया ।

यह विवेचन आपातत. विरोधात्मक दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अनेकान्त शैलीके प्रकाशमें इनका समाधान स्वय हो जाता है ।

महाबधका मंगल—महाबधके मगलके विषयमें धवला टीकाके चतुर्थ वेदना नामक खण्डमें महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है । उसमें आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं—"[1]निबद्ध और अनिबद्धके भेदसे मगल दो प्रकारका है ।

अनिबद्ध मगल—तब फिर वेदना खण्डके आदिमें 'णमो जिणाण' आदि मगल सूत्र हैं, वे निबद्ध मगल है या अनिबद्ध मगल ? वे निबद्धमगलरूप नही है । कृति आदि चौबीस अनुयोग हैं अवयव जिसके ऐसे महाकर्मप्रकृति प्राभृतके आदिमें गौतमस्वामी द्वारा प्ररूपित मगलको भूतबलि भट्टारकने वहाँसे उठाकर वेदना खण्डके प्रारभमें स्थापित कर दिया, इस कारण इसे निबद्ध मगल माननेमें विरोध आता है । वेदनाखण्ड तो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नहीं है । अवयवको अवयवी माननेमें विरोध है । अर्थात् वेदनाखण्ड अवयव है उस महाकर्म प्रकृति प्राभृत रूप अवयवी माननेमें विरोध आता है । भूतबलि तो गौतम हैं नहीं, विकल

---

[1] णिबद्धाणिबद्धभेएण दुविहं मगल । तत्थेद किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि । ण ताव णिबद्धमगलमिद ? महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदिआदिचउवीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखडस्स आदीए मगलट्ठ तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्तविरोहादो । ण च वेयणाखड महाकम्मपयडिपाहुड, अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो । ण च भूदबली गोदमो, विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदाधारवड्ढमाणंतेवासिगोदमत्तविरोहादो । ण च अण्णो पयारो णिबद्धमगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि । तम्हा अणिबद्धमगलमिद । (ताम्रपत्र प्रति भाग ८, पृ० ३१)

श्रुतके धारी धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकल श्रुतधारी वर्धमान भगवान्‌के शिष्य गौतम माननेमें विरोध है। निबद्ध मगल माननेमें कारण रूप अन्य प्रकार है नही, अत यह अनिबद्ध मगल है।"

आचार्य अपनी तर्कशैलीसे इसे निबद्धमगल भी सिद्ध करते है। महापरिमाणवाले गणधरदेव रचित वेदना खण्डके उपसहाररूप वेदनाखण्डमें वेदनाका अभाव सर्वथा नही है। उनमें प्रमेयकी दृष्टिसे एकत्व ऐक्य है। आचार्य भूतबलि और गौतममें भी कथचित् अभिन्नता द्योतित करते हुए कहते हैं—'अथवा भूदवली गोदमो चेव, एगाहिप्पायत्तादो, तदो सिद्ध णिबद्धमगलत्तमवि।" अथवा भूतबलि गौतम हैं, कारण उनके अभिप्रायमें एकत्व है।

विशेष विचार—वेदना खण्डमे मगलके दो भेद टीकाकारने कहे है। "णिबद्धा-णिबद्धभेएण दुविह मगल" (पृ० ३१ ताम्रपत्र प्रति) मगलके इन दो भेदोका कथन जीवट्ठाण प्रथम खण्डमे (पृ० ७ ताम्रपत्रीय प्रतिमें) इस प्रकार आया है—"तच्च मगल दुविहं णिबद्धमणिबद्धमिदि"—वह मगल निबद्ध अनिबद्धके भेदसे दो प्रकार है। वेदना खण्डमें निबद्ध, अनिबद्ध शब्दोका उल्लेख करके उनकी परिभाषा नहीं दी गयी है। वहाँ इतना ही कहा है,कि णमो जिणाणं आदि सूत्र महाकम्म पयडि पाहुडमें गौतम स्वामीने रचे थे। उनको वेदना, वर्गणा तथा महाबध इन तीन खडोका मगल भूतबलि स्वामीने माना है। भूतबलि स्वामीने अन्य मगल नहीं लिखे। जब ये मगल सूत्र अन्य रचित हैं (borrowed) तथा अन्यत्र से उद्धृत किये गये हैं तब ये अनिबद्ध मगल है, ऐसा स्पष्ट धवला टीकामें उल्लेख किया गया है।

जीवट्ठाणकी टीकामें मगलके दो भेदोका उल्लेख करके इस प्रकार स्पष्ट किया है—'तत्थ णिबद्ध णाम, जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय देवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।" (पृ० ७ ताम्रपत्र प्रति)—जो सूत्रके आरम्भमें सूत्रकर्ताके द्वारा किया गया अर्थात् रचा गया देवताका नमस्कार है, वह निबद्ध मगल है तथा जो सूत्रके आरम्भ सूत्रकर्ताके द्वारा निबद्ध अर्थात् उद्धृत (borrowed) देवताका नमस्कार है वह अनिबद्ध मगल है। इस स्थितिमें यह प्रश्न होता है कि जीवट्ठाणके प्रारभमें पुष्पदत आचार्यने जो 'णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरीयाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण' सूत्र लिखा है उसे कौनसा मगल माना जाये? वेदना खण्डमें गणधर-रचित णमो जिणाण आदि सूत्र उद्धृत होनेसे जैसे अनिबद्ध मगल है, उसी प्रकार "णमो अरिहताण" आदिको भी पारिभाषिक अनिबद्ध मगलरूपता प्राप्त होती है।

शका—इस सबन्धमें शंकाकार कहता है यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। णमोकार मत्र निबद्ध मगल है ऐसा वीरसेन स्वामीने जीवट्ठाणकी टीकामें लिखा है "इद पुण जीवट्ठाण णिबद्धमगल" (पृ० ८, ताम्रपत्र प्रति)—यह जीवट्ठाण निबद्ध मगल है अत यह पुष्पदन्त आचार्यकृत है। यह उधार लिया गया मगल नहीं है।

समाधान—यह धारणा भ्रान्त है। खण्डागमके प्रथम खण्डका नाम जीवट्ठाण है। वह ग्रथ निबद्ध मगल अर्थात् पारिभाषिक निबद्ध मगल रूप नहीं है। वहाँ निबद्ध मगल शब्द बहुव्रीहि समास रूप है 'निबद्ध मगल यत्र एवभूत जीवट्ठाण'—जीवट्ठाण ग्रथ मगल युक्त है। यदि निबद्धमगल रूप पारिभाषिक मगल अपेक्षित होता तो पाठ होता—'इद जीवट्ठाण सणिबद्ध-मगल'। किन्तु ग्रथगत पाठ है 'जीवट्ठाण णिबद्धमगल' अत. बहुव्रीहि समासकी अपेक्षा जीवट्ठाण मगल युक्त है इतना ही अर्थ होता है। इससे इस कथनके आधारपर णमोकार मत्रको पुष्पदन्ताचार्यकी कृति मानना अनुचित है। जिस तरह णमो जिणाण आदि वेदना खण्डके प्रारभमें निबद्ध सूत्र गौतम गणधर रचित है, यही बात णमोकारमत्रके विषयमें भी है।

प्रश्न—'जीवट्ठाण णिबद्धमगलं'—इन शब्दो द्वारा जीवट्ठाण रूप प्रथम ग्रथमें 'निबद्ध मगल' शब्द देनेका क्या प्रयोजन है?

समाधान—टीकाकारका अभिप्राय यह है कि ग्रथके आरभमें मगल होना चाहिए—इस सामान्य शिष्टाचारकी मान्यताका परिपालन जीवट्ठाणमें हुआ है। उसका उल्लघन नही हुआ है। यह उन्होंने सूचित किया है।

प्रश्न—जब मगलके निबद्ध अनिबद्ध ये दो भेद जीवट्ठाणमें किये गये, तब आचार्यने टीकामें वेदना खण्डके समान णमोकार मत्रको अनिबद्ध मगल क्यो नही कहा? यदि णमो जिणाण आदि मगल सूत्रोंके समान णमोकार मत्रको भी अनिबद्ध मगल कह देते तो भ्रम ही उत्पन्न न होता।

समाधान—णमोकार मन्त्र निबद्ध मगल है या अनिबद्ध है, यह चर्चा टीकाकारने नहीं की, क्योंकि णमोकार मन्त्र अनादि मूल मत्र रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध है, अत उसके विषयमें चर्चा करना धवलाकारको अनावश्यक प्रतीत हुआ। 'णमो जिणाण' आदि मगल सूत्रोंके कर्तृत्वके विषयमे अवबोध न रहनेसे वीरसेन स्वामीने अपनी वेदनाखण्डकी टीकामें यह स्पष्ट किया कि ये मगल सूत्र उद्धृत किये गये हैं, अत. ये अनिबद्ध मगल हैं, अर्थात् भूतबलि स्वामीकी रचना नही है। जहाँ सदेह या भ्रमकी सभावना हो वहाँ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता होती है।

प्रश्न—यदि णमोकार मत्र अनादि मूल मत्र है तथा वह द्वादशाग वाणीका अग है तो णमोकार मत्रको पुष्पदत आचार्यरचित सूचित करनेके लिए जो मुद्रित धवलाटीकाके प्रथम खण्डमें आदर्श प्रतियोंके पाठमें परिवर्तन किया गया, वह कैसा है?

समाधान—आदर्श प्रतियोमें जो पाठ है, उसके अर्थमें पूर्ण सगति बैठनेसे उसमे फेरफार करनेकी कोई भी आवश्यकता नही थी। उसमें परिवर्तन करनेका ही यह फल हुआ, कि जबसे धवला टीका हिन्दीमें मुद्रित हुई, तबसे कोई-कोई लोग इस भ्रममें आ गये कि णमोकार मत्र पुष्पदत आचार्यकी रचना है तथा उसे अनादि मूल मत्र मानना ठीक नही है। मूडबिद्रीकी ताडपत्रकी प्रतियोमे इस प्रकार पाठ है—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगलं' इसका पाठ इस प्रकार बदला गया—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल।'

मूल पाठ यह था—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।'

परिवर्तित पाठ यह किया गया—'सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्ध-मगल' (पृ० ४१, ध० टी० १)।

प्रश्न—इस छोटे से परिवर्तनसे क्या बाधा हो गयी?

समाधान—मूल कर्ताके द्वारा स्वय रचित देवताका नमस्कार निबद्ध मगल है तथा जीवट्ठाण निबद्ध मगल है, इससे सामान्य बुद्धिके पाठकोंको यह भ्रम हो गया कि णमोकार रूप मगल निबद्ध मगल है। यथार्थ बात यह है कि टीकाकार वीरसेन स्वामीने णमोकार मत्र कौन-सा मगल है, यह चर्चा ही नही की। [illegible] मगलके दो भेद कहनेके पश्चात् इतना मात्र सूचित किया कि जीवट्ठाणमें मगल है। वह ग्रथ मगल-[illegible] नही है। कसायपाहुडमें मगलाचरण नही रखा गया ऐसी अवस्था इस जीवट्ठाणकी नही है, इसे स्पष्ट करनेको आचार्यने कहा—'जीवट्ठाण णिबद्धमगल' (१।४१)—यह जीवट्ठाण ग्रथ मगलाचरण युक्त है। [illegible] नही है।

भूतबलि स्वामीकी विशिष्ट दृष्टि—भूतबलि स्वामी-जैसे महाज्ञानी, प्रतिभासपन्न तथा परम-विवेकी आचार्यने वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबध इन तीन खण्डोके लिए स्वतत्र मगल रचना न करके [illegible] महाकम्मपयडि पाहुडके अतर्गत वेदना खण्डके आरम्भमें दिये णमो जिणाण, [illegible] आदि सूत्रोंको वहाँसे उठाकर अपनी रचनामें मगलरूपसे स्थापित किया, इससे यह [illegible] होता है कि वे महर्षि परम वीतरागभावसम्पन्न थे। वे अपनी रचना द्वारा अपना पाडित्य प्रदर्शन

"अनादिमूलमन्त्रोऽय सर्वविघ्नविनाशन. ।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथम मगलो मत ॥"

इसके सिवाय मूलाराधना टीकामें अपराजित सूरिने (पृ० २) कहा है कि गणधरने णमो अरहताण इत्यादि शब्दो द्वारा सामायिक आदि लोकबिन्दुसार पर्यन्त समस्त परमागममे पच परमेष्ठियोको नमस्कार किया है।" ग्रयमें ये शब्द आये है, "यद्येव सकलस्य श्रुतस्य सामायिकादेर्लोकबिन्दुसारान्तस्यादौ मगल कुर्वद्भिर्गणधरै णमो अरहताणमित्यादिना कथ पचाना नमस्कार कृत ?"

प्रायश्चित्तमे णमोकारका उपयोग—मुनि-जीवनमे प्रतिक्रमण रूप अन्तरग तपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान् ऋषभदेव और अतिम तीर्थंकर महावीरके तीर्थमें अपराध न करनेवाले भी श्रमणोको प्रतिक्रमण रूप प्रायश्चित्त करनेका विधान है। शेष बाईस तीर्थंकरोके तीर्थमें होनेवाले मुनियोके लिए ऐसा कथन नही आया है। उनके तीर्थमे दोष लगनेपर ही प्रतिक्रमणरूप प्रायश्चित्त किया जाता था, किन्तु आदि जिन और अतिम जिनके तीर्थमे दोष लगानेकी सदा सभावना रहनेसे प्रायश्चित्त कहा है। प्रायश्चित्तके भेद प्रतिक्रमणमे णमोकार मन्त्रके जापका आवश्यक और महत्त्वपूर्ण स्थान है। मूलाचारमें कहा है —

"सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
अवराहे पडिकमण मज्झिमयाण जिणवराणं ॥७।१५४॥"

आदि जिन तथा पश्चिम जिन अर्थात् वीरभगवान्ने प्रतिक्रमण युक्त धर्मका उपदेश दिया है। अपराध न होनेपर प्रतिक्रमण करना हो चाहिए ऐसी आद्यन्त तीर्थंकरोने शिष्योको आज्ञा दी है। मध्यम तीर्थंकराने अपराध होनेपर प्रतिक्रमण कहा है।

इसका हेतु मूलाचारमें यह दिया है—

"मज्झिमया दिढबुद्धी एयग्गमणा अमोहलक्खा य ।
तम्हा हु जमाचरति त गरहता विसुज्झति ॥७–१५७॥"

मध्यम तीर्थंकरोके शिष्य दृढबुद्धि अर्थात् मजबूत स्मरण शक्ति युक्त थे, एकाग्रमन थे, मोहरहित होते थे। इससे उनसे जो अतीचार होता था, उस दोषकी वे गर्हा करते थे और शुद्ध चारित्रवाले बनते थे।

"पुरिम-चरिमा दु जम्मा चलचित्ता चेव मोहलक्खा च ।
तो सव्वपडिक्कमण अधलय-घोडय-दिट्ठंता ॥१५८॥"

आद्यन्त तीर्थंकरोके शिष्य चचलचित्त हैं। उनका मन दृढ़ नही है। मोहसे उनका मन आक्रान्त है। वे ऋजुजड और वक्रजड है। अत. सर्व प्रतिक्रमण दडकोका वे उच्चारण करते हैं। उनके लिए अवे घोडेका दृष्टान्त है। जैसे वैद्य पुत्रने अवे घोडेकी औषधिका ज्ञान होनेसे नेत्रकी भिन्न-भिन्न दवाओको क्रमशः लगा, उसे रोगमुक्त कर दिया उसी प्रकार सर्व प्रतिक्रमणोका उच्चारण करते हैं, क्योकि सर्व प्रतिक्रमण दण्डक कर्म क्षयके कारण हैं।

उच्छ्वासका उपयोग—दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणोमें णमोकारके जपकी विशेषता कही गयी है। मूलाचारमें लिखा है, "दैवसिक प्रतिक्रमणके कायोत्सर्गमें एक सौ आठ उच्छ्वास करना चाहिए। अर्थात् छत्तीस बार पच नमस्कारका जाप करना चाहिए। एक बार णमोकारका पाठ करनेमें तीन उच्छ्वासका काल लगता है। 'णमो अरहताण णमो सिद्धाण'में एक उच्छ्वास, 'णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण'में दूसरा उच्छ्वास तथा 'णमो लोए सव्वसाहूण' पदोच्चारणमें तीसरा उच्छ्वास होता है। प्राण वायुको भीतर लेना और बाहर छोडना यह उच्छ्वासका लक्षण है। रात्रिक प्रतिक्रमणमें चौवन उच्छ्वास करना चाहिए अर्थात् १८ बार पच नमस्कार मन्त्रको चौवन उच्छ्वासोमें पढना चाहिए। पाक्षिक प्रतिक्रमणमें तीन सौ उच्छ्वासोमें अर्थात् सौ बार णमोकार पढना चाहिए। चातुर्मासिक प्रतिक्रमणमें

चार सौ उच्छ्वास, सांवत्सरिकमें पांच सौ उच्छ्वास कहे हैं। (मूलाचार पृ० ३३८, अ० ७, गा० १८५, १८६)

अनगारधर्मामृत टीका(अ० ८ पृ० ६७५)में यह पद्य उद्धृत किया गया है,

"सप्तविंशतिरुच्छ्वासा संसारोन्मूलनक्षमे ।
सन्ति पंचनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥"

पंचनमस्कार मन्त्रका नौ बार चिंतवन करनेमें २७ उच्छ्वास होते हैं। इस प्रकार इसका चिंतवन संसारका उच्छेद करनेमें समर्थ होता है।

णमोकार मंत्रके पाठमें तीन उच्छ्वास प्रमाण काल लगता है। यह उच्छ्वास व्यवहार कालका भेद कहा है। 'आवलि असंखसमया संखेज्जावलि समूहमुच्छवासो'—असंख्यात समय प्रमाण आवलि होती है तथा संख्यात आवली प्रमाण उच्छ्वास होता है। चरणानुयोग रूप आगममें णमोकारके जापकी गणनाको उच्छ्वासके माध्यमसे भी कहा गया है। जैसे नौ बार णमोकारका जाप करे इसको इस रूपसे कहेंगे, कि २७ उच्छ्वास करते हैं। अनगारधर्मामृतमें लिखा है—

"उच्छ्वासाः स्युस्तनूत्सर्गे नियमान्ते दिनादिषु ।
पंचस्वष्ट-शतार्ध-त्रि-चतुःपंचशतप्रमाः ॥८-७२॥"

दिन, रात्रि, पक्ष, चतुर्मास, संवत्सर इन पाँच अवसरोंपर वीर भक्ति करते समय जो कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें क्रमसे एक सौ आठ, चौअन, तीन सौ, चार सौ, और पाँच सौ उच्छ्वास हुआ करते हैं।

अनादि मंत्र माननेमें हेतु—जैनधर्मका प्राण श्रमण धर्म है। उस मुनिधर्मको निर्दोष बनानेके लिए साधुगण सदा प्रतिक्रमणादि-द्वारा अपनी आत्माको परिशुद्ध करते हैं। उस प्रतिक्रमण कार्यमें पंच णमोकारका स्मरण अत्यन्त आवश्यक अंग है। भगवान् ऋषभनाथ तीर्थंकरके समयमें भी जो साधुराज होते थे वे प्रतिक्रमण करते समय णमोकार मंत्रको पढ़ा करते थे। अतः यह णमोकारमंत्र गौतम गणधरसे ही संबंधित नहीं है किन्तु इसका संबंध प्रथम गणधर वृषभसेन स्वामीसे भी रहा है। यथार्थमें यह अनादि मूल मंत्र है। चौदह पूर्वके अंतर्गत जो विद्यानुवाद नामका दशम पूर्व है, उसमें णमोकार मंत्रको पैंतीस अक्षरोंसे युक्त मंत्रके रूपमें निरूपण किया गया है। अतः चरणानुयोग रूप परमागमके प्रकाशमें भी णमोकार मंत्र अनादि मूल मंत्र निश्चित होता है। ऐसी स्थितिमें मुद्रित हिन्दी धवला टीकाके नामपर जिन्होंने यह धारणा बना ली है, कि यह णमोकार पुष्पदंत आचार्यकी रचना है, वह योग्य नहीं है। यह णमोकार मंत्र उसी प्रकार अनिबद्ध मंगल रूप है जिस प्रकार णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं आदि वेदना खण्ड, वर्गणा खण्ड तथा महाबंधके मंगल सूत्र अनिबद्ध मंगल हैं।

प्रश्न—षट्खंडागमके प्रारंभमें पुष्पदन्त आचार्य णमोकार मंत्र रूप मंगल सूत्रको उद्धृत करके जीवट्ठाणको अलंकृत किया गया, चौथे, पांचवें तथा छठे खण्डमें भूतबलि स्वामीने भी ग्रन्थान्तरका मंगल उद्धृत किया, तो क्या दूसरे और तीसरे खण्डमें भी इसी प्रकार अनिबद्ध मंगलको अपनानेकी पद्धति अंगीकार की गयी है?

समाधान—दूसरे तथा तीसरे खण्डमें भूतबलि स्वामीने स्वयं मंगल पद्योंको रचकर उन खण्डोंको निबद्ध मंगल युक्त किया है। इस प्रकार षट्खंडागम सूत्रमें निबद्ध और अनिबद्ध दोनों प्रकारके मंगल पाये जाते हैं। अन्य ग्रंथोंमें निबद्ध मंगल ही पाया जाता है।

निबद्ध मंगल—दूसरे खण्डमें क्षुद्रबंधमें यह महत्त्वपूर्ण मंगल श्लोक है—

"जयउ धरसेण णाहो जेण महाकम्म पयडि-पाहुड-सेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स ॥"

वे धरसेन स्वामी जयवत हो, जिन्होने महा-कर्म प्रकृति प्राभृत रूप पर्वतको अपनी बुद्धिरूपी मस्तक के द्वारा धारण करके उसे पुष्पदतको सौंपा।

इस गाथामें भूतबलि आचार्यने महाकम्म-पयडि-पाहुड ग्रथकी पर्वतसे तुलना की है। पर्वत विशाल होता है, वह दुर्गम होता है, असमर्थ तथा दुर्बल हृदयवाले उस पर्वतके पास नही जाते हैं, इसी प्रकार यह कर्मविषयक ग्रथ महान् है, गभीर है तथा सर्व साधारणकी पहुँचके परे है। यह महाज्ञानियोंकी बुद्धिके द्वारा गम्य है।

भूतबलि आचार्यकी महत्ता—इस ग्रथका उपदेश धरसेन स्वामीने पुष्पदन्तके साथ भूतबलिको भी दिया था, किन्तु अत्यत विनम्र भावसे भूषित हृदय होनेसे भूतबलि स्वामी अपना कोई भी उल्लेख न करके अपने साथीका ही वर्णन करते हैं।

बध-स्वामित्व-विचय नामके तीसरे खडकी मगल गाथा इस प्रकार है —

"साहू-वज्झाइरिए अरहते वदिऊण सिद्धे वि।
जे पच लोगवाले वोच्छं बधस्स सामित्तं॥"

साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहत तथा सिद्ध इन पच लोकपालोकी वदना करके मैं बध-स्वामित्व विचय ग्रथका कथन करता हूँ।

पाँचो परमेष्ठीका जीवन त्रस तथा स्थावर जीवोका रक्षक होनेसे उनको लोकपाल कहा है। वे प्राणीमात्रका रक्षण करते है।

षट्खडागम सूत्रके विषयमें यह बात ज्ञातव्य है कि जीवट्ठाणके १७७ सूत्रोके सिवाय द्रव्यप्रमाणानुगम आदि समस्त ग्रथ भूतबलि मुनीन्द्रकी रचना होते हुए भी उन्होने प्रकारान्तरसे भी अपने नामकी झलक तक नहीं दी। वेदना खण्ड (ताम्रपत्र पृ० ४०, ४१) में टीकाकार वीरसेन स्वामीने कहा है, 'एव प्रमाणीभूद-महरिसि-पणालेण आगतूण महाकम्मपयडि-पाहुडामिय-जलप्पवाहो धरसेणभडारयं सपत्तो। तेण वि गिरि णयर-चंदगुहाए भूदबलि पुप्फदताण महाकम्मपयडिपाहुड सयल समप्पिद। तदो भूदबलिभडारयेण सुदणई पवाह-वोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्म-पयडिपाहुड उवसहरिय छखडाणि कयाणि"—इस प्रकार प्रमाणरूप महर्षिरूप प्रणालिकासे आता हुआ महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतरूप अमृत जलका प्रवाह धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। उन्होने गिरिनगरकी चद्रगुहामें भूतबलि तथा पुष्पदतको सपूर्ण महाकर्मप्रकृति प्राभृत प्रदान किया। इसके अनन्तर भूतबलि भट्टारकने श्रुतज्ञान रूप नदीके प्रवाहके व्युच्छेदके भयसे भव्यलोकके अनुग्रहके हेतु महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपसहार करके छह खण्ड रूप रचना की।" इस प्रकार धवलाटीकाकार भूतबलि भट्टारकके विषयमें प्रकाश डालते है, जिससे यह प्रतीत हो जाता है, कि इस ग्रथरचनामें उनका [illegible] हाथ था, फिर भी वे महापुरुप अपने विषयमें मौन धारण करते हैं, ऐसी विश्वपूज्य आत्माओंका [illegible] माना गया है। यथार्थमें धरसेन स्वामी, पुष्पदत स्वामी, भूतबलि स्वामी ये रत्नत्रय रूप थे—

आचार्य धरसेनकी विशेषता—वीरसेन स्वामी धरसेन भट्टारकके विषयमें लिखते है —

"पसियउ मह धरसेणो पर-वाइ-गओह-दाण-वर-सीहो।
सिद्धतामिय-सायर-तरग-सघाय-धोय-मणो॥४॥"

वे धरसेन आचार्य मुझपर प्रसन्न हों जो परवादी रूप गजसमूहके मदको नष्ट करनेके लिए श्रेष्ठ सिंहके समान है तथा जिनका मन सिद्धात रूपी अमृतके सागरकी तरगोंके समूहसे परिशुद्ध हो चुका है।

पुष्पदन्तको प्रणामांजलि—

"पणमामि पुप्फदत दुकयत दुण्णयधयार-रविं।
भग्ग-सिव-मग्ग-कटयमिसि-समिइ-वइ सया दत॥५॥"

मैं उन पुष्पदंत आचार्यको प्रणाम करता हूँ जो दुष्कृतोका अन्त करनेवाले हैं, कुनयरूपी अधकारके लिए सूर्यके समान है, जिन्होने मोक्षमार्गके कटकोको नष्ट कर दिया है, जो ऋषि समाजके स्वामी है तथा निरतर इन्द्रियोका दमन करते है।

भूतबलि भट्टारक—

भूतबलि स्वामीके विषयमे आचार्य वीरसेन कहते है —

"पणमह कय-भूय-बलि भूयबलिं केस-वास परिभूय-बलि।
विणिहय-बम्मह पसर वड्ढाविय विमल-णाण-बम्मह-पसर ॥६॥"

जो प्राणिमात्र अथवा भूत जातिके व्यतर देवोंसे पूजे गये है, जिन्होने अपने केशपाशके द्वारा जरा आदिसे उत्पन्न हुई शिथिलताको तिरस्कृत किया है जिन्होने कामभावके प्रसारको नष्ट करके वर्द्धमान, निर्मल ज्ञानके द्वारा ब्रह्मचर्यके प्रसारका बढाया है, ऐसे भूतबलि स्वामीका प्रणाम करो।

जैनी दीक्षामे उपयोग—इस महामन्त्र णमोकारका जैन सस्कृतिमें दीक्षा प्रदान करते समय उपयोग किया जाता है। महापुराणमें नवीन जैन दीक्षा लेनेवाले व्यक्तिके लिए इस प्रकार सस्कारका वर्णन आया है—"जिनेन्द्र भगवान्के समवशरण मगलकी पूजा हो जानेके उपरान्त आचार्य उस भव्य पुरुषको जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सम्मुख बैठावे और बार-बार उसके मस्तकको स्पर्श करता हुआ कहे कि यह तेरी श्रावककी दीक्षा है "तवोपासकदीक्षेय" (पर्व ३९, श्लोक ४१)। पच गुरु मुद्राके विधानपूर्वक उसके मस्तकका स्पर्श करे तथा तू दीक्षासे पवित्र हुआ है-"पूतोऽसि दीक्षया" इस प्रकार कहकर उससे पूजाके शेषाक्षत ग्रहण करावे।

"तत पचनमस्कारपदान्यस्मा उपादिशेत।
मन्त्रोऽयमखिलात्पापात्त्वा पुनीतादितीरयन ॥४३॥"

इसके पश्चात् आचार्य उस भव्यको पचनमस्कार पदोका उपदेश दे तथा उसके पूर्व यह आशीर्वाद दे, कि यह मत्र समस्त पापोसे तुझे पवित्र करे।

यह अडतालीस प्रकारकी दीक्षान्वय क्रियाके अन्तर्गत तीसरी स्थानलाभ नामकी क्रिया कही गयी है।

गणधर कथित पर्युपासनामे णमोकार—गौतम गणधर रचित प्रतिक्रमण ग्रथत्रयीमें प्रतिक्रमण करते समय यह पाठ पढा जाता है, "जाव अरहताण भयवताण णमोकार करेमि, पज्जुवास करेमि ताव काय पावकम्म दुच्चरिय वोस्सरामि"—जबतक मैं अरहत भगवान्को नमस्कार करता हूँ, पर्युपासना करता हूँ, तबतक मैं पापकर्म तथा दुश्चरित्रके कारण शरीरके प्रति "उदासीनो भवामि"—मैं उदासीनता धारण करता हूँ। पर्युपासनाके विषयमें टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्र इस प्रकार प्रकाश डालते है, "एकाग्रेण हि विशुद्धेन मनसा चतुर्विंशत्युत्तरशतत्रयाद्युच्छ्वासैरष्टोत्तरशतवारान् पञ्चनमस्कारोच्चारणमर्हता पर्युपासनकरण"—(बृहत्प्रतिक्रमण पृष्ठ १५१)—एकाग्रचित्त हो विशुद्ध मनोवृत्तिपूर्वक तीन सौ चौबीस उच्छ्वासमें एक सौ आठ बार पचनमस्कारका उच्चारण करना अर्हन्तकी पर्युपासना है।" इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिक्रमण करते समय १०८ बार णमोकारका जापरूप पर्युपासनाका कार्य आवश्यक है। अत णमोकार मत्रकी रचना षट्खडागम सूत्रोके मगल रूपमें आचार्य पुष्पदन्त-द्वारा की गयी है, यह धारणा पूर्णतया भ्रान्त प्रमाणित होती है। यह द्वादशागवाणीका अग है।

यह णमोकार मत्र जैन सस्कृतिका हृदय है। श्रमणो तथा उपासकोके लिए प्राणसदृश है। धर्मध्यानके दूसरे भेद पदस्थ ध्यानमें मत्रोके जाप और ध्यानका कथन किया गया है। पचपरमेष्ठीके वाचक पैंतीस अक्षर रूप मत्रका ध्यान तथा जपका उल्लेख आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने द्रव्यसग्रह गाथा ४९ मे किया

वे धरसेन स्वामी जयवंत हों, जिन्होंने महा-कर्म प्रकृति प्राभृत रूप पर्वतको अपनी बुद्धिरूपी मस्तक के द्वारा धारण करके उसे पुष्पदंतको सौंपा।

इस गाथामें भूतबलि आचार्यने महाकम्म-पयडि-पाहुड ग्रंथकी पर्वतसे तुलना की है। पर्वत विशाल होता है, वह दुर्गम होता है, असमर्थ तथा दुर्बल हृदयवाले उस पर्वतके पास नहीं जाते हैं, इसी प्रकार यह कर्मविषयक ग्रंथ महान् है, गंभीर है तथा सर्व साधारणकी पहुँचके परे है। यह महाज्ञानियोंकी बुद्धिके द्वारा गम्य है।

भूतबलि आचार्यकी महत्ता—इस ग्रंथका उपदेश धरसेन स्वामीने पुष्पदन्तके साथ भूतबलिको भी दिया था, किन्तु अत्यंत विनम्र भावसे भूषित हृदय होनेसे भूतबलि स्वामी अपना कोई भी उल्लेख न करके अपने नाथोंका ही वर्णन करते हैं।

बंध स्वामित्व-विचय नामके तीसरे खंडकी मंगल गाथा इस प्रकार है —

"साहू-वज्झाइरिए अरहंते वंदिऊण सिद्धे वि।
जे पंच लोगवाले वोच्छं बंधस्स सामित्तं॥"

साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत तथा सिद्ध इन पंच लोकपालोंकी वंदना करके मैं बंध-स्वामित्व विचय ग्रंथका कथन करता हूँ।

पाँचों परमेष्ठीका जीवन त्रस तथा स्थावर जीवोंका रक्षक होनेसे उनको लोकपाल कहा है। वे प्राणीमात्रका रक्षण करते हैं।

षट्खंडागम सूत्रके विषयमें यह बात ज्ञातव्य है कि जीवट्ठाणके १७७ सूत्रोंके सिवाय द्रव्यप्रमाणानुगम आदि समस्त ग्रंथ भूतबलि मुनीन्द्रकी रचना होते हुए भी उन्होंने प्रकारान्तरसे भी अपने नामकी झलक तक नहीं दी। वेदना खण्ड (ताम्रपत्र पृ० ४०, ४१) में टीकाकार वीरसेन स्वामीने कहा है, 'एवं पमाणीभूद-महरिसि-पणालेण आगंतूण महाकम्मपयडि-पाहुडामिय-जलप्पवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयर-चंदगुहाए भूदबलि पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारयेण सुदणई-पवाह-वोच्छेद-भीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठं महाकम्म-पयडिपाहुडं उवसंहरिय छखंडाणि कयाणि"—इस प्रकार प्रमाणरूप महर्षिरूप प्रणालिकासे आता हुआ महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतरूप अमृत जलका प्रवाह धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ। उन्होंने गिरिनगरकी चंद्रगुहामें भूतबलि तथा पुष्पदंतको संपूर्ण महाकर्मप्रकृति प्राभृत प्रदान किया। इसके अनन्तर भूतबलि भट्टारकने श्रुतज्ञान रूप नदीके प्रवाहके व्युच्छेदके भयसे भव्यलोकके अनुग्रहके हेतु महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपसंहार करके छह खण्ड रूप रचना की।" इस प्रकार धवलाटीकाकार भूतबलि भट्टारकके विषयमें प्रकाश डालते हैं, जिससे यह प्रतीत हो जाता है, कि इस ग्रंथरचनामें उनका प्रमुख हाथ था, फिर भी वे महापुरुष अपने विषयमें मौन धारण करते हैं, ऐसी विश्वपूज्य आत्माओंका [illegible] माना गया है। यथार्थमें धरसेन स्वामी, पुष्पदंत स्वामी, भूतबलि स्वामी ये रत्नत्रय रूप हैं—

धवलामें धरसेनकी विशेषता—वीरसेन स्वामी धरसेन भट्टारकके विषयमें लिखते हैं —

"जयउ धरसेणणाहो पर-वाइ-गओह-दाण-वर-सीहो।
सिद्धंतामिय-सायर-तरंग-संघाय-धोय-मणो॥४॥"

वे धरसेन आचार्य सुन्दर प्रसन्न हों जो परवादी रूप गजसमूहके मदको नष्ट करनेके लिए श्रेष्ठ सिंहके समान हैं तथा जिनका मन सिद्धान्त रूपी अमृतके सागरकी तरंगोंके समूहसे परिशुद्ध हो चुका है।

पुष्पदन्तको प्रणामांजलि—

"पणमामि पुप्फदंतं दुकयंतं दुण्णय-अंधयार-रविं।
भग्ग-सिव-मग्ग-कंटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं॥५॥"

मनमे शास्त्रके उद्धार हेतु हुई थी। रात्रिको नींद नहीं आयी। हमने सोचा तीन, चार हजार श्लोक तो नष्ट हो चुके। यदि शीघ्रतामे ग्रंथोको रक्षाका कार्य नही किया गया, तो और भी अपार क्षति हो जायेगी। इनते हमने कुथलगिरिमें संघपति गेंदनमल, भट्टारक जिनसेन (नांदणी मठ), चन्दूलाल सराफ, बारामती आदिके समक्ष कहा था कि हमारी इच्छा है कि धवल, महाधवल और जयधवल, इन आगम ग्रन्थोको ताम्रपत्रमें खुदवाकर उनकी रक्षा की जाये, जिससे वे चिरकाल तक सुरक्षित रह सकें। उस समय संघपति सेठ [illegible] मलने कहा कि वे इस कामके लिए सारा खर्चा देनेको तैयार हैं, किन्तु हमने कहा कि यह काम एक [illegible] है। समाजके द्वारा यह कार्य होना चाहिए। लोगोने रात्रिके समय बैठक करके इस कार्यके लिए [illegible] व्यवस्था की। इस कार्यके लिए जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी स्थापना की गयी। 'महाराज [illegible] बार कहा था कि इन सिद्धान्त ग्रन्थोको ताम्रपत्रमें उत्कीर्ण किये जानेमें मुख्य कारण तुम हो। तुम्हारे [illegible] कारण ही हमारा ध्यान ताम्रपत्रमें ग्रन्थको उत्कीर्ण करानेको गया था।" उक्त संस्थाके [illegible] देवचंद शहा बी० ए० सोलापुरने महत्त्वपूर्ण सेवा की।

इसकी टीकामें द्वादश सहस्र श्लोकप्रमाण पंचनमस्कार ग्रंथका उल्लेख किया गया है।[1]

निष्कर्ष—इस प्रकार णमोकार मंत्रकी प्राचीनताके विषयमें शास्त्राधार तथा गुरुपरंपराका सद्भाव ...मे इसे द्वादशांग वाणीका अंग मानना चाहिए। इस चर्चासे यह ज्ञात होता है कि सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्रोंके ...भमें महाज्ञानी मुनीन्द्र पुष्पदन्त स्वामीने णमोकारमंत्र रूप अनिबद्ध मंगलको निबद्ध किया था तथा वेदना, ...ा तथा महाबंध रूप तीन खण्डोंके लिए "णमो जिणाण" आदि ४४ मंत्रोंको भूतबलि स्वामीने मंगल सूत्र ...ाये, जो कि णमोकार मंत्रके समान ही द्वादशांग वाणीके ही साक्षात् अंग रूप हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी ...ोकार मंत्रको प्राचीनतम माना है। वास्तवमें यह हमारा अनादिमूलमंत्र है तथा यथार्थमें यह अपराजित ...राज है। 'अनादिमूलमंत्रोऽयम्' यह पाठ पूजाके समय पढ़ा जाता है, वह वास्तविकतासे संबद्ध ...ता है।

यह भी स्मरणीय बात है कि श्वेताम्बर जैन साहित्यमें भी इस महामंत्रको दिगम्बरोंके समान ही ...र और प्राचीन माना गया है।

जिस प्रकार गौतम गणधरके मंगलसूत्रोंको भूतबलि स्वामीने अपनी रचनाका मंगल बनाया, तदनुसार ...ा हिन्दी टीकामें भी वीरसेन स्वामीके मंगलपद्योंको हमने विघ्न विनाश निमित्त अपने मंगलरूपमें ...पा लिया।

...तिलिपिके विषयमें

महाग्रन्थकी मूल प्रति ताडपत्रपर कन्नड लिपिमें है। भाषा प्राकृत है। प्राचीन प्रति होनेके कारण ...सकी लिपि भी पुरातन कन्नड है। महाबन्धग्रन्थ २१९ ताडपत्रोंमें है। इसके आरम्भके २६ ताडपत्रोंका ...ग्रन्थसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसमें सत्कर्मपंजिका है, जो षट्खण्डागमके अन्य विषय स्थलोंपर प्रकाश ...ता है। महाबन्धका प्रारम्भिक ताडपत्र अनुपलब्ध है। सम्पूर्णग्रन्थके १४ पत्र नष्ट हो चुके हैं। इससे ...लगभग तीन चार सहस्र श्लोक प्रमाण शास्त्र तो सदाके लिए हमारे दुर्भाग्यसे चला गया। कहीं-कहीं पत्र ...त्रुटित भी हैं। इसके कारण अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका अवबोध नहीं हो सकता, तथा किसी विषयका ...सा रसास्वाद ...ा जाता है, कारण प्रसंग-परम्पराका अभाव हो गया है। ऐसे अवसरपर हृदयमें अवर्णनीय वेदना ...ती है, कि हमारी असावधानीके कारण उस द्वादशांग वाणीकी महानिधिका अंश लुप्त हो गया, जो जगत्के ...कल्याण निमित्त ... स्वामीने भूतबलि मुनीन्द्रके द्वारा बड़ी कठिनतासे नष्ट होनेसे बचाया था। आज उस ... पूर्ति ... उनकी पंक्तियोंकी पूर्ति करना भी असम्भव है, कारण भूतबलि स्वामी-... ... प्राप्त है?

आचार्य शान्तिसागर महाराजकी श्रेष्ठ श्रुतसेवा—इस सम्बन्धमें यह कथन उल्लेखनीय है कि ... आचार्य शान्तिसागर महाराजने सन् १९४३ के दशलक्षण पर्वके समय स्वर्गीय ब्रह्मचारी ... हमारे पास एक पत्र भिजवाया था। उसमें यह लिखा था, कि "१०८ पूज्य आचार्य ... महाधवल शास्त्रकी प्रतिलिपि चाहते हैं, अतः उसको लिखकर शीघ्र भिजवावें।" उस समय हमने ... उत्तर दिया था, कि "महाबन्ध भूतबलि स्वामी रचित सूत्ररूप ही है। उसपर कोई ... चालीस हजार प्रमाण ग्रन्थकी प्रतिलिपिके लिए लेखक भिजवाना आवश्यक होगा। दुर्भाग्यसे ... नष्ट हो जानेसे तीन-चार हजार श्लोक सदाके लिए विलुप्त हो गये।"

... प्रवचनभक्ति-भावना भूषित आचार्य महाराजके हृदयमें अपार चिन्ता उत्पन्न ... 'तुम्हारे पत्रको पाकर हमें वैसी ही चिन्ता हो गयी थी, जैसी चिन्ता धरसेन स्वामीके

... सिद्ध-चक्र, बृहत्सिद्धचक्रमित्यादिदेवार्चन-... ... ध्यानद्वयम॥" २०८ बृहत् द्रव्यसंग्रह।

महाबंधके स्थितिबंध खंडमें (ताम्रपत्र प्रति ७७) अद्धाच्छेद परूवणाका निरूपण करते हुए कहते हैं "सुहुमसं० पंचणाणा० चदुदंस० पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० मुहुत्तपुधत्त, अंतोमु० आबाधा० णिसे०। सादावे० जसगि० उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० मासपुधत्त अंतो० आबा० णिसे०। अथवा पंचणा० चदुदंस० पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० दिवसपुधत्त अंतो० आबा० णिसे०। सादा० जसगि० उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० वासपुधत्त, अंतो० आबा० णिसे०" यहाँ 'अथवा'के द्वारा भिन्न परंपराका कथन किया गया प्रतीत होता है।

यतिवृषभ आचार्यका भिन्न मत

गोम्मटसारमें भूतबलि आचार्यके कथनसे भिन्न कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभका कथन मिलता है। यतिवृषभ आचार्य कहते हैं कि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवमें उत्पन्न हुए जीवके प्रथम समयमें क्रमशः क्रोध, माया, मान तथा लोभका उदय होता है अर्थात् नारकीके क्रोधका, तिर्यंचके मायाका, मनुष्यके मानका और देवके लोभका उदय प्रथम समयमें पाया जाता है, किन्तु भूतबलि आचार्यका कथन है कि इस विषयमें कोई नियम नहीं है। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने दोनों मान्यताओंका प्रतिपादन इस गाथामें किया है—

[illegible] का नाम मुद्रित प्रतिमे भिन्न था। इससे मूडविद्रीके ताडपत्रके शास्त्रका क्या पाठ है यह जानना [illegible] तथा पुण्य कर्तव्य था। हम अपने साथमें सन् १९५३ में छोटे भाई अभिनदन कुमार दिवाकर [illegible] एल०-एल० बी० एडवोकेटको भी मूडविद्री ले गये थे, क्योकि ग्रथका सम्यक्-परिशीलन बडे उत्तर-[illegible] था। प० चद्रराजैय्या कन्नडी भाषाके विशेपज्ञसे ग्रथको हम बँचवाते थे। उस समय हमें ज्ञात [illegible] था, कि ताडपत्रकी प्रतियाँ कही-कही अशुद्ध पाठयुक्त भी है। प० लोकनाथजी शास्त्री, प० नागराजजी [illegible] तथा प० चद्रराजेन्द्रजीने पहले हमारे लिए देवनागरी लिपिमें प्रतिलिपि तैयार की थी। उसमें कुछ [illegible] ताडपत्रकी प्रतिलिपिके साथ अपनी प्रतिलिपिका दोबारा सतुलनका कार्य प० चद्रराजेन्द्र [illegible] परिश्रमसे सपन्न किया था। फलत महत्त्वपूर्ण भूलोको सुधारा गया।

महारानी मल्लिकादेवीका शास्त्रदान—मूडविद्रीमें विद्यमान ताडपत्रीय प्रतिके विषयमें यह [illegible] है, कि वनितारत्न महारानी मल्लिकादेवीने अपने पचमी व्रतके उद्यापनमें उक्त प्रतिलिपि तैयार [illegible] यतिपति मुनिराज श्री माघनदि महाराजको अर्पण की थी। अत भूतबलि स्वामीके द्वारा लिखित [illegible] मूल प्रति मूडविद्रीमे है ऐसी कल्पना अयथार्थ है। प्रथम प्रतिके जीर्ण होकर नष्ट होनेके पूर्व दूसरी [illegible] व्यक्तियो-द्वारा तैयार की गयी थी। ऐसा ही क्रम अन्य ग्रथोके विपयमें रहा है। अत ग्रथोके [illegible] सशोधन आदि कार्य करते समय जो यह सोचा जाता है कि यह परिवर्तन भूतबलि, पुष्पदत रचित [illegible] विषयमें किया गया है, यथार्थमे यह बात नहीं है। वास्तवमें बात यह है कि मूडविद्रीकी प्रतियाँ [illegible] प्रतिलिपियाँ ही है। इतने बडे ग्रथोको ताडपत्रमें उत्कीर्ण करनेके अनेक वर्षके परिश्रमसाध्य कार्यमे [illegible] मन्दता अथवा शारीरिक परिस्थिति आदि अनेक कारणोमें कही कुछ अयथार्थ लिखा जाना [illegible] है। [illegible] आगमभक्त श्रुतसेवी विद्वान् पूर्वापर सबध, परपरा आदिके प्रकाशमें कार्य किया [illegible]।

'आत्मवान्' की प्रतिष्ठा[1] प्राप्त की थी। अर्थशास्त्री रुपयोंके हानि-लाभपर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्माके स्वरूपको ढकनेवाले आस्रवको हानि तथा संवर और निर्जराको अपना लाभ समझता है। वही सच्चा सम्पत्तिशाली है, जिसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धि है और वही चमत्कारपूर्ण शक्ति विशिष्ट है, जिसने कर्म-राशिको चूर्ण किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसारमें कितनी सुन्दर बात कही गयी है—

"जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिकै।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाडो भयो मूछ मोरिकै॥
आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिकै।
आस्रव पछार्‍यो रणथंभ तोड़ि डार्‍यो ताहि निरखि बनारसि नमत कर जोरिकै॥"

अभिमानी आस्रव सुभटको पछाड़कर विजय प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानीको महाबन्धसदृश शास्त्र अपूर्व बल प्रदान करते हैं। कर्मोंका आत्माके साथ जो बंध है, वह इतना सुदृढ़ और सूक्ष्म है कि भयंकरसे भयंकर अस्त्र शस्त्रादिके प्रहार होनेपर भी उसपर कुछ भी असर नहीं होता। आध्यात्मिक शक्तिके जागृत होते ही कर्मोंका सुदृढ़ बंधन ढीला होने लगता है। ऐसे ग्रंथ उस आत्माके तेजको प्रबुद्ध करते हैं, जिसके द्वारा यह आत्मा कर्मबंधनके प्रपंचसे मुक्त होनेके मार्गमें लग जाता है। कर्मोंके प्रपंचसे छूटनेका उपाय ही यथार्थमें सबसे बड़ा चमत्कार है। संसारके समस्त भौतिक चमत्कार और अन्वेषण एक ओर रखकर दूसरी ओर कर्मनाश करनेकी आत्मचातुरी अथवा चमत्कारको रख संतुलन किया जाये, तो यह आत्मयोगकी कला ही श्रेष्ठ निकलेगी, जो अनन्तभवसे बँधे हुए अनंत दुःखोंके मूलकारण कर्मोंका पूर्णतया उन्मूलन कर आत्मामें अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य तथा अनन्तसुखको अभिव्यक्त कर देती है। भौतिकताकी आराधनासे आत्मत्वका ह्रास ही हुआ करता है। इसका ही कारण है जो जीव अपने 'स्व' को भूलकर 'पर' का उपासक बनता है। अनादि कालसे मोह महाविद्यालयमें अभ्यास करनेवाला यह जीव जहाँ भी जाता है और जिस किसी पदार्थके संपर्कमें आता है, वहीं वह या तो आसक्ति धारण करता है या द्वेषभाव रखता है। वीतरागताका प्रकाश कभी भी इसकी जीवनवृत्तिको आलोकित न कर पाया।

महाबंधसदृश शास्त्रके परिशीलनसे आत्माको पता चलता है, कि किस-किस कर्मका मेरे साथ संबंध होता है, उसके स्वरूपादिका विशद बोध होनेसे राग, द्वेष तथा मोहका आवेग या अनुराग मंद होने लगता है। आर्त और रौद्र नामक दुर्ध्यानोंका अभाव होकर धर्मध्यानकी विमल चंद्रिकाका प्रकाश तथा विकास होता है जो आनन्दामृतको प्रवाहित करती है और मोहके संतापका निवारण करती है। समुद्रके तलमें डुबकी लगानेवालेको बाह्यजगत्की शुभ, अशुभ बातोंका पता नहीं चलता, इसी प्रकार कर्मराशिका विशद तथा विस्तृत विवेचन करनेवाले इस ग्रंथार्णवमें निमग्न होनेवाले मुमुक्षुके चित्तमें राग-द्वेषादि संतापकारी भाव नहीं उत्पन्न होते। वह बड़ी निराकुलता तथा विशिष्ट शान्तिका अनुभव करता है।

'आगम' शब्दसे संकीर्तित करके अपना आदर तथा श्रद्धाका भाव व्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं—

"आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति, इति मनसात्मनेत्यर्थः। तमात्मनावबुध्यात्मन परेषां च चिंता-जीवित-मरण-सुख-दुःख-लाभालाभादीन् विजानाति। व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम्।"

—त० रा० पृ० ५८।

"मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि। जीविदमरण लाभालाभं सुहदुक्खं णगरविणासं देहविणासं जणपदविणासं अदिवुट्ठि अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि सुभिक्खं दुभिक्खं खेमा खेम भयरोग उब्भम इब्भम संभम वत्तमाणाण जीवाणं, णोअवत्तमणाणं जीवाण जाणदि।"

—महाबंध, ताम्रपत्र प्रति, पृ० २

गोम्मटसारपर भी महाबंधका प्रभाव स्पष्टतया दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थ, इस प्रकृतिबंधाधिकारके बंधसामित्तविचय अध्यायसे तुलना करें, तो पता चलेगा, कि यहाँ वर्णित कर्मप्रकृतियोंके बंधका, [illegible] आदिका कथन गोम्मटसार कर्मकाण्डकी 'मिच्छत्तहुंडसंढा' आदि गाथा ९५ से १२० तक पद्यरूपमें निबद्ध है। महाबंधमें बंधके सादि अनादि ध्रुव अध्रुवरूप भेदोंका वर्णन ३३-४३ पृष्ठपर किया गया है। [illegible] गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १२२ से १२४ में निरूपित हुआ है।

महाबंधके पृ० २१–२८ में 'ओगाहणा जहण्णा' आदि सोलह गाथाएँ हैं, वे तनिक परिवर्तनके साथ गोम्मटसार जीवकाण्डकी ज्ञानमार्गणामें वर्णित हैं।

[illegible] आगमपर महाबंधका प्रभाव प्रकट ज्ञात होगा, जहाँ भी उनमें महाबंधके प्रमेयसंबंधी चर्चा [illegible], कारण [illegible] विषयके विशदरूपसे प्रतिपादक महाबंधसे प्राचीन ग्रंथराजकी अनुपलब्धि है।

[illegible] उपयोगिता

[illegible] उपयोगितावादी महाबंधको देखकर आनन्दामृत पान नहीं कर सकेगा, कारण उसकी दृष्टिमें [illegible] आत्मोपलब्धि है। अनेक व्यक्तियोंकी यह धारणा रही है कि इन सिद्धान्तग्रंथोंमें [illegible] विद्याका भंडार है, जिसके बलसे लोहा सोना रूपमें परिणत किया जा सकता है, [illegible] सकते हैं आदि विविध वैज्ञानिक चमत्कारोंका आकर होनेकी मधुर कल्पनाके [illegible] प्रति अत्यधिक ममता रही, किन्तु प्रत्यक्ष परिचयके द्वारा जब यह ज्ञात होता [illegible] प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशरूप बंधचतुष्टयका सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन है, [illegible] अपना काम करो, ऐसी रचनाओंमें अपने बहुमूल्य समयका [illegible] दृष्टि प्रिय तथा आकर्षक मालूम पड़ती है, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्तिको [illegible] होता है। लौकिक अर्थभक्त, अनर्थकी जननी तथा आत्मनिधिका लाप [illegible] है। वह इन ग्रंथोंमें भौतिक विज्ञानकी सामग्री न पा निराश होता है, [illegible] वैभवका समर्पनेवाला मनुष्य यह अनुभव करता है, कि वास्तविक [illegible] महान् आदर्श है। आत्मा अपने प्रयत्नसे कर्मोंके जालमें फँसता है। [illegible] है, वह तो महान् अविद्या है। श्रेष्ठ कला, विद्या, विज्ञान या [illegible] दूर करके आत्मा अनंत तथा अमर्यादित विभूतियोंका [illegible] भगवान् वृषभदेवने आसमुद्रान्त विशाल साम्राज्यको छोड़कर

'आत्मवान्' की प्रतिष्ठा[1] प्राप्त की थी। अर्थशास्त्री रुपयोके हानि-लाभपर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्माके स्वरूपको ढकनेवाले आस्रवको हानि तथा संवर और निर्जराको अपना लाभ समझता है। वही सच्चा सम्पत्तिशाली है, जिसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धि है और वही चमत्कारपूर्ण शक्ति विशिष्ट है, जिसने कर्म-राशिको चूर्ण किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसारमें कितनी सुन्दर बात कही गयी है—

"जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिके।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाडो भयो मूछ मोरिके॥
आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिके।
आस्रव पछार्‍यो रणथम्भ तोड़ि डार्‍यो ताहि निरखि बनारसि नमत कर जोरिके॥"

अभिमानी आस्रव सुभटको पछाडकर विजय प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानीको महाबंधसदृश शास्त्र अपूर्व बल प्रदान करते है। कर्मोका आत्माके साथ जो बंध है, वह इतना सुदृढ और सूक्ष्म है कि भयंकरसे भयंकर अस्त्र शस्त्रादिके प्रहार होनेपर भी उसपर कुछ भी असर नही होता। आध्यात्मिक शक्तिके जागृत होते ही कर्मोका सुदृढ बंधन ढीला होने लगता है। ऐसे ग्रंथ उस आत्मीक तेजको प्रवृद्ध करते हैं, जिसके द्वारा यह आत्मा कर्मबंधनके प्रपंचसे मुक्त होनेके मार्गमें लग जाता है। कर्मोंके प्रपंचसे छूटनेका उपाय ही यथार्थमें सबसे बडा चमत्कार है। संसारके समस्त भौतिक चमत्कार और अन्वेषण एक ओर रखकर दूसरी ओर कर्मनाश करनेकी आत्मचातुरी अथवा चमत्कारको रख संतुलन किया जाये, तो वह आत्मबोधकी कला ही श्रेष्ठ निकलेगी, जो अनंतभवसे बँधे हुए अनंत दुःखोके मूलकारण कर्मोंका पूर्णतया उन्मूलन कर आत्मामें अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य तथा अनंतसुखको अभिव्यक्त कर देती है। भौतिकताकी आराधनासे आत्मतत्त्वका ह्रास ही हुआ करता है। इसका ही कारण है जो जीव अपने 'स्व' को भूलकर 'पर' का उपासक बनता है। अनादि कालसे मोह महाविद्यालयमें अभ्यास करनेवाला यह जीव जहाँ भी जाता है और जिस किसी पदार्थके संपर्कमें आता है, वहाँ वह या तो आसक्ति धारण करता है या द्वेषभाव रखता है। वीतरागताका प्रकाश कभी भी इसकी जीवनवृत्तिको आलोकित न कर पाया।

महाबंधसदृश शास्त्रके परिशीलनसे आत्माको पता चलता है, कि किस-किस कर्मका मेरे साथ संबंध होता है, उसके स्वरूपादिका विशद बोध होनेसे राग, द्वेष तथा मोहका अभ्यास एवं अभ्यास मंद होने लगता है। आर्त और रौद्र नामक दुर्ध्यानोका अभाव होकर धर्मध्यानकी विमल चन्द्रिकाका प्रकाश तथा विकास होता है जो आनन्दामृतको प्रवाहित करती है और मोहके संतापका निवारण करती है। समुद्रके तलमें डुबकी लगानेवालेको बाह्यजगत्की शुभ, अशुभ बातोका पता नही चलता, इसी प्रकार कर्मराशिका विशद तथा विस्तृत विवेचन करनेवाले इस ग्रंथार्णवमें निमग्न होनेवाले मुमुक्षुके चित्तमें राग-द्वेषादि संतापकारी भाव नही उत्पन्न होते। वह बडी निराकुलता तथा विशिष्ट शान्तिका अनुभव करता है।

व्यायामादिका सम्यक् अभ्यासशील व्यक्ति व्याधियोके आक्रमणसे प्राय बचा रहता है, इसी प्रकार ऐसे पुण्यानुबंधी वाङ्मयके परिशीलन-द्वारा भव्य जीव उस आध्यात्मिक परिशुद्ध व्यायामको करता है, जिससे आत्मा बलिष्ठ होती है, और भौतिक चमक-दमक चित्तमें चमत्कृति या विकृति उत्पन्न नही कर पाती तथा काम-क्रोध-मोहादि दोष आत्मशक्तिको न्यून नहीं कर पाते।

विपाक विचय धर्मध्यानका साधक—शास्त्रकारोने [2]धर्मध्यान और शुक्लध्यानको निर्वाणका कारण बताया है। धर्मध्यानके चार भेदोमें विपाकविचय नामका ध्यान कहा गया है। आचार्य अकलंक

---

[1] 'विहाय य सागरवारिवासस वधूमिवेमा वसुधावधू सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभु प्रवव्राज सहिष्णुरच्युत ॥"—बृहत्स्व० ३।

[2] "परे मोक्षहेतू"—त० सू० ९, २९।

लिखते हैं—"कर्मफलानुभवनविवेकं प्रति प्रणिधान विपाकविचय । कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्र काल-भव-भावप्रत्ययफलानुभवन प्रति प्रणिधानं विपाकविचय ।" —त० रा० ३५३ । "कर्मोंके फलानुभव विवेकके प्रति उपयोगका होना विपाकविचय है । ज्ञानावरणादिक कर्मोंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तसे जो फलानुभवन होता है, उस ओर चित्तवृत्तिको लगाना विपाकविचय है ।" कर्मोंके विपाक आदिके विषयमें अनुचिंतन करनेसे रागादिकी मन्दता होती है और कषायविजयका कार्य सरल हो जाता है । समयप्राभृतकारके शब्दोंमें जीव विचारता है—

"जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२॥
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण वधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गट्ठाणया केई ॥५३॥
णो ठिदिवधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो सजमलद्धिठाणा वा ॥५४॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥५५॥"

मोहान्धकारको दूर कर जीवनको महाधवल बनाता है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी आराधनाके द्वारा पूजक जिनेन्द्रका पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महाधवलके सम्यक् परिशीलन तथा स्वाध्यायसे जीवन भी महाधवल हो जाता है। अनुभागबंधकी प्रशस्तिमें ग्रंथको 'सत् पुण्याकर' बताया है। यथार्थमें यह सातिशय पुण्यकी उत्पत्तिका कारण है। प्रशस्त पुण्यका भंडार है। श्रेयोमार्गको सिद्धिका निमित्त है। प्रवचनसारमें कुंदकुंद स्वामीने अर्हन्तकी पदवीको पुण्यका फल कहा है। 'पुण्यफला अरहंता' (गाथा १, ४५)। अमृतचन्द्र सूरिने टीकामें पुण्यको 'कल्पवृक्ष' कहते हुए उसके पूर्ण परिपक्व फलको 'अर्हन्त' कहा है। 'अर्हन्त खलु सकल सम्यक् परिपक्व-पुण्य-कल्पपादपफला एव' (प्रवचनसार टीका पृष्ठ ५८)

प्रशस्ति-परिचय

महाबंध ग्रंथमें ऐतिहासिक उल्लेखका दर्शन नहीं होता। प्रकृतिबंध-अधिकारके प्रारंभिक अंशके नष्ट हो जानेसे उसके ऐतिहासिक उल्लेखका परिज्ञान होना असंभव है। इस अधिकारके अंतमें प्रशस्तिरूपमें भी कोई उल्लेख नहीं है। स्थितिबंध, अनुभागबंध तथा प्रदेशबंध इन तीन अधिकारोंके अंतमें हो प्रशस्ति पायी जाती है।

प्रशस्तिमें ग्रंथकर्ताका नाम तक नहीं आया है। स्थितिबंधके पद्य नं० ७ और प्रदेश-बंधके पद्य नं० ५ से, जो समान है, विदित होता है, कि सेनवधू वनितारत्न मल्लिका देवीने अपने पंचमी व्रतके उद्यापनमें शांत तथा यतिपति माघनंदि महाराजको इस ग्रंथकी प्रतिलिपि अर्पण की थी।

मल्लिका देवीको शीलनिधान, ललनारत्न, जिनपदकमलभ्रमर, सिद्धान्तशास्त्रमें उपयुक्त अंतःकरणवाली तथा अनेक गुणगण अलंकृत बताया है। उन्होंने पुण्याकर महाबंध पुस्तक जिन माघनंदि मुनीश्वरको भेंट की थी, वे गुप्तित्रयभूषित, शल्यत्रयरहित, कामविजेता, सिद्धान्तसिन्धुकी वृद्धि करनेको चन्द्रमातुल्य तथा सिद्धांतशास्त्रके पारंगत विद्वान् थे।

वे मेघचन्द्र व्रतपतिके चरणकमलके भ्रमर-सदृश थे।

मल्लिका देवी सारे जगत्में अपने गुणोंके कारण विख्यात थी। 'सत्कर्म-पंजिका'से ज्ञात होता है कि प्रशस्तिमें आगत 'सेन'का पूरा नाम शांतिषेण है। ये राजा थे। राजपत्नी मल्लिकादेवी-द्वारा व्रतोद्यापनके अवसरपर शास्त्रका दान इस बातको सूचित करता है, कि उस समय महिला जगत्के हृदयमें जिनवाणी माताके प्रति विशेष भक्ति थी[1]।

राजा शांतिषेण सद्गुण-भूषित थे। प्रशस्तिमें गुणभद्रसूरिका भी उल्लेख आया है। उनको कामविजेता, नि शल्य बताया है। उग्रादित्य नामके लेखकने महाबंधकी कापी लिखी थी, यह बात सत्कर्मपंजिकासे ज्ञात होती है। प्रशस्ति इस प्रकार है—

स्थितिबंधाधिकारके अंतकी प्रशस्ति

नमस्सिद्धेभ्यः । नमो वीतरागाय शान्तये

यो दुर्जयस्मरमदोत्कटकुम्भिकुम्भनचोदनोन्मुक्तनरोग्र-मृगाधिराजः ।

सत्यत्रयादपगतस्त्रयगौरवाणि सजातवान् भुवने गुणचन्द्रसूरिः ॥१॥

---

१ कर्नाटकके गंगवंशकी महिलाओंने प्राचीन कालमें महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इस वंशकी महिला अत्तिमब्बेने अपने द्रव्यके द्वारा महाकवि पोन्न रचित शांतिनाथ पुराणकी एक हजार प्रतियाँ लिखवाकर दान की थीं। ऐसी प्रसिद्धि है कि उस वीरांगनाने सोना चांदी जवाहरात आदिकी बहुमूल्य सैकड़ों मूर्तियाँ मंदिरोंमें विराजमान की थी।

दुर्वारमारमदसिन्धुरसिन्धुरारिः शल्यत्रयाधिकरिपुस्त्रयगुप्तियुक्त ।
सिद्धान्तवार्धिपरिवर्धन-शीतरश्मि श्रीमाघनन्दिमुनिपोऽजनि भूतलेऽस्मिन् ॥२॥

स्रग्धरावृत्तम् (कन्नड़)

वरसम्यक्त्वद-देशसयमद सम्यग्बोधदत्यतमासुरहारत्रिकसौख्यहेतु-वेनिसिर्दा-दानदौदार्यदेल्तरदि
गो(दी)तने जन्मभूमि येनुत सानदर्दिक्कर्तुभूभरमेल्ल पोगकुत्तमिर्पुदभिमानाधीनन सेननम् ॥३॥
सुजनते सत्यमोलपुदयेशील-गुणोन्नति पेंपु जैन-मार्गज गुणमेंब सद्गुणमिवत्यधिक तनगोप्पनूतनष-
मंजनिवर्नेदु कित्ते सुमतीधरे मेदिनि गोप्पे तोर्व्वेचित्तजसमरूपनं नेगत्तद 'सेनन' नुद्दगुणप्रधानम् ।५।

कन्नड़ कंदपद्य

अनुपमगुणगणदतिवर्मन शीलनिदानमेसेव जिनपदसत्को-
कनद-शिलीमुखियेने मातनदिद 'मल्लिकब्बे ललनारत्नम्' ॥६॥
आवनिता रत्नदो, पेंपावग पोगललरिदु जिनपूजये नाना-
विधद-दानदमलिन-भावदोला 'मल्लिकब्बेय' पोल्ववरार
श्री पचमिय नोंतुद्यापनम माडि बरेसि राद्धातगना (राद्धातमना) ।
रूपवती 'सेनवधू' जितकोप श्रीमाघनदियतिपति-गित्तल् ॥७॥

अनुभागबंधाधिकारके अन्तको प्रशस्ति

स्रग्धरावृत्तम्

जितचेतोजातनुर्वीश्वर-मकुटतटोद्घृष्टपादारविन्द-
द्वितय वाक्कामिनी पीवरकुचकलशालकृतोदारहार-
प्रतिम दुर्द्धारसमृत्यतुल-विपिनदावानल माघनदि-
व्रतिनाथ शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशोराजिता शातकातम् ॥१॥

कंदपद्य

भावभवविजयि-वरवाग्देवीमुखनूतनरत्नदर्पनान-
म्नावनि-पालकनेनिसिद-नला विश्रुतकित्ते माघनदिमुनीन्द्रम् ॥२॥

महास्रग्धरावृत्तम्

वरराद्धान्तामृताभोनिधि-तरल-तरगोत्कर-क्षालिताता-
चरण श्रीमेघचद्रव्रतिपतिपदपकेरुहासक्तसत्स(त्य)
द्भ्रमरण तीव्रप्रतापोद्धृत-विततबलोपेत-पुष्पेषुभृत्स-
हरण सैद्धातिकाग्रेसरनेने नेगल्द माघनदिव्रतीन्द्रम् ॥३॥

कंदपद्य

महनीय गुणनिधान, सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधियेन नेगल्द
महि विनुतकित्ते कित्तिन [मही] महिमान मानिताभिमानं सेनम् ॥४॥
विनदद-श्रीन्दोल गुणदोलादिय पेंपिन पुड्डिजमनो-
ज्ञन-निरूपि नोंतनिल्लिसिर्द-मनोहरमप्पुदोदु-
ग्गिनिनने दानदा(सा)गरमेनिप्प वधूत्तमे यप्प सदसे-
नन सति मल्लिकब्बेगे धरित्रियोल्पार्दोरे सद्गुणगलि ॥५॥
रुन्दरश्रीविनुत-नोंतनियमे मल्लिकब्बे बरेयिमि सत्पु-
स्तकर महाबंधद पुस्तकम श्रीमाघनदि मुनिपति गित्तल् ॥६॥

प्रदेशबन्धाधिकारके अन्तकी प्रशस्ति

कन्दपद्य

श्रीमलधारिमुनीन्द्रपदामलसरसीरुहभृगनमलिकित्ते ।
प्रेम मुनिजनकैरवाशोमनेनन्माघनदियतिपतियेसेद ॥१॥
जिनपपचेषु-प्रतापानलनमल्तरोत्कृष्टचरित्रराराा-
जिततेत भारती-भामुरकुचकलशालीढ-भाभारनूत्ना ।
यन् तारोदारहार समदमनियमालकृत माघनदि-
व्रतिनाथ शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशो-वल्लरी-चक्रवालम् ॥२॥
जिनवक्त्राभोज-नीनिर्गत हितनुतराद्धान्तकिंजल्कमुस्वादन-
... . जगदनतभूपेन्द्रकोटीरसेना ।
तिनिकायभ्राजिताप्रिद्वयनखिल-जगद्भव्यनीलोत्पलाल्हादन-
ताराधीशने केवलमें भुवनदोल् माघनदिव्रतीन्द्रम् ॥३॥
परराद्धान्तामृताभोनिधितरलतरगोत्करक्षालितातः-
करण श्रीमेघचन्द्रव्रतपतिपदपकेरुहासक्तषट्चरण ॥
.. . .त्तम ।
च्चारण सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगदमाघनदिव्रतीन्द्रम् ॥४॥
श्री पचमिय नोतुद्यापनम माडि बरेसि राद्धातमना
रूपवती सेनवधू जितकोप श्रीमाघनदियतिपतिगित्तल् ॥५॥

कर्मबन्धमीमांसा

"जह भारवहो पुरिसो वहइ भर गेहिऊण कावडिय ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभर कायकावडिय[1] ॥"—गो० जी० २०१ ॥

महाबध शास्त्रका प्रमेय बध तत्त्व है। षट्खडागमके द्वितीय खड 'खुद्दाबध' (क्षुद्रबध) की अपेक्षा षष्ठखडमें बधके विषयमें विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होनेके कारण प्रतीत होता है उसे महाबध कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र बधके विषयमें यह व्याख्या करता है—

"सकषायत्वात् जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध ।" ८।२

'जीव कषायसहित होनेसे कर्मरूप परिणत होने योग्य पुद्गलोको—कार्माण वर्गणाओको ग्रहण करता है, उसे बध कहते हैं।'

यहाँ बधको समझनेके पूर्व कर्मसिद्धान्तपर प्रकाश डालना उचित जँचता है कारण, बधके विवेचनको आधारभूमि कर्मतत्त्वको हृदयगम करना परमावश्यक है। कर्मकी अवस्था-विशेषका ही नाम बध है।

कर्मविषयक मान्यताएँ

जैन आगममे कर्मसाहित्यका अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ कर्मके विषयमें सर्वांगीण, सुव्यवस्थित

१ जैसे कोई बोझा ढोनेवाला पुरुष काँवडको ग्रहण कर बोझा ढोता है, इसी प्रकार यह जीव शरीररूप कावडमें कर्मभारको रखकर ढोता है।

एव वैज्ञानिक (Scientific) पद्धतिसे विवेचन किया गया है। अन्य धर्मों तथा दर्शनोंने भी कर्मको महत्त्व प्रदान किया है। अज्ञ जगत्में भी कर्मसिद्धान्तकी मान्यता पायी जाती है। 'जैसा करो, तैसा भरो' यह सूक्ति इसी सिद्धान्तकी ओर निर्देश करती है। अंगरेजी भाषामें 'As you sow, so you reap'—'जैसा बोओ, तैसा काटो'—कहावत प्रचलित है। तुलसीदासका कथन है—

"तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥"

कहते हैं एक बार गौतम बुद्ध भिक्षार्थ किसी सपन्न किसानके यहाँ गये। उस कृषकने कहा, "आप मेरे समान किसान बन जाइए। मेरे समान आपको धन-धान्यकी प्राप्ति होगी। ऐसे करनेसे भीख माँगनेका प्रसग नही प्राप्त होगा। बुद्धने कहा, "भाई! मैं भी तो किसान हूँ। मेरा खेत मेरा हृदय है, इसमें सत्कर्म-रूपी बीज बोकर मैं विवेकरूपी हल चलाता हूँ। मैं विकार-वासनारूपी घास आदिकी निराई करता हूँ और प्रेम तथा आनदकी अपार फसल काटता हूँ।"

दार्शनिक ग्रन्थोंके परिशीलनसे ज्ञात होता है, कि कर्म शब्दका अनेक अर्थोंमें प्रयोग हुआ है। मीमासा दर्शन पतञ्जलि आदि यज्ञ तथा अन्य क्रियाकाण्डको कर्म मानते हैं। वैयाकरण पाणिनि अपने 'कर्तुरीप्सित-तम कर्म' (१।४।७९) सूत्र-द्वारा कर्ताके लिए अत्यन्त इष्टको कर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शनने अपने सप्तपदार्थोंकी सूचीमें कर्मको भी स्थान प्रदान किया है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद कहते हैं,[1]—"जो एक द्रव्य हो—द्रव्यमात्रमे आश्रित हो, जिसमें कोई गुण न रहे तथा जो सयोग और विभागमें कारणान्तरकी अपेक्षा न करे, वह कर्म है। [2]उसके उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुचन, प्रसारण तथा गमन ये पाँच भेद कहे गये हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य क्रियाओंको भी कर्म कहते हैं। साख्यदर्शनने सस्कार अर्थमें कर्मको ग्रहण किया है। ईश्वरकृष्णकी साख्यकारिकामें लिखा है[3]—'सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी पुरुष सस्कारवश—कर्मके वशमे शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त चक्र सस्कारके वशसे भ्रमण करता रहता है।'

वाचस्पति मिश्रका कथन है—"[4]'क्लेशरूपी जलसे सिंचित बुद्धिरूपी भूमिमें कर्मरूपी बीज अकुरोंको उत्पन्न करते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी ग्रीष्मकालके द्वारा जिसका सपूर्ण क्लेशरूप जल सूख चुका है, उस शुष्क भूमिमें कर्मबीजोंका अकुर कैसे उत्पन्न होगा ?"

गीतामें[5] कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है। [6]कहा है—"अकर्मण्य रहनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है। [7]सन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी है, किन्तु कर्मसन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्पद है।"

---

१ "एकद्रव्यमगुण सयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्।" १।७।
—सभाष्य वैशेषिक दर्शन ४।३५।

२ "उत्क्षेपण ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चन तथा। प्रसारण च गमन कर्माण्येतानि पञ्च च॥"
—सि० मुक्तावली ६।

३ "सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ। तिष्ठति सस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद्धृतशरीर॥"
—सा० त० कौ० ६७।

४ "क्लेशसलिलावसिक्तायां हि बुद्धिभूमौ कर्मबीजान्यङ्कुर प्रसुवते। तत्त्वज्ञाननिदाघनिपीतसकल-क्लेशसलिलायामूषरायां कुत कर्मबीजानामङ्कुरप्रसव ?" —सा० त० कौ०, पृ० ३१५।

५ "योग कर्मसु कौशलम्।"

६ "कर्म ज्यायो ह्यकर्मण।" —गी० ३।८।

७ "सन्यास कर्मयोगश्च नि श्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥"
—गी० ५।२।

महाभारत शान्तिपर्वमें लिखा है—

"कर्मणा बध्यते जन्तु, विद्यया तु प्रमुच्यते।" (२४०, ७)

—यह प्राणी कर्मसे बँधता है, और विद्याके द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पतञ्जलि योगसूत्रमें कहते हैं—"[1]क्लेशका मूल कर्माशय—कर्मकी वासना है। वह इस जन्ममें वा जन्मान्तरमें अनुभवमें आती है। अविद्यादिरूप मूलके सद्भावमें जाति, आयु तथा भोगरूप कर्मोंका विपाक होता है। वे आनन्द तथा संताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।" योगीके अशुक्ल तथा अकृष्ण कर्म होते हैं। संसारी जीवोंके शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्ल-कृष्ण कर्म होते हैं।

न्यायमंजरीमें लिखा है—"[2]जो देव, मनुष्य तथा तिर्यचोंमें शरीरोत्पत्ति देखी जाती है, जो प्रत्येक पदार्थके प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्माके साथ मनका संसर्ग होता है, वह सब प्रवृत्तिके परिणामका वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक है, अत क्षणिक है, फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म अधर्म पदवाच्य आत्म-संस्कार कर्मके फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।"

अशोकके शिलालेख नं० ८में लिखा है—"इस प्रकार देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मोंसे उत्पन्न हुए सुखका उपभोग करता है।[3]

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सम्राट्से जो प्रश्नोत्तर किये थे, उनसे कर्मके विषयमें बौद्ध दृष्टिका अवबोध होता है[4]—

राजा बोला—भन्ते! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई बड़े सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान् क्यों होते हैं?

स्थविर बोले—महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक-सी नहीं होतीं? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कड़वी, कोई कषायली और कोई मधुर क्यों होती है?

भन्ते! मैं समझता हूँ कि बीजोंकी भिन्नताके कारण ही वनस्पतियोंमें भिन्नता है।

---

१ "क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः। सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।" –यो० सू० २।१२–१४। "कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" –यो० द० कैवल्यपाद० ७।

२ "या त्वियं देवमनुष्यतिर्यग्भूमिषु शरीरसर्गः, यश्च प्रतिविषयं बुद्धिसर्गः, यश्चात्मना सह मनसः संसर्गः स सर्वः प्रवृत्तेरेव परिणामविभवः। प्रवृत्तेश्च सर्वस्याः क्रियात्वात् क्षणिकत्वेऽपि तदुपहितो धर्माधर्मशब्दवाच्य आत्मसंस्कारः कर्मफलोपभोगपर्यन्तस्थितिरस्त्येव।" –न्या० मं०, पृ० ७०।

३ बुद्ध और बुद्धधर्म, पृ० २५६।

४ "राजा आह–भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सब्बे समका, अञ्ञे अप्पायुका, अञ्ञे दीघायुका, अञ्ञे बव्हाबाधा, अञ्ञे अप्पाबाधा, अञ्ञे दुब्बण्णा, अञ्ञे वण्णवन्तो, अञ्ञे अप्पेसक्खा, अञ्ञे महेसक्खा, अञ्ञे अप्पभोगा, अञ्ञे महाभोगा, अञ्ञे नीचकुलीना, अञ्ञे महाकुलीना, अञ्ञे दुप्पञ्ञा, अञ्ञे पञ्ञावन्तोति।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं है। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोमें जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना बधु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊँचे-नीचे हुए हैं।

भन्ते—"आपने ठीक कहा।"

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह ज्ञापित करेगी, कि कर्मसिद्धातकी किसी-न-किसी रूपमें दार्शनिक जगत्में अवस्थिति अवश्य है। जैनवाङ्मयमें कर्मसिद्धातपर बड़े-बड़े ग्रथ बने हैं। उनसे विदित होता है, कि जैनसिद्धातमें कर्मका सुव्यवस्थित, शृखलाबद्ध तथा विज्ञान-दृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

जैनदर्शनमे कर्म

जैनदृष्टिमे कर्मपर विचार करनेके पूर्व यदि हम इस विश्वका विश्लेपण करें, तो हमें सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते है। पुद्गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पाँच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस

थेरो आह, किस्स पन, महाराज ! रुक्खा न सब्बे समका, अञ्ञे अंबिला, अञ्ञे लवणा, अञ्ञे तित्तका, अञ्ञे कटुका, अञ्ञे कसावा, अञ्ञे मधुराति।

गच्छामि भंते ! बीजाना नानाकरणेनाति।

एवमेव खो महाराज कम्मान नानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका०। भासित पेत महाराज ! भगवता कम्मस्स कामाणवसत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबधु, कम्मपरिसरणा, कम्म सत्ते विभजति यदिद हीनप्पणीततायीति। कल्लोसि भते नागसेनाति।"

—Pali Reader P 39 मिलिन्दपञ्ह in अगुत्तनिकाय मिलिन्दप्रश्न ८१

Thus spake king Milinda. 'How comes it, reverend Sir, that men are not alike ? some live long and some are short lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful and some with no power, some rich, some poor, some born of noble stock, some meanly some wise born, and some foolish.'

To whom Nagasena the Elder made answer

'How comes it that all plants are not alike ? Some have a sour taste and some are salt, some are acid, some acid, some bitter and some sweet'

'It must be, I take it, reverend sir, that they spring from various kinds of seed

'Just so, O Maharaja, it is beccause of differences of action that men are not alike for some live long, and some are short-lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful, and some without power, some rich, some p[illegible] some born of noble stock, meanly born, stock, some wise and som[illegible]'

—The[illegible]

प्रकार छह द्रव्योंमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिस्पन्दात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमें प्रदेश सञ्चलनरूप क्रिया नहीं पायी जाती। इनमें अगुरुलघु गुणके कारण षड्गुणीहानिवृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता।

इसी बातको पञ्चाध्यायीकार दूसरे शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

"भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ।
तौ च शेषचतुष्कं च षडेते भावसंस्कृताः॥
तत्र क्रिया प्रदेशानां परिस्पन्दश्चलात्मकः।
भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्येकवस्तुनि॥" २।२५, २६।

—"जीव तथा पुद्गलमें भाववती तथा क्रियावती शक्ति पायी जाती है। शेष चार द्रव्योंमें तथा पूर्वके दो द्रव्योंमें भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोंके सञ्चलनरूप परिस्पन्दनको क्रिया कहते हैं। धारावाही एक वस्तुमें जो परिणमन है, वह भाव है।"

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमें ही प्रदेशोंका हलन-चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल विशेषका परस्परमें बन्धन होता है, कारण जीवमें उसका कारण वैभाविक शक्तिका सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका सम्बन्ध नहीं होता।

जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोंके कारण कार्माणवर्गणा तथा आहार, तैजस, भाषा तथा मनरूप नोकर्मवर्गणाओंको अपनी ओर आकर्षित करता है। [illegible] एक भेद है। नाना प्रकारके परमाणुओंका परस्पर बन्ध होता है। रागादिभावोंके कारण जीवका कर्मोंके साथ बन्ध होता है। जीवका अस्तित्व धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्रव्यके द्वारा नहीं होता है। [illegible] कहा है।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं है। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना बंधु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊँचे-नीचे हुए है।

भन्ते—"आपने ठीक कहा।"

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह ज्ञापित करेगी, कि कर्मसिद्धातकी किसी-न-किसी रूपमें दार्शनिक जगत्‌में अवस्थिति अवश्य है। जैनवाङ्मयमें कर्मसिद्धातपर बड़े-बड़े ग्रंथ बने हैं। उनसे विदित होता है, कि जैनसिद्धातमें कर्मका सुव्यवस्थित, शृंखलाबद्ध तथा विज्ञान-दृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

जैनदर्शनमे कर्म

जैनदृष्टिसे कर्मपर विचार करनेके पूर्व यदि हम इस विश्वका विश्लेषण करें, तो हमें सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते है। पुद्‌गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पाँच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस

थेरो आह, किस्स पन, महाराज ! रुक्खा न सब्बे समका, अञ्ञे अबिला, अञ्ञे लवणा, अञ्ञे तित्तका, अञ्ञे कटुका, अञ्ञे कसावा, अञ्ञे मधुराति।
मञ्ञामि भते ! बीजाना नानाकरणेनाति।
एवमेव खो महाराज कम्मान नानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका०। भासित पेत महाराज ! भगवता कम्मस्स कामाणवसत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबधु, कम्मपरिसरणा, कम्म सत्ते विभजति यदिद हीनप्पणीततायीति। कल्लोसि भते नागसेनाति।"
—Pali Reader P. 39 मिलिन्दपन्ह in अंगुत्तनिकाय मिलिन्दप्रश्न ८१

Thus spake king Milinda: 'How comes it, reverend Sir, that men are not alike? some live long and some are short lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful and some with no power, some rich, some poor, some born of noble stock, some meanly some wise born, and some foolish.'

To whom Nagasena the Elder made answer

'How comes it that all plants are not alike? Some have a sour taste and some are salt, some are acid, some acid, some bitter and some sweet'
'It must be, I take it, reverend sir, that they spring from various kinds of seed.'

'Even so, O Maharaja, it is beccause of differences of action that men are not alike for some live long, and some are short-lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful, and some without power, some rich, some poor, some born of noble some meanly born, stock, some wise and some foolish.'

—The Heart of Buddhism p 85

प्रकार छह द्रव्योमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिस्पदात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमें प्रदेश-सचलनरूप क्रिया नहीं पायी जाती। इनमें अगुरुलघु गुणके कारण षड्गुणीहानिवृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता।

इसी बातको पचाध्यायीकार दूसरे शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

"भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ।
तौ च शेषचतुष्कं च षडेते भावसस्कृता ॥
तत्र क्रिया प्रदेशानां परिस्पन्दश्चलात्मक.।
भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्येकवस्तुनि ॥" २।२५, २६।

—"जीव तथा पुद्गलमें भाववती तथा क्रियावती शक्ति पायी जाती है। शेष चार द्रव्योमें तथा पूर्वके दो द्रव्योमें भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोके सचलनरूप परिस्पदनको क्रिया कहते है। धारावाही एक वस्तुमें जो परिणमन है, वह भाव है।"

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमें ही प्रदेशोका हलन-चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल-विशेषका परस्परमें बधन होता है, कारण जीवमें बधका कारण वैभाविक शक्तिका सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका सश्लेष नही होता।[1]

जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोके कारण कार्माणवर्गणा[2] तथा आहार, तैजस, भाषा तथा मनरूप नोकर्मवर्गणाओको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुद्गलद्रव्यके तेईस प्रकारोमें कार्माण वर्गणा नामका एक भेद है।[3] अनन्तानत परमाणुओंके प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावोके कारण जीवका कर्मोंके साथ सबध होता है। जीवका अहित धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्रव्यो-द्वारा नही होता है। पद्मनदि पचविंशतिकामें कहा है—

"धर्माधर्मनभासि काल इति मे नैवाहित कुर्वते
चत्वारोऽपि सहायतामुपगतास्तिष्ठन्ति गत्यादिषु।
एकः पुद्गल एव सन्निधिगतो नोकर्म-कर्माकृति
वैरी बन्धकृदेष संप्रति मया भेदासिना खण्डित ॥२५॥" —आलोचनाधिकार

—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य मेरा अहित नहीं करते। ये चारो गमनादि कार्योंमें मेरी सहायता करते हैं। एक पुद्गल द्रव्य ही कर्म तथा नोकर्म रूप होकर मेरे समीप रहता है। अब मैं उस बधके कारण रूप कर्म शत्रुका भेदविज्ञानरूपी तलवारके द्वारा विनाश करता हूँ।

परिभाषा

परमात्मप्रकाशमें कर्मकी इस प्रकार परिभाषा की गयी है—

"विसयकसायहिं रगियह, जे अणुया लग्गति।
जीवपएसह मोहियह, ते जिण कम्म भणति ॥६२॥"

---

१ "अयस्कान्तोपलाकृष्टसूचीवत्तद्द्वयो पृथक्। अस्ति शक्ति विभावाख्या मिथो बधाधिकारिणी ॥ —पचा० २।४२।

२ "देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्मं।
पडिसमय सव्वग तत्तायसपिण्डओव्व जल ॥"—गो० क० ३।

३ "परमाणूहि अणताहि वग्गणसण्णा दु होदि एक्का हु।"—गो० जी० २४८।

प्रवचनसार टोकामें अमृतचन्द्रसूरि लिखते है—"क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म, तन्निमित्तप्राप्त-परिणाम. पुद्गलोऽपि कर्म ।" (पृ० १६५)

—"आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे क्रियाको कर्म कहते हैं । उसके निमित्तसे परिणमनको प्राप्त पुद्गल भी कर्म कहा जाता है ।" इसका अभिप्राय यह है कि आत्मामे कपनरूप क्रिया होती है, इस क्रियाके निमित्तसे पुद्गलके विशिष्ट परमाणुओमे जो परिणमन होता है, उसे कर्म कहते है । यह व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टिसे की गयी है ।

जीवके परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गलकी अवस्था, जिससे जीव परतन्त्र—सुख दु खका भोक्ता किया जाता है, कर्म कहलाती है ।

आचार्य अकलकदेव अपने राजवार्तिक (पृ० २९४) में लिखते है—"यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणाम., तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थितानां योगकषाय-वशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्य ।" जैसे पात्रविशेषमें डाले गये अनेक रसवाले बीज, पुष्प तथा फलोका मदिरारूपमें परिणमन होता है, उसी प्रकार योग तथा कषायके कारण आत्मामें स्थित पुद्गलोका कर्मरूप परिणाम होता है ।

महर्षि कुदकुद समयसारमें लिखते हैं—

"जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमति ।
पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥"

—"जीवके परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गलका कर्मरूप परिणमन होता है । इसी प्रकार पौद्गलिक कर्मके निमित्तसे जीवका भी परिणमन होता है ।"

केशवसिहने क्रियाकोषमें कहा है—

"सूरज सन्मुख दरपण धरै, रूई ताके आगे करै ।
रवि दर्पण को तेज मिलाय, अगन उपज रूई बलि जाय ॥ ५४ ॥
नहि अगनी इकली रुइ मांहि, दरपन मध्य कहूँ है नांहि ।
दुहुयनि को सयोग मिलाय, उपजै अगनि न रूशै थाय ॥ ५५ ॥"

समयसारमें कहा है—

"ण वि कुव्वइ कम्मगुणो जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हंपि ॥ ८१ ॥"

—"तात्त्विकके दृष्टिसे विचार किया जाये, तो जीव न तो कर्ममें गुण करता है और न कर्म ही जीवमें कोई गुण उत्पन्न करता है । जीव तथा पुद्गलका एक दूसरेके निमित्तसे विशिष्ट परिणमन हुआ करता है ।"

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमे स्थित है । उसके परिणमनमें अन्य द्रव्य उपादान कारण नही बन सकता । जीव न पुद्गलका कारण है और न पुद्गल जीवका उपादान हो सकता है । इनमें उपादान-उपादेय-भावके स्थानमे निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है । इससे जो सिद्धान्त स्थिर होता है, उसके विषयमें कुदकुद स्वामीका कथन है—

"एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाणं दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥"

—"इस कारण आत्मा अपने भावका कर्ता है । वह पुदगलकर्मकृत समस्त भावोका कर्ता नही है ।"

इस विषयपर अमृतचन्द्रसूरि इन शब्दोमे प्रकाश डालते है—

"जीवकृत परिणामं निमित्तमात्र प्रपद्य पुनरन्ये ।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गला कर्मभावेन ॥" –पु० सि० १२।

—"जीवके रागादि परिणामोका निमित्त पा पुद्गलोका कर्मरूपमें परिणमन स्वयमेव हो जाता है ।"

जैसे मेघके अवलम्बनसे सूर्यकी किरणोका इन्द्रधनुषादिरूप परिणमन हो जाता है इसी प्रकार स्वय अपने चैतन्यमय भावोसे परिणमनशील जीवके रागादिरूप परिणमनमें पौद्गलिक कर्म निमित्त पडा करता है।[1] यदि जीव और पुद्गलमें निमित्त भावके स्थानमें उपादान उपादेयत्व हो जाये, तो जीव द्रव्यका अभाव होगा, अथवा पुद्गल द्रव्य नही रहेगा। दोनोमें भिन्नत्वका अभाव होकर स्थापित होगा। भिन्न द्रव्योमें उपादान-उपादेयता नही पायी जाती है।

प्रवचनसारमे लिखा है—

"कम्मत्तण-पाओग्गा खधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।
गच्छंति कम्मभाव ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥"—२।७७।

—"[2]जीवकी रागादिरूप परिणतिविशेपको प्राप्त कर कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गलस्कन्ध कर्मभावको प्राप्त करते हैं। उनका कर्मत्वपरिणमन जीवके द्वारा नहीं किया गया है।"

"ते ते कम्मत्तगदा[3] पोग्गलकाया पुणोवि जीवस्स ।
सजायंते देहा देहंतरसंकम पप्पा ।" —२।७८।

—"कर्मत्वको प्राप्त पुद्गलकाय जीवके देहान्तररूप सक्रम-परिवर्तनको पाकर पुन देहरूपको प्राप्त करते हैं।

"आदा कम्ममलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।
तत्तो सिलसदि कम्मं तम्हा कम्म तु परिणामो ।" २।२९।

—"कर्मके कारण मलिनताको प्राप्त आत्मा कर्म सयुक्त परिणामको प्राप्त करता है, इससे कर्मोंका सम्बन्ध होता है। अत परिणामको भी कर्म कहते हैं।"

इस विषयको स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—

'परमार्थ दृष्टिसे देखा जाये, तो जीव आत्मपरिणामरूप भाव कर्मका कर्ता है। पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है। द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है? पुद्गलका परिणाम स्वय पुद्गलरूप है। इससे परमार्थदृष्टिसे पुद्गलात्मक द्रव्यकर्मका कर्ता पुद्गलका परिणाम स्वय है। वह आत्मपरिणाम स्वरूप भावकर्मका कर्ता नही है। इससे जीव आत्मस्वरूपसे परिणमन करता है, पुद्गलरूपसे परिणमन नही करता है।'

कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गये है। आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती कहते हैं—[4]'पुद्गलका पिड द्रव्य कर्म है। उस पिंडस्थित शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म है।' अध्यात्म

---

१ "परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै. स्वयमपि स्वकैर्भावै ।
भवति हि निमित्तमात्र पौद्गलिक कर्म तस्यापि ॥"—पु० सि० १३।

२ यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढ-जीवपरिणाममात्र बहिरगसाधनमाश्रित्य जीव परिणमयितारमन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिन पुद्गलस्कन्धा स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति। ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डाना कर्मत्वकर्ता पुरुषोऽस्ति–पृ० २३१—प्रवचनसार टीका तत्त्व-प्रदीपिकावृत्ति.—अमृतचद्रसूरिकृत।

३ कर्मभाव ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायम्—जयसेनाचार्य।

४ "पोग्गलपिंडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु ॥"—गो० क० ६।

शास्त्रकी दृष्टिसे आत्माके प्रदेशोका सकप होना भावकर्म है । इस कथनके कारण पुद्गलोकी विशिष्ट अवस्था की उत्पत्तिको द्रव्यकर्म कहा है ।

बंधका स्वरूप

कर्मोंकी अवस्थाविशेषको बध कहते है । जीव और कर्मोंके संबन्ध होनेपर दोनोके गुणोमें विकृति उत्पत्ति होना बध है । उदाहरणार्थ, हल्दी और चूनाके सम्बन्धसे जो विशेप लालिमाकी उत्पत्ति हुई है, वर्ण एक जात्यतर है । वह न हल्दीमें है और न चूनेमें ही पाया जाता है । इसी प्रकार राग द्वेषादि विका भाव न शुद्ध आत्मामें उपलब्ध होते है और न जीवसे असम्बद्ध पुद्गलमें उनकी प्राप्ति होती है। बध अवस्थामें जिन दो वस्तुओका परस्परमें बध्य बधक भाव उत्पन्न होता है, उन दोनोके स्वगुणोमें विकृति उत होती है । कहा भी है—

> "हरदी ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद ।
> दोऊ मिल एकहि भए, रह्यो न काहू भेद ॥"

पचाध्यायीमें कहा है—

> "बन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी ।
> तस्या सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयो स्वगुणच्युति ॥२।१३०॥"

—'अन्यके गुणोके आकाररूप परिणमन होना बध है। इस परिणमनके उत्पन्न होनेपर अशुद्धता आती है। उस समय उन दोनो बध होनेवालोके स्वगुणोका विपरिणमन होता है ।'

जीवके रागादि भाव न शुद्ध जीवके है और न शुद्ध पुद्गलके हैं । 'बधोऽय द्वन्द्वज. स्मृत'—यह बध दो से उत्पन्न होता है। एक द्रव्यका बन्ध नहीं होता ।

इस प्रसगमें वृहद्द्रव्यसग्रह टीकाका यह कथन विशेप उद्बोधक है—आगममें बधके कारण मोह, राग और द्वेप कहे गये हैं । मोह शब्द दर्शनमोहनीय अर्थात् मिथ्यात्वका सूचक है । राग और द्वेष चारित्र मोह रूप है—'मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत् 'चारित्र-मोहो रागद्वेषौ भण्येते ।"

प्रश्न—चारित्रमोह शब्दसे राग-द्वेष किस प्रकार कहे जाते हैं—

> "चारित्रमोहो शब्देन रागद्वेषौ कथ भण्येते ? इति चेत् ।"

उत्तर—"कषायमध्ये क्रोध-मानद्वय द्वेषाङ्गम्, मायालोभद्वयं च रागाङ्गम्, नोकषायमध्ये तु स्त्री-पु नपुमस्कवेदत्रय हास्य-रतिद्वय च रागाङ्गम्, अरति-शोकद्वय भयजुगुप्साद्वयं च द्वेषाङ्गमिति ज्ञातव्यम् ।"—कषायमें द्वेपके अग रूप क्रोध तथा मान अतर्भूत हैं । रागके अग माया तथा लोभ अतर्भूत हैं । नोकषायमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुमकवेद ये तीन तथा हास्य और रतिद्वय रागके अगरूप है । अरति, शोक तथा भय और जुगुप्सा युगल द्वेपके अग है ।

प्रश्न—राग द्वेप आदिक परिणाम क्या कर्मजनित है अथवा जीवसे उत्पन्न हुए है ?[1]

---

[1] अत्राह शिष्य —रागद्वेपादय कि कर्मजनिता , किं जीवजनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्री-पुरुपसयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधा-हरिद्रासयोगोत्पन्नवर्णविशेप इवोभयसयोगजनिता इति । पश्चान्नयविवक्षावशेन विवक्षितैक-देशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते । तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीवजनिता इति । स चाशुद्धनिश्चय शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। अथ मतम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम् ? तत्रोत्तरम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्रीपुरुष-सयोगरहितपुत्रस्येव सुधाहरिद्रासयोगरहितरङ्ग विशेपस्येव तेपामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तर प्रयच्छाम इति । वृहद्द्रव्यसग्रह, गाथा ४८ की टीका, पृष्ठ २०१-२०२ ।

—'यथायोग्य स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्शसे पुद्गल कर्म-वर्गणाओका परस्परमे पिण्डरूप बध होता है। रागद्वेष मोहरूप परिणामोसे जीवका बध होता है। जीवके परिणामोका निमित्त पाकर जीवपुद्गलका बध होना जीव-पुद्गलका बध है।'[1]

"सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति हि जंति बज्झंति ॥—२।८६।"

यह आत्मा असख्यातप्रदेशी है। उसके प्रदेशोमे आत्मप्रदेश-परिस्पदनरूप योगके अनुसार मन वचन कायवर्गणाओकी सहायतासे पुद्गलकर्म-वर्गणारूप पिंड आकर प्रविष्ट होता है। वे कार्माण-वर्गणाएँ राग-द्वेष तथा मोहके अनुसार अपनी स्थिति प्रमाण ठहरकर क्षीण हो जाती हैं।

यथार्थ बात यह है, कि राग द्वेष, मोहके कारण आत्मामें एक उत्तेजनाविशेष उत्पन्न होती है, उससे वह कर्मोको आकर्षित कर बाँधता है, जैसे गरम लोहपिड जलराशिको आत्मसात् किया करता है।

रागादिसे बन्ध होता है

समयसारमे सक्षेपमे बधतत्वको इस प्रकार समझाया है—

"रत्तो बधदि कम्म, मुचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥१५०॥"

रागपरिणाम विशिष्ट जीव कर्मोका बन्ध करता है। रागरहित आत्मा कर्मोसे मुक्त होता है। जीवोके बधका सक्षेपमें यही तात्त्विक वर्णन है।

राग-द्वेषसे बध होता है, रागादिके अभाव होनेपर क्रियाओके होते हुए भी बन्ध नही होता, इसे सोदाहरण कुन्दकुन्द स्वामी इन शब्दोमें स्पष्ट करते हैं—

"जह णाम कोवि पुरिसो णेहमत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेहि सत्थेहिं वायाम ॥२३७॥
छिंदंदि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवसपिंडीओ।
सचित्ताचित्ताण करेइ दव्वाणमुवघायं ॥२३८॥
उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चितिज्जदु किं पच्चयगो दु रयबधो ॥२३९॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं ॥२४०॥
एव मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चिट्ठासु।
रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥२४१॥" —स० सा०

—आचार्य महाराजके कथनका भाव यह है, कोई व्यक्ति अपने शरीरमें तेल लगाता है तथा धूलिपूर्ण स्थलमें जाकर शस्त्र-सचालनरूप -व्यायाम करता है तथा ताड केला बाँस आदिके वृक्षोका छेदन-भेदन करता है। इन क्रियाओके करते हुए जो धूलि उडकर उसके शरीरपर चिपकती है, उसका कारण व्यायाम क्रिया नहीं है। उसका वास्तविक कारण है शरीरमे तेलका लगाना। इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अनेक चेष्टाओको

---

१ यस्तावदत्र कर्मणा स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणाम• स केवलपुद्गलबन्ध। यस्तु जीवस्यौपाधिक मोह-राग-द्वेषपर्यायैरेकत्वपरिणाम स केवलजीवबन्ध। य पुनः जीवकर्म पुद्गलयो• परस्परनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतर परस्परमवगाह स तदुभयबन्ध"—प्र० सा० टीका, अमृतचन्द्रसूरि कृत २।८५॥

करता है। अपने उपभोग परिणामोमें रागादि धारण करता है, इससे वह कर्मरूपी धूलिके द्वारा लिप्त होता है।

यहाँ यह शका उत्पन्न होती है, कि शरीरमें रज-लेपका कारण तेलके स्थानमे व्यायाम क्रियाको क्यो न माना जाये ? इसका समाधान स्वामी कुन्दकुन्द अधिक स्पष्टतापूर्वक करते हुए लिखते है—

"जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये सते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥२४२॥
छिददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताण करेइ दव्वाणमुवघाय ॥२४३॥
उवघाय कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहि ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु कि पच्चयगो ण रयबधो ॥२४४॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण रयबधो ।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहिं सेसाहि ॥२४५॥
एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥२४६॥"

इसका भाव यह, कि वही पूर्वोक्त पुरुष अपने शरीरके तैलको पोछकर उसी प्रकार धूलिपूर्ण प्रदेशमे शस्त्र-द्वारा व्यायाम तथा वृक्ष-छेदनादि कार्य करता है। अब तेलका अभाव होनेसे उसके शरीरपर धूलि नही जमती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारके योगोमे विद्यमान रहता है, किन्तु उसके उपयोगमें रागादिका अभाव रहता है, इस कारण वह कर्म-रजसे लिप्त नही होता।[1]

शरीरपर धूलि जमनेका कारण व्यायाम नही है, कारण शस्त्रसचालनका अन्वय व्यतिरेक धूलि जमनेके साथ नही देखा जाता। शस्त्र सचालन दोनो अवस्थाओमें होते हुए भी धूलि लेप तब होता है, जब शरीर तैललिप्त रहता है। शरीरपर तैलके अभावमें धूलिका लेप भी नही पाया जाता, इससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि धूलिके जमनेमें कारण तैलका लेप है। इसी प्रकार रागादिके होनेपर कर्मोंका लेप होता है। आसक्तिजनक रागादिके अभाववश कर्मोंका भी लेप नहीं होता। आशाधरजीने कहा है—

"भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया
हेय वैषयिकं सुख निजमुपादेयं त्विति श्रद्दधत् ।
चौरो मारयितु धृतस्तलवरेणेवात्मनिन्दादिमान्
शर्माक्ष भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघै ॥" —सा० ध० १।१३ ।

अप्रत्याख्यानावरणादि कषायके अधीन रहनेवाला अविरत सम्यक्त्वी सर्वज्ञदेवके वचनानुसार विषय सुखको त्याज्य और आत्मीक आनदको ग्राह्य श्रद्धान करता हुआ भी, जैसे कोट्टपालके द्वारा मारनेके लिए पकडा गया चोर आत्मनिन्दा-गर्हा आदिमें प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार वह कषायोद्रेकवश इन्द्रियजन्य सुखका अनुभव करनेमें प्रवृत्त होता है, और प्राणियोको पीडा भी देता है किन्तु वह पापोसे पीडित नही होता।[2] अनासक्त भावसे विषय सेवन करनेके कारण वह बधकी तीव्र व्यथा नही उठाता। इसका भाव यह नहीं है

---

१ "तैल-म्रक्षणाभावे यथा रजोबन्धो न भवति, तथा वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागाद्यभावाद्बन्धो न भवति"—जयसेनाचार्यकी टीका पृ० ३३८, गाथा २४६ स० सा०। जैसे तेलकी चिकनाईके अभावमें धूलिका बध नहीं होता, उसी प्रकार वीतराग सम्यक्त्वी जीवके रागादिके अभावसे बध नही होता है, अर्थात् सरागी सम्यक्त्वीके रागके कारण बध होता है।

२ "नोत्तप्यते नोत्कृष्ट क्लिश्यते। कोऽसौ, सोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टि, किं पुन त्यक्तविषयसुख सर्वात्मनैकदेशेन वा हिंसादिभ्यो विरतश्चेत्यपि शब्दार्थ ।" —स्वोपज्ञ टीका सा० ध० १।१३ ।

कि चतुर्थगुणस्थानवाला सर्वथा बध विमुक्त हो जाता है। अनतानुवंधीका उदय न होनेसे इस सम्बन्धसे होनेवाला बध नही होता है। एकान्त नही है।

कर्मबंधपर परमार्थदृष्टि

जीव परमार्थदृष्टिसे अपने भावोका कर्ता है फिर उसे कर्मका कर्ता क्यो कहते है? इसके समाधानार्थ समयसारकार कहते है—

"जीवह्मि हेदुभूदे बधस्स दु पस्सिदूण परिणाम।
जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमत्तेण॥१०५॥
जोधेहि कदे जुद्धे राएण कद ति जप्पदे लोगो।
तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण॥"—समयसार १०६॥

'जीवके-निमित्तको पाकर कर्मबन्धरूप परिणमन देखकर उपचारवश कहते है कि जीवने कर्मबन्ध किया। उदाहरणार्थ, यद्यपि योद्धा लोग ही युद्ध करते हैं, किन्तु लोग कहते है राजा युद्ध करता है, इसी प्रकार व्यवहारनयसे कहते है कि जीवने ज्ञानावरणादिका बध किया है।'[1]

अमृतचन्द स्वामीकी इसी प्रसगपर बडी सुन्दर उक्ति है—

"जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिबर्हणाय संकीर्त्यते श्रृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ॥३।१८॥"

'यदि जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नही है, तो उसका कर्ता कौन है? ऐसी आशका होनेपर शीघ्र मोह निवारणार्थ कहते है, उसे सुन लो कि पौद्गलिक कर्मोंका कर्ता पुद्गल ही है।'

आत्मा परभावोका कर्ता नही होगा, वह अपने निज भावका कर्ता है, यह बात समझाते हुए कहते है—

"आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् पर. सदा।
आत्मैव ह्यात्मनो भावा परस्य पर एव ते॥"—स० सार पृ० १४४।

'आत्मा सदा अपने भावोका कर्ता है, पर अर्थात् पुद्गल सदा पौद्गलिक भावोका कर्ता है। आत्माके भाव आत्मरूप ही है, इसी प्रकार पुद्गलके भाव भी पुद्गलरूप है।'

उपरोक्त सत्यको हृदयगम करनेवाले ज्ञानी जीवके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

"परमप्पाणमकुव्व अप्पाण पि य पर अकुव्वतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि॥"—स० सार ९३।

'ज्ञानी जीव परको आत्मरूप न मानता है और न आत्माको पर ही करता है, वह कर्मोंका अकर्ता होता है।' जयसेनाचार्य अपनी टीकामें यह स्पष्ट करते है, "स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीव. कर्मणामकर्ता भवतीति"—निर्मल आत्मानुभूति स्वरूप भेदज्ञानी जीव कर्मोंका अकर्ता होता है।

यहाँ यह गभीर बात समझाते है, कि जब आत्मा अपने भावके सिवाय परमार्थसे परभावोका कर्ता नहीं है, तब जीवमें कर्मोंका कर्तृत्व एव भोक्तृत्व नहीं रहेगा।

---

१ अनादिबन्धपर्यायवशेन वीतरागस्वसवेदनलक्षण-भेदज्ञानाभावाद् रागादिपरिणामस्निग्ध सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलद्रव्य कुम्भकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति करोति स्थितिबन्ध बध्नात्यनुभागबन्ध परिणमयति प्रदेशबन्ध तप्तायःपिण्डो जलवत् सर्वात्मप्रदेशैर्गृह्णाति चेत्यभिप्रायः॥—जयसेनाचार्य-तात्पर्यवृत्ति टीका।

नाटक समयसारमें कहा है—

"जो लों ज्ञान को उदोत तोलों नहिं बंध होत बरतै मिथ्यात्व तब नानाबंध होहि है।
ऐसो भेद सुन के लग्यो तू विषय भोगन सूं जोगनि सूं उद्यम की रीति तै बिछोहि है॥
सुनो भैया संत तू कहे मैं समकितवंत यहू तो एकंत परमेश्वर का द्रोही है।
विषै सु विमुख होहि अनुभव दशा आरोहि मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है॥३९॥"

जिस आत्माके हृदयमें सम्यक्ज्ञानकी निर्मल ज्योति प्रदीप्त होती है, उस आत्माका जीवन सहज पवित्रताके रससे शोभित होता है। वह विषय-सुखोंमें आसक्त होता है, ऐसा जिन्हे भ्रम है, उनके समाधान निमित्त कविवर बनारसीदासजी कहते हैं—

"ज्ञानकला जिसके घट जागी। ते जग माँहि सहज वैरागी॥
ज्ञानी मगन विषै सुख माँही। यह विपरीत संभवै नांही॥ ४०॥
ज्ञानशक्ति वैराग्यबल शिवसाधे समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहें, निरखे दोऊ ताल॥ ४१॥"

अमृतचन्द्रस्वामीने कहा है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्य-शक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्॥१३६॥"—स० कलश

सम्यक्त्वीके नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति होती है, क्योंकि यह सम्यग्दृष्टि अपने वस्तुपना – यथार्थ स्वरूपका अभ्यास करनेको अपने स्वरूपका ग्रहण और परके त्यागकी विधि कर 'यह तो अपना स्वरूप है और यह पर द्रव्यका है', ऐसे दोनोंका भेद परमार्थसे जानकर अपने स्वरूपमें ठहरता है और पर द्रव्यसे सब तरह रागका योग छोडता है।

आत्मा सर्वथा अकर्ता नही है

कोई लोग कर्मके मर्मको यथार्थ रूपसे समझकर आत्माको सर्वथा अकर्ता मानते है—और कहते हैं, कि जो कुछ भी परिणमन होता है, सबका कर्तृत्व कर्मपर है। जडकी क्रिया होती है। सांख्यदर्शन भी पुरुष-को कमलपत्र सम मानकर कर्म-जलसे उसे पूर्णतया अलिप्त बताता है। वह प्रकृतिको ही सब कुछ कर्ता-धर्ता मानता है। इस प्रकारकी दृष्टिको महर्षि कुन्दकुन्द एकान्तवादी कहते हैं—

"कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहि॥ ३३२॥"

—'यह जीव कर्मके ही द्वारा अज्ञानी किया जाता है। उसके द्वारा ही वह ज्ञानी किया जाता है। कर्म ही जीवको सुलाता है कर्म ही उसे जगाता है।'

"कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तियं किंचि॥ ३३४॥"

—'कर्मके कारण ही जीव ऊर्ध्व, मध्य तथा अधोलोकमें भ्रमण करता है। जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म है, वे भी कर्मके ही द्वारा किये जाते है। इस प्रकार कर्मकान्त माननेवालेके अनुसार कर्मको ही कर्ता, हर्ता, दाता आदि माना जाये, तो क्या आपत्ति है? इसपर कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

"जम्हा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि।
तम्हाउ सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा॥ ३३५॥"

है। मुनिपदमे ही वह होती है। इसप्रकार दृष्टिभेदसे आत्मामें कर्तृत्व और अकर्तृत्वका समन्वय किया जाता है। अकर्तापनेका एकान्तपक्ष साख्यदर्शनकी मान्यता है। स्याद्वादशासनकी मान्यता एकान्तवाद रूप नही हो सकती है।

साख्यतत्वकौमुदीमें कहा है—

"तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
ससरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति ॥ ६२ ॥"

इससे कोई भी पुरुष न बंधता है, न मुक्त होता है, न परिभ्रमण करता है। अनेक आत्माओंको ग्रहण करनेवाली प्रकृतिका ही ससार होता है, बध होता है तथा मोक्ष होता है।

भेद ज्ञानका रहस्य—इस पद्यसे स्पष्ट हो जाता है कि जो आत्माकी निश्चयनयकी अपेक्षा प्रतिपादित शुद्धताको ही एकान्त रूपसे ग्रहण कर उसे सर्वथा कर्मबध रहित मानते है, वे यथार्थमें साख्यदर्शनवाले बन जाते है। सर्वज्ञ अरहन्त भगवान्‌की वाणी अनेकान्त तत्वको सत्यका स्वरूप बताती है। इस कारण जयसेनाचार्यने कहा है "तत स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति। किं नहि? रागादिविकल्परहित-समाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेषकाले भवति" (समयसार गाथा ३४४-टीका)—अत यह बात निर्णीत है कि आत्मा एकान्तरूपसे साख्यमतके समान अकर्ता नहीं है। फिर आत्मा कैसी है? रागादि विकल्परहितसमाधिरूप भेदज्ञानके समय वह कर्मोका कर्ता नहीं है। शेष कालमें आत्मा कर्मोका कर्ता होता है। अर्थात् जब वह अभेद समाधिरूप नही होता है, तब उसके रागादिके कारण बध हुआ करता है। भेदज्ञानका अर्थ अविरत सम्यक्त्वीका ज्ञान समझनेसे यह भ्रम होता है कि अविरत सम्यक्त्वीके उस [illegible] होता है। भेदविज्ञान निर्विकल्प समाधिका द्योतक है, जो मुनिपद धारण करनेके उपरान्त ही प्राप्त होती है। विकल्पजालपूर्ण गृहस्थावस्थामें उसकी सम्यक् कल्पना भी अशक्य है।

आत्मा कर्मस्वरूप नही होता

मुनीन्द्र कुन्दकुन्दका कथन है—

'यतः कर्म ही सब कुछ करता है, देता है, हरण करता है, अत. सर्व जीवोमें अकारकत्व आ गया।'

पुन इस एकान्त मान्यतामें दोषोद्भावन करते हैं—

"पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसि दु सुई ॥ ३३६ ॥
तम्हा ण कोवि जीवो अबम्भचारी उ अम्ह उवएसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥ ३३७ ॥
जम्हा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥ ३३८ ॥
तम्हा ण कोवि जीवो बधायओ अत्थि अम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्म घाएदि इदि भणियं ॥ ३३९ ॥
एव सखुवएसं जेउ परूविंति एरिस समणा।
तेसिं पयडी कुव्वई अप्पा य अकारया सव्वे ॥ ३४० ॥"

इस विषयमें आचार्य कहते हैं—'पुरुष नामक कर्मके उदयसे स्त्रीकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। स्त्री कर्मके कारण पुरुषकी वाछा होती है। ऐसी बात स्वीकार करनेपर कोई भी अब्रह्मचारी नही होगा, कारण कर्म ही कर्मकी अभिलाषा करता है, यह कहा जायेगा।

कोई जीव दूसरेको मारता है या मारा जाता है, इसका कारण परघात, उपघात नामकी प्रकृतियाँ है। यह माननेपर कोई वध करनेवाला न होगा। कारण यह कथन किया जायेगा, कि कर्म ही कर्मका घात करनेवाला है। इस प्रकार जो साख्यसिद्धान्तके अनुसार मानते है, उनके यहाँ प्रकृति ही करती है और सर्व आत्मा अकारक हुए।

समन्वय पथ—इस जटिल समस्याको सुलझाते हुए अनेकान्त विद्याके मार्मिक आचार्य अमृतचन्द्र कहते है—

"माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हता.
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेव स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्मभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥" —समयसारकलश २०५।

—'अर्हन्त भगवान्के भक्तोको यह उचित है कि वे साख्योके समान जीवको सर्वथा अकर्ता न माने, किन्तु उनको भेदविज्ञान होनेके पूर्व आत्माको सदा कर्ता स्वीकार करना चाहिए। जब भेदविज्ञानकी उत्पत्ति हो जाये, तब आत्माको कर्मभावरहित, अविनाशी, प्रवृद्ध ज्ञानका पुज, प्रत्यक्षरूप एक ज्ञातारूपमें दर्शन करो।'

आचार्य महाराजकी देशनाका भाव यह है कि जबतक भेदविज्ञान ज्योतिके प्रकाशसे आत्मा आलोकित नहीं हुई है, तबतक आत्माको रागादिरूप भाव कर्मोंका कर्ता मानो। भेदविज्ञानकी उपलब्धिके पश्चात आत्माको ज्ञाता द्रष्टा मानो। बहिरात्मामें कर्म-कर्तृत्वका भाव मानना चाहिए। परिग्रह-रहित योगीरूप अन्तरात्माको अपने ज्ञान स्वभावका कर्ता जानना उचित है। आत्मा निर्विकल्प समाधिकी अवस्थामें अकर्ता कहा गया है। भेदज्ञान शब्द निर्विकल्प समाधिरूप अवस्थाका ज्ञापक है। जयसेनाचार्य समयसार टीकामें कहते है, 'तत स्थितमेतत्, एकान्तेन सांख्यमतवदकर्ता न भवति किं तर्हि रागादिविकल्परहित समाधिलक्षण भेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेष काले कर्तेति" (गाथा ३४४)—अत यह बात जाननी चाहिए कि आत्मा सांख्यमतके समान अकर्ता नही है। वह रागादि विकल्परहित समाधिरूप भेदविज्ञानके कालमें कर्मोंका कर्ता नही है, शेषकालमें कर्ता होता है। यह विकल्परहित समाधि गृहस्थावस्थामें असम्भव

है। मुनिपदमें ही वह होती है। इसप्रकार दृष्टिभेदसे आत्मामें कर्तृत्व और अकर्तृत्वका समन्वय किया जाता है। अकर्तापनेका एकान्तपक्ष साख्यदर्शनकी मान्यता है। स्याद्वादशासनकी मान्यता एकान्तवाद रूप नही हो सकती है।

साख्यतत्त्वकौमुदीमें कहा है—

"तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
ससरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति ॥ ६२ ॥"

इससे कोई भी पुरुष न बंधता है, न मुक्त होता है, न परिभ्रमण करता है। अनेक आश्रयोको ग्रहण करनेवाली प्रकृतिका ही ससार होता है, बध होता है तथा मोक्ष होता है।

भेद ज्ञानका रहस्य—इस पद्यमे स्पष्ट हो जाता है कि जो आत्माकी निश्चयनयकी अपेक्षा प्रतिपादित शुद्धताको ही एकान्त रूपसे ग्रहण कर उसे सर्वथा कर्मबध रहित मानते है, वे यथार्थमें साख्यदर्शनवाले बन जाते है। सर्वज्ञ अरहन्त भगवान्‌की वाणी अनेकान्त तत्त्वको सत्यका स्वरूप बताती है। इस कारण जयसेनाचार्यने कहा है "तत स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति। किं तर्हि ? रागादिविकल्परहित-समाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेषकाले भवति" (समयसार गाथा ३४४-टीका)—अत यह बात निर्णीत है कि आत्मा एकान्तरूपसे साख्यमतके समान अकर्ता नही है। फिर आत्मा कैसी है ? रागादि विकल्परहितसमाधिरूप भेदज्ञानके समय वह कर्मोका कर्ता नही है। शेष कालमें आत्मा कर्मोका कर्ता होता है। अर्थात् जब वह अभेद समाधिरूप नही होता है, तब उसके रागादिके कारण बध हुआ करता है। भेदज्ञानका अर्थ अविरत सम्यक्त्वीका ज्ञान समझनेसे यह भ्रम होता है कि अविरत सम्यक्त्वीके बध नही होता है। भेदविज्ञान निर्विकल्प समाधिका द्योतक है, जो मुनिपद धारण करनेके उपरान्त ही प्राप्त होती है। विकल्पजालपूर्ण गृहस्थावस्थामें उसकी सम्यक् कल्पना भी अशक्य है।

आत्मा कर्मस्वरूप नही होता

मुनीन्द्र कुन्दकुन्दका कथन है—

"जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो वि य कम्म कुव्वदि ण तम्मओ होइ ॥" —समयसार ३४९।

—जैसे शिल्पकार आभूषण आदिके निर्माण कार्यको करता है, किन्तु वह स्वय आभूषण स्वरूप नही होता, उसीप्रकार यह जीव कर्मोको बांधता हुआ भी कर्मस्वरूप नही होता।

शिल्पकार सुनार आभूषण निर्माणमें निमित्त कारण है, अत वह अपने स्वरूपसे भी च्युत नही होता और निमित्त कारण भी बनता है। इसीप्रकार जीव भी अपने स्वरूपका नाश नही करता है और कर्मोके बन्धनमे निमित्त रूप भी रहा आता है। उपादान-उपादेय भावका यहाँ निषेध किया गया है, निमित्त-नैमित्तिक-भावकी अपेक्षा कर्ता, कर्म, भोक्ता, भोग्यपनेका व्यवहार उपयुक्त माना है। अमृतचन्द्रसूरि कहते है—

"ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहार"।

—समयसार पृ० ४५५।

शका—सच्चा नय तो निश्चय नय है। व्यवहार तो अभूतार्थ है, मिथ्या है, अत साख्यदर्शनकी तरह आत्माको सदा पुरुषके समान निर्लेप शुद्ध मानना चाहिए। प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें भय नही करना चाहिये।

समाधान—सम्यग्ज्ञानके अग होनेसे जितना सत्यपना निश्चय नयमें है, उतना ही समीचीनपना व्यवहार नयमें भी है। जो नय परस्परमें निरपेक्ष हो, अन्य नयको मिथ्या मानता है, वह स्वय मिथ्या-

रूपताको प्राप्त होता है। निश्चयका यह कथन यथार्थ है कि जीव शुद्ध है, किन्तु व्यवहारका कथन भी सम्यक् है कि जीवमें कथंचित् कर्तृत्व आदि भाव भी पाये जाते हैं। इस सबधमें आचार्य पद्मनंदिका 'पंचविंशतिका'के निश्चय पचाशत् अधिकारमें किया गया प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं :—

"व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो देशितस्तु शुद्धनय ।
शुद्धनयमाश्रिता ये प्राप्नुवन्ति यतय पद परमम् ॥९॥"

व्यवहार नय अभूनार्थ है तथा शुद्धनय भूतार्थ कहा है। जो मुनीश्वर शुद्धनयका आश्रय लेते हैं वे परम पदको प्राप्त करते हैं। यहाँ श्लोकमें आगत 'यतय' शब्द महत्त्वपूर्ण है। उससे गृहस्थकी व्यावृत्ति हो जाती है। आकुलताके जालमें फँसा हुआ परिग्रह पिशाचके द्वारा छला गया गृहस्थ शुद्ध दृष्टिका पात्र नहीं है। उसका कल्याण व्यवहार नय द्वारा प्रतिपादित पथका आश्रय ग्रहण करनेमें है। सविकल्प अवस्थावाले श्रमणका भी अवलबन व्यवहार नय रहा करता है। शुद्धोपयोगी निर्विकल्प समाधिवाला दिगम्बर मुनि अभेद दृष्टि रूप निश्चय नयका आश्रय लेता है। पद्मनंदि आचार्य कहते हैं :—

'तत्त्वं वागतिवर्ति व्यवहृतिमासाद्य जायते वाच्यम् ।
गुण-पर्यायादि-विवृत्ते प्रसरति तच्चापि शतशाखम् ॥१०॥"

वास्तविक दृष्टिसे अथवा निश्चय नयकी अपेक्षा तत्त्वका स्वरूप वचनके अगोचर है किन्तु व्यवहार नयका आश्रय ले वह कथंचित् वाणीका विषय हो जाता है। गुण, पर्याय आदिके भेदसे वह सैकडो भेद युक्त हो जाता है। वस्तुका विवेचन भेदग्राही व्यवहार नयके द्वारा ही सभव है। एकान्तवादी व्यवहार नयको तिरस्कार और निंदाका पात्र मानता है, किन्तु अनेकान्त तत्त्वज्ञानका सौंदर्य समझनेवाला स्याद्वादी व्यवहार नयको भी आदरणीय स्वीकार करता है।

महत्त्वकी बात—पद्मनंदि पंचविंशतिकाका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

"मुख्योपचार-विवृति व्यवहारोपायतो यत. सन्त ।
ज्ञात्वा श्रयन्ति शुद्ध तत्त्वमिति व्यवहृतिः पूज्या ॥११॥"

मुनीश्वर व्यवहारनयकी सहायतासे मुख्य तथा उपचारके भेदको समझकर शुद्ध तत्त्वका आश्रय लेते हैं, इस कारण व्यवहार-नय पूज्य है। 'व्यवहृति पूज्या" शब्द महान् आध्यात्मिक मुनीश्वरके द्वारा कहे गये हैं।

अभेद रत्नत्रयरूप अद्वैत तत्त्वमें स्थित निश्चय नयवाला योगी परम पदवीको प्राप्त करता है। एकत्व वितर्क नामक शुक्लध्यानके द्वितीय भेदका आश्रय कर शुक्लध्यानी शुद्धोपयोगी मोहनीय कर्मको नष्ट करता है। यथार्थमें शुद्ध तत्त्व नयादिके विकल्पोसे अतीत है। उस अनुभवकी दशामें व्यवहारनय और निश्चयनय दोनो समान रूपमें अग्राह्य बन जाते हैं। पद्मनंदि आचार्य कहते हैं –

"नय-निक्षेप-प्रमिति-प्रभृति-विकल्पोज्झित परं शान्तम् ।
शुद्धानुभूति-गोचरमहमेक धाम चिद्रूपम् ॥५४॥" निश्चयपंचाशत् ।

मैं नय, निक्षेप, प्रमाण आदि विकल्पोसे रहित, परमशान्त, शुद्धानुभूति गोचर चिद्रूप-तेजस्वरूप हूँ।

जिनागमका रस पान करनेवालेको एकान्तवादके दलदलसे बचना चाहिए। तत्त्वज्ञान-तरंगिणीका यह कथन हृदयग्राही है —

"व्यवहारेण विना केचिन्नष्टा केवल निश्चयात ।
निश्चयेन विना केचित केवल-व्यवहारत ॥"

कोई लोग व्यवहारका लोप करके निश्चयके एकान्तसे विनाशको प्राप्त हुए और कोई निश्चय दृष्टिको अथवा केवल व्यवहारका आश्रय ले विनष्ट हुए। अतएव समन्वयकी पद्धति अभिवंदनीय है। अत उक्त ग्रंथकार कहते हैं –

"द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम् ।
यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं च स्याद्वादिभि ॥"

जैसे दोनो नेत्रोके विना सम्यक् प्रकारसे वस्तुका अवलोकन नही होता है, उसी प्रकार दोनो नयोके विना भी यथार्थरूपमें वस्तुका ग्रहण नहीं होता है, ऐसा भगवान्ने कहा है।

महान् भ्रम—लोग प्रायः लोकाचार तथा लौकिक व्यवहारको (formalities) व्यवहार नय सोचते हैं और निश्चयको सुदृढ विचार (determination) समझकर भ्रान्त धारणा बनाते हैं। इसीके आधारपर वे कहते है कि किसी कार्यके सपादनके पूर्व निश्चय नय होता है, पश्चात् उसकी पूर्ति हेतु प्रवृत्ति व्यवहारनय है। यह कथन इतना ही विपरीत है, जितना बकराजको हंसराज बताना मिथ्या है। शब्दोके अनेक अर्थ होते हैं, जिनका आगमानुसार अर्थ करना तत्त्वज्ञका कर्तव्य है। सम्यग्ज्ञानके भेदनयका उपभेद व्यवहारनय निश्चयनयका साधक है। दोनोमें साधनसाध्यभाव है। तत्त्वानुशासनमें कहा है—

"मोक्षहेतु पुनर्द्वेधा निश्चयाद् व्यवहारत.।
तत्राद्य. साध्यरूप स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥२८॥"

मोक्षका मार्ग निश्चय तथा व्यवहारके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें निश्चयमोक्षमार्ग साध्यरूप है तथा व्यवहार मोक्षमार्ग साधनरूप है। तत्त्वार्थसारमें अमृतचद्र सूरिने भी लिखा है—

"निश्चय-व्यवहाराभ्या मोक्षमार्गो द्विधा स्थित ।
तत्राद्य साध्यरूप. स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥"

साधनसे साध्यकी सिद्धि की जाती है, इससे साधनरूप व्यवहारनय पूर्ववर्ती होगा और साध्यरूप निश्चयनय पश्चाद्वर्ती होगा। इसका विपरीत कथन करना ऐसी ही विचित्र बात होगी, जैसे यह कहना कि पहले मोक्ष होता है, फिर बध होता है। बुद्धिमान् तथा विवेकी व्यक्ति जैसे बधपूर्वक मोक्षको स्वीकार करता है, उसी प्रकार अनेकात दृष्टि तत्त्वज्ञ साधनरूप व्यवहार दृष्टिको प्राथमिकता देकर साध्यरूप दृष्टिको पश्चाद्वर्ती मानेगा।

निश्चयनय और व्यवहारनयका आगममें क्या अर्थ है यह तत्त्वानुशासनमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

"अभिन्न-कर्तृ-कर्मादि-विषयो निश्चयो नय ।
व्यवहारनयो भिन्न कर्तृ-कर्मादि-गोचर. ॥२९॥"

निश्चयनयमे कर्ता, कर्म, करण आदि भिन्न नही होते है अत. वह अभिन्न कर्तृ कर्मादि विषयक है। वह अभेदग्राही (synthetic approach) है। व्यवहारनय कर्ता कर्मादि भेदका ग्राहक है। वह (analytic approach) भेद दृष्टि युक्त है। समतभद्र स्वामीने आप्तमीमासामें वस्तुका स्वरूप भेद तथा अभेद रूप माना है—"भेदाभेदौ न सवृती"—भेद तथा अभेद वस्तु रूप हैं, कल्पना नहीं है।

निर्विकल्प समाधिकी स्थिति सामान्य बात नही है। उस अवस्थामें अद्भुत रूपसे आत्मनिमग्नता पायी जाती है। भीम, अर्जुन तथा युधिष्ठिरने मुनिपदको स्वीकार कर जब निर्विकल्प समाधिमें तल्लीनता प्राप्त की थी, तब उनके शरीरपर जलते हुए लोहेके आभूपण पहनाये जानेपर भी वे पूर्णतया स्थिर थे। जब सुकुमाल मुनि निर्विकल्प समाधिका रस पान कर रहे थे, तब स्यालनी उनका शरीर भक्षण कर रही थी, फिर भी वे स्वरूपमें निमग्न थे। सुकौशल मुनिकी भी ऐसी ही अभेद रत्नत्रय रूप परिणति थी, जब व्याघ्रीने उनके शरीरका भक्षण किया था। उस निर्विकल्प समाधिकी स्थितिके अनुसार साख्यका आत्माका अकर्तृत्व पक्ष निर्दोष तथा यथार्थ है, किन्तु वह सविकल्पदशामें भी अकर्तृत्व कहता है, इससे उसकी मान्यता पूर्णतया अवास्तविक बन जाती है।

अभेद स्वरूपमें निमग्न योगी अद्वैत भावको प्राप्त होता है। वेदान्त दर्शन भी उस अद्वैतका कथन करता है। इस प्रकार शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टि वेदान्तकी अद्वैत विचारधाराके सदृश प्रतीत होती है, किन्तु उसमें और जैन विचारधारामें इतना अन्तर है कि जैनदर्शन सविकल्प अवस्थामें भेदरूप द्वैत दृष्टिको भी यथार्थ मानता है। वेदान्ती द्वैत दृष्टिको अयथार्थ तथा काल्पनिक बताता है। स्याद्वाद सिद्धान्तमें अद्वैत दृष्टि प्राप्त व्यक्ति इस प्रकार अनुभव करता है—

'एकमेव हि चैतन्य शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाश. विकल्पाना तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥१५॥"—प० पं० एकत्वाशीति।

शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा चैतन्य एक है, अद्वैत रूप है। उस अखण्ड आत्मस्वरूपमें विकल्पोके लिए कोई स्थान नही है।

"बद्धो मुक्तोऽहमथ द्वैते सति जायते ननु द्वैतम्।
मोक्षायेत्युभय-मनोविकल्परहितो भवति मुक्तः ॥४६॥"

मै बद्ध हूँ, मै मुक्त हूँ, ऐसी द्वैतबुद्धि द्वैतभावके होनेपर होती है। बद्ध और मुक्तके दोनो मानसिक विकल्पोका क्षय होना मोक्षका कारण है।

"बद्धो वा मुक्तो वा चिद्रूपो नय-विचारविधिरेषः।
सर्वनय पक्षरहितो भवति हि साक्षात्समयसारः ॥५३॥"

चिद्रूप बद्ध है अथवा मुक्त है यह नय दृष्टिका कथन है। सर्व प्रकारके नयपक्षरहित साक्षात् समयसार है।

पचास्तिकायमे कहा है —

"जो ससारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्म कम्मादो होदि गदिसुगदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायते।
तेहि दु विसयग्गहण तत्तो रागो य दोसो वा ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेव भावो ससारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥ १३० ॥"

—'जो जीव ससारमे स्थित है, उसके राग-द्वेष रूप परिणाम होते हैं। उन भावोसे कर्मोका बन्धन होता है। कर्मोके कारण नरक आदि गतियोमें गमन होता है। गतियोमें जानेपर शरीरकी प्राप्ति होती है। शरीरमे इन्द्रियोकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियोके द्वारा विषयोका ग्रहण होता है। इससे राग-द्वेप उत्पन्न होते है। ससार चक्रमे परिभ्रमण करते हुए जीवके इस प्रकारके भाव होते है। जिनेन्द्रने कर्मको सततिकी अपेक्षा अनादि-निधन और पर्यायकी अपेक्षा सादि कहा है। इस विवेचनका निष्कर्ष यह है, कि यह जीव राग-द्वेपके कारण इस अनादिनिधन ससार चक्रमे परिभ्रमण किया करता है।

कर्मको पौद्गलिक एवं मूर्तीक माननेमे युक्ति

[illegible] सम्बद्ध कर्मोको पौद्गलिक प्रमाणित करते हुए पचा[illegible] खा है—

'जम्हा कम्मस्स फल विसय फासेहि भुजदे णि[illegible]
जीवेण सुह दुक्ख तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥'

'[illegible] कर्मोके फलस्वरूप सुख-दु खके हेतुस्वरूप [illegible]
[illegible] है।'

एक पुद्गल द्रव्य ही स्पर्श, रस, गध तथा वर्ण विशिष्ट होनेके कारण मूर्तीक है। अत कर्मोंमें मूर्तीकपना सिद्ध होनेपर उनकी पौद्गलिकता स्वय प्रमाणित होती है।

टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—'मूर्तं कर्म मूर्तसम्बन्धेनानुभूयमानमूर्तफलत्वादाखुविषवत्, इति'—कर्म मूर्तीक है, कारण उसका फल मूर्तीक द्रव्यके सम्बन्धसे अनुभवगोचर होता है, जैसे चूहेके काटनेसे उत्पन्न हुआ विष। चूहेके काटनेसे शरीरमे जो शोथ आदि विकार उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियगोचर होनेसे मूर्तिमान् है, इससे उसका मूल कारण विष भी मूर्तिमान् होना चाहिए। इसी प्रकार यह जीव मणि, पुष्प, वनितादिके निमित्तसे सुख तथा सर्प सिहादिके निमित्तसे दु खरूप कर्मके विपाकका अनुभव करता है, अत इस सुख-दु खका कारण जो कर्म है, वह भी मूर्तिमान् मानना उचित है।[1]

जयधवला टीका (१।५७) में लिखा है—"तपि मुत्त चेव। त कथ णव्वदे ? मुत्तोसहसवधेण परिणामातरगमणण्णहाणुववत्तीदो। ण च परिणामातरगमणमसिद्धं, तस्स तेण विणा जरकुट्ठक्खयादीण विणासाणुववत्तीए परिणामतरगमणसिद्धीदो।"—

'कर्म मूर्त है यह कैसे जाना ? इसका कारण यह कि यदि कर्मको मूर्त न माना जाय तो मूर्त ओषधिके सम्बन्धसे परिणामान्तरकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् रुग्णावस्थामें ओषधिग्रहण करनेसे रोगके कारण कर्मोंको उपशान्ति देखी जाती है वह नही बन सकती है। ओषधिके द्वारा परिणामान्तरकी प्राप्ति असिद्ध नही है, क्योकि परिणामान्तरके अभावमें ज्वर, कुष्ठ तथा क्षय आदि रोगोंका विनाश नहीं बन सकता, अत कर्ममें परिणामान्तरकी प्राप्ति होती है, यह सिद्ध हो जाता है।'

कर्म मूर्तिमान् तथा पौद्गलिक है। जीव अमूर्तीक तथा अपौद्गलिक है, अत जीवसे कर्मोंको सर्वथा भिन्न मान लिया जाय, तो क्या दोष है ? इस विषयमें वीरसेनाचार्य जयधवलामें इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—'जीवसे यदि कर्मोंको भिन्न माना जावे, तो कर्मोंसे भिन्न होनेके कारण अमूर्त जीवका मूर्त शरीर तथा ओषधिके साथ सम्बन्ध नही हो सकता। इससे जीव तथा कर्मोंका सम्बन्ध स्वीकार करना चाहिए। शरीर आदिके साथ जीवका सम्बन्ध नही है, ऐसा नही कह सकते, कारण शरीरके छेदे जानेपर दु खकी उपलब्धि देखी जाती है। शरीरके छेदे जानेपर आत्मामें दु.खकी उत्पत्तिसे जीवकर्मका सम्बन्ध सूचित होता है। एकके छेदे जानेपर दूसरेमे दु खकी उत्पत्ति नहीं पायी जाती। ऐसा माननेपर अव्यवस्था होगी।

भिन्नता पक्ष माननेपर जीवके गमन करनेपर शरीरका गमन नही होना चाहिए, कारण दोनोंमें एकत्वका अभाव है। ओषधिसेवन भी जीवकी नीरोगताका सपादक नही होगा, कारण ओषधि शरीरके द्वारा पीई गयी है। अन्यके द्वारा पीई गयी ओषधि अन्यकी नीरोगताको उत्पन्न नही करेगी। इस प्रकारकी उपलब्धि नही होती। जीवके रुष्ट होनेपर शरीरमें कप, दाह, गलेका सूखना, नेत्रोंकी लालिमा, भौंहोंका चढना, रोमाचका होना, पसीना आना आदि बातें शरीरमें नही होनी चाहिए, कारण उनमे भिन्नता है। जीवनकी इच्छासे शरीरका गमनागमन, हाथ, पाँव, सिर तथा अगुलियोंका हलन-चलन भी नही होना चाहिए। कारण वे पृथक है। सपूर्ण जीवोंके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतवीर्य, विरति, सम्यक्त्वादि हो जाना चाहिए, कारण सिद्धोंके समान जीवसे कर्मोंका पृथक्पना है। अथवा सिद्धोंमें अनतगुणोंका अभाव मानना होगा किन्तु ऐसी बात नही पायी जाती, इससे कर्मोंको जीवसे अभिन्न श्रद्धान करना चाहिए।

अमूर्त स्वभाव आत्माको मूर्तीक कर्मोंने क्यों बाँधा ?

प्रस्तुत समस्यापर प्रकाश डालते हुए अकलकदेव आत्माको कथचित् मूर्तीक और कथचित् अमूर्तीक बताते है। उन्होंने लिखा है

---

१ "यदाखुविषवन्मूर्तसम्बन्धेनानुभूयते।
यथास्व कर्मण पुसा फल तत्कर्म मूर्तिमत् ॥"—अन० धर्मा० २।३०।

अभेद स्वरूपमें निमग्न योगी अद्वैत भावको प्राप्त होता है। वेदान्त दर्शन भी उस अद्वैतका कथन करता है। इस प्रकार शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टि वेदान्तकी अद्वैत विचारधाराके सदृश प्रतीत होती है, किन्तु उसमें और जैन विचारधारामे इतना अन्तर है कि जैनदर्शन सविकल्प अवस्थामें भेदरूप द्वैत दृष्टिको भी यथार्थ मानता है। वेदान्ती द्वैत दृष्टिको अयथार्थ तथा काल्पनिक बताता है। स्याद्वाद सिद्धान्तमें अद्वैत दृष्टि प्राप्त व्यक्ति इस प्रकार अनुभव करता है—

'एकमेव हि चैतन्य शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाशः विकल्पानां तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥१५॥"—प० प० एकत्वाशीति।

शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा चैतन्य एक है, अद्वैत रूप है। उस अखण्ड आत्मस्वरूपमें विकल्पोके लिए कोई स्थान नही है।

"बद्धो मुक्तोऽहमथ द्वैतं सति जायते ननु द्वैतम्।
मोक्षायेत्युभय-मनोविकल्परहितो भवति मुक्त ॥४६॥"

मै बद्ध हूँ, मै मुक्त हूँ, ऐसी द्वैतबुद्धि द्वैतभावके होनेपर होती है। बद्ध और मुक्तके दोनो मानसिक विकल्पोका क्षय होना मोक्षका कारण है।

"बद्धो वा मुक्तो वा चिद्रूपो नय-विचारविधिरेष.।
सर्वनय पक्षरहितो भवति हि साक्षात्समयसारः ॥५३॥"

चिद्रूप बद्ध है अथवा मुक्त है यह नय दृष्टिका कथन है। सर्व प्रकारके नयपक्षरहित साक्षात् समयसार है।

पचास्तिकायमे कहा है —

"जो ससारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्म कम्मादो होदि गदिसुगदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इदियाणि जायंते।
तेहि दु विसयग्गहण तत्तो रागो य दोसो वा ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेव भावो ससारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेंहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥ १३० ॥"

—'जो जीव ससारमे स्थित है, उसके राग-द्वेष रूप परिणाम होते हैं। उन भावोसे कर्मोका बन्धन होता है। कर्मोके कारण नरक आदि गतियोमें गमन होता है। गतियोमे जानेपर शरीरकी प्राप्ति होती है। शरीरसे इन्द्रियोकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियोके द्वारा विषयोका ग्रहण होता है। इससे राग-द्वेष उत्पन्न होते है। ससार चक्रमे परिभ्रमण करते हुए जीवके इस प्रकारके भाव होते हैं। जिनेन्द्रने कर्मको सततिकी अपेक्षा अनादि-निधन और पर्यायकी अपेक्षा सादि कहा है। इस विवेचनका निष्कर्ष यह है, कि यह जीव राग-द्वेषके कारण इस अनादिनिधन ससार चक्रमे परिभ्रमण किया करता है।

कर्मोको पौद्गलिक एवं मूर्तीक माननेमे युक्ति

[illegible] कर्मोको पौद्गलिक प्रमाणित करते हुए पचास्तिकायमे लिखा है—

'जम्हा कम्मस्स फल विसय फासेहि भुजदे नियद।
जीवेण सुह दुक्ख तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥ १३३ ॥

[illegible] सुख-दुःख [illegible] विषयोको मूर्तिमान् इन्द्रियोके द्वारा भोगता है, इससे [illegible] है।'

एक पुद्गल द्रव्य ही स्पर्श, रस, गंध तथा वर्ण विशिष्ट होनेके कारण मूर्तीक है। अत कर्मोंमें मूर्तीकपना सिद्ध होनेपर उनकी पौद्गलिकता स्वयं प्रमाणित होती है।

टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—'मूर्तं कर्म मूर्तसम्बन्धेनानुभूयमानमूर्तफलत्वादाखुविषवत्, इति'—कर्म मूर्तीक है, कारण उसका फल मूर्तीक द्रव्यके सम्बन्धसे अनुभवगोचर होता है, जैसे चूहेके काटनेसे उत्पन्न हुआ विष। चूहेके काटनेसे शरीरमें जो शोथ आदि विकार उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियगोचर होनेसे मूर्तिमान् है, इससे उसका मूल कारण विष भी मूर्तिमान् होना चाहिए। इसी प्रकार यह जीव मणि, पुष्प, वनितादिके निमित्तसे सुख तथा सर्प सिंहादिके निमित्तसे दुःखरूप कर्मके विपाकका अनुभव करता है, अत इस सुख-दुःखका कारण जो कर्म है, वह भी मूर्तिमान् मानना उचित है।[1]

जयधवला टीका (१।५७) में लिखा है—"तपि मुत्तं चेव। तं कथं णव्वदे? मुत्तोसहसंबंधेण परिणामांतरगमणण्णहाणुववत्तीदो। ण च परिणामांतरगमणमसिद्धं, तस्स तेण विणा जरकुट्ठक्खयादीण विणासाणुववत्तीए परिणामंतरगमणसिद्धीदो।"—

'कर्म मूर्त है यह कैसे जाना? इसका कारण यह कि यदि कर्मको मूर्त न माना जाय तो मूर्त औषधिके सम्बन्धसे परिणामान्तरकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् रुग्णावस्थामें औषधिग्रहण करनेसे रोगके कारण कर्मोंकी उपशान्ति देखी जाती है वह नहीं बन सकती है। औषधिके द्वारा परिणामान्तरकी प्राप्ति असिद्ध नहीं है, क्योंकि परिणामान्तरके अभावमें ज्वर, कुष्ठ तथा क्षय आदि रोगोंका विनाश नहीं बन सकता, अत कर्ममें परिणामान्तरकी प्राप्ति होती है, यह सिद्ध हो जाता है।'

कर्म मूर्तिमान् तथा पौद्गलिक है। जीव अमूर्तीक तथा अपौद्गलिक है, अत जीवसे कर्मोंको सर्वथा भिन्न मान लिया जाय, तो क्या दोष है? इस विषयमें वीरसेनाचार्य जयधवलामें इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—'जीवसे यदि कर्मोंको भिन्न माना जावे, तो कर्मोंसे भिन्न होनेके कारण अमूर्त जीवका मूर्त शरीर तथा औषधिके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इससे जीव तथा कर्मोंका सम्बन्ध स्वीकार करना चाहिए। शरीर आदिके साथ जीवका सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते, कारण शरीरके छेदे जानेपर दुःखकी उपलब्धि देखी जाती है। शरीरके छेदे जानेपर आत्मामें दुःखकी उत्पत्तिसे जीवकर्मका सम्बन्ध सूचित होता है। एकके छेदे जानेपर दूसरेमें दुःखकी उत्पत्ति नहीं पायी जाती। ऐसा माननेपर अव्यवस्था होगी।

भिन्नता पक्ष माननेपर जीवके गमन करनेपर शरीरका गमन नहीं होना चाहिए, कारण दोनोंमें एकत्वका अभाव है। औषधिसेवन भी जीवकी नीरोगताका संपादक नहीं होगा, कारण औषधि शरीरके द्वारा पीई गयी है। अन्यके द्वारा पीई गयी औषधि अन्यकी नीरोगताको उत्पन्न नहीं करेगी। इस प्रकारकी उपलब्धि नहीं होती। जीवके रुष्ट होनेपर शरीरमें कंप, दाह, गलेका सूखना, नेत्रोंकी लालिमा, भौंहोंका चढ़ना, रोमांचका होना, पसीना आना आदि बातें शरीरमें नहीं होनी चाहिए, कारण उनमें भिन्नता है। जीवकी इच्छासे शरीरका गमनागमन, हाथ, पाँव, सिर तथा अंगुलियोंका हलन-चलन भी नहीं होना चाहिए। कारण वे पृथक् हैं। सम्पूर्ण जीवोंके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, सम्यक्त्वादि हो जाना चाहिए, कारण सिद्धोंके समान जीवसे कर्मोंका पृथक्पना है। अथवा सिद्धोंमें अनन्तगुणोंका अभाव मानना होगा किन्तु ऐसी बात नहीं पायी जाती, इससे कर्मोंको जीवसे अभिन्न श्रद्धान करना चाहिए।

अमूर्त स्वभाव आत्माको मूर्तीक कर्मोंने क्यों बाँधा?

प्रस्तुत समस्यापर प्रकाश डालते हुए अकलंकदेव आत्माको कथंचित् मूर्तिक और [illegible] बताते हैं। उन्होंने लिखा है

---

१ "यद्वाखुविषवन्मूर्तसम्बन्धेनानुभूयते।
यथास्वं कर्मणः पुंसां फलं तत्कर्म मूर्तिमत् ॥"—अन० धर्मा० २।३०।

"अनादिकर्मबन्धसन्तानपरतन्त्रस्यात्मन अमूर्तिं प्रत्यनेकान्तो बन्धपर्याय प्रत्येकत्वात् स्यान्मूर्तम्, तथापि ज्ञानादिस्वलक्षणापरित्यागात् स्यादमूर्तिः। ....मदमोहविभ्रमकरी सुरां पीत्वा नष्टस्मृतिर्जन काष्ठवदपरिस्पन्द उपलभ्यते, तथा कर्मेन्द्रियाभिभवादात्मा नाविर्भूतस्वलक्षणो मूर्त इति निश्चीयते।"—त० रा० पृ० ८१।

"अनादिकालीन कर्मबन्धकी परपराके अधीन आत्माके अमूर्तत्वके विषयमे अनेकान्त है। बन्धपर्यायके प्रति एकत्व होनेसे आत्मा कथचित् अमूर्तीक है, किन्तु अपने ज्ञानादि लक्षणका परित्याग न करनेके कारण कथचित् अमूर्तीक भी है। मद, मोह तथा भ्रमको उत्पन्न करनेवाली मदिराको पीकर मनुष्य स्मृतिशून्य हो काष्ठकी भाति निश्चल हो जाता है तथा कर्मेन्द्रियोके अभिभव होनेसे अपने ज्ञानादि स्वलक्षणका अप्रकाशन होनेसे आत्मा मूर्तीक निश्चय किया जाता है।"[1]

इस विषयमें प्रवचनसारमें एक मार्मिक बात कही गयी है—

"रूवादिएहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि।
दव्वाणि गुणे य जधा तह बंधो तेण जाणीहि ॥२।८२।"

—"जिस प्रकार रूपादिरहित आत्मा रूपी द्रव्यो तथा उनके गुणोको जानता देखता है, उसी प्रकार रूपादिरहित जीव पुद्गल कर्मोसे बाँधा जाता है। कदाचित् ऐसा न माना जाय, तो यह शका उत्पन्न होती है, कि अमूर्तीक आत्मा मूर्तीक पदार्थोंको क्यो देखता जानता है।[2] निष्कर्ष यह है, अमूर्तीक आत्मा अपने विशिष्ट स्वभावके कारण जैसे मूर्तीक पदार्थोंका ज्ञाता द्रष्टा है, उसी प्रकार वह अपनी वैभाविक शक्तिके परिणमन विशेषसे मूर्तीक कर्मोके-से बधको प्राप्त करता है। वस्तुस्वभाव तर्कके अगोचर है।

तत्त्वार्थसारमे कहा है—"आत्मा अमूर्तीक है, फिर भी उसका कर्मोके साथ अनादिनित्य सम्बन्ध है। उसके ऐक्यवश आत्माको मूर्तीक निश्चय करते है।"[3]

आत्माको कर्मबद्ध माननेका कारण ?

कोई-कोई सोचते है यह हमारा भ्रम है, जो हम अपनी आत्मामें कर्मोका बन्धन स्वीकार करते है। [illegible] ज्ञान होनेपर विदित होता है, कि आत्मा कर्मादि विकारोसे रहित पूर्णतया परिशुद्ध है। ऐसे विचार-[illegible] समाधाननिमित्त विद्यानदिस्वामी आप्तपरीक्षा (पृ० १) में लिखते है—

"विचार प्राप्त ससारी जीव बँधा हुआ है, कारण यह परतत्र है, जैसे हस्तिशालाके स्तभमें बँधा [illegible] परतत्र रहता है। इसी प्रकार ससारी जीव भी पराधीन होनेके कारण बँधा हुआ है।"

[illegible] पराधीनताको सिद्ध करनेके लिए आचार्य कहते है—"यह ससारी जीव पराधीन है, कारण [illegible] ग्रहण किया है। कामवासनावश श्रोत्रिय ब्राह्मण वेश्याके घरको अगीकार करता है। [illegible] स्थान है। वहां उच्च ब्राह्मणकी उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वह अपनी वासनाके [illegible] बन चुका है। इसी प्रकार हीनस्थानको अगीकार करनेवाला ससारी जीव परतत्र [illegible] है।"

---

1. "[illegible] चदुगदा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
   [illegible] तदो ववहारा मुत्ति बधादो ॥"—द्रव्यसग्रह ।७।
2. [illegible] प्रकारेण [illegible] रूपाणि द्रव्याणि तद्गुणाश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण [illegible] किल बध्यते, अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि [illegible] (अमृतचद्राचार्यकी टीका)
3. [illegible] कर्मभिरात्मन।
   [illegible] ॥५।१७।"

हीनस्थान क्या है, इसपर प्रकाश डालते हैं कि "ससारी जीवका शरीर ही हीनस्थान है, कारण वह शरीर दुःखका कारण है। जैसे कारागार दुःखप्रद होनेके कारण हीनस्थान माना जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी हीनस्थान है।"

आत्मा यदि स्वतन्त्र होता, तो वह मूत्रपुरीषभंडाररूप इस महान् अपावन घृणित देहको अपना आवासस्थल कभी न बनाता। विवश हो जीवको इस शरीरमे रहना पडता है। मोहवश वह फिर इसमें आसक्त हो जाता है। प्रबुद्ध पुरुष शरीरमें ममत्वभावका त्याग करते है। जीवको विवश करनेवाला कर्म है।

यह विश्ववैचित्र्य कर्मोके कारण दृष्टिगोचर होता है। कोई धनवान् है, कोई गरीब है, कोई बीमार है तो कोई नीरोग है आदि विविधताओका कारण कर्म है।

> "अह प्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात्।
> एको दरिद्र एको हि श्रीमानिति च कर्मण ॥" २-५० पचाध्यायी

'मै हूँ' इस प्रकार अह प्रत्ययमे जीवका अस्तित्व ज्ञात होता है। यह ज्ञान अन्वय रूपसे पाया जाता है। एक दरिद्र है, एक श्रीमान् है यह भेद कर्मके कारण है।

यह आत्मा तात्त्विक दृष्टिसे विचार करे तो उससे प्रतीत होगा कि यह जगत् एक रग मचके समान है। यहाँ जीव विविध वेष धारण कर अपना अभिनय दिखाते हैं। अपना खेल दिखानेके अनन्तर वे वेष बदलते है। कर्मविपाकके अनुसार उनका वेष और अभिनय हुआ करता है। (१)

विश्ववैचित्र्य कर्मकृत है

कोई लोग कर्मकृत विश्ववैचित्र्यको स्वीकार करते हुए भी कहते है, ईश्वर ही कर्मोके अनुसार इस अज्ञ जीवको विविध योनियोमे पहुँचा कर दुःख और सुख देता है। महाभारतमें लिखा है—

> "अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुखदुःखयो।
> ईश्वरप्रेरितो गच्छेत स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥" वनपर्व ३०।२८।

कोई ईश्वरको सुख-दुःखका केवल निमित्त कारण मानते है, इस विषयमें स्वामी समन्तभद्र अपनी आप्तमीमासामे कहते है—

> "कामादिप्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपतः।
> तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धित ॥९९॥"

'काम, क्रोध, मोहादिका उत्पत्तिरूप जो भावससार है, वह अपने-अपने कर्मके अनुसार होता है। वह कर्म अपने कारण रागादिकोसे उत्पन्न होता है। वे जीव शुद्धता, अशुद्धतासे समन्वित होते है।'

इसपर तार्किक पद्धतिसे विचार करते हुए आचार्य विद्यानदी अष्टसहस्रीमें लिखते है [२] कि अज्ञान, मोह, अहकाररूप यह भाव-ससार है। वह एक स्वभाववाले ईश्वरकी कृति नहीं है, कारण उसके कार्यमें

---

१ All the world's a stage,
And all the men and women merely players,
They have their exits and their entrances,
And one man in his time plays many parts,
Shakespeare —AS YOU LIKE IT. Act II, Sc VII.

२ अष्टस० पृ० २६८–२७३।

सुख-दुःखादिमे विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। जिस वस्तुके कार्यमें विचित्रता पायी जाती है, उसका कारण एक स्वभाव विशिष्ट नही होता है। जैसे अनेक धान्य अंकुरादिरूप विचित्र कार्य अनेक शालिबीजादिकसे उत्पन्न होते है, उसी प्रकार सुख-दुःखविशिष्ट विचित्र कार्यरूप जगत् एक स्वभाववाले ईश्वरकृत नहीं हो सकता।[1]

जब कारण एक प्रकारका है, तब उससे निष्पन्न कार्यमें विविधता नही पायी जाती। एक धान्य बीजसे एक ही अंकुरकी उद्भूति होती है। इस प्राकृतिक नियमके अनुसार एक स्वभाववाला ईश्वर क्षेत्र, काल तथा स्वभावकी अपेक्षा भिन्न शरीर, इन्द्रिय तथा जगत् आदिका कर्ता नही सिद्ध होता है।[2]

अनादि कर्मबंधका अन्त क्यो है ?

प्रश्न—जब कर्मबंध और रागादिभावका चक्र अनादि कालसे चलता है, तब उसका भी अंत नही होना चाहिए ?

समाधान—यह शंका ठीक नही है। कारण अनादिकी अनन्तताके साथ कोई व्याप्ति नहीं है। अनादि होते हुए भी सांतताकी उपलब्धि होती है। बीज वृक्षकी संततिको परंपराकी अपेक्षा अनादि कहते है। बीजको यदि दग्ध कर दिया जाये, तो फिर वृक्ष परंपराका अभाव हो जायेगा। कर्मबीजके नष्ट हो जानेपर भवांकुरकी उत्पत्ति नही हो सकती। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भवाङ्कुरः ॥८।७।"

अकलंक स्वामीका कथन है कि[3] आत्मामें आनेवाला कर्ममल प्रतिपक्षरूप है, अतः वह आत्मगुणोके विकास होनेपर क्षयशील है।

जैसे प्रकाशके आते ही सदा अन्धकाराक्रान्त प्रदेशसे अन्धकार दूर होता है अथवा सदा शीत भूमिमें गरमीके प्राप्त होनेपर शीतका अपकर्ष होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके प्रकर्षसे मिथ्यात्वादिक विकारोका अपकर्ष होता है। रागादि विकारोके अपकर्षमे हीनाधिकता देखकर तार्किक समन्तभद्र कहते है[5] कि[4] ऐसी भी आत्मा हो सकती है जिसमे रागादिका पूर्णतया क्षय हो चुका हो। उसे ही परमात्मा कहते हैं।

अनादि-सादि बंधके विषयमे अनेकान्त

प्रश्न—शंकाकार कहता है—आपका यह कथन कि 'कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः' 'विचित्र कामादिरूपी उत्पत्ति कर्मबन्धके अनुसार होती है', निर्दोष नही है। हम पूछते हैं, जीव और कर्मोका सम्बन्ध क्यों है ?

समाधान—द्रव्यदृष्टि अथवा संततिकी अपेक्षा यह बन्ध अनादि है। पर्यायकी अपेक्षा यह सादि कहा जाता है। पचाध्यायीकारका कथन है—

"यथाऽनादि स जीवात्मा यथाऽनादिश्च पुद्गल ।
द्वयोर्बन्धोऽप्यनादि स्यात् सम्बन्धो जीवकर्मणो ॥" –२।३५ ॥

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है, उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है। जीव और कर्मोंका सम्बन्धरूप बंध भी अनादि है।

"द्वयोरनादिसम्बन्ध कनकोपलसन्निभः ।
अन्यथा दोष एव स्यादितरेतरसश्रय ॥" –२।३६ ॥

जीव और कर्मोका अनादि सम्बन्ध है, जैसे सुवर्ण-पाषाणमे सुवर्ण द्रव्य किट्टकालिमादि विशिष्ट पाया जाता है, उसी प्रकार ससारी जीव भी अशुद्ध रूपमे उपलब्ध होता है। ऐसा न माननेपर अन्योन्याश्रय-दोष आता है।

"तद्यथा यदि निष्कर्मा जीव. प्रागेव तादृश ।
बन्धाभावेऽथ शुद्धेऽपि बन्धश्चेन्निर्वृति कथम् ॥३७॥"

यदि जीव पूर्वमें कर्मरहित माना जाये, तो उसके बन्धका अभाव होगा। शुद्धात्माके भी बन्ध माननेपर मुक्ति कैसे होगी ?

यहाँ आचार्यका भाव यह है कि पूर्व अशुद्धताके बिना बन्ध नही होगा। पूर्वमें शुद्ध जीवके भी कर्म-बंध मान लेनेपर निर्वाणका लाभ असभव हो जायेगा। जब शुद्ध जीव कर्म बाँधने लगेगा, तब ससारका चक्र पुन-पुन चलनेसे मुक्तिका अभाव हो जायेगा।

यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध माना जाये, तो क्या बाधा है ? पचाध्यायीकार कहते है—

"अथ चेत्पुद्गल शुद्ध सर्वत प्रागनादितः ।
हेतोर्विना यथा ज्ञान तथा क्रोधादिरात्मनः ॥३८॥
एव बन्धस्य नित्यत्व हेतो सद्भावतोऽथवा ।
द्रव्याभावो गुणाभावे क्रोधादीनामदर्शनात ॥३९॥"

—यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध मान लिया जाये तो जैसे बिना कारणके स्वभावत जीवमें ज्ञान पाया जाता है उसी प्रकार क्रोधादि भी जीवके स्वभाव या गुण हो जायेंगे। क्रोधादिके सदा सद्भाववश बधमें नित्यता आ जायेगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणोका अभाव माना जायेगा तो स्वभाववान् या गुणी जीवका भी लोप हो जायेगा। क्रोधादिका अदर्शन पाया जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है, कि यदि कामादिक कर्मवशसे उत्पन्न नही हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, तब ऐसी स्थितिमें क्रोधादिक जीवके स्वभाव हो जावेंगे। सधर्मा पुरुषोमें क्रोधादि विकारोका अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभावका अभाव होनेपर स्वभाववान् आत्माका भी लोप हो जायेगा। अत पुद्गलको अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादिको जीवका स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावोको कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। ग्रथकार कहते हैं—

"पूर्वकर्मोदयाद्भावो भावात्प्रत्ययसचय ।
तस्य पाकात्पुनर्भावो भावाद् बन्ध' पुनस्तत ॥
एवं सन्तानतोऽनादि सम्बन्धो जीवकर्मणो ।
ससार स च दुर्मोच्यो विना सम्यग्दगादिना ॥"—पञ्चाध्यायी ४२-४३

—पूर्वकर्मोदयसे रागादि भाव होते हैं। उन भावोसे आगामी कर्मका सचय होता है। उस कर्म विपाकसे पुन रागादिभाव होते है। उन भावोसे पुन बध होता है। इस प्रकार जीव तथा कर्मका सम्बन्ध सतानकी अपेक्षा अनादि है। सम्यग्दर्शनादिके बिना यह ससार दुर्भेद्य है।

निष्कर्ष—आत्मा और कर्मका सादि सम्बन्ध स्वीकार करनेपर दोषोका उद्भावन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतत्र है। वह कर्मोंके अधीन है। यह कर्मबधन सादि स्वीकार करनेमें भयकर आपत्तियाँ आती हैं, यदि आत्माको शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, आनदमय तथा अनत शक्तिमान् माना जाये, तो यह प्रश्न होता है कि वह ससारके बधनमे कैसे फँस गया ? पूर्वमें शुद्धका बधनमें आना ऐसा ही असगत और असभव है जैसे बीजके दाह किये जानेपर उससे वृक्षका प्रादुर्भाव मानना असगत और असभाव्य है। जीवकी बधन अवस्था स्वयसिद्ध अनुभव गोचर है। उसके लिए तर्ककी जरूरत नही है।

ऐसी स्थितिमे एक ही मार्ग निरापद बचता है कि कर्म और आत्माका अनादि सम्बन्ध माना जाये। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नही है। आत्मशक्तिके विकसित होनेपर कर्मोंका बधन शिथिल होने लगता है और शक्तिके पूर्ण प्रवृद्ध होनेपर कर्मोंका नाश हो जाता है। फिर वह शुद्ध जीव कर्मबधनमें नहीं फँसता है। सर्वज्ञ तथा अनतशक्ति युक्त शुद्ध जीव कर्मोंके जालमें फँसनेका कदापि उद्योग नही करेगा।

[illegible] आस्रवका कारण योग है

[illegible] जीवके कर्मबधनका कारण रागादिभावोको कहा है। कर्मोंके आगमनमें कारण है आत्म-प्रदेशोका परिस्पदन होना। मनोवर्गणा, वचनवर्गणा अथवा कायवर्गणाके अवलबनसे आत्मप्रदेशोंमें सकपपना पाया जाता है। मन वचन कायका क्रियारूप योगके द्वारा नवीन कर्मोंका आस्रव—आगमन तथा जीवके साथ [illegible] होता है। योगके त्रयात्मक भेदोपर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धवलाटीका (१,२७९) में लिखा है—"स पुन मनोयोग इति चेद्भावमनस समुत्पत्त्यर्थ. प्रयत्नो मनोयोगः। तथा वचस समु[illegible] प्रयत्नो वाग्योग। कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थ प्रयत्न. काययोग.।"—'मनोयोगका क्या स्वरूप है? [illegible] उत्पन्न करनेके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे मनोयोग कहते है। इसी प्रकार वचनकी उत्पत्तिके लिए [illegible] है उसे वचनयोग कहते है और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे [illegible]।' यह योग ध्यानरूप योगसे भिन्न है।

[illegible] विश्लेषण

प्रश्न—[illegible] यह शका की गयी है, कि जिस योगके द्वारा पुण्य कर्मका आस्रव होता है, [illegible] पापका आस्रव होता है ?

समाधान—'शुभ पुण्यस्याशुभ पापस्य' (त० सू० ६।३)—शुभयोगके द्वारा पुण्यका आस्रव [illegible] द्वारा पापका आस्रव होता है। शुभयोग-अशुभयोगकी परिभाषा 'सर्वार्थसिद्धि'में [illegible], "[illegible]निर्वृत्तो योग शुभ अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभ"—शुभ परिणामोंसे [illegible] परिणामोंके द्वारा रचित योग अशुभ है।

[illegible] द्वारा पुण्यका आस्रव होता है, उसके विषयमें कुदकुदस्वामीने प्रवचनसारमें [illegible] है—

'[illegible] गुरु-पूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
[illegible] रत्तो सुहोव ओगप्पगो अप्पा ॥१।६९॥"

[illegible], इन्द्रियोंके द्वारा शुद्धात्म स्वरूपके विषयमें प्रयत्नमें तत्पर यति (इन्द्रि[illegible]), [illegible] रत्नत्रयके आराधक तथा उस रत्नत्रयके आराधी

भव्योको जिनदीक्षा देनेवाले गुरु (स्वय भेदाभेद-रत्नत्रयाराधकस्तर्दायिना भव्याना जिनदीक्षादायको गुरु) तथा उनकी प्रतिमाकी द्रव्य तथा भावरूप पूजा (द्रव्य-भावरूपा पूजा), चार प्रकारका दान देना, शील-व्रतादिका परिपालन तथा उपवासादि शुभ अनुष्ठानोमे जो व्यक्ति अनुरक्त होता है तथा अशुभ अनुष्ठानोसे विरत रहता है, वह जीव शुभ उपयोगवाला होता है।

जीवघात, चोरी आदि अशुभ कार्य, असत्य, पीडाकारी हिंसारूप अशुभ वचन तथा ईर्ष्या, जीव-वधादि रूप अशुभ मनसे अशुभ उपयोग होता है। प्रवचनसारमें लिखा है—

"धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध सपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुह सुहोवजुत्तो व सग्ग सुह ॥१-११॥"

धर्मसे परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोग रूप परिणतिको धारण करता है, तब वह निर्वाण सुखको प्राप्त करता है। धर्मसे परिणत आत्मा जब शुभोपयोगको प्राप्त होता है, तब वह स्वर्ग सुखको प्राप्त करता है।

इस विषयको स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति टीकामे कहते है- "तत्र यच्छुद्ध सप्रयोगशब्द-वाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप वीतरागचारित्र तेन निर्वाण लभते"—गाथामें आगत 'शुद्ध सप्रयोग' शब्दके द्वारा वाच्य जो शुद्धोपयोग स्वरूप वीतराग चारित्र है, उससे निर्वाण प्राप्त होता है। वीतराग चारित्र ध्यानस्थ मुनिके ही होता है। आत्मसमाधिमें स्थित परमध्यानी मुनिराजके ही शुद्धोपयोग होता है। सरागसयमी अवस्थामे मुनिराजके शुद्धोपयोग नहीं होता है। अत गृहस्थावस्थामे शुद्धोपयोगकी कल्पना भी नही की जा सकती।

जब सरागी सकलसयमी महाज्ञानी भावलिंगी मुनीश्वरके शुद्धोपयोगका अभाव है, तब असयमी अथवा देशसयमी श्रावकके शुद्धोपयोगका अभाव स्वयमेव सिद्ध होता है। "निर्विकल्प समाधिरूप-शुद्धोपयोग-शक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूप-सरागचारित्रेण परिणमति, तदाऽपूर्वमनाकुलत्वलक्षण पारमार्थिकसुख-विपरीतमाकुलत्वोत्पादक स्वर्गसुख लभते, पश्चात् परमसमाधि-सामग्रीसद्भावे मोक्ष च लभते"—निर्विकल्प-समाधि (अभेदरत्नत्रयस्परिणति) रूप शुद्धोपयोगकी सामर्थ्यके अभाव होनेपर जब वह जीव शुभोपयोग रूप (भेदरत्नत्रय रूप परिणति) सराग चारित्रको धारण करता है, उस समय वह अपूर्व, अनाकुलता-स्वरूप परमार्थ सुखके विपरीत आकुलताका उत्पादक स्वर्ग सुखको प्राप्त करता है। इसके अनतर वह परम समाधि (शुद्धोपयोग) की सामग्रीका लाभ होनेपर मोक्षको भी प्राप्त करता है। इससे अमृतचन्द्र स्वामी कहते है कि शुद्धोपयोग परिणतिके द्वारा निर्वाणका सुख प्राप्त होता है अत "शुद्धोपयोग उपादेय"—शुद्धोपयोग उपादेय है। सविकल्प अवस्थारूप भेद रत्नत्रयस्वरूप शुभोपयोगसे आकुलताका उत्पादक स्वर्गका सुख प्राप्त होता है, निर्वाणका सुख नही मिलता है, इससे "शुभोपयोगो हेय" मुनिराजके लिए कथचित् शुभो-पयोग हेय है। (प्र० सा० १।११। पृ० १३)

हेय तथा उपादेय उपयोग—मुनि अवस्थामें शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनो होते है, अत उस अपेक्षासे उपादेय तथा हेयका कथन किया गया है। गृहस्थावस्थामें शुद्धोपयोगकी पात्रता ही नही है, अत उनकी अपेक्षा एकमात्र शुभोपयोग आश्रय योग्य होगा। शुभोपयोग कथचित् हेय है, तो कथचित् उपादेय भी है। निर्विकल्प समाधि निमग्न महामुनिकी अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु उस उच्च ध्यानकी प्राप्तिमें असमर्थ मुनिराजके लिए शुभोपयोग उपादेय है। ऐसी स्थितिमें गृहस्थके लिए शुभोपयोगको हेय नही कहा जा सकता है। परम हेयरूप गृहस्थकी दशा है। उस स्थितिको ध्यानमें रखते हुए उस आर्त, रौद्रध्यानके जालमे जकडे हुए जीवका उद्धार शुभोपयोगके द्वारा ही होगा। यदि शुद्धोपयोगको उपादेय मानते हुए परिग्रह तथा पापाचारके त्यागमे विमुख गृहस्थने शुभोपयोगको हेय सोच उसे छोड दिया, तो अशुभोपयोगके द्वारा उस गृहस्थकी दुर्गति होगी। अमृतचन्द्र सूरि कहते है, "अत्यन्तहेय एवायमशुभोपयोग"—

अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। शुद्धोपयोग उपादेय है। उसकी अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। ऐसी स्थितिमें अशुभोपयोगकी अपेक्षा शुभोपयोग उपादेय है। बुद्धिमान् व्यक्ति अत्यन्त हेय अशुभका त्याग कर शुभका आश्रय लेता है क्योंकि वह lesser art अपेक्षाकृत अल्प दोषरूप है।

उदाहरणार्थ—सत्पुरुषको ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। वह श्रेष्ठ व्रत है, किन्तु जिसकी आत्मा पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनमे असमर्थ है उसे स्वस्त्रीसतोषव्रती बननेका कथन किया जाता है। यदि वह परस्त्री-सेवनमें प्रवृत्ति करता है, तो सत्पुरुष उसे महापापी कहते हैं। यद्यपि दोनो ही ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं करते है और ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा स्त्रीमात्रका सेवन हेय है, किन्तु असमर्थ व्यक्तिकी अपेक्षा स्वदार सतोषव्रतीको शीलवान् कहकर उसकी स्तुति की जाती है, तथा उसको परस्त्री सेवनका त्यागी होनेसे आदरका पात्र मानते है। इस उदाहरणके प्रकाशमें शुद्धोपयोग ब्रह्मचर्यके समान परम उपादेय है। शुभोपयोग स्वदारसतोषव्रतके समान कथचित् उपादेय है तथा अशुभोपयोग परस्त्री सेवनरूप महापापके समान सर्वथा हेय है—अत्यन्त हेय है। स्वदारसतोषी तथा परस्त्रीसेवी इन दोनोमे स्त्रीसेवनरूपताका सद्भाव होते हुए भी स्वदारसतोषी गृहस्थकी अवस्था उपादेय है। किन्तु परस्त्रीसेवनका कार्य अत्यन्त निषिद्ध है। इसी प्रकार अशुद्धोपयोगपना शुभ तथा अशुभ उपयोगमें है किन्तु गृहस्थके लिए शुभ उपयोग उपादेय है तथा अशुभ उपयोग सर्वथा हेय है। दोनोको समान मानकर अशुभकी प्रवृत्तिसे विमुख न होनेवाला अपार कष्ट पाता है। शीलव्रती सीता स्वर्ग गयी। कुशील परिणामवाला रावण नरक गया। दोनोको एक समान माननेवाला चतुर व्यक्ति नही कहा जायेगा। अशुभोपयोगके विषयमे प्रवचनसारमें इस प्रकार कथन किया गया है—

"असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहि सदा अभिद्दुदो भमदि अच्चंत ॥१-१२॥"

शुभ योगोंमें प्रवृत्ति होनेपर अशुभ योगका संवर होता है। शुभ योगका संवर शुद्धोपयोगरूप परम-समाधि द्वारा संभव है। सामान्यतया अध्यात्मशास्त्रका ऊपरी पल्लवग्राही परिचय प्राप्त व्यक्ति पूजा, दान, स्वाध्याय आदि सत्कार्योंको शुभोपयोगरूप कहकर उसके विरुद्ध अमर्यादित आक्षेपपूर्ण शब्द कहता है, किन्तु वह स्वयको विकथा, पंचपाप, सप्तव्यसन आदि अशुभोपयोगके महान् दूतोंके हाथोंमें सौंपता है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि शुभोपयोग शुद्धोपयोगके द्वारा रुकेगा। शुद्धोपयोगरूप अभेद रत्नत्रयकी आराधना महान् मुनीन्द्रोंको भी कठिन है, परिग्रही गृहस्थको वह उसी प्रकार असंभव है, जिस प्रकार देव पर्यायवाले जीवको मोक्षकी प्राप्ति असंभव है। इसी कारण भव्य जीवोंके कल्याणार्थ आचार्योंने शुभोपयोग-द्वारा पुण्य-संचयको प्रशस्त मार्ग कहा है। हिन्दीके कुछ लेखकों और कवियोंने पुण्यबंध और शुभोपयोगके विरुद्ध इतना अतिरेकपूर्ण प्रतिपादन किया है, कि वह एकान्तवादकी सीमाका स्पर्श कर जाता है।

पुण्य-संचयकी प्रेरणा—अध्यात्मशास्त्रके मार्मिक आचार्य पद्मनंदि भव्य जीवको पुण्यसंचयके लिए प्रेरणा करते हैं। अपनी पंचविंशतिकाके दानपंचाशत् अध्यायमें वे कहते हैं—

"दूरादभीष्टमभिगच्छति पुण्ययोगात्
पुण्याद्विना करतलस्थमपि प्रयाति।
अन्यत्परं प्रभवतीह निमित्तमात्रं
पात्रं बुधा भवत निर्मलपुण्यराशेः ॥१७॥"

पुण्यके होनेपर दूरसे भी अभीष्ट वस्तुका लाभ होता है। पुण्यके बिना अर्थात् पापोदय होनेपर हाथमें रखी हुई वस्तु भी उपभोगमें नहीं आ पाती। पुण्यको छोड़कर अन्य सामग्री निमित्तमात्र है। अतः विवेकियो! निर्मल पुण्यकी राशिके पात्र बनो, अर्थात् पवित्र पुण्यका संग्रह करो।

वे पुनः कहते हैं—

"ग्रामान्तरं व्रजति यः स्वगृहाद् गृहीत्वा
पाथेयमुन्नततरं स सुखी मनुष्यः।
जन्मान्तरं प्रविशतोऽस्य तथा व्रतेन
दानेन चार्जितशुभं सुखहेतुरेकम् ॥२६॥"

जो व्यक्ति अपने घरसे देशान्तरको जाते समय बढ़िया पाथेय-(कलेवा) साथमें रखता है, वह सुखी रहता है। इसी प्रकार इस भवको छोड़कर अन्य भवमें यदि सुख चाहिए तो व्रत पालन और पात्रदान करो। इससे प्राप्त किया गया शुभ अर्थात् पुण्य ही सुखका हेतु होगा।

उनका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

"नार्थः पदात्पदमपि व्रजति त्वदीयो
व्यावर्तते पितृवनादपि बन्धुवर्गः।
दीर्घे पथि प्रवसतो भवतः सखैकं
पुण्यं भविष्यति ततः क्रियतां तदेव ॥४३॥"

अरे जीव! तेरा धन एक डग भी तेरे साथ नहीं जाता है। बन्धुवर्ग श्मशान तक जाकर लौट जाते हैं। एक तेरा मित्र पुण्य ही तेरे साथ दूर तक जायेगा। इससे उस पुण्यको प्राप्त करो। आचार्यके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं। "पुण्यं भवतः सखा भविष्यति"—पुण्य ही तेरा मित्र रहेगा, क्योंकि वह तेरा साथ देगा।

वे महान् आचार्य जिनेन्द्रकी स्तुति करते समय अपनेको "पुण्य-निलयोऽस्मि"—मैं पुण्यका घर हूँ, ऐसा कहते हैं।

"धन्योऽस्मि पुण्यनिलयोऽस्मि निराकुलोऽस्मि
शान्तोऽस्मि नष्टविपदस्मि विदस्मि देव।
श्रीमज्जिनेन्द्र भवतोऽङ्घ्रियुगं शरण्य
प्राप्तोऽस्मि चेदहमतीन्द्रिय-सौख्यकारि ॥१॥" —क्रियाकाण्डचूलिका।

हे जिनेन्द्र ! मैं अतीन्द्रिय आनदके प्रदाता आपके चरणोके शरणको प्राप्त हुआ हूँ, इससे मैं धन्य हूँ। मैं पुण्यका भवन हूँ। मैं निराकुल हूँ। मैं शात हूँ। मैं सकटमुक्त हो गया हूँ तथा मैं ज्ञानवान् बन गया हूँ।

कल्याणमदिर स्तोत्रमे जिनेन्द्र भगवान्को करुणा तथा पुण्यकी निवास भूमि कहा है—

"त्व नाथ ! दु खि-जन-वत्सल हे शरण्य !
कारुण्य-पुण्यवसते वशिना वरेण्य !।
भक्त्यानते मयि महेश दया विधाय
दु खाङ्कुरोद्दलन-तत्परता विधेहि ॥३९॥"

हे स्वामिन् ! आप दु खी जीवोके प्रति प्रेमभाव धारण करते है अत आप दु खीजनवत्सल हैं। ... भगवन् ! हे करुणा और पुण्यकी निवासभूमि, जितेन्द्रियोके शिरोमणि महेश, भक्तिपूर्वक मुझ ... आप दयाभाव धारण करके तत्काल मेरे दु खोके अकुरोको उच्छेद करनेकी कृपा कीजिए।

भगवज्जिनसेन स्वामीने सहस्र नाम पाठमें जिनेन्द्र भगवान्को पुण्यगी अर्थात् पुण्यवाणी युक्त, ...वान्, पुण्यनायक, पुण्यधी, पुण्यकृत्, पुण्यशासन आदि नामयुक्त बताया है—

"गुणाकरो गुणोच्छेदी निर्गुण पुण्यगीर्गुण ।
शरण्य पुण्यवाक् पूतो वरेण्य पुण्यनायक ॥४॥
अगण्य पुण्यधीर्गण्य पुण्यकृत्पुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणग्राम पुण्यापुण्य-निरोधक " ॥५॥ —महाशोकध्वजादिशतकम्।

भगवान्को पुण्यराशि भी कहा है—

"शुभयु सुखसाकृत पुण्यराशिरनामय ।

हे भगवन् ! आपके गुणस्तवन-द्वारा जो मैंने पुण्य प्राप्त किया है, उसके फलस्वरूप आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा श्रेष्ठ भक्ति होवे। भगवज्जिनसेनकी यह वाणी इस विषयके अज्ञानांधकारको दूर कर देती है, कि विवेकी गृहस्थको पुण्यरूपी वृक्षका रक्षण करना चाहिए या उसका उच्छेद करके पापरूप विषका वृक्ष बोना चाहिए। आचार्य जिनसेन कहते हैं—

"पुण्याच्चक्रधर-श्रियं विजयिनीमैन्द्रीं च दिव्यश्रियं
पुण्यात्तीर्थंकरश्रियं च परमां नैःश्रेयसीं चाश्नुते।
पुण्यादित्यसुभृच्छ्रिया चतसृणामाविर्भवेद् भाजनं
तस्मात्पुण्यमुपार्जयन्तु सुधियः पुण्याज्जिनेन्द्रागमात् ॥ ३०।१२९ ॥"

पुण्यसे सर्वविजयिनी चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। पुण्यसे इन्द्रकी दिव्यश्री प्राप्त होती है। पुण्यसे ही तीर्थंकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा परम कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्यसे प्राप्त होती है। इस प्रकार पुण्यसे ही यह जीव चार प्रकारकी लक्ष्मीको प्राप्त करता है। इसलिए हे सुधीजनो ! तुम लोग भी जिनेन्द्र भगवानके पवित्र आगमके अनुसार पुण्यका उपार्जन करो।

प्रश्न—आगममें पुण्य प्राप्तिका क्या उपाय कहा है ? यह प्रश्न उत्पन्न होता है।

समाधान—महाकवि जिनसेन इस विषयका समाधान इस महत्त्वपूर्ण पद्य-द्वारा करते हैं—

"पुण्यं जिनेन्द्र-परिपूजनसाध्यमाद्यं
पुण्यं सुपात्र-गत-दानसमुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥२८।२१९॥" –महापुराण।

जिनेन्द्र भगवान्की पूजासे उत्पन्न होनेवाला पुण्य प्रथम है। सुपात्रको दान देनेसे उत्पन्न पुण्य दूसरा है। व्रतोंके पालनसे उत्पन्न पुण्य तीसरा है। उपवास करनेसे चौथा पुण्य होता है। इस प्रकार पुण्यार्थी पुरुषको पूजा, दान, व्रत तथा उपवास-द्वारा पुण्यका उपार्जन करना चाहिए।

प्रश्न—पूजा, दान, व्रत तथा उपवाससे आत्माको क्या लाभ होगा ?

समाधान—इन चार बातोंसे कषायभाव मन्द होते हैं। आत्माकी विभाव परणति न्यून होने लगती है। उससे अशुभका संवर होता है। पूर्वबद्ध पापराशि प्रलयको प्राप्त होती है। इसी प्रकार पुण्यबंधके साथ मोक्षके अंगरूप संवर और निर्जरा तत्त्वोंकी भी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षुका मोक्षाभाव—जैन धर्मका कथन निरपेक्ष नहीं है। शुद्धोपयोगरूप परम समाधिकी स्थितिमें पुण्य उपादेय नहीं रहता है। उस अवस्थामें यह जीव मुमुक्षु भी नहीं कहा जा सकता है। सूक्ष्म-दृष्टिसे विचारनेपर यह कहना होगा कि मोक्ष जानेवाले व्यक्तिको मुमुक्षुकी भी उपाधिसे विमुक्त होना पड़ेगा। जबतक यह जीव मुमुक्षु रहेगा, तबतक उसे मोक्ष नहीं प्राप्त होगा और वह संसारमें परिभ्रमण करेगा। "मोक्तुमिच्छुः मुमुक्षुः"—जिसके मोक्षकी इच्छा है, वह मुमुक्षु है। जबतक मोक्षकी इच्छा है, तबतक राग भाव है, क्योंकि इच्छा रागका परिणाम है। रागीको मोक्ष नहीं प्राप्त होता है, विरागी ही मोक्ष प्राप्त करता है।

पद्मनन्दि पञ्चविंशतिकामें कहा है—

उन्होंने यह भी कहा है कि परिग्रहधारीके सच्चा कल्याण असम्भव है। "परिग्रहवतां शिवं यदि तदानलः शीतलः"—यदि परिग्रही व्यक्तिको कल्याणका लाभ हो जाये, तो कहना होगा, कि अग्नि शीतल हो गयी।

परम प्रवीण वीतराग ऋषियोंने ससारी विषयलोलुपी जीवकी मनोदशाको सम्यक् प्रकार ज्ञात कर उसे पुण्यके माध्यमसे श्रेष्ठ इन्द्रियजनित सुखोंकी ओर आकर्षित करते हुए धर्मकी ओर आकर्षित किया है तथा पश्चात् विषयसुखकी नि स्सारताका उपदेश देकर उसे निर्वाण दीक्षाकी ओर आकर्षित करते हैं और महायोगी बना मुक्तिश्रीका स्वामी बना देते हैं। उनकी तत्त्वदेशनाकी पद्धति यह है कि जीवको पहले प्रथम पापोंसे विमुख बनाकर पुण्यकी ओर उन्मुख कर उसके फल वैभवको भी त्याग कर अकिंचन भावना द्वारा उसे त्रिलोकीनाथ बनाया जाये। जो व्यक्ति हीनप्रवृत्तिको अपनाकर पापमें निमग्न हो रहा है, उसे पापसे विमुख न बनाकर पुण्यक्रियाओंसे विमुख बनाता है, तो वह उस जीवके कल्याणके प्रति महान् अन्याय करता है।

"चत्वार प्रत्ययास्ते ननु कथमिति भावास्रवो भावबन्ध-
श्चैकत्वाद्वस्तुतस्तो बत मतिरिति चेतन्न शक्तिद्वयात्स्यात् ।
एकस्यापीह वह्नेर्दहन-पचन-भावात्म-शक्तिद्वयाद्वै
वह्नि स्याद्दाहकश्च स्वगुणगणबलात्पाचकश्चेति सिद्धेः ।
मिथ्यात्वाद्यात्मभावा. प्रथमसमय एवास्रवे हेतव. स्युः
पश्चात्तत्कर्मबन्ध प्रतिसमसमये तौ भवेतां कथञ्चित् ।
नव्याना कर्मणागमनमिति तदात्वे हि नाम्नास्रवः स्याद्
आयत्या स्यात्स बन्ध स्थितिमिति लयपर्यन्तमेषोऽनयोर्भित् ॥" –परिच्छेद ४

शंका—श्लोकवार्तिकमें एक शका उत्पन्न करके समाधान किया गया है। शकाकार कहता है, "योग एव आस्रव सूचितो न तु मिथ्यादर्शनादयोऽपीत्याह"—योग ही आस्रव कहा गया है, मिथ्यादर्शनादिको आस्रव नही कहा गया है, इसका क्या कारण है ?

"आस्रवे योगो मुख्यो बन्धे च कषायादि । यथा राजसभायामनुग्राह्यनिग्राह्ययो. प्रवेशने राजादिष्ट-पुरुषो मुख्य., तयोरनुग्रहनिग्रहकरणे राजादेश." (११२) ।

"आस्रवमें योगकी मुख्यता है तथा बंधमें कषायादिककी प्रधानता है । जैसे राजसभामें अनुग्रह करने योग्य तथा निग्रह करने योग्य पुरुषोंके प्रवेश करानेमें राज्य-कर्मचारी मुख्य है, किन्तु प्रवेश होनेके पश्चात् उन व्यक्तियोंको सत्कृत करना या दंडित करना इसमें राजाज्ञा मुख्य है ।" इस प्रकार योगकी मुख्यतासे कर्मोंके आगमनका द्वार खोल दिया जाता है । आगत कर्मोंका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना कषायादिकी मुख्यतासे होता है ।

योगकी प्रधानतासे आकर्षित किये गये तथा कषायादिकी प्रधानतासे आत्मासे सम्बन्धित कर्म किस भाँति जगत्की अनंत विचित्रताओंको उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है ? कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय है आदि ८४ लाख योनियोंमें जीव कर्मवश अनन्त वेष धारण करता फिरता है । यह परिवर्तन किस प्रकार संपन्न होता है, इस विषयको कुन्दकुन्दस्वामी इन शब्दों-द्वारा स्पष्ट करते हैं—

"जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविह ।
मसवसारुहिरादीभावे उयरग्गिसजुत्तो ॥१७६॥"
तह णाणिस्स दु पुव्वं बद्धा पच्चया बहुवियप्प ।
बज्झते कम्म ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥१८०॥"—समयसार ।

जैसे पुरुषके द्वारा खाया गया भोजन जठराग्निके निमित्तवश मास, चर्बी, रुधिर आदि पर्यायोंको प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् जीवके पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव बहुत भेदयुक्त कर्मोंको बाँधते है । वे जीव परमार्थ दृष्टिसे रहित है ।

आचार्य पूज्यपादने तथा अकलक स्वामीने सर्वार्थसिद्धि (८।२) और राजवार्तिक (९।७) में भी यही लिखा है ।

जिस प्रकार भोज्यवस्तु प्रत्येकके आमाशयमें पहुँचकर भिन्न भिन्न रूपमें परिणत होती है, उसी प्रकार योगके द्वारा आकर्षित किये गये कर्मोंका आत्माके साथ सश्लेष होनेपर अनन्त प्रकार परिणमन होता है । इस परिणमनकी विविधतामें कारण रागादि परणतिकी हीनाधिकता है ।

क्या बन्धका कारण अज्ञान है ?

आत्माके बन्धन-बद्ध होनेका कारण कोई लोग अज्ञान या अविद्याको बताते है । अज्ञानसे ही बन्ध होता है और ज्ञानसे मुक्ति लाभ होता है, इस विचारकी मीमासा करते हुए स्वामी समन्तभद्र कहते है—

"अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद् बहुतोऽन्यथा ॥" –आ० मी० ९६

—"अज्ञानके द्वारा नियमसे बध होता है, ऐसा सिद्धान्त अगीकार करनेपर कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ-केवली न हो सकेगा, कारण ज्ञेय अनन्त है । अनत ज्ञेयोंका बोध न होगा, अत जिनका ज्ञान न हो सकेगा, वे बन्धके हेतु होगे । इससे सर्वज्ञका सद्भाव न होगा । कदाचित् यह कहा जाये कि समीचीन अल्पज्ञानसे मोक्ष प्राप्त हो जायेगा, तो, अवशिष्ट महान् अज्ञानके कारण बध भी होगा । इस प्रकार किसीको भी मुक्तिका लाभ नही होगा ।

---

१ "जठराग्न्यनुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्"
—स० सि० [illegible]

—'मोहविशिष्ट अर्थात् मिथ्यात्वयुक्त व्यक्तिके अज्ञानसे बंध होता है। मोहरहित व्यक्तिके ज्ञानसे बंध नहीं होता है। मोहरहित अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। मोहीके ज्ञानसे बन्ध होता है।'

यहाँ बन्धका अन्वयव्यतिरेक ज्ञानकी न्यूनाधिकताके साथ नहीं है। इससे ज्ञानको बंध या मुक्तिका कारण नहीं माना जा सकता। मोहसहित ज्ञान बंधका कारण है और मोहरहित ज्ञान मुक्तिका कारण है। अतः यह बात प्रमाणित होती है कि बंधका कारण मोहयुक्त अज्ञान है और मुक्तिका कारण मोहका अभाव युक्त ज्ञान है क्योंकि इसके साथ ही अन्वयव्यतिरेक सुघटित होता है।

शंका—यहाँ यह आशंका सहज उत्पन्न होती है कि इस कथनका सूत्रकार उमास्वामीके इस सूत्रके साथ विरुद्धता है—"मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः"—(८, १)—तत्त्वका अनवबोध, असंयम, असावधानता, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मन, वचन, कायकी चंचलताके द्वारा बन्ध होता है।

समाधान—इस विषयका समाधान करते हुए विद्यानन्दिस्वामी कहते हैं (अष्टसह० पृ० २६७) कि मोहविशिष्ट अज्ञानमें सक्षेपसे मिथ्यादर्शन आदिका संग्रह किया गया है। इष्ट अनिष्ट फल प्रदान करनेमें समर्थ कर्म बन्धनका हेतु कषायैकार्थसमवायी अज्ञानके अविनाभावी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगका कहा गया है। मोह और अज्ञानमें मिथ्यात्व आदिका समावेश हो जाता है। दोनों आचार्योंके कथनमें तात्त्विक भेद नहीं है, केवल प्रतिपादनशैलीकी भिन्नता है।

एकान्तदर्शनोंमें कर्म सिद्धान्तका असंभवपना

स्वामी समन्तभद्रका कथन है कि यह कर्मतत्त्वकी व्यवस्था स्याद्वाद शासनमें ही निर्दोष रीतिसे बनती है। एकान्त दर्शनोंमें कर्मबन्ध फलानुभवन आदि बातें असंभव हैं। वे कहते हैं[1] "हे जिनेन्द्र! अनित्यैकान्त आदि सिद्धान्तवादियोंके यहाँ पुण्य कर्म, पाप कर्म, परलोक सिद्ध नहीं होते। एकान्तग्रहाविष्ट लोग अनेकान्त पक्षके विरोधी तो हैं ही, साथ ही स्वपरके भी घातक हैं।"

नित्यैकान्त अथवा अनित्यैकान्त पक्षमें क्रम तथा अक्रमपूर्वक अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रियाकारित्व-पनेके अभावमें पुण्य-पाप आदिकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, बौद्धदर्शनमें कर्मकी मान्यता है यह त्रिपिटक साहित्य और सम्राट् मिलिन्दके पूर्व प्रतिपादित प्रश्नोत्तरसे ज्ञात होता है, किन्तु बौद्धदर्शनके मूल क्षणिकवाद तत्त्वके साथ इस कथनका सामञ्जस्य नहीं होता। बात यह है कि क्षणिक पक्षमें प्रत्येक पदार्थ क्षणस्थितिमात्र है, अतः उसमें कर्मबन्ध करने और फलोपभोग आदिकी बातें क्षणिकत्व सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ती हैं। हिंसादि पापोंका कर्ता अशुभ कर्मका संपादन तथा फलानुभवन नहीं करेगा, कारण उसका हिंसादि कार्य क्षणमें अन्त हो गया, अतः फलोपभोक्ता अन्य व्यक्ति होगा। क्षणिक पक्षमें वस्तु तथा लोकव्यवस्था नहीं बनती।

इसे आप्तमीमांसाकार इस प्रकार समझाते हैं—[2] 'हिंसाका संकल्प करनेवाला द्वितीय क्षणमें नष्ट हो चुका, अतः संकल्पविहीन व्यक्तिने हिंसा की, ऐसा कहना होगा। हिंसक व्यक्तिका भी उत्तर क्षणमें विनाश हो गया, इससे हिंसाजनित कर्मबन्धन पर्याय प्राप्त करनेवाला और बन्धनमें फँसनेवाला ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने न तो हिंसाका संकल्प किया है और न हिंसा ही की है। इस न्यायके अनुसार बन्धनबद्ध व्यक्ति तो नष्ट हो गया, मुक्ति [illegible] होगी ही।" सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर इस प्रकारकी विचित्र स्थिति और अव्यवस्था क्षणिकैकान्त पक्षमें उत्पन्न होती है।

---

१ "कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु॥ —आ० मी० ८।

२ हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते॥"—आ० मी० ५१।

प्रकार दैवैकातके चक्रमें फँसे हुए व्यक्ति प्रलाप करते हैं। स्वामी समतभद्र कहते हैं[1]—"दैवसे ही यदि प्रयोजन सिद्ध होता है, तो यह बताओ, जीवके प्रयत्नके द्वारा, दैवकी उत्पत्ति क्यो होती है? आज जो हमारा पुरुषार्थ है, भावी जीवनके लिए वह दैव बन जाता है। पूर्वकृत कर्मको छोडकर दैव और क्या है?

यदि दैवके द्वारा दैवकी उत्पत्ति मानते हो और उसमें बुद्धिपूर्वक किये गये मानव प्रयत्नोका तनिक भी हस्तक्षेप नही मानते, तो मोक्षकी प्राप्ति सभव न होगी, क्योकि पूर्वकृत कर्मबधके अनुसार ही आगामी कर्मका बध होगा, इस प्रकारकी परपरा चलनेसे मोक्षका अवसर नही मिलेगा और पौरुष अकार्यकारी ठहरेगा।

दैवैकातकी दुर्बलतासे लाभ उठाते हुए पुरुषार्थवादी कहता है, बिना पौरुषके कोई कार्य नही बनता। सोमदेव सूरिके शब्दोमें वह कहता है—

"येषा बाहुबल नास्ति, येषा नास्ति मनोबलम्।
तेषा चन्द्रबलं देव ! किं कुर्यादम्बरस्थितम् ॥"—यशस्तिलक ३।५४।

जिनकी भुजाओमें बल नही है और न जिनके पास मनोबल है ऐसे व्यक्तियोका आकाशमें स्थित चन्द्रबल—जन्मकालीन नक्षत्र आदिकी स्थिति क्या करेगी?"

केवल भाग्यको ही भगवान् माननेवाले पुरुषोका कृषि आदि कार्य करना कोई अर्थ नही रखता है।

पुरुषार्थका एकात भी बाधित है

पुरुषार्थके अनन्य भक्तसे स्वामी समतभद्र पूछते हैं[2] यदि, पुरुषार्थसे ही तुम कार्य सिद्धि मानते हो तो यह बताओ दैवसे तुम्हारा पुरुषार्थ कैसे उत्पन्न होता है? कदाचित् यह मानो कि हम सब कुछ पुरुषार्थके द्वारा ही सपन्न करते है, तब सपूर्ण प्राणियोका पुरुषार्थ जयश्री समन्वित होना चाहिए। कर्मका तीव्र उदय आनेपर पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है। समान पुरुषार्थ करते हुए भी पूर्वकृत कर्मोदयानुसार फलमें भिन्नता पायी जाती है। समान श्रम करनेवाले किसान दैववश एक समान फसल नहीं काट पाते हैं।

समन्वय पथ

इस दैव और पुरुषार्थके द्वन्द्वमें अनेकात समन्वय शैली-द्वारा मैत्री स्थापित करता है। सोमदेव सूरि कहते है, "इस लोकमें फल प्राप्ति दैव—पूर्वोपार्जित कर्म तथा मानुषकर्म—पुरुषार्थ इन दोनोके अधीन है। ऐसा न माननेवालोंसे आचार्य पूछते है कि क्या कारण है, समान चेष्टा करनेवालोके फलोमें-सिद्धिमें भिन्नता प्राप्त होती है?।" आचार्य कहते हैं—

"परस्परोपकारेण जीवितौषधयोरिव।
दैवपौरुषयोर्वृत्ति फलजन्मनि मन्यताम् ॥" —यशस्तिलक ३, ६३।

जैसे औषधि जीवनके लिए हितप्रद है और आयुकर्म औषधिके प्रभावके लिए आवश्यक है, अर्थात् जैसे फलोत्पत्तिमें आयुकर्म और औषधिसेवन परस्परमें एक-दूसरेको लाभ पहुँचाते है उसी प्रकार दैव और पौरुषकी वृत्ति समझना चाहिए।

---

१ दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैव पौरुषत कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्ष पौरुष निष्फल भवेत् ॥"
—आ० मी० ८८।

२ "पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुष दैवत कथम्। पौरुषाच्चेदमोघ स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥"
—आ० मी० ८९

३ "दैव च मानुष कर्म लोकस्यास्य फलाप्तिषु। कुतोऽन्यथा विचित्राणि फलानि समचेष्टिषु ॥"
—य० ति०, ३, ६०

करता है और विषय भोगके लिए कमर कसकर पुरुषार्थी बनता है। मुमुक्षु प्राणी विषयादिकोंके विषयमें पुरुषार्थको अधिक महत्त्व नहीं देता। वह अपने पौरुषका प्रयोग कर्म जालके काटनेमें करता है। तत्त्वकी बात यह है कि मुमुक्षुके धर्माराधनरूप प्रयत्नसे विरुद्ध भी कर्म क्षीण-शक्तियुक्त बन जाता है। इस प्रकार आत्म विकासका मार्ग अधिक सरल और उज्ज्वल हो जाता है।

जैन शासनमे यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थके द्वारा यह जीव अनादि कालसे आगत पुरातन कर्म पुंजको अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही विनष्ट करनेमे समर्थ होता है। आत्मकल्याणके क्षेत्रमे दैव या नियतिका आश्रय ले प्रमादी तथा विषयासक्त न बनकर सत्साहसपूर्वक कर्मोंको नष्ट करनेके हेतु सत्प्रयत्न करते जाना चाहिए। मोक्ष पुरुषार्थीको मिलता है। वह स्वयं चतुर्थ पुरुषार्थ कहा गया है।

कर्मोंका विभाजन

इस कर्मके बन्धकी अपेक्षा असंख्यात भेद है। अनन्तानन्त प्रदेशात्मक स्कन्धोंके परिणमनकी अपेक्षा कर्मके अनन्त भेद होते है। ज्ञानावरणादिके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा भी अनन्त भेद कहे जाते है।[1] इस कर्मकी बंध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना रूप दस करणात्मक अवस्थाएँ पायी जाती है[2]। बंधकी परिभाषा की जा चुकी है।[3] उत्कर्षण करणमें कर्मके अनुभाग तथा स्थितिकी वृद्धि होती है। अपकर्षणमे इसके विपरीत बात होती है। संक्रमण करणमे एक कर्मप्रकृतिका अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मोंको उदय कालके पूर्व उदयावलीमे लाना उदीरणा करण है। कर्मोंका सत्तामे रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावलीमें न आकर कर्मोंकी उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मोंकी ऐसी अवस्था, जिसमें उत्कर्षण, अपकर्षण करणके सिवाय उदीरणा तथा संक्रमण न हो सके, निधत्ति है। ऐसा कर्म स्थिति, जिसमे उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण, तथा अपकर्षण न हो सके, निकाचना कहा जाता है।

कर्मोंकी इन दस अवस्थाओंपर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोको हीनशक्ति और महान् शक्तियुक्त बना सकता है। यह उदीरणाके द्वारा उदयकालके पूर्व भी कर्मोंको उदय अवस्थामें ला निर्जीर्ण कर सकता है। कभी कर्म शक्तिहीन बनकर निर्जराको प्राप्त होते है। सार बात यह है कि जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको भिन्न रूपमें परिणत कर सकता है।

कर्मोंका फल भोगना ही पड़ेगा—"नाभुक्तं क्षीयते कर्म" यह बात जैन सिद्धांतमे सर्वथा रूपमें मान्य नहीं है। जब आत्मामें रत्नत्रयकी ज्योति प्रदीप्त होती है तब अनन्तानन्त कार्माणवर्गणाएँ बिना फल दिए हुए निर्जराको प्राप्त हो जाती है। केवली भगवान्‌की असाता प्रकृति कुछ भी बिना फल दिये हुए साता रूपमे परिणत होकर निकल जाती है। इसलिए वीतराग शासनमें केवलीके असाता निमित्तक क्षुधा तृषा आदिकी पीड़ाका अभाव माना गया है।

बंधके प्रकार

कर्मबंधके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश ये चार भेद बताये गये है। महाबंधके इस प्रथम खंडमे प्रकृतिबंधका विविध अनुयोग द्वारोंसे वर्णन किया गया है। प्रकृति शब्दका अर्थ है स्वभाव, जैसे गुड़की प्रकृति मधुरता है। ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव ज्ञानका आवरण करना है। दर्शनावरणकी प्रकृति

---

१ [illegible] पृ॰ ३०० ।

२ "बंधुक्कट्टणकरणं संकममोकट्टुदीरणा सत्तं ।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी ।"—गो॰ क॰ ४३७ ।

३ गो॰ क॰ ४३८–४० ।

दर्शन गुणको ढाँकना है। वेदनीयका स्वभाव सुख दुःखका अनुभवन कराना है। मोहनीयका स्वभाव आत्माके दर्शन और चारित्र गुणोको विकृत करना है। यह आत्माके गुण गुणको भी नष्ट करता है। मनुष्यादिके भवधारणका कारण आयु कर्म है। नर नारकादि नामसे जीव सकीर्तित होता है, इसका कारण नामकी रचनाविशेष है। उच्च या नीच शरीरमें जीवका रचना गोत्रकी प्रकृति है। दान-भोगादिमे बाधा डालना अतराय कर्मकी प्रकृति है।

इन आठ कर्मोंके नामके अनुसार उनकी प्रकृति कही गयी है। इन कर्मोंका स्वभाव समझानेके लिए जैन आचार्योंने निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं। ज्ञानावरणका उदाहरण पर्दा है। दर्शनावरणका द्वारपाल है, कारण उसके द्वारा इष्ट दर्शनका आवरण होता है। मधुलिप्त असिधाराके समान वेदनीय कर्म है। वह मधुरताके साथ जीभ कटनेका सताप पैदा करती है। मोहनीय मदिराके समान जीवको आत्म-स्मृति नहीं होने देता है। आयु कर्म काष्ठके खाडा—बधनविशेष—द्वारा व्यक्तिको कैदी बनानेके समान है। नामकर्म भिन्न भिन्न शरीर आदिकी रचना चित्रकारके समान किया करता है। गोत्रकर्म, जीवको उच्च, नीच शरीरधारी बनाता है, जैसे कुम्भकार छोटे-बडे बर्तन बनाता है। भडारी जिस प्रकार स्वामी-द्वारा स्वीकृत द्रव्यको देनेमें बाधा पैदा करता है, उसी प्रकार विघ्न करना अतरायका स्वभाव है।

इन आठ कर्मोंके १४८ भेद कहे गये हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय कर्म जीवके क्रमश. ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व तथा अनत वीर्यरूप अनुजीवी गुणोको घातनेके कारण घातिया कहे जाते हैं। आयु, नाम, गोत्र तथा वेदनीयको अघातिया कर्म कहा है। ये जीवके अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्व नामक प्रतिजीवी गुणोको घातते हैं।

स्थितिबध उसे कहते है, जिसके कारण प्रत्येक कर्मके बधनकी कालमर्यादा निश्चित होती है। कर्मोंके रस प्रदानकी सामर्थ्यको अनुभागबध कहा है। कर्मवर्गणाओंके परमाणुओकी परिगणनाको प्रदेशबध कहते हैं। कहा भी है—

> "स्वभावः प्रकृति प्रोक्ता स्थिति. कालावधारणम्।
> अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोऽशविकल्पनम् ॥"

योगके कारण प्रकृति और प्रदेश बध होते है। कषायके कारण कर्मोंमें स्थिति और अनुभागका बध होता है।

कर्मकृत परिणमनपर वैज्ञानिक दृष्टि

गधक, शोरा, तेजाब आदिके मिलनेपर रासायनिक प्रक्रिया प्रारभ होती है, तथा भिन्न प्रकारके तत्त्वविशेषकी उपलब्धि होती है इसी प्रकार कर्मोंका जीवके साथ सम्मेलन होनेपर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारभ होती है। और उससे अनत प्रकारकी विचित्रताएँ जीवके भावानुसार व्यक्त हुआ करती हैं। जीवके परिणामोमें वह बीज विद्यमान है जो प्रस्फुटित तथा विकसित होकर अनतविध विचित्रताओको विशाल वट वृक्षके समान दिखाता है। कोई जीव मरकर कुत्ता होता है तो श्वान पर्यायमें उत्पन्न होनेके पूर्व व्यक्तिकी मनोवृत्तिमें श्वान वृत्तिके बीज सार रूपमें सगृहीत होगे, जिनके प्रभावसे गृहीत कार्मणवर्गणा श्वान सबधी सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देंगी या उस रूप परिणत होगी।

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिए उसे बाँधनेवाली कार्माण वर्गणाओका पुज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुजमें अनत प्रकारके परिणमन प्रदर्शनकी सामर्थ्य है। अणु बममें (Atom bomb) आकारकी अपेक्षा अत्यन्त लघुताका दर्शन होता है, किंतु शक्तिकी अपेक्षा वह सहस्रो विशाल बमोसे अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राईके दानेसे भी छोटा बम बन सकता है जो संसार-भरको हिला दे।

आत्माके साथ मिली हुई कार्माण वर्गणाओमें अनतानत प्रदेश कहे गये हैं, जो अभव्य जीवोंसे अनत गुणित हैं फिर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे इन्द्रियोंके अगोचर हैं। उनमें विद्यमान कर्मशक्ति (Karmic-energy) अद्भुत खेल दिखाती है। किसी जीवको निगोद अपर्याप्तक पर्यायवाला जीव बना एक श्वासमे अठारह बार शरीर निर्माण और ध्वस-द्वारा जीवन-मरणको प्रदर्शित करती है। वह आत्माकी अनत ज्ञान शक्तिको ढाँककर अक्षरके अनतवें भाग बना देती है। कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है—

"का वि अपुव्वा दीसादे पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥ २११ ॥"

—पुद्गल कर्मकी भी ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है, जिसके कारण जीवका केवलज्ञान स्वभाव विनाशको प्राप्त हो गया है।

उस कर्म शक्तिके कारण गाय, बैल, ऊँट आदिका आकार-प्रकार प्राप्त होता है। ऐसा कौन-सा काम है जो उस शक्तिकी परिधिके बाहर हो। ज्ञानावरणके रूपमे उसके द्वारा बुद्धिकी हीनाधिकताका विचित्र दृश्य निर्मित होता है, लेकिन जिस प्रकार नाटकका अभिनय करानेवाला सूत्रधार होता है जिसके सकेतके अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारक जीवके भाव हैं। उन भावोंकी हीनता, उच्चता, वक्रता, सरलता, समलता, विमलता आदिपर जिन बाह्य क्रियाओंका प्रभाव पडता है उनसे भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्म बँधते है उनका वर्णन जैन महर्षियोंने किया है जिनके अध्ययनसे मानव इस बातकी कल्पना कर सकता है कि उसका अतीत कैसा था जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवनके अनुसार वह अपने किस प्रकारके भविष्यका निर्माण कर सकता है।

उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति अत्यत मद ज्ञानी है। इसका क्या कारण है? शरीरशास्त्री तो शारीरिक कारणोके द्वारा मस्तिष्कके परमाणुओंकी दुर्बलताको दोषी ठहरायेगा, किंतु कर्मसिद्धान्तका ज्ञाता कहेगा कि इस जीवने पूर्वमे जब कि इसके वर्तमान जीवनका निर्माण हो रहा था ज्ञानको ढाँकनेवाली साधन सामग्रीको सगृहीत किया था। इसी प्रकार अन्य प्रकारके बाह्य और आभ्यन्तर कार्योंके विषयमें कर्म सिद्धान्तवाला समर्थन करेगा।

कर्मोंके आगमनके कारणोंका स्पष्टीकरण

ज्ञानावरणके कारण—ज्ञानावरण कर्ममें विशेष कारण निम्नलिखित बाते बतायी गयी है जैसे—निर्मल ज्ञानके प्रकाशित होनेपर मनमें दूषित भाव रखना, ज्ञानको छिपाना, योग्य व्यक्तिको दुर्भाववश ज्ञान प्रदान न करना, दूसरेकी ज्ञान-साधनामें बाधा डालना, वाणी अथवा प्रवृत्तिके द्वारा ज्ञानवान्‌के ज्ञानका निषेध करना, पवित्र ज्ञानमें लाछन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञानका अभिमान तथा ज्ञानियोंका अपमान, अन्याय पक्ष समर्थनमें शक्ति लगाना, अनेकात विद्याको दूषित करनेवाला कथन करना आदि। इस प्रकारके कार्योंसे जो जीवके मलिनभाव होते हैं उनके द्वारा इस प्रकारका मलिन कर्मपुज गृहीत होता है, जो ज्ञानके प्रकाशको ढाँकता है।

दर्शनावरणके कारण—उपरोक्त बातें दर्शनके विषयमे करनेसे दर्शनावरण कर्म आता है। उसके अन्य भी कारण है जैसे अधिक सोना, दिनमें सोना, आँखोको फोड देना, निर्मल दृष्टिमे दोष लगाना, मिथ्या मार्गवालोंकी प्रशसा करना आदि।

वेदनीयके कारण—जिस असाता वेदनीयके कारण जीव कष्टमय जीवन बिताता है उसके कारण ये है—स्व, पर अथवा दोनोंको पीडा पहुँचाना, शोकाकुल रहना, हृदयमें दुःखी बने रहना, रुदन करना, प्राणघात करना, अनुकम्पा उत्पादक फूट-फूटकर रोना, अन्यकी निन्दा और चुगली करना, जीवोंपर दया न करना, अन्यको सताप देना, दमन करना, विश्वासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आजीविका, साधुजनोंकी

निंदा करना, उन्हे सदाचारके मार्गसे डिगाना, जाल, पिंजरा आदि जीवघातक पदार्थोंका निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्तिका विनाश करना आदि।

जीवको आनंदप्रद अवस्था प्राप्त करानेवाले साता वेदनीयके कारण ये है—जीवमात्रपर दया करना, सन्त जनोपर स्नेह रखना, उन्हें दान देना, प्रेमपूर्वक सयम पालन करना, विवशतामे शात भावसे कष्टोको सहन करना, क्रोधादिका त्याग करना, जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा, सत्पुरुषोकी सेवा-परिचर्या आदि।

मोहनीयके कारण—मोहनीय कर्मके कारण मदोन्मत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता, और न सच्चे कल्याणके मार्गमे लगता है।[1] दर्शन मोहनीयके कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वोके विषयमें यह सम्यक् श्रद्धासे वचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टिसे श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाशको नहीं प्राप्त करता। इसके कारण ये है—जिनेन्द्रदेव वीतराग वाणी तथा दिगम्बर मुनिराजके प्रति काल्पनिक दोष लगा ससारकी दृष्टिमें मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्मके फलरूप श्रेष्ठ आत्माओमें पाप प्रवृत्तियोके पोषणकी सामग्रीको बता भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्गका प्रचार करना आदि।

चारित्र मोहनीयके कारण यह जीव अपने निज स्वरूपमे स्थित न रहकर क्रोधादि विकृत-अवस्थाको प्राप्त करता है। क्रोधादिके तीव्र वेगवश मलिन प्रचण्ड भावोका करना, तपस्वियोकी निन्दा तथा धर्मका ध्वस करना, सयमी पुरुषोके चित्तमे चचलता उत्पन्न करनेका उपाय करनेसे, कषायोका बध होता है। अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरेके उपहाससे हास्यका पात्र बनता है। विचित्र रूपसे क्रीडा करनेसे, औचित्यकी सीमाका उल्लघन करनेसे रति वेदनीयका आगमन होता है। दूसरेके प्रति विद्वेष उत्पन्न करना, पापप्रवृत्तिवालोका ससर्ग करना, निंद्य प्रवृत्तिको प्रेरणा प्रदान करना आदि अरति प्रकृतिके कारण हैं। दूसरेको दुखी करना और दूसरेको दुखी देख हर्षित होना शोक प्रकृतिका कारण है। भय प्रकृतिके द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, उसका कारण भयके परिणाम रखना, दूसरोको डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है। ग्लानिपूर्ण अवस्थाका कारण जुगुप्सा प्रकृति है। पवित्र पुरुषोके योग्य आचरणको निन्दा करना, उनसे घृणा करना आदिसे यह बँधती है। स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेदका कारण महान् क्रोधी स्वभाव रखना, तीव्र मान, ईर्ष्या, मिथ्यावचन, तीव्रराग, परस्त्रीसेवनके प्रति विशेष आसक्ति रखना, स्त्री सम्बन्धी भावोके प्रति तीव्र अनुराग भाव है। पुरुषत्व सम्पन्न पुरुषवेदके कारण क्रोधकी न्यूनता, कुटिल भावोका अभाव, लोभ तथा मानका त्याग, अल्प राग, स्वस्त्रीसतोष, ईर्ष्या-परिणामकी मदता, आभूषण आदिके प्रति उपेक्षाके भाव आदि हैं। जिसके उदयसे नपुसक वेद मिलता हैं, उसके कारण प्रचुर प्रमाणमें क्रोध, मान, माया, लोभसे दूषित परिणामोका सद्भाव, परस्त्रीसेवन, अत्यत हीन आचरण, तीव्र राग आदि है।

आयुके कारण—नरक आयुके कारण बहुत आरभ और अधिक परिग्रह हिंसाके परिणाम, मिथ्यात्व-पूर्ण आचरण, तीव्र मान तथा लोभ, दूसरेको सताप पहुँचाना, सदाचार तथा शीलहीनता, काम, भोगसबधी अभिलाषामें वृद्धि, बध-बधन करनेके भाव, मिथ्याभाषण, पापनिमित्तक आहार, सन्मार्गमे दूषण लगाना, कृष्ण लेश्या युक्त रौद्र ध्यान सहित मरण करना है।

---

१ आत्माको पराधीन बनाकर दुखी बनानेमे प्रमुख स्थान मोहनीय कर्मका है। मोहके कारण ज्ञान अज्ञानरूप बनता है। तत्त्वानुशासनमे मिथ्याज्ञानको मोह महाराजका मन्त्री कहा है—
"बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तित । मिथ्याज्ञान तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रयत ॥१२॥"
बधके कारणोमें मोह चक्रवर्ती कहा गया है। मिथ्याज्ञानने सचिवरूपमें उसका आश्रय लिया।
"ममाहकारनामानौ सेनान्यौ च तत्सुतौ। यदायत्त सुदुर्भेदो मोह-व्यूह प्रवर्तते ॥१३॥"
उस मोहके ममकार अहकार नामके दो पुत्र सेनानायक है। उन दोनोके आधीन मोहका व्यूह-सेना चक्र कार्य करता है।

पशु पर्यायके कारण कुटिल तथा छलपूर्ण मनोवृत्ति तथा प्रवृत्ति, अधर्म प्रचार, विसंवाद उत्पन्न करना, जाति, कुल तथा शीलमें कलंक लगाना, नकली नाप-तौलका सामान रखना, नकली सोना, मोती, घी, दूध, अगर, कपूर, कुंकुम आदिके द्वारा लोगोंको ठगना, सद्गुणोंका लोप करना, आर्त्तध्यान युक्त मरण करना आदि हैं।

मनुष्यायुके कारण अल्पारंभ तथा अल्पपरिग्रह, मृदुल परिणाम, महान् पुरुषोंका सम्मान, संतोष वृत्ति, दानमें प्रवृत्ति, संक्लेशका अभाव, वाणीका संयम, भोगोंके प्रति उदासीनता, पापपूर्ण कार्योंसे निवृत्ति, अतिथि-संविभागशीलता आदि है। प्रेमपूर्वक पूर्ण तथा अल्प संयमका धारण करना, संकट आनेपर शांत भाव धारण करना, तत्त्वज्ञान शून्य तपश्चर्या, दयापूर्ण अंतःकरण आदिसे देवायुकी प्राप्ति होती है।

नामके कारण—विकृत अंग उपांग होना, शरीर संबंधी दोषोंका सद्भाव, अपयश आदिका कारण अशुभ नाम कर्म है। वह मन, वचन, कायकी कुटिलता, मिथ्याप्रचार, मिथ्यात्व, परनिन्दा, मिथ्या, कठोर तथा निरंकुश भाषण, महा आरंभ और परिग्रह, आभूषणोंमें आसक्ति, मिथ्यासाक्षी, नकली पदार्थोंका देना, वनमें आग लगाना, पापपूर्ण आजीविका करना, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाम, मंदिरके धूप, गंध, माल्य, आदिका अपहरण करना, अभिमान करना, अन्यके घातक यंत्र आदि बनाना, दूसरेके द्रव्यका अपहरण करनेसे सम्पादित होता है। इस अशुभ नाम कर्मके कारण आज जगत्में शारीरिक विकृतियोंकी बहुलता दिखती है। शुभ नाम कर्मका कारण पूर्वोक्त प्रवृत्तियोंसे विपरीतपना है।

गोत्रके कारण—लोकनिन्दित कुलोंमें जन्म धारण करनेका कारण नीच गोत्र है। वह जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य आदिका मद, दूसरोंका तिरस्कार अथवा अपवाद, सत्पुरुषोंकी निंदा, यशका अपहरण करना, पूज्य पुरुषोंका तिरस्कार करना, अपनेको बडा बताना, दूसरोंकी हँसी उडाना आदिसे प्राप्त होता है। श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न होकर लोकप्रतिष्ठा लाभका कारण उच्च गोत्र कर्म है। यह मानरहितपना, सत्पुरुषोंका आदर करना, जाति-कुल आदिका उत्कर्ष होते हुए उसका अभिमान नहीं करना, अन्यका तिरस्कार, निंदा, उपहास न करना, अनुपमगुणभूषित होते हुए भी निरभिमानिता, भस्मसे ढँकी हुई अग्निके समान अपनी महिमाका स्वयं प्रकाशित न करना, धर्मके साधनोंका सम्मान करना आदिसे प्राप्त होता है।

अंतरायके कारण—प्रत्येक कार्यमें विघ्न उपस्थित करनेवाला अंतराय कर्म है। वह प्राणिवध, ज्ञानका निषेध करना, धर्म कार्योंमें विघ्न उत्पन्न करना, देवताको अर्पित नैवेद्यका प्रमादपूर्वक ग्रहण करना, भोजन पान आदिमें विघ्न करना, निर्दोष सामग्रीका परित्याग, गुरु तथा देवपूजाका व्याघात करना आदिके द्वारा सम्पन्न होता है। यह अंतराय कर्म दान देना, पदार्थोंकी प्राप्ति, उनका भोग तथा उपभोगमें बाधा उत्पन्न करता है। इसके ही कारण जीव शक्तिहीन होता है।

उपरोक्त कारणोंसे ज्ञानावरण आदिको विशेष अनुभाग मिलता है कारण आयु कर्मको छोडकर शेष कर्मोंका निरंतर बंध हुआ करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसीने यदि ज्ञानके साधनोंमें बाधा उपस्थित की तो उसके मोहनीय अंतराय आदि कर्मोंका भी आस्रव होगा। इतनी विशेषता होगी कि ज्ञानावरणको विशेष अनुभाग मिलेगा, ज्ञानावरणके रसमें प्रकर्षता होगी।

तत्त्वज्ञानीके बंध होता है या नहीं ?

इस बंधतत्त्वके विषयमें कुछ लोगोंकी ऐसी समझ है कि सम्यक्त्वकी आत्मनिधि मिलनेपर आत्माकी बंध-परम्परा नष्ट हो जाती है। वे कहते हैं बंधका कारण अज्ञान चेतना है। सम्यग्दृष्टिके ज्ञान चेतना होती है, इसलिए वह बंधनकी व्यथासे मुक्त है। ज्ञानसे मुक्ति लाभका समर्थन सांख्य, बौद्ध, नैयायिक आदि भी करते हैं। यदि ज्ञान अथवा सम्यग्दर्शनके द्वारा कर्मोंका अभाव हो जाये, तो रत्नत्रय मार्गकी मान्यताके साथ कैसे समन्वय होगा ?

सम्यग्दृष्टिके बंधके विषयमें अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—"ज्ञानी जीव आस्रव-भावनाके अभिप्रायके अभाववश निरास्रव हैं। वहाँ उसके भी द्रव्यप्रत्यय प्रत्येक समय अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मोंको बांधते हैं। इसमे ज्ञानगुणका परिणमन कारण है।"

यहाँ शंकाकार पूछता है—ज्ञानगुणका परिणमन बंधका हेतु किस प्रकार है?

इसपर महर्षि कुन्दकुन्द कहते हैं—

"जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।
अण्णत्त णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो॥"—स० सा० १७१।

—'यत ज्ञानगुण जघन्य ज्ञानगुणसे पुन अन्यरूप परिणमन करता है, तत वह ज्ञानगुण कर्मका बंधक कहा गया है।'

इस प्रकार प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं—"ज्ञानगुणस्य यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यान्तर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयाऽस्ति परिणामः। स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्ता दवश्यम्भाविरागसद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात्" 'जबतक ज्ञानगुणका जघन्यभाव है—क्षायोपशमिक भाव है, तबतक उसका अंतर्मुहूर्तमें विपरिणमन होता है, इस कारण पुन पुन अन्यरूप परिणमन होता है। वह ज्ञानका परिणमन यथाख्यात चारित्ररूप अवस्थाके नीचे निश्चयसे रागसहित होनेसे बंधका ही कारण है।"

सर्वार्थसिद्धिमे कहा है, "यथाख्यात-विहारशुद्धि-संयता उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ता" (१८ पृष्ठ १२)—यथाख्यात विहारशुद्धि संयमी उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानसे अयोगी जिन-पर्यन्त पाये जाते हैं। अत कषायरहित जीवोंके ही अबंध होता है। अध्यात्मशास्त्रमें सम्यक्त्वीके अबंधकपने-का अर्थ यही है, कि कषायरहित सम्यक्त्वीके बंध नही होता है। शेषके बंध होता है। जिसके कषाय है, उसके अवश्य बंध होता है।

यदि ज्ञान गुणका जघन्य भावरूप परिणमन बंधका कारण है, तो ज्ञानीको कैसे निरास्रव कहा? इस शंकाके समाधानमे आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं—

"दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्ण-भावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण॥"—समयसार १७२।

—"दर्शनज्ञानचारित्रका जघन्य भावसे परिणमन होता है, इससे ज्ञानी जीव अनेक प्रकारके पुद्गल कर्मोंसे बंधता है।"

इस विषयपर विशेष प्रकाश डालते हुए टीकाकार जयसेनाचार्य लिखते हैं (समयसार पृ० २४५)—"इस कारण भेदज्ञानी अपने गुणस्थानोंके अनुसार परम्परा रूपसे मुक्तिके कारण तीर्थंकर नामकर्म आदि प्रकृतिरूप पुद्गलात्मक अनेक पुण्यकर्मोंमे बँधता है।"

शंका—कोई स्वाध्यायशील व्यक्ति पूछता है यदि उपरोक्त कथन ठीक है, तो उसका भगव-त्कुन्दकुन्दके इस वचनसे किस प्रकार समन्वय होगा—

"रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।।" १७७

'सम्यक्त्वीके राग, द्वेष, मोह रूप आस्रवोंका अभाव है।' इस गाथाके उत्तरार्धमें आचार्य लिखते हैं—

"तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति।"

—अर्थात् इस कारण आस्रवभावके अभावमें द्रव्य प्रत्यय कर्मबन्धके कारण नही होते है।

समाधान—इस विषयमें विरोधकी कल्पनाका निराकरण करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—"सम्यग्दृष्टिके अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, मिथ्यात्वोदय जनित राग-द्वेष मोह नहीं है, अन्यथा

केवल सम्यग्दर्शनसे सुगति प्राप्त होती है तथा मिथ्यात्वसे नियमसे कुगति मिलती है, यह कथन कुन्दकुन्द स्वामीको भी सम्मत है इससे वे कहते हैं—

"सम्मत्तगुणाइ सुगइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुच्चेइ तं कुणहो ॥११॥"

सम्यक्त्वके कारण सुगति तथा मिथ्यात्वसे नियमसे दुर्गति होती है, ऐसा जानो। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ? जो तुझको रुचे, वह कर।

प्रवचनसारमे कहा है—

"ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे असजदो वा ण णिव्वादि ॥३।३७॥"

यदि पदार्थोंकी सम्यक् श्रद्धा नही है तो शास्त्रज्ञानके बलसे मोक्ष नही होगा। कदाचित् पदार्थोंकी श्रद्धा भी है और सयम नही है तो ऐसा असयमी सम्यक्त्वी भी मोक्ष नहीं पायेगा। अत अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं, "ततः सयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः।" (पृ० ३२८)

अयोगकेवली रूप सम्यक्त्वीके सर्वथा बधका अभाव है। उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय तथा सयोगी जिनके केवल सातावेदनीयका प्रकृति तथा प्रदेशबध योगके कारण होता है। उनमे [illegible] होते हैं।

सम्यक्त्वी ही कुछ प्रकृतियोंका वंधक—कर्मोंमे कुछ प्रकृतियाँ तो मिथ्यात्वी और [illegible] और कुछ ऐसी प्रकृतियां जिनके लिए विशुद्धभाव कारण होनेसे सम्यक्त्वो हो बधक कहा गया है। [illegible] नहीं शुक्लध्यानी, शुद्धोपयोगी मुनीन्द्र तक पुण्य कर्म रूप प्रकृतियोका बध करते है। जिनके क्रोध, मान तथा माया कषायका अभाव हो चुका है, ऐसे सूक्ष्म लोभ गुणस्थान वाले मुनिराजके उच्चगोत्र, यश कीर्ति आदि पुण्य प्रकृतियाँ उत्कृष्ट अनुभागबध युक्त बँधती है। महाबधमें लिखा है, "आहारशरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं को बधको ? को अबधको ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए सखेज्जभाग गतूण बधो वोच्छिज्जदि। एदे बधा, अवसेसा अबधा—आहारकशरीर तथा आहारकशरीरागोपागका कौन बधक है, कौन अबधक है ? अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि तथा अपूर्वकरणके कालमें सख्यातभाग व्यतीत होनेपर बधकी व्युच्छित्ति होती है। उपरोक्त गुणस्थानवाले बधक है, शेष अबधक हैं।

है, ऐसी बात नही है। चेतनाके स्वरूपपर विशेष प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्रसूरि समयसारको टीकामें (पृ० ४८९) लिखते है—"ज्ञानसे अन्यत्र मै 'यह' हूँ, इस प्रकारका चिन्तन अज्ञानचेतना है। वह कर्मचेतना कर्मफलचेतनाके भेदसे दो प्रकारकी है। ज्ञानसे पृथक् मै 'यह' करता हूँ, यह चिंतन कर्मचेतना है। ज्ञानसे अन्य मैं यह अनुभव करता हूँ, इस प्रकारका चिंतन कर्मफलचेतना है। दोनो चेतनाएँ समान रसवाली है तथा ससारकी कारण है। ससारका बीज अष्टविध कर्मोके बीजरूप होता है। अत. मुमुक्षुको उचित है कि वह अज्ञानचेतनाको दूर करनेके लिए सम्पूर्ण कर्मोके त्यागकी भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्यागकी भावनाको नृत्य कराकर आत्मस्वरूपवाली भगवती ज्ञानचेतनाको ही नित्य नृत्य करावे।"

इस विषयको अधिक स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—"मेरा कर्म है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञानभावसे मन वचन कायकी क्रिया करना कर्मचेतना है। आत्मस्वभावसे रहित अज्ञानभाव-द्वारा इष्ट अनिष्ट विकल्परूपसे, हर्ष, विषाद, सुख-दु खका जो अनुभवन करना है, वह कर्मफल चेतना है। (पृ० ४९०) कुदकुद स्वामी प्रवचनसारमें कहते है—

"परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥२।३१॥"

—'चेतनाकी ज्ञानरूप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कर्मचेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल चेतना है।'

इससे यह प्रकट होता है कि ज्ञानचेतनामें ज्ञातृत्व भाव है, कर्मचेतनामे कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतनामें भोक्तृत्व भाव है।

सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मफल चेतनाका सद्भाव

सम्यक्त्वीके ज्ञान चेतना ही पायी जाती है, इस भ्रमका निवारण करते हुए पचाध्यायीकार कहते है—

"अस्ति तस्यापि सद्दृष्टेः कस्यचित् कर्मचेतना।
अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥२।२७५॥"

—'किसी सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मचेतना भी पायी जाती है। किन्तु परमार्थसे सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना पायी जाती है।'

यहाँ पूर्णज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वीको लक्ष्यमें रखकर उसके ज्ञानचेतनाका परमार्थ रूपसे सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूर्ण ज्ञानीकी अपेक्षा कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही है। इस दृष्टिका स्पष्टीकरण निम्नलिखित पद्यसे होता है—

"चेतनाया. फल बन्धस्तत्फले वाऽथ कर्मणि।
रागाभावान्न बन्धोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥२।२७६॥"

—'कर्म तथा कर्मफल चेतनाका फल बंध कहा है। उस सम्यक्त्वीके रागका अभाव होनेसे बध नहीं है। अत उसके ज्ञानचेतना है।' यहाँ रागाभाव होनेसे बधका अभाव कहा है। यह रागाभाव उपशान्तकषायादि गुणस्थानमें होगा, अत उसके पूर्व रागभावका सद्भाव होनेसे बधका होना स्वीकार करना होगा। यथार्थ ज्ञानचेतना केवलज्ञानीके होगी जिनके अज्ञानका अभाव हो गया है और छद्मस्थ अवस्थासे अतीत हो गये हैं। कुदकुद स्वामीकी यह गाथा इस विषयमें बहुत उपयोगी है[1]—

---

१ "सर्वे कर्मफलं मुख्यभावेन स्थावरास्त्रसा। सकार्यं चेतयन्तस्ते प्राणित्वाज्ञानमेव च ॥"
—अन० ध० २।३

"सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसादि कज्जजुदं ।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विदंति ते जीवा ॥"–प० का० ३९ ।

—"सम्पूर्ण स्थावर जीवोंके कर्मफल चेतना है। त्रस जीवोंमें कर्मफलके सिवाय कर्मचेतना भी पायी जाती है। प्राणी इस व्यपदेशको अतिक्रान्त जीवन्मुक्त ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं। यहाँ जीवन्मुक्त शब्दका अर्थ अविरत सम्यक्त्वी नहीं, किन्तु केवली भगवान् हैं, कारण टीकाकार अमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि संपूर्ण मोह कलंकके नाशक, ज्ञानावरण-दर्शनावरणके ध्वंस करनेवाले, वीर्यान्तरायके क्षयसे अनन्तवीर्यको प्राप्त करनेवाले अत्यन्त कृतकृत्य केवली भगवान् ज्ञानचेतनाको ही अनुभव करते हैं।

पंचास्तिकाय टीकाके ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—"तत्र स्थावराः कर्मफलं चेतयन्ते। त्रसाः कार्यं चेतयन्ते। केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयन्ते" (पंचास्तिकाय टीका पृ० १२) स्थावर जीव कर्मफल चेतनाका अनुभवन करते हैं। त्रस जीव कर्मचेतनाका अनुभव करते हैं। केवलज्ञानी ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं।

अनगार धर्मामृतकी संस्कृत टीका (पृ० १०७) में पंडितप्रवर आशाधरजी लिखते हैं—"जीवन्मुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम्। गौणतया त्वन्यदपि। 'सा चोभयमपि जीवन्मुक्तेर्गौणी बुद्धिपूर्वक-कर्तृत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्'"—जीवन्मुक्तोंके मुख्यतासे ज्ञानचेतना है। गौणरूपसे उनके अन्य भी चेतनाएँ हैं। वे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ जीवन्मुक्तमें मुख्य नहीं, किन्तु गौणरूप हैं, कारण उनमें बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अभाव हो चुका है।

इस विवेचनसे यह विदित हो जाता है, कि केवली भगवान्से नीचेके गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी जीवोंमें कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती हैं। अविरत सम्यक्त्वीके विचित्र कार्योंको बन्धरहित बताना और उसे सदा सजग ज्ञानचेतनाका ही स्वामी कहना बड़ी आश्चर्यप्रद बात है। क्षायिक सम्यक्त्वी श्रेणिक महाराजने आत्मघात करके प्राण परित्याग किये। परम धार्मिक सीताके प्रतीन्द्र पर्यायके जीवनने तपश्चर्यामें निमग्न महामुनि रामचन्द्रको धर्मसे डिगानेका मोहवश प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजीका सीताके स्वर्गमें ही उत्पाद हो जाये। ये क्रियाएँ शुद्धचेतनाके प्रकाशको नहीं बताती हैं। इनपर कर्म, कर्मफल चेतनाओंका प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। चारित्रमोहोदयवश ये क्रियाएँ हुआ करती हैं। 'सदन-निवासी, तदपि उदासी तातैं आस्रव छटाछटीसी'—यह सम्यक्त्वी गृहस्थका चित्रण संपूर्ण आस्रवके निरोधको नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी तथा असंयम निमित्तक आस्रवके निरोधका ज्ञापक है। अतः परमागमके प्रकाशसे ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वीके जघन्य अवस्थामें ज्ञानचेतनाके सिवाय कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती हैं, उनके कारण वह किन्हीं प्रकृतियोंका बंध नहीं करता है और किन्हीं कर्म प्रकृतियोंका बंध भी करता है। इस प्रकारका स्याद्वाद है।

ग्रंथका विषय—महाबंधके इस पयडिबंधाहियार—प्रकृतिबंधाधिकार नामक खंडमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वबंध, नोसर्वबंध, उत्कृष्टबंध, अनुत्कृष्टबंध, जघन्यबंध, अजघन्यबंध, सादिबंध, अनादिबंध, ध्रुवबंध, अध्रुवबंध, बंधस्वामित्वविचय, बंधकाल, बंध-अन्तर, बंधसन्निकर्ष, भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन चौबीस अनुयोगद्वारोंसे प्रकृतिबंधपर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबंधनके कारण अनंत ज्ञान-आनंद शक्ति आदिका अधिपति यह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन बिना कष्ट उठाता है। इस आत्माका यथार्थ कल्याण आत्मीय दोषोंके निर्मूल करनेमें है। समाधिकी प्रचण्ड अग्नि-द्वारा इस दोष-पुञ्जका अविलम्ब क्षय होता है। संवर और निर्जरा रूप परिणतिसे उस स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते हैं। इस पदका प्रधान कारण भेदज्ञानकी प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञानदर्शनमय है, शेष सर्व अनात्म भाव हैं। इस विद्याके प्रभावसे सिद्धत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बंधकी विपत्तिसे बचनेके लिए योगीन्द्रदेव कहते हैं—

"अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म मोव ।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहु, अप्पा विमलु मुएवि ॥" अध्यात्मप्रकाश ९६ ।

"आत्मन् ! तू दूसरे तीर्थोंको मत जा, अन्य गुरुकी शरणमे मत पहुँच, अन्य देवका चिंतवन मत कर । अपनी निर्मल आत्माका चिंतन कर ।"

जब आत्मा यह समझ लेता है, कि मैं कर्मोंके बंधनमें बद्ध हो गया हूँ किंतु मैं इससे भिन्न स्वरूप-वाला हूँ, तब उसे सच्चा प्रकाश प्राप्त हो जाता है । तत्त्वकी बात तो इतनी है—

"भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥"

'जो जीव सिद्ध हुए हैं, वे सब अभेदरत्नत्रय स्वरूप भेद विज्ञानसे सिद्ध हुए हैं । जो अबतक ससारमें बद्ध हैं, वे उस निर्विकल्पज्ञानके अभावसे बँधे हैं ।

भेद विज्ञानकी लोकोत्तरता

भेदविज्ञानकी उपलब्धि सरल कार्य नही है । उसके लिए ही सर्व उद्योग मुमुक्षुपुरुष किया करते है । विश्वके अतुलनीय साम्राज्य और विभूतिका त्याग करके भी उसकी प्राप्ति दुर्लभ रहती है । भेदविज्ञानके पश्चात् अद्वैत भावनाके अभ्यास द्वारा निर्विकल्प समाधिको प्राप्त करके जब जीव एकत्व-वितर्क नामके द्वितीय शुक्लध्यानको प्राप्त करता है, तब कर्मोका राजा मोहनीय क्षयको प्राप्त होता है । उस समय क्षण-मात्रमें आत्मा अर्हन्त बनकर अनतज्ञान, अनंतदर्शन, अनतसुख तथा अनतवीर्य रूप अनत चतुष्टयसे समलंकृत होता है । उस प्राप्तव्य परम पदवीके लिए उपायरूप मार्गदर्शन गुणभद्राचार्यके इन शब्दो-द्वारा प्राप्त होता है—

"अकिंचनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवे ।
योगिगम्य तव प्रोक्त रहस्य परमात्मनः ॥११०॥"—आत्मानुशासन ।

हे भद्र ! 'अकिंचनोऽहं' 'मेरा कुछ नही है', इस भावनाके साथ स्थित हो । ऐसा करनेसे तू त्रिलोकी-नाथ बन जायेगा । मैंने यह तुझको परमात्माका रहस्य कहा है, जो योगियोके ही अनुभवगम्य है ।

सत्पथ—इस अकिंचनपनेकी भावनाके साथ सयमशील पुनीत जीवन भी आवश्यक है । वे मुनीश्वर यह मार्मिक बात कहते हैं—

"दुर्लभ मशुद्ध मपसुख मविदितमृतिसमय मल्पपरमायु ।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तप. कार्यम् ॥१११॥"

यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ, अशुद्ध, सुखरहित है । इस पर्यायमें आगामी मरण कब होगा, यह अविदित है । अन्य पर्यायोकी तुलनामें आयु भी थोडी है । यह विशेष बात है कि तप साधना इसी पर्यायमें सभव है । कर्मक्षयरूप मुक्ति उसी तपसे प्राप्त होती है । इससे तपका आचरण भी करना चाहिए ।

आचार्य वादीभसिंहसूरि क्षत्रचूडामणिमें कहते है—

"नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मत ।
तिरश्चि निरये पापाद्दिवि पुण्याद्द्वयान्नरे ॥११-३६॥"

"हे आत्मन् ! तू अपने कर्मके उदयसे नाटकके नटके समान जगत्मे भ्रमण करता है । पापके उदयसे तिर्यंच और नरक पर्याय पाता है । पुण्यके उदयसे देव होता है तथा पाप और पुण्यके संयुक्त उदयसे मनुष्य पर्याय पाता है ।"

"स्वमेव कर्मणां कर्त्ता भोक्ता च फलसन्तते ।
मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनाया न चेष्टसे ॥४५॥"

हे आत्मन् ! तू ही अपने कर्मोंका बंध करता है और उसकी फलपरंपराका भोक्ता भी तू है। तू ही कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ है। हे तात ! मुक्ति तेरे स्वाधीन है, उसके लिए क्यों नहीं उद्योग करता है ?

कवि कर्मोंके कुचक्रसे बचनेके हेतु आत्माको सचेत करता हुआ कहता है, भद्र ! तू इन कर्मशत्रुओंके दुष्कृत्योंपर दृष्टि देकर उनके विषयमें धोखा मत खा। इन कर्मोंका ढंग बड़ा अद्भुत है। क्षणभरमें ये तुझे सिंहासनका अधिपति बनाकर दूसरे कालमें ये तुझे भिखारी भी बना सकते हैं। इनपर विश्वास मत कर—

"आठन की करतूति विचारहु कौन-कौन ये करते हाल।
कबहूँ सिर पर छत्र फिरावें, कबहूँ रूप करें बेहाल ॥
देव लोक सुख कबहूँ भुगते, कबहूँ रंच नाज को काल।
ये करतूति करें कर्मादिक चेतन रूप तू आप सम्हाल ॥"

सारकी बात

मोक्ष प्राप्त करनेके लिए पुरुषार्थी मानवको आत्मा और अनात्माका पूर्णतया स्पष्ट अवबोध आवश्यक है। इसके पश्चात् जीव परम-यथाख्यात चारित्रके द्वारा कर्म शैलके ध्वंस करनेमें समर्थ होता है। आचार्य कुंदकुंदकी यह अमृतवाणी अमृतपथको इन सारगर्भित शब्दों-द्वारा स्पष्ट करती है—

"बंधाण च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्म विमोक्खणं कुणइ ॥२९३॥"

जो विवेकी बंधका तथा आत्माका स्वभाव सम्यक् प्रकारसे अवगत कर बंधसे विरक्त होता है, वह कर्मोंका पूर्णतया क्षय करता है।[1]

तत्त्वानुशासनकी यह तत्त्वदेशना अभिवंदनीय है—

"कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यः भावेभ्यो भिन्नमन्वहम्।
ज्ञ-स्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥१६४॥"

मेरा आत्मा संपूर्ण कर्मजनित भावोंसे सर्वदा भिन्न है तथा वह ज्ञान स्वभाव एवं उदासीनरूप (राग द्वेषरहित) है, ऐसा अपनी आत्माके द्वारा आत्माका दर्शन करे।

---

[1] Whoever with a clear knowledge of the nature of Karmic bondage as well as the nature of the Self, does not get attracted by bondage—that person obtains liberation from karmas (Samayasara by Prof A. Chakravarti, P. 189)

महाबंध

[मूल और हिन्दी अनुवाद]

महाबंधस्स

पयडिबंधो

पढमो अत्थाहियारो

मंगल-स्मरणम्

बारह-अंगगिज्झा वियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया ।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं ॥ १ ॥

❀

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडि-पाहुडसेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स ॥ २ ॥

❀

पणमह कय-भूय-बलि भूयबलि केस-वास-परिभूय-बलिं ।
विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-बम्मह-पसरं ॥ ३ ॥

❀

भूतबलिप्रणीतं तं बन्धतत्त्वप्रकाशकम् ।
महाधवलविख्यातं महाबन्धं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

❀

सिद्धानां कीर्त्तनादन्ते यः सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाक् ।
सोऽनाद्यनन्तसंतानः सिद्धान्तो नोऽवताच्चिरम् ॥ ५ ॥

❀

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुह-विरेयणं अमिदभूयं ।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ ६ ॥

जयउ सुय-देवदा

होते है। वे राग-द्वेषकी दुविधाके चक्करसे परे पहुँच चुके है। ऐसी व्यवस्था होते हुए मंगलगाथामें सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थनाका क्या रहस्य है? यह विशेष विचारणीय है। यदि भगवान् यथार्थमे प्रसन्न हो गये, तो उनकी वीतरागता कहाँ रही और यदि वे प्रसन्न न हुए, तो प्रसन्नताकी प्रार्थना अप्रयोजनीक ठहरती है।

यथार्थ बात यह है कि प्रसन्न—निर्मलभावपूर्वक प्रभुकी आराधना करनेवाला भक्त उपचारसे प्रभुमें प्रसन्नताका आरोप करता है।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामे लिखते है—वीतरागमें क्रोधके समान सन्तोपलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरण-द्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षासे भगवान्को प्रसन्न कहते है जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मै नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्त कर भक्त उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गयी है।

तिहुवण-भवणप्पसरिय-पच्चक्खबोह-किरण-परिवेदो।
उइओ वि अणत्थवणो अरहत-दिवायरो जयउ॥ २॥

अर्थ—दुःखरूप तीव्र प्याससे पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागवश जिन्होंने श्रुतज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा-प्याऊ स्थापित की है, वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होवे।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंको विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयतृष्णाके तापसे नहीं बच सके है। उनकी तृष्णाग्नि तो और अधिक प्रज्वलित रहती है। इस तृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ करती है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी तृषानिवृत्ति-निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था करते हैं, जिससे सबको मधुर शीतल जलकी प्राप्ति हो, उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीने परम करुणाभावसे विषयोंकी तृष्णासे सन्तप्त भव्योंके कल्याणार्थ श्रुतज्ञानरूप प्रपा स्थापित की है। उनके द्वारा शास्त्रका उपदेश होते रहनेसे तथा आगमका शिक्षण होनेसे भव्यात्माओंकी विषयतृष्णा कम होती जाती है और वे आत्मोन्मुख बनकर विषयोंकी आशा ही नहीं करती हैं। श्रुतज्ञान प्रपाके जलका पान करनेसे भोगोंकी अभिलाषारूप तृषा दूर होती है तथा आत्मा, स्वरूपकी उपलब्धि कर, महान् शान्तिका लाभ करती है। द्वादशागरूप महाशास्त्र-सिन्धुमे अवगाहन कर अपनी पिपासाकी शान्ति साधारण आत्माएँ नहीं कर पाती हैं अतः उनके हितार्थ प्रपा बनायी गयी, जहाँ अपनी मन्दमतिरूपी चुल्लूमे श्रुतरूपी पानी भरकर आत्मा पिपासाकी शान्ति करती है। जितना-जितना यह जीव श्रुतज्ञानके रसका पान करता है और अपनी आत्माको तृप्त करता है, उतना-उतना वह सन्तापमुक्त हो शान्ति लाभ करता है।

---

१. शंका–राग परिणाम मोहनीय कर्मका भेद है। मोहनीय कर्म घातिया कर्मोंमे प्रमुख है। घातिया कर्म जब पाप प्रकृतियोमे अन्तर्भूत हैं, तब रागभाव भी पापप्रकृति रूप स्वय सिद्ध होता है। अतएव पाप-प्रकृति रूप राग परिणामको 'सुट्ठु' (शुभ) रूप कहना कैसे उचित होगा?

समाधान–इस विषयमें सन्देह निवारण हेतु महर्षि कुन्दकुन्द स्वामीके प्रवचनसारसे प्रकाश प्राप्त होता है। वहाँ ज्ञेयाधिकारमें रागभावके शुभ तथा अशुभ रूप भेद कहे गये हैं—"सुहो व असुहो हवदि रागो॥ (१८०) उक्त ग्रन्थके चारित्र अधिकारमें लिखा है—"रागो पसत्थभूदो" (२५५) राग प्रशस्त रूप होता है। अत राग परिणाम प्रशस्त रूप भी होता है, यह कथन आगमके प्रतिकूल नही है। रागको शुभ या प्रशस्त कहनेका कारण यह है कि उसके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है। जिस रागात्मक चित्त-वृत्तिके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है उस पुण्यबन्धके उत्पादक राग भावको आगममे शुभ राग या प्रशस्त राग माना गया है। शुभ भाव पुण्यबन्धका कारण कहा गया है। कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है—

सुहपरिणामो पुण्ण असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये॥ १८१॥

—प्रवचनसार

शुभ परिणाम रूप रागभावमे पुण्यका बन्ध होता है और अशुभ भावसे पापका बन्ध होता है। अन्यमे रमण न करनेवाला शुद्धभाव आगममें समस्त दु खोंके क्षयका कारण कहा गया है।

इस कारण शुभ रागभावमे प्रेरित होकर उपाध्याय परमेष्ठी दु खी जीवोंका सन्ताप दूर करते है।

संधारिय-सीलहरा उत्तारिय-चिरपमाद-दुस्सीलभरा।
साहू जयंतु सव्वे सिवसुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभया[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने शीलरूप हारको धारण किया है, चिरकालीन प्रमाद तथा कुशीलके भारको दूर कर दिया है, जो शिव-सुखके मार्गमे स्थित है तथा निर्भीक है, वे सर्व साधु जयवन्त हों।

भावार्थ—हारके धारण करनेसे कण्ठ शोभनीक मालूम पडता है, इसीलिए साधुओंने शीलरूप हारसे अपने कण्ठको भूषित किया है। कण्ठमे स्थित हार प्रत्येकके देखनेमें आता है, साधुओंकी दिगम्बर वृत्ति होनेके कारण उनके शीलरूपी हारको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है। प्रायः संसारी जन प्रमाद तथा कुशील (अनात्मभाव) मे निमग्न रहा करते है किन्तु मुनिराज प्रमादोंका परित्याग करते है, तथा ब्रह्मचर्यमे निमग्न रहनेके कारण कुशील रूप विकारी भावसे दूर रहते है। निरन्तर कर्मशत्रुओंका सहार करनेमें सलग्न रहनेके कारण उनके पास प्रमादका अवसर ही नहीं आता है। आत्मकल्याणमे वे सदा सावधान रहते है। महर्षि पूज्यपादके शब्दोंमे वे मुनिराज बोलते हुए भी मौनीके समान रहते है, गमन करते हुए भी नहीं गमन करते हुए सरीखे है, देखते हुए भी नहीं देखते हुए सदृश है, कारण उन्होंने आत्मतत्त्वमे स्थिरता प्राप्त की है[2]। सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग करके तथा सकल सयमको अगीकार करनेके कारण वे निराकुलतापूर्ण यथार्थ निर्वाण सुखके मार्गमे प्रवृत्त है। उन्हें जीवनकी न ममता है, न मृत्युका भय है। तिलतुषमात्र भी परिग्रह न रहनेसे किसी प्रकारकी भीति नहीं है। वे आत्माको अजर-अमर तथा अविनाशी आनन्दका भण्डार समझ भयमुक्त रहते हैं। ऐसी उज्ज्वल आत्माओंके प्रसादसे अनुवादक निर्विघ्न रूपसे ग्रन्थसमाप्तिके लिए मगलकामना करता है।

[मूलग्रन्थका मंगल]

महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतके प्रारम्भमे **गौतम गणधर**-द्वारा विरचित मंगलको वहाँसे उद्धृत कर भूतबलि आचार्य इस शास्त्रका मगल मान ग्रन्थारम्भ करते है। द्रव्यार्थिक नयाश्रित भव्य[3] जीवोंके अनुग्रहार्थ गौतम स्वामी सूत्रका प्रणयन करते हुए कहते है—

णमो जिणाणं[4] ॥ १ ॥

अर्थ—जिन भगवान्‌को नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिन शब्दसे तात्पर्य उन श्रेष्ठ आत्माओंसे है, जिन्होंने सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमे निविड रूपसे निबद्ध घातियाकर्मरूप मेघपटलको दूर करके अनन्तज्ञान, अनन्त-

---

१ "धीरधरियसीलमाला ववगयराया जसोहपडहत्था। बहु-विणय-भूसियगा सुहाइ साहू पयच्छंतु ॥"—नि० प० गा० ५। २ "ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति। स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥"—इष्टोप० श्लो० ४१। ३ "एव दव्वट्ठिय–जणाणुग्गहणट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण "—ध० टी०। ४ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं।"—भ० क० य० १। "ॐ ह्रीं जिणाणं " —भ० क० य० २।

दर्शन[1], अनन्त-दानादि नव केवल लब्धियोंको प्राप्त किया है, जिन्होंने अनेक विषम भवोंके गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्मशत्रुओंको जीता है—निर्जरा की है, वे जिन हैं। जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया है वे सकल अर्थात् पूर्णरूपसे जिन कहलाते हैं। उनमें अरहन्त और सिद्ध गर्भित हैं। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एकदेश जिन कहे जाते हैं।

शंका—इसपर विशेष प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे सूत्रके टीकाकार वीरसेनाचार्य कहते हैं - यह सूत्र क्यों कहा गया ?

समाधान—मंगलके लिए कहा गया है। पुनः प्रश्न उठता है कि मंगल क्या है ? पूर्व-संचित कर्मोंका विनाश मंगल है।

शंका—यदि मंगलका यह भाव है, तो यह सूत्र निष्फल है कारण जिनेन्द्रके मुखसे विनिर्गत है अर्थ जिसका, जो अविसंवादसे केवलज्ञानके समान है तथा वृषभसेनादि गणधर देवोंके द्वारा जिनकी शब्दरचना की गयी है ऐसे सर्व सूत्रोंके पठन, मनन तथा क्रियामें प्रवृत्त सम्पूर्ण जीवोंके प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी रूपसे पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है। कदाचित् यह मंगलसूत्र सफल है, तो ग्रन्थरूप सूत्रका अध्ययन निष्फल है, क्योंकि उससे उत्पन्न कर्मक्षयकी उपलब्धि इसके ही द्वारा हो जायेगी।

समाधान—यह ठीक नहीं है। सूत्राध्ययन-द्वारा सामान्यरूपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, किन्तु इस मंगल सूत्रसे स्वाध्यायमें विघ्नकारक कर्मका नाश होता है। इस कारण मंगल सूत्रका प्रारम्भ हुआ।

शंका—तीव्र[3] कषाय, इन्द्रिय तथा मोहका विजय करनेसे सकल जिनोंका नमस्कार पापनाशक हो, कारण उनमें सम्पूर्ण गुणोंका सद्भाव पाया जाता है, किन्तु यह बात देशजिनोंमें नहीं पायी जाती। अतः 'णमो जिणाणं' सूत्र-द्वारा अरहन्त-सिद्धके सिवाय आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीका नमस्कार मानना युक्तियुक्त नहीं है।

---

१. "सकलात्मप्रदेश - निबिड - निबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनवकेवललब्धिवान् जिन।" -गो० जी० जी० प्र०। "अनेकविषमभवगहनदुःखप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयन्ति, निर्जरयन्तीति जिना ॥" -गो० जी० मं० प्र० टी०। २ किमट्ठमिदं वुच्चदे ? मंगलट्ठं। किं मंगलं ? पुव्वसंचियकम्मविणासो। जदि एवं तो जिणवयणविणिग्गयत्थादो अविसंवादेण केवलणाणसमाणादो उसहसेणादिगणहरदेवेहि विरइयसद्दरयणादो सव्वसुत्तादो तप्पढण-गुणण किरियावावदाणं सव्वजीवाणं पडिसमयमसंखेज्जगुणसेडीए पुव्वसंचिदकम्मणिज्जरा होदि त्ति णिप्फलादिमुत्तमिदं। अह सफलमिदं, णिप्फलं सुत्तज्झयणं, तत्तो समुवजायमाणकम्मक्खयस्स एत्थेवोवलंभो त्ति। ण एस दोसो, सुत्तज्झयणेण सामण्णकम्मणिज्जरा कीरदे एदेण पुण सुत्तज्झयण-विग्घ-फल-कम्मविणासो कीरदि त्ति, भिण्णविसयत्तादो सुत्तज्झयणविग्घफलकम्मविणासो सामण्णकम्मविरोहमुत्तब्भामादो चेव होदि त्ति मंगलसुत्तारंभो। जिणा दुविहा सयल-देसजिणभेएण। खवियघाइकम्मा सयलजिणा। के ते ? अरिहंतसिद्धा। अवरे आइरिय-उवज्झाय-साहू देसजिणा, तिव्वकसाय-इंदियमोहविजयादो।" -ध० टी० वे०। ३ "सयलासयलजिणट्ठियतिरयणाणं ण समाणत्तं, सपुण्णासपुण्णाणं समाणत्तविरोहादो। सपुण्ण-तिरयणकज्जमसपुण्ण-तिरयणाणि ण करेंति, असमाणत्तादो त्ति। ण, दंसणणाणचरणाणमुप्पण्णसमाणत्तुवलंभादो। ण च असमाणाणं कज्जं असमाणमेवेत्ति णियमो अत्थि, संपुण्णअग्गिणा कीरमाणदाहकज्जस्स तदवयवेवि उवलंभादो। अमियघडसएण कीरमाण णिव्विसीकरणादिकज्जस्स अमियचुलुएवि उवलंभादो वा। ण च तिरयणाणं देसजिणट्ठियाणं सयलजिणट्ठिएहि भेओ। एवं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणदि।"-ध० टी० वेदना० प० ६२३।

संधारिय-सीलहरा उत्तारिय-चिरपमाद-दुस्सीलभरा ।
साहू जयंतु सव्वे सिवसुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभया[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने शीलरूप हारको धारण किया है, चिरकालीन प्रमाद तथा कुशीलके भारको दूर कर दिया है, जो शिव-सुखके मार्गमें स्थित है तथा निर्भीक है, वे सर्व साधु जयवन्त हों ।

भावार्थ—हारके धारण करनेसे कण्ठ शोभनीक मालूम पडता है, इसीलिए साधुओंने शीलरूप हारसे अपने कण्ठको भूषित किया है । कण्ठमे स्थित हार प्रत्येकके देखनेमे आता है, साधुओंकी दिगम्बर वृत्ति होनेके कारण उनके शीलरूपी हारको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है । प्रायः ससारी जन प्रमाद तथा कुशील (अनात्मभाव) में निमग्न रहा करते है किन्तु मुनिराज प्रमादोंका परित्याग करते है, तथा ब्रह्मचर्यमे निमग्न रहनेके कारण कुशील रूप विकारी भावसे दूर रहते है । निरन्तर कर्मशत्रुओंका संहार करनेमें सलग्न रहनेके कारण उनके पास प्रमादका अवसर ही नहीं आता है । आत्मकल्याणमें वे सदा सावधान रहते है । महर्षि पूज्यपाद के शब्दोमे वे मुनिराज बोलते हुए भी मौनीके समान रहते है, गमन करते हुए भी नहीं गमन करते हुए सरीखे है, देखते हुए भी नही देखते हुए सदृश है, कारण उन्होंने आत्मतत्त्वमें स्थिरता प्राप्त की है[2] । सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग करके तथा सकल सयमको अगीकार करनेके कारण वे निराकुलतापूर्ण यथार्थ निर्वाण सुखके मार्गमें प्रवृत्त है । उन्हे जीवनकी न ममता है, न मृत्युका भय है । तिलतुषमात्र भी परिग्रह न रहनेसे किसी प्रकारकी भीति नहीं है । वे आत्माको अजर-अमर तथा अविनाशी आनन्दका भण्डार समझ भयमुक्त रहते हैं। ऐसी उज्ज्वल आत्माओंके प्रसादसे अनुवादक निर्विघ्न रूपसे ग्रन्थसमाप्तिके लिए मंगलकामना करता है।

[मूलग्रन्थका मंगल]

महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतके प्रारम्भमें **गौतम गणधर**-द्वारा विरचित मंगलको वहाँसे उद्धृत कर भूतवलि आचार्य इस शास्त्रका मंगल मान ग्रन्थारम्भ करते है[3] । द्रव्यार्थिक नयाश्रित भव्य जीवोंके अनुग्रहार्थ गौतम स्वामी सूत्रका प्रणयन करते हुए कहते है—

णमो जिणाणं[4] ॥ १ ॥

अर्थ—जिन भगवान्‌को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिन शब्दसे तात्पर्य उन श्रेष्ठ आत्माओसे है, जिन्होंने सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें निविड रूपसे निबद्ध घातियाकर्मरूप मेघपटलको दूर करके अनन्तज्ञान, अनन्त-

---

१ "धीरपरिसमीलमाला ववगयराया जमोहपडहत्था । बहु-विणय-भूसियगा सुहाइ साहू पयच्छंतु ॥"—ति० प० गा० ५ । २ "ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति । स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥"—इष्टोप० श्लो० ४१ । ३ "एवं दव्वट्ठिय-जणाणुग्गहणट्ठ णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण "—ध० टी० । ४ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं ।" —भ० क० य० १ । "ॐ ह्रीं जिणाणं " —भ० क० य० २ ।

णमो कोट्ठबुद्धीणं[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—कोष्ठबुद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेपार्थ—जिस प्रकार किसी कोठेमे पृथक्-पृथक् तथा सुरक्षित बहुत-से धान्यके बीजों-का सग्रह रहता है, उसी प्रकार कोष्ठबुद्धिनामक ऋद्धिमे परोपदेशके बिना ही तत्त्वोंके अर्थ, ग्रन्थ तथा बीजोका अवधारण करके पृथक्-पृथक् अवस्थान किया जाता है। इस बुद्धिमें कोष्ठके समान भिन्न-भिन्न बहुत तत्त्वोंकी अवधारणा रहती है (त०रा० अ०३, पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है कि उत्कृष्ट धारणासम्पन्न कोई पुरुष गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रन्थोंसे विस्तारपूर्वक लिंगसहित शब्दरूप बीजोंको अपनी बुद्धिसे ग्रहण करके बिना मिश्रणके अपनी बुद्धिरूपी कोठेमे धारण करता है, उसे कोष्ठबुद्धि कहते हैं (पृ० २७२)।

णमो बीजबुद्धीणं[2] ॥ ७ ॥

अर्थ—बीजबुद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेपार्थ—जैसे सम्यक् प्रकार हल-बखरसे तैयार की गयी उपजाऊ भूमिमे योग्य काल-में बोया गया एक भी बीज बहुत बीजोंको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण, श्रुत-ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम-प्रकर्षसे एक बीज पदके ग्रहण-द्वारा अनेक पदार्थोंको जाननेवाली बीजबुद्धि है। (राजवा० पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे विशुद्ध हुई किसी भी महर्षिकी जो बुद्धि, संख्यातस्वरूप शब्दोंके बीचमे-से लिंगसहित एक ही बीजभूत पदको परके उपदेशसे प्राप्त करके उस पदके आश्रयसे सम्पूर्ण श्रुतको विस्तार कर ग्रहण करती है, वह बीजबुद्धि है (पृ० २७२)।

णमो पदाणुसारीणं[3] ॥ ८ ॥

अर्थ—पदानुसारी ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेपार्थ—दूसरे व्यक्तिसे एक पदके अर्थको सुनकर आदि, मध्य तथा अन्तके शेष ग्रन्थार्थका निश्चय करना पदानुसारित्व है। यह अनुश्रोतृ, प्रतिश्रोतृ तथा उभयरूप तीन प्रकार है। तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—जो बुद्धि आदि, मध्य अथवा अन्तमे गुरुके उपदेशसे एक बीज पदको ग्रहण करके उपरिम ग्रन्थको ग्रहण करती है वह अनुसारिणी बुद्धि है। गुरुके उपदेशसे आदि, मध्य अथवा अन्तमे एक बीज पदको ग्रहण करके जो बुद्धि अधस्तन ग्रन्थको जानती है, वह प्रतिसारिणी बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि नियम अथवा अनियमसे एक बीज शब्दको ग्रहण करनेपर उपरिम और अधस्तन ग्रन्थको एक साथ जानती है वह उभयसारिणी है। ये पदानु-सारित्वके तीन भेद है। (गा० ९८१-८३)।

णमो संभिण्णसोदाराणं[4] ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।[5]

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं "—भ० क० य० ६। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं " भ० क० य० ७। ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादानुसारीणं "—भ० क० य० ८। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो सभिण्णसोदराणं "—भ० क० य० ९। ५ सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन भिन्ना अनुविद्धा सभिन्ना। सभिन्नाश्च ते श्रोतारश्च सभिन्नश्रोतारः।

विशेषार्थ– नौ योजन लम्बी, बारह योजन चौडी चक्रवर्तीकी सेनाके हाथ तथा मनुष्यादिकोंके एक साथमें उत्पन्न अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अनेक प्रक तपोबलविशेषके कारण सर्वजीव-प्रदेशोंमें कर्ण-इन्द्रियका परिणमन होनेसे सर्व कालमें ग्रहण करना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है--श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तर क्षयोपशम तथा अंगोपाग नाम कर्मके उदय होनेपर श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे दिशाओंमें संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यचोंके अक्षरात्मक-अ बहुत प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शब्दोंको सुनकर जिससे उत्तर दिया जाता है वह श्रोतृत्व है।

णमो उजुमदीणं[1] ॥ १० ॥

अर्थ—ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो विउलमदीणं[2] ॥ ११ ॥

अर्थ--विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो दसपुव्वीणं[3] ॥ १२ ॥

अर्थ—दश पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--महारोहिणी आदि विद्याओंके द्वारा अपने रूप, सामर्थ्य आदिका प्र करनेपर भी अडिग चारित्रधारीका जो दशमपूर्व रूप दुस्तर सागरके पार पहुँचना है, दशपूर्वित्व है। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अभिन्नदशपूर्वित्वका ग्रहण किया है[4]।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—दशम पूर्वके पढनेमें रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्या तथा अगुष्टप्रसेनादिक सात सौ क्षुद्र विद्याओंके द्वारा आज्ञा माँगनेपर भी जो महर्षि जितेन्द्रि होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नहीं करते है, वे 'विद्याधरश्रमण' या 'अभिन्नदशपूर्व कहलाते है। (पृ० २७४)।

णमो चोद्दसपुव्वीणं[5] ॥ १३ ॥

अर्थ--चौदह पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--जो सम्पूर्ण श्रुतकेवलीपनेको प्राप्त है, वे चतुर्दशपूर्वी कहलाते है।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण "–भ० क० य० १३। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीण " भ० क० य० १४। ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण " –भ० क० य० १५। ४ 'एत्थ दसपुव्विणो जिणाभिण्णभेएण दुविहा होंति। भिण्णदसपुव्वीण कथ पडिणियत्ती ? जिणसद्दाणुवत्तीदो। ण च तत्थ जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो।"–ध० टी०। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं "—भ० क० य० १६।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं[1] ॥ १४ ॥

अर्थ—अष्टाग महानिमित्त विद्यामे प्रवीण जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[2]अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न—ये आठ महानिमित्त कहे जाते है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, ताराओंके उदय, अस्त आदिसे भूत-भविष्यत्सम्बन्धी फलका ज्ञान करना अन्तरिक्षज्ञान है। पृथ्वीके घन, सुषिर, रूक्षतादिके ज्ञानसे अथवा पूर्वादि दिशाओंमे सूत्रनिवास करनेसे वृद्धि, हानि, जय, पराजय आदिका ज्ञान करना तथा भूमिमे छिपे हुए स्वर्ण, चॉदी आदिका परिज्ञान करना भौमज्ञान है। अग-उपागोंके देखने आदिसे त्रिकालवर्ती सुख-दुःखादिको जान लेना अंगज्ञान है। अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक शुभ-अशुभ शब्दको सुनकर इष्ट-अनिष्ट फलको जान लेना स्वरज्ञान है। मस्तक, ग्रीवा आदिमे तिल, मशक आदि चिह्नोंको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हित-अहितका जानना व्यंजनज्ञान है। श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, भृगार, कलश आदि लक्षणोंको देखकर त्रिकालवर्ती स्थान, मान, ऐश्वर्य आदिका विशेष ज्ञान करना लक्षण नामक निमित्तज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन, शयनादिकोंमे देव, मानुष, राक्षसादि विभागोसे शस्त्र, कण्टक, चूहा आदिकृत छेदनको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हानि, लाभ, सुख, दुःखादिको सूचित करना छिन्न नामक ज्ञान है।[3] वात, पित्त, कफ दोषोंके उदयसे रहित व्यक्तिके रात्रिके पिछले भागमे, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, समुद्र आदिका अपने मुखमे प्रवेश करना सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उपगूहन आदि शुभ स्वप्न तथा घृत या तैललिप्त अपना शरीर देखना, गर्दभ, ऊँटपर चढे हुए इधर-उधर भटकते फिरना आदि अशुभ स्वप्नके दर्शनसे आगामी जीवन, मरण, सुख, दुःखादिका ज्ञान करना स्वप्नज्ञान है। इन महानिमित्तोंमे जो कुशलता है, वह अष्टागमहानिमित्तता है। (त० रा० पृ० १४३)।

णमो विउव्वणपत्ताणं ॥ १५ ॥

अर्थ—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ— विक्रियाको विषय करनेवाली ऋद्धिके अनेक भेद है। जैसे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि। शरीरको अत्यन्त छोटा करना 'अणिमा' है। इस ऋद्धिके प्रभावसे कमल-मृणालके छिद्रमे प्रवेश करके वहाॅ ठहरने तथा चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है। अपने शरीरको मेरु पर्वतसे भी विशाल करना 'महिमा' ऋद्धि है। शरीरको वायुसे भी हलका करना 'लघिमा' है। शरीरको वज्रसे भी अधिक भारी बनाना 'गरिमा' है। भूमिपर स्थित रहते हुए भी अगुलीके कोनेसे मेरु शिखर, सूर्य आदिको स्पर्शन करनेकी सामर्थ्यको 'प्राप्ति' कहते है। जलमे पृथ्वीके समान चलना, भूमिपर जलके समान तैरना 'प्राकाम्य' ऋद्धि है। तीन लोककी प्रभुता 'ईशित्व' है। सम्पूर्ण जीवोंको वश करनेकी सामर्थ्य 'वशित्व' है। पर्वतके भीतर भी आकाशमे गमनागमनके समान बिना रुकावटके आना-जाना 'अप्रति-

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं"—भ० क० य० १७। २ "अंग सरो वंजणलक्खणाणि छिण्णं च भौमं सुमिणंतरिक्खं। एदे णिमित्ते हि पगाहि णिच्चा जाणंति [illegible] सुहासुहाइं ॥"—ध० टी० पृ० ६२७। ३ देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यंचोंके द्वारा छेदे गये शस्त्र एवं वस्त्रादिक तथा भवन नगर और देशादि चिह्नोंको देखकर त्रिकालभावी शुभ, अशुभ, मरण, विविध प्रकारके द्रव्य और सुख-दुःखको जानना यह चिह्न निमित्त ज्ञान है। यहाँ 'छिन्न' का नाम 'चिह्न' दिया गया है।—ति० प० पृ० [illegible]

विशेषार्थ– नौ योजन लम्बी, बारह योजन चौडी चक्रवर्तीकी सेनाके हाथी, घोडा, ऊँट तथा मनुष्यादिकोंके एक साथमें उत्पन्न अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अनेक प्रकारके शब्दोंको तपोबलविशेषके कारण सर्वजीव-प्रदेशोंमें कर्ण-इन्द्रियका परिणमन होनेसे सर्व शब्दोंका एक कालमें ग्रहण करना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है--श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अंगोपाग नाम कर्मके उदय होनेपर श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दसों दिशाओंमे सख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यंचोंके अक्षरात्मक-अनक्षरात्मक बहुत प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शब्दोंको सुनकर जिससे उत्तर दिया जाता है वह सम्भिन्न-श्रोतृत्व है।

णमो उजुमदीणं[1] ॥ १० ॥

अर्थ—ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो विउलमदीणं[2] ॥ ११ ॥

अर्थ--विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो दसपुव्वीणं[3] ॥ १२ ॥

अर्थ—दश पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--महारोहिणी आदि विद्याओंके द्वारा अपने रूप, सामर्थ्य आदिका प्रदर्शन करनेपर भी अडिग चारित्रधारीका जो दशमपूर्व रूप दुस्तर सागरके पार पहुँचना है, वह दशपूर्वित्व है। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अभिन्नदशपूर्वित्वका ग्रहण किया है[4]।

तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—दशम पूर्वके पढनेमे रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं तथा अगुष्ठप्रसेनादिक सात सौ क्षुद्र विद्याओंके द्वारा आज्ञा माँगनेपर भी जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नही करते है, वे 'विद्याधरश्रमण' या 'अभिन्नदशपूर्वी' कहलाते है। (पृ० २७४)।

णमो चोद्दसपुव्वीणं[5] ॥ १३ ॥

अर्थ--चौदह पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--जो सम्पूर्ण श्रुतकेवलीपनेको प्राप्त है, वे चतुर्दशपूर्वी कहलाते है।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो रुजुमदीण "–भ० क० य० १३। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं " भ० क० य० १४। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण " –भ० क० य० १५। ४ "[illegible] दसपुव्विणो विज्जाभिण्णभेएण दुविहा होति। भिण्णदसपुव्वीण कथ पडिणियत्ती? जिणसद्दाणुवत्तीदो। [illegible], अभिण्णदसपुव्वीणमु जिणत्ताणुववत्तीदो।"–ध० टी०। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं" –भ० क० य० १६।

यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेसे असयतोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आगासगामीणं[1] ॥ १९ ॥

अर्थ—आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पल्यंकासन वा कायोत्सर्ग आसनसे ही पैरोंको बिना उठाये-धरे आकाशमे गमन करनेकी विशेषताको आकाश-गमन ऋद्धि कहते हैं। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेके कारण देव विद्याधरोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आसीविसाणं[2] ॥ २० ॥

अर्थ—आशीविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

उग्र विषयुक्त आहार भी जिनके मुखमें जाकर निर्विष हो जाता है वा जिनके मुखसे निकले हुए वचनोंके श्रवणसे महाविषयुक्त व्यक्ति निर्विष हो जाता है, वे 'आस्याविष' ऋद्धिधारी हैं। महान् तपोबलसे विभूषित यतिजन जिसको कहें 'तू मर जा' वह तत्क्षण ही महाविषयुक्त हो मृत्युको प्राप्त हो जाता है, वह 'आस्यविष' ऋद्धि है। इस प्रकार 'आस्य अविष' तथा 'आस्य विष' दोनों प्रकारके अर्थ कहे गये हैं[3]।

णमो दिट्ठिविसाणं[4] ॥ २१ ॥

अर्थ—दृष्टिविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके देखने मात्रसे अत्यन्त तीव्र विषसे दूषित भी प्राणी विषरहित हो जाता है वे 'दृष्टिविष' ऋद्धिधारी हैं। उग्र तपस्वी मुनिजन क्रुद्ध हो जिसे देख ले, वह उसी समय उग्र विषयुक्त हो मर जाता है। इसे भी दृष्टिविष ऋद्धि कहते है। यहाँ भी 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति है, अन्यथा दृष्टिविष सर्पोंको भी प्रणामका प्रसग आता[5]। यद्यपि साधुजन तोष अथवा रोषसे मुक्त हैं, फिर भी तपस्याके कारण उनमें उपर्युक्त विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसका उपयोग वीतराग ऋषिगण नहीं करते हैं।

णमो उग्गतवाणं[6] ॥ २२ ॥

अर्थ—उग्र तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह दिन वा पक्ष मासादिके अनशन योगोमे किसी भी रूपके उपवासको प्रारम्भ करके मरणपर्यन्त भी उस योगसे विचलित नहीं होना उग्रतप ऋद्धि है।

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो आगासगामीण"–भ० क० य० २२। २ "ॐ ह्री अर्हं णमो आसीविसाण"–भ० क० य० २३। ३. "अविद्यमानस्यार्थस्य अशसमाशी, आशीर्विष येषा ते आशीर्विषा। तवोबलेण एवविहसत्तिसजुत्तवयणा होदूण जे जीवाण णिग्गहाणुग्गह ण कुणति। ते आसीविसा त्ति घेतव्वा। कुदो ? जिणाणुउत्तीदो। ण च णिग्गहाणुग्गहेहि मदग्गिसिदरोसतोसाण जिणत्तमत्थि विरोधादो।" –ध० टी०। ४. "ॐ ह्री अर्हं णमो दिट्ठिविसाण" –भ० क० य० २४। ५ "दृष्टिरिति चक्षुर्मनसोर्ग्रहण। जिणाणमिदि अणुवट्टदे, अण्णहा दिट्ठिविसाण सप्पाणं पि णमोक्कारप्पसगादो।" –ध० टी०। ६ "ॐ ह्री अर्हं णमो उग्गतवाणं" –भ० क० य० २५।

घात' है। अदृश्य रूप होनेकी सामर्थ्य 'अन्तर्धान' है। युगपत् अनेक आकार और रूप बनानेकी शक्ति 'कामरूपित्व' है।

यहाँ[1] जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अष्टगुण ऋद्धि होते हुए भी देवोंका ग्रहण नहीं किया गया है कारण देवोंमे संयमका अभाव है अतः वे 'जिन' नहीं है।

णमो विज्जाहराणं ॥१६॥

अर्थ—विद्याधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[3]विद्या तीन प्रकारकी होती है। मातृ पक्षसे प्राप्त जातिविद्या है। पितृपक्षसे प्राप्त कुलविद्या है। षष्ठ, अष्टम आदि उपवास करनेसे सिद्ध की गयी तपविद्या है। यहाँ देव तथा विद्याधरोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण वे जिन नहीं है।

णमो चारणाणं[4] ॥ १७ ॥

अर्थ—चारणऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जल, जघा, तन्तु, पुष्प, पत्र, अग्नि-शिखादिके आलम्बनसे गमन करना 'चारण' ऋद्धि है। कुँआ, बावड़ी आदिमे जलकायिक जीवोंकी विराधना नहीं करते हुए भूमिके समान चरणोंके उठाने-धरनेकी-प्रवीणताको 'जलचारण' कहते है। भूमिसे चार अगुल ऊँचे आकाशमे जघाके उठाने-धरनेकी कुशलतासे सैकड़ों योजन गमन करनेकी प्रवीणता 'जंघाचारण' है। इसी प्रकार इस ऋद्धिके अन्य भेद हैं।

णमो पण्हसमणाणं[5] ॥ १८ ॥

अर्थ—[6]प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—असाधारण प्रज्ञाशक्तिधारी प्रज्ञाश्रमण कहलाते है। अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वार्थचिन्तनके प्रभावसे चौदह पूर्वोंके विषयमे पूछे जानेपर जो द्वादशाग चतुर्दश पूर्वको बिना पढे हुए भी उत्कृष्ट श्रुतावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण प्रज्ञाशक्तिके लाभसे स्पष्ट निरूपण करते है वे प्रज्ञाश्रमणधारी हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २७७) में प्रज्ञाके चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी तथा कर्मजा। भवान्तरमे कृत श्रुतके विनयसे उत्पन्न होनेवाली औत्पत्तिकी, निज-निज जातिविशेषमे उत्पन्न हुई पारिणामिकी, द्वादशांगश्रुतकी विनयसे उत्पन्न वैनयिकी एवं उपदेशके बिना तपविशेषके लाभसे उत्पन्न कर्मजा कहलाती है।

---

१ "अट्ठगुणड्ढिजुत्ताण देवाण एमो णमोक्कारो किण्ण पावदे ? ण एस दोसो, जिणसद्दाणुवट्टणेण तण्णि-[illegible]। ण च देवाण जिणत्तमत्थि। तत्थ सजमाभावादो ॥"—ध० टी०। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं"—भ० क० य० १९। ३ "तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णाम। पिदुपक्खुवलद्धाओ कुलविज्जाओ। छट्ठट्ठमादिउववासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ। एवमेदाओ तिविहाओ [illegible]।"—ध० टी०। ४ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं"—भ० क० य० २०। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो [illegible]"—भ० क० य० २१। ६ "औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा [illegible]। [illegible] देषा ते प्रज्ञाश्रवणा। असजदाण न पण्णसमणाण गहण जिणसद्दाणुउत्तीदो।" —ध० टी०।

णमो दित्ततवाणं[1] ॥ २३ ॥

अर्थ—दीप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—महान् उपवास करनेपर भी जिनकी मन, वचन, कायकी शक्ति बढ़ती हुई ही पायी जाती है, जो दुर्गन्धरहित मुखवाले, कमल—उत्पलादिकी सुगन्धके समान श्वासवाले तथा शरीरकी महाकान्तिसे सम्पन्न हैं, वे दीप्ततपस्वी जिन हैं।

णमो तत्ततवाणं[2] ॥ २४ ॥

अर्थ—तप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—तप्त लोहेकी कढाईमें पतित जलकणके समान शीघ्र ही जिनका अल्प आहार शुष्क हो जाता है उसका मल रुधिरादि रूपमे परिणमन नहीं होता वे तप्ततपस्वी हैं।

णमो महातवाणं[3] ॥ २५ ॥

अर्थ—महातपधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—सिंहनिष्क्रीडितादि महान् उपवासादिके अनुष्ठानमें परायण महातपस्वी कहलाते हैं।

णमो घोरतवाणं[4] ॥ २६ ॥

अर्थ—[5]घोर तपधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वात, पित्त, कफकी विषमतासे उत्पन्न ज्वर, खाँसी, श्वास, नेत्रपीडा, कुष्ठ, प्रमेहादि रोगोंसे पीडित शरीरयुक्त होते हुए भी जो अनशन, कायक्लेशादि तपोंसे अविचलित रहते हैं तथा भयंकर श्मशान, पर्वत-शिखर, गुहा, दरी, शून्य ग्राम आदिमे, जहाँ अत्यन्त दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच वेताल भयंकर रूपका प्रदर्शन कर रहे हैं एवं जहाँ शृगालके कठोर शब्द, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदिके भीषण शब्द हो रहे हैं ऐसे भयंकर प्रदेशोंमे सहर्ष रहते हैं वे घोर तपस्वी हैं।

णमो घोरपरक्कमाणं[6] ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर पराक्रमवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त तपस्वी जब ग्रहण किये गये तपकी साधनामें वृद्धि करते हैं, तब वे घोर पराक्रमी कहलाते हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८१) मे कहा है—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिजन अपनी अनुपम सामर्थ्यसे कण्टक, शिला, अग्नि, पर्वत, धूम्र और उल्का आदिके पात करनेमें तथा सागरके समस्त जलका शोषण करनेमें समर्थ होते हैं, वह घोर पराक्रम ऋद्धि है।

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो दित्ततवाण " —भ० क० य० २६। २ "ॐ ह्री अर्हं णमो तत्ततवाण ।" —भ० क० य० २७। ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाण "—भ० क० य० २८। ४ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरतवाण "—भ० क० य० २९। ५. "घोरा रउद्दा गुणा जेसि ते घोरगुणा। कथ चौरासीदि-लक्खगुणाण घोरत्त ? घोरकज्जकारिसत्तिजणणादो। तेसि घोरगुणाण णमो इदि उत्त होदि।" —ध० टी०। ६ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरपरक्कमाण " —भ० क० य० ३१।

होते है तथा शीघ्र ही तीनों लोकोको कनिष्ट अंगुलीपर उठाकर अन्यत्र धरनेमे समर्थ होते है, वह कायबल नामकी ऋद्धि है।

णमो खीरसवीणं[1] **॥ ३८ ॥**

अर्थ—क्षीरस्रवी ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नीरस भोजन भी जिनके हस्त-पुटमे रखे जानेपर क्षीर-गुणरूप परिणमन करता है वा जिनके वचन क्षीण व्यक्तियोको दुग्धके समान तृप्ति प्रदान करते है, वे क्षीरस्रवी हैं। तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृ० १४५) मे 'क्षीरास्रवी' पाठ ग्रहण किया है।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३९ ॥

अर्थ—घृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—रूक्ष भोजन भी जिनके कर-पात्रमे पहुँचते ही घृतके समान शक्तिवर्धक हो जाता है अथवा जिनका सम्भाषण जीवोंको घृत-सेवनके समान तृप्ति पहुँचाता है, वे घृतस्रवी है।

णमो महुसवीणं[2] **॥ ४० ॥**

अर्थ—मधुस्रवी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमे रखा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसपूर्ण तथा शक्ति-सम्पन्न हो जाता है, अथवा जिनके वचन दुःखी श्रोताओंको मधुके समान सन्तोष देते है, वे मधुस्रवी है। यहॉ मधु शब्दका तात्पर्य मधुररसवाले गुड, खॉड, शर्करा आदिसे है, कारण उन सबमे मधुरता पायी जाती है।[3]

णमो अमइसवीणं[4] **॥ ४१ ॥**

अर्थ—अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमे पहुँचकर कोई भी भोज्य वस्तु अमृतरूप हो जाती है, अथवा जिनकी वाणी जीवोंको अमृत तुल्य कल्याण देती है, वे अमृतस्रवी है।

णमो अक्खीणमहाणसाणं ॥ ४२ ॥

अर्थ—अक्षीण महानस ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—लाभान्तरायके क्षयोपशमके उत्कर्षको प्राप्त मुनीश्वरोंको जिस पात्रसे आहार दिया जाता है, उससे यदि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन करे, तो उस दिन अन्नकी कमी न पडे यह अक्षीण महानस ऋद्धि है। तिलोयपण्णत्ति (पृ० [illegible]) मे कहा है—लाभान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त मुनिराजके भोजनानन्तर भोजनशालामे अवशिष्ट अन्नमेसे जिस किसी भी प्रिय वस्तुका उस दिन चक्रवर्तीके कटकको भोजन करानेपर भी लेशमात्र क्षीण न होना अक्षीण महानस ऋद्धि है।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं[1] ॥ ३२ ॥

अर्थ—जल्लौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पसीनेसे मिले हुए धूलिसमूहरूप मलको जल्ल कहते है। जिन मुनियोंका जल्ल औषधिरूप होता है, वे जल्लौषधि प्राप्त जिन कहलाते हैं।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं[2] ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनका मूत्र पुरीषादि मल रोगनिवारक होता है, वे विष्ठौषधिप्राप्त हैं। महान् तपश्चर्याके प्रभावसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं[3] ॥ ३४ ॥

अर्थ—सर्वौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिन ऋषियोंके अंग, प्रत्यंग, नख, दन्त, केशादि स्पर्श करनेवाले जल, पवनादि जीवोंके लिए औषधिरूप परिणत हो जाते हैं, वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं।

णमो मणबलीणं[4] ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनबलधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके प्रकर्षसे अन्तर्मुहूर्तमे ही सम्पूर्ण श्रुतके अर्थ-चिन्तनमें प्रवीण मनोबली है।

णमो वचिबलीणं[5] ॥ ३६ ॥

अर्थ—वचनबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—मन, रसना तथा श्रुतज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके अतिशयसे जो अन्तर्मुहूर्तमे सम्पूर्ण श्रुतके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं तथा निरन्तर उच्चस्वरसे उच्चारण करनेपर भी जो श्रमरहित एवं कण्ठके स्वरमे हीनतारहित है, वे ऋषि वचनबली हैं।

णमो कायबलीणं[6] ॥ ३७ ॥

अर्थ—कायबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण शरीरबल होनेसे मासिक, चातुर्मासिक वार्षिक आदि प्रतिमायोग धारण करते हुए भी जिन्हें खेद नहीं होता वे मुनिवर कायबली हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८३) मे कहा है—जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर मुनिराज मास या चातुर्मास आदि कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमरहित

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण"–भ० क० य० ३५। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विट्ठोसहिपत्ताण"–भ० क० य० ३६। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताण" –भ० क० य० ३३-३७। ४ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीण"–भ० क० य० ३८। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचबलीण" –भ० क० य० ३९। ६ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीण" –भ० क० य० ४०।

णमो सव्वसिद्धायदणाणं[1] ॥ ४३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण सिद्धायतनो अर्थात् निर्वाणक्षेत्रोंको नमस्कार हो।

णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स[2] ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्धमान बुद्ध ऋषिको नमस्कार हो।

[प्रकृतिसमुत्कीर्तननिरूपणा]

[इस महाबन्ध अथवा महाधवल शास्त्रका प्रारम्भिक ताड़पत्र नं० २७।१ नष्ट हो गया है, उसकी उसी रूपमें पूर्ति होना असम्भव है। आगेके वर्णनक्रमके साथ सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा अवधिज्ञानावरणका संक्षेपमें वर्णन करते है, कारण ग्रन्थमे ज्ञानावरणपर आरम्भमें प्रकाश डाला गया है।]

जो त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोको नाना भेदोंसहित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जानता है, उसे ज्ञान कहते है।[3] उस ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण कर्म है। यह ज्ञान जीवका स्वभाव है। इसके द्वारा जीव स्व तथा अपूर्व वस्तुका व्यवसाय निश्चय करता है। वस्तु सामान्य तथा विशेष धर्मोंसे समन्वित है। साकार उपयोग ज्ञान तथा निराकार उपयोग दर्शन कहलाते है।[4] ज्ञान तथा दर्शन जीवके पृथक्-पृथक् गुण है।[5] चित्-प्रकाशकी बहिर्मुख वृत्तिको भी ज्ञान कहते है और चित्-प्रकाशकी अन्तर्मुख वृत्तिको दर्शन कहते है। गोम्मटसार जीवकाण्डमें लिखा है—सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंके भेदको ग्रहण न करके जो सामान्यग्रहण-स्वरूपमात्रका अवभासन है, वह दर्शन है (४८२ गाथा)। इस दर्शनका आवरण करनेवाला कर्म दर्शनावरण है। जिसके[6] उदयसे देवादि गतियोमें शारीरिक तथा मानसिक सुखकी प्राप्ति होती है, उसे साता कहते है, उसको जो भोगवावे तथा जिससे साताका वेदन करना, भोगना होता है, वह सातावेदनीय है। जिसके उदयका फल अनेक प्रकारके दुःख है, वह असाता है। जो उसे भोगवावे—अनुभवन करावे, वह असातावेदनीय है। जो जीवको मोहित करे, वह मोहनीय कर्म है। भव धारण करनेमें कारण आयु कर्म है। इस जीवकी नर-नारकादि विविध पर्यायोंमें कारण नाम कर्म है। कुल-परम्परासे प्राप्त जीवके उच्च अथवा नीच आचरणका कारण गोत्रकर्म है। इस जीवके दान, लाभ भोग उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) मे जो अन्तराय—बाधा डालता है, वह अन्तराय कर्म है। इन आठ कर्मोंमे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह तथा अन्तरायको घातिया कर्म कहते हैं, कारण ये जीवके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य नामक गुणोंका

घात करते है। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जीवके अनुजीवी गुण है। सिद्धोंके[1] अव्याबाध सुखका घात आठो ही कर्म करते है। प्रत्येक कर्मका कार्य जीवके विशेष गुणके घात करनेका है, किन्तु उन सबका सामान्य धर्म जीवके सुख गुणके भी विनाश करनेका पाया जाता है।

वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र ये प्रतिजीवी गुणोंका नाश करते है। अनुजीवी गुणोका घात न करनेके कारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। ये क्रमश. अव्याबाध, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व तथा अगुरुलघुत्व गुणोंका नाश करते हैं। चार घातियाका नाश करनेवाले अरहन्त भगवानमे गुणचतुष्टयकी अभिव्यक्ति होती है तथा सिद्धोंमे कर्माष्टकके ध्वंस करनेसे आठ गुण व्यक्त होते है।[2] कर्मोके ध्वंसका अर्थ पुद्गलका अत्यन्त क्षय नहीं है, कारण सत्का अत्यन्त विनाश नही हो सकता। पुद्गलकी कर्मत्वपर्यायका नष्ट हो जाना अर्थात् आत्माके साथ उसका सम्बन्ध न रहना ही कर्मक्षय है।

ज्ञानावरण कर्मकी पॉच प्रकृतियॉ है—आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण. मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये आवरणपंचक आभिनिबोधिकज्ञान—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानरूप ज्ञानकी पॉच अवस्थाओंको आवृत करते है। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानको मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोको कुज्ञान भी कहते है।

इन्द्रिय[3] तथा मनकी सहायतासे अभिमुख तथा प्रतिनियत पदार्थको जाननेवाला आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहलाता है। [4]मतिज्ञान-द्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते है। [5]द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते हैं। परकीय मनमे स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते है। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यो तथा उनकी समस्त पर्यायोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

[आभिनिबोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा बत्तीस प्रकारका है। अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवायावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषयमे विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते है। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनन्तर भाषा, वेष आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो संशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, वह अवाय है। उसका आवारक अवायावरण कर्म है। अवायज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमे स्मरणका कारण धारणाज्ञान है उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

---

१ "कर्माष्टकं विपक्षि स्यात् सुखस्यैकगुणस्य च। अस्ति किंचिन्न कर्मैकं तद्विपक्षं ततः पृथक्॥" –पञ्चाध्यायी २।११५। २ "मलैर्मलादेर्व्यावृत्तिः क्षयः। मलोऽन्यत्वविनाशानुपपत्तेः। तादृगात्मनोऽपि कर्मणो निवृत्तौ परिशुद्धिः।"–अष्टसह० पृ० ५३। ३ "तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्"–त० सू० १।१४। ४ "अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं। आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं॥"–गो० जी० ३१५। ५ "अवधीयदित्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये। भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणेत्ति णं बेंति॥"–गो० जी० ३६९।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यंजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यंजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्बद्ध अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यंजनावग्रहका आवारक व्यंजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अतएव इसके स्पर्शनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते हैं।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्राहक होनेके कारण पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नोइन्द्रियावरण कर्म है। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह-छह भेदवाला है। इस कारण व्यंजनावग्रहके चार भेदोंमें अर्थावग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलानेसे २८ भेद होते हैं। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, निःसृत, अनिःसृत—इन बारह प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार २८×१२=३३६ भेद मतिज्ञानके हैं। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते हैं।

[श्रुतज्ञानावरणप्ररूपणा]

मतिज्ञानके द्वारा जाने गये पदार्थसे पदार्थान्तरका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। वह 'नित्य शब्दनिमित्तक है अथवा अन्य-निमित्तक है' ऐसी शंकाका निराकरणके लिए उस श्रुतज्ञानको मतिपूर्वक कहा है। यद्यपि श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है, फिर भी श्रुतज्ञानके मतिपूर्वकत्वमें बाधा नहीं आती है। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसका तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक श्रुतज्ञानके प्रारम्भमें मतिज्ञान निमित्त हुआ करता है। पश्चात् मतिपूर्वकत्वका कोई नियम नहीं है।

इस श्रुतज्ञानके शब्दजन्य तथा लिंगजन्य ये दो भेद कहे गये हैं। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूपसे भी उसके दो भेद कहे जाते हैं। श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक या शब्दात्मक मानना उपचरित कथन है। श्रुतज्ञानका कारण प्रवचन है, इससे प्रवचनको भी श्रुतज्ञान कह दिया है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात भेद हैं। अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। पुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका प्रमाण इससे कुछ अधिक है। ३३ व्यंजन, २७ स्वर तथा ४ अयोगवाह मिलकर कुल चौंसठ मूलवर्ण होते हैं। इन चौंसठ वर्णोंके संयोगसे १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इन बीस अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उपर्युक्त अक्षरोंमें १६३४८३०७८८८ इन ग्यारह अंकप्रमाण अक्षरात्मक मध्यम पदका भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण संख्यातप्रमाण अंगप्रविष्ट पद होते हैं, जो द्वादशांग-आचारांगादिके नामसे ख्यात हैं।

भाग देनेसे शेष बचे हुए अक्षरोंको अंगबाह्य कहते हैं। अंगबाह्यके सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक तथा निषिद्धिका ये चौदह प्रकार हैं[1]। बुद्धिके अतिशय तथा ऋद्धिविशिष्ट गणधरदेवके द्वारा अनुस्मृत जो द्वादशागरूप जिनवाणीकी ग्रन्थरचना है, वह अगप्रवृष्ट है। आचार्य अकलंकदेव उन गणधरदेवके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आरातीय आचार्योंके पाससे श्रुतज्ञानके तत्त्वको ग्रहण करके कालदोषसे अल्पमेधा, अल्पबल तथा अल्प आयुयुक्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिए उपनिबद्ध संक्षिप्तरूपसे अंगोंके अर्थरूप वचनविन्यासको अंगबाह्य कहते हैं। इस दृष्टिसे आचार्यपरम्परासे प्राप्त तथा जिनवाणीके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले अन्य ग्रन्थान्तर अंगबाह्य श्रुतमें समाविष्ट होते हैं।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका सबसे छोटा रूप पर्यायज्ञान कहलाता है। उससे कम ज्ञान किसी भी जीवके नहीं पाया जा सकता है। उस ज्ञानको नित्य प्रकाशमान तथा निरावरण कहा है। [2]सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने योग्य सम्भवनीय ६०१२ भवोंमें परिभ्रमण कर अन्तके अपर्याप्तक शरीरको तीन मोड़ाओंसहित जब ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम मोड़ाके समयमें सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

[3]इस पर्यायज्ञानसे आगे पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिक-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्व-समास भेद होते हैं।

[4]श्रुतज्ञानका विषयभूत अर्थ मनका विषय होता है। श्रुतज्ञानमें मानसिक व्यापार होता है। ऐसी स्थितिमें जिनके मन नहीं है, उन असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके श्रुतज्ञानका अभाव समझा जाना चाहिए था, किन्तु परमागममें कमसे-कम छद्मस्थोंके मति तथा श्रुत ये दो ज्ञान नियमतः कहे गये हैं। श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे एकेन्द्रियादिके मन न होते हुए भी श्रुतज्ञानका सद्भाव आगममें वर्णित है। इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीवोंमें जो कुछ ऐसी क्रियाएँ पायी जाती हैं, जिनसे उनके मनके सद्भावकी कल्पना होने लगती है उनका कारण मन नहीं है, किन्तु श्लोकवार्तिककार विद्यानन्दी स्वामीके शब्दोंमें मतिसामान्यके समान स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य तथा उनके निमित्तरूप अवायसामान्य, ईहासामान्य, अवग्रहसामान्य पाये जाते हैं, जो कि अनादिभवाभ्यासके कारण उत्पन्न होते हैं। उनके क्षयोपशमनिमित्त भावमन नहीं है, कारण वह प्रतिनियत सज्ञी प्राणियोंके होता है। इसका भाव यह है कि पिपीलिका आदिमें योग्य आहारका ग्रहण, अनुसन्धान, अयोग्य-

---

१ "तत्राङ्गप्रविष्टमङ्गबाह्यं चेति द्विविधमङ्गप्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदम्, बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतग्रन्थरचनम्। आरातीयाचार्यकृताङ्गार्थ-प्रत्यासन्नरूपमङ्गबाह्यम्। तद्गणधरशिष्यैः प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतश्रुतार्थतत्त्वैः कालदोषादल्पमेधायुर्बलानां प्राणिनामनुग्रहार्थमुपनिबद्धं संक्षिप्ताङ्गार्थवचनविन्यासं तदङ्गबाह्यम्।" —त० रा० पृ० ५४। २ "सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं॥३१९॥ सुहुमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण। चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे॥३२०॥" —गो० जी०। ३ "पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च। दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्व च॥ तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं। आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंति त्ति॥" —गो० जी० ३१६, १७। ४ "श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्।" —स० सि० पृ० १०५।

का परिहार आदि बातें पायी जाती हैं, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणा-सामान्य, ईहासामान्य, अवायसामान्य आदि हैं।[1]

यहाँ श्रुतज्ञानकी प्ररूपणा की गयी है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायेगी? इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य[2] लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किये जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप-परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपण-द्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणकी प्ररूपणा हुई।

[अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादासे रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे[3] पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन-गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है। इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्‌के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है[4]।

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है, भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्त होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

" [अत्र सप्तविंशतितमं ताडपत्रं त्रुटितम्]

१. अयणं-संवच्छर-पलिदोपम-सागरोपमादया वि भवंति ।
ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणियोदजीवस्स ।
यद्देहो तद्देही जहंणयं खेत्तदो ओधी ॥ १ ॥

अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद भी है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधिके जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असंयमी मनुष्य, तिर्यंचोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प संयमी मनुष्यके ही पाये जाते है। परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदोंसे रहित है।

[1]सम्यक्त्वरहित अवधिज्ञानको विभंगावधि कहते है। अवधिज्ञान-[illegible] विशेष अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमें नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, अयन, संवत्सर, युग (पचवर्ष), पूर्व (सत्तरकोटि छप्पनलक्ष, सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण), पल्योपम, सागरोपम आदि विभाग जानना चाहिए।

महाबन्धके त्रुटित पत्रमे जो प्रथम पंक्ति है उसमें लिखा है—'अयन, संवत्सर, पल्योपम, सागरोपम आदि होते है।' धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।

का परिहार आदि बातें पायी जाती है, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणा-सामान्य, ईहासामान्य, अवायसामान्य आदि है।[1]

यहाँ श्रुतज्ञानकी प्ररूपणा की गयी है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायेगी? इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य[2] लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किये जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप-परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपण-द्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणकी प्ररूपणा हुई।

[अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादासे रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे[3] पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन-गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है। इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्‌के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है[4]।

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है, भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

... . .

[अत्र सप्तविंशतितमं ताडपत्रं त्रुटितम्]

१. अयणं-संवच्छर-पलिदोपम-सागरोपमादया वि भवंति ।
ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणियोदजीवस्स ।
यद्देहो तद्देही जहंणयं खेत्तदो ओधी ॥ १ ॥

अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद भी हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधिके जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनो भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असंयमी मनुष्य, तिर्यंचोके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प संयमी मनुष्यके ही पाये जाते हैं। परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदोंसे रहित है।

'सम्यक्त्वरहित अवधिज्ञानको विभंगावधि कहते हैं। अवधिज्ञानत्वकी अपेक्षा दोनोमे विशेष अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व मिथ्यात्वके सहचारवश उनमे नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष, ऋतु, अयन, संवत्सर युग (पंचवर्ष) पूर्व (सत्तरकोटि छप्पनलक्ष, सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (पौर्णमासी लाख पूर्व प्रमाण) पल्योपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महाबन्धके त्रुटित पत्रमे जो प्रथम पंक्ति है उसमे लिखा है—'अयन, संवत्सर, पल्योपम सागरोपम आदि होते हैं'। धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।

[1]अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा।
[2]अंगुलमावलियंतो आवलियं अंगुलपुधत्तं ॥ २ ॥
[3]आवलियपुधत्तं पुण हत्थोवथा (हत्थं तह) गाउदं मुहुत्तंतो।
जोजण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥ ३ ॥
[4]भरदं च अद्धमासं साधियमासं [च] जंबुदीवं हि।
वासं च मणुसलोगे वासपुधत्तं च रुजगंहि ॥ ४ ॥
[5]संखेज्जदिमे कालं दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा।
कालं हि असंखेज्जो दीवसमुद्दा हवंति असंखेज्जा ॥५॥
तेजाकम्म-सरीरं तेजादव्वं च भासदव्वं च (भासमणदव्वं)।
बोद्धव्वं असंखेज्जा दि(दी)वसमुदा(द्दा) य वासा य ॥६॥

अब क्षेत्र तथा कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानसम्बन्धी १९ काण्डकोंका निरूपण करते हैं। प्रथम काण्डकमें अंगुलका असख्यातवाँ भाग जघन्य क्षेत्र है। आवलीका असंख्यातवाँ भाग जघन्य काल है। अगुलका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट क्षेत्र है, आवलीका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट काल है। दूसरे काण्डकमें घनागुलप्रमाण क्षेत्र है, कुछ कम आवलीप्रमाण काल है।

विशेषार्थ—यहाँ दूसरे तीसरे आदि काण्डकोंमें उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

तीसरे काण्डकमें अंगुलपृथक्त्व क्षेत्र है, आवलीपृथक्त्वप्रमाण काल है ॥२॥

चतुर्थ काण्डकमें आवलीपृथक्त्व काल है, हस्तप्रमाण क्षेत्र है। पंचम काण्डकमें अन्तर्मुहूर्त काल है, एक कोश क्षेत्र है। छठेमें भिन्न मुहूर्त (एक समय कम मुहूर्त) काल है। एक योजन क्षेत्र है। सप्तममें कुछ कम एक दिन काल है, २५ योजन क्षेत्र है ॥३॥

अष्टममें अर्धमास काल है, भरतवर्ष क्षेत्र है। नवममें साधिक मास काल है, जम्बूद्वीप क्षेत्र है। दशममें वर्षप्रमाण काल है, मनुष्य लोकप्रमाण क्षेत्र है। ग्यारहवेंमें वर्षपृथक्त्व काल है, रुचक द्वीप क्षेत्र है ॥४॥

बारहवेंमें संख्यात वर्ष काल है, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र है। तेरहवेंमें असंख्यात वर्ष काल है, असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण क्षेत्र है ॥ ५ ॥

विशेष, आगामी पंच काण्डकोंका द्रव्यकी अपेक्षा कथन है।

चौदहवेंमें देशावधिके मध्यम विकल्परूप विस्रसोपचयसहित तैजस शरीररूप द्रव्य विषय है। पन्द्रहवेंमें विस्रसोपचयसहित कार्माण शरीर स्कन्ध विषय है। सोलहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल तैजोवर्गणा विषय है। सत्रहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणा विषय है। अठारहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणा विषय है।

कालो (काले) चदुंणं वुड्ढी कालो भजिदव्वे खेत्तवुड्ढीए ।
उड्ढीयं दव्वपज्जयं भजिदव्वं खेत्तकालो य ॥७॥
परमोधिमसंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।
रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोवममगणि-जीवेहि ॥८॥
पणुवीसं जोण(य)णाणं ओधी वेंतरकुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोजणाणं जोदिसियाणं जहण्णोधी ॥९॥
असुराणमसंखेज्जा जोजणकोडी सेसजोदिसंताणं ।
संखातीत(दी)दसहस्सा उक्कस्सेणोधिविसे(स)यो दु ॥१०॥
सक्कीसाणे पढम दो चदु (बिदियं) सणक्कुमार-माहिंदे ।
तच्चदु (तदियं तु) बम्हलंतय सुक्कसहस्सारया चउत्थी ॥११॥
आणदपाणदवासी तथ आरणआरणच्चुदा देवा ।
पस्संति पंचमखिदि छट्ठी गेवेज्जया देवा ॥ १२ ॥

सव्वं पि लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
संखेते (सक्खेत्ते) य सकम्मे रूवगदमणंतभागो य ॥ १३ ॥

तेजासरीरलंभो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणीणं ।
गाउदजहण्णमोधी णिरयेसु य जोजणुक्कस्सं ॥ १४ ॥

उक्कस्समणुसे (स्से) सु य मणुस (स्स) तेरच्छिए जहण्णोधी ।
उक्कस्सं लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमप्पडिवादी ॥ १५ ॥

परमोधि असंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।

नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानवासी देव सर्व त्रसनालीको देखते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—सौधर्मादिकके देव अपने विमानकी ध्वजाके दण्डके शिखरपर्यन्त ऊपर जानते हैं। नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमानके शिखरपर्यन्त ऊपर देखते हैं। नीचे बाह्य तनुवात वलयपर्यन्त सम्पूर्ण त्रसनालीको देखते हैं। अनुदिश विमानवाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण तथा अनुत्तर विमानवाले कुछ कम इक्कीस योजन-रहित चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रको देखते हैं। गाथाके उत्तरार्धमें अवधिके विषयभूत द्रव्यको जाननेका क्रम कहते हैं—अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेपर अपने क्षेत्रके प्रदेशोंमें-से एक-एक प्रदेश कम करते जाना चाहिए और यह कार्य तबतक करते जाना चाहिए, जबतक कि क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घटते-घटते समाप्त न हो जाये। इस प्रकार करनेके अनन्तर जो अनन्तभाग प्रमाण द्रव्य अवशिष्ट रहेगा वहाँ-वहाँ उतना उतना ही द्रव्यका प्रमाण समझना चाहिए।

तिर्यंचगतिमें अवधिका उत्कृष्ट द्रव्य तैजस शरीरके द्रव्यप्रमाण है, क्षेत्र भी इतना ही है। अर्थात् तैजस शरीर द्रव्यके परमाणुप्रमाण आकाश प्रदेशोंसे जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त किये जायें उतना है। वह असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण होता है ॥ १४ ॥

रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोपममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एवं ओधिणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

२. यं तं मणपज्जवणाणावरणीयं कम्मं बंधंतो (कम्मं) तं एयविधं। तस्स दुविधा परूवणा—उज्जुमदिणाणं चेव विपुलमदिणाणं चेव। यं तं उज्जुमदिणाणं तं तिविधं—उज्जुगं मणोगदं जाणदि। उज्जुगं वचिगदं जाणदि। उज्जुगं कायगदं जाणदि। [1]मणेण माणसं पडिविदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि, जीविदमरणं लाभालाभं

जीवोंकी संख्याप्रमाण है। परमावधिका काल समयाधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है यह असंख्यात वर्ष रूप है। इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधिज्ञानके जितने भेद कहे गये हैं, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्मके भेद हैं। अवधिज्ञानका अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। अतः श्रुतज्ञानके समान यहाँ भी अवधिज्ञानके वर्णन-द्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

सुखदुक्खं [1]णगरविणासं देह(देस)विणासं जणपदविणासं अदिवुट्ठि अणावुट्ठी-सुवुट्ठि-दुवुट्ठी सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भयरोगं उब्भमं विब्भमं संभमं वत्तमाणाणं जीवाणं, णो अवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि[2]। जहण्णेण गाउदपुधत्तं। उक्कस्सेण जोजणपुधत्तस्स अब्भंतरादो, णो वहिद्धा। जहण्णेण दो तिण्णि भवगहणाणि, उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि गदिरागदि पदुप्पादेति।

यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान 'वत्तमाणाण'–व्यक्तमनवाले (संशय, विपर्यय, अनध्यवसायरहित मनयुक्त) अन्य जीवोंके एवं अपने अथवा 'वत्तमाणाण'[3]–'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमानमें मनःस्थित त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है। अतीत अथवा अनागत मनोगत पदार्थको यह ऋजुमति नहीं जानता है। यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोग, उद्भ्रम, विभ्रम तथा सम्भ्रमको जानता है। यह ऋजुमति जघन्यसे कोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता है। बाहर नहीं जानता है। कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन [4]भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव ग्रहणसम्बन्धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है।

---

१ "चतुर्गोपुरान्वित नगरम्। अगवगकलिंगमगधादओ देसा णाम। देसस्स एगदेसो जणवओ णाम जहा सूरसेणकासिगाधारआवति आदओ। सस्यसम्पादिका वृष्टि· सुवृष्टि। सालीवोहीजवगोधूमादिधाणाण सुलहत्त सुहिक्ख णाम। अरादोणामभावो खेम णाम। परचक्कागमादओ भय णाम।"–ध० टी० प० १२९६। २ उद्धृतमिदम्–"आगमे ह्युक्त मनसा मन परिच्छिद्य परेषा सज्ञादीन् जानातीति।"–त० राज० पृ० ५८। "मणेण माणस पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा-सदि-मदि-चिंता-जीविद-मरण लाहालाह सुहदुक्ख णयरविणास देसविणास जणवयविणास खेडविणास, कव्वडविणास, मडबविणास, पट्टणविणास दोणमुहविणासण अइवुट्ठि-अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि-सुभिक्ख दुभिक्ख खेमाखेम-भयरोगकालसजुत्ते अत्थे विजाणदि।"–ध०टी० प० १२५८। "मणेण मदिणाणेण। कध मदिणाणस्स मणववएसो? कज्जे कारणोवयारादो। मणम्मि भव लिंग माणस। अथवा मणो चेव माणसो, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जवणाणेण जाणदि। मदिणाणेण परेसिं मण घेत्तूण चेव मणपज्जवणाणेण मणम्मि ट्ठिदमत्थ जाणदि त्ति भणिद होदि। एसो णियमो ण विउलमइस्स, अचिंतिदाण पि अट्ठाण विसईकरणादो"–ध० टी०। ३ "व्यक्तमनसा जीवानामर्थ जानाति, नाव्यक्तमनसाम्। व्यक्त· स्फुटीकृतोऽर्थश्चिन्तया सुनिर्वर्तितो यैस्ते जीवा व्यक्तमनसस्तैरर्थं चिन्तित ऋजुमतिर्जानाति नेतरै।" –त० रा० पृ० ५८। ४ "वट्टमाणभवग्गहणेण विणा दोण्णि, तेण सह तीण्णि भवग्गहणाणि जाणदि त्ति।" –ध० टी०। धवला टीकामें वीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनो दृष्टियोका समन्वय करते हुए लिखते हैं–"व्यक्त निष्पन्न सशयविपर्ययानध्यवसायरहित मन येषा ते व्यक्तमनस, तेषा व्यक्तमनसा जीवाना परेषामात्मनश्च सम्बन्धि वस्त्वन्तर जानाति, नाव्यक्तमनसा जीवाना सम्बन्धि वस्त्वन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात्। अथवा वर्तमानाना जीवाना वर्तमानमनोगत त्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति।"–ध० टी० प० १२६६।

३. यं तं विपुलमदिणाणं तं छव्विधं-उज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगं कायगदं जाणदि, अणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, एवं वचिगदं काय(गदं) च। एवं याव वत्तमाणाणं पि जीवाणं जाणदि। जहणेण जोजणपुधत्तं, उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो, णो बहिद्धा। जहणेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेदि। एवं मणपज्जवणाणावर०कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

विशेषार्थ—यदि वर्तमान भवको ग्रहण करते है तो तीन भव होते हैं। यदि वर्तमानको छोड दिया जाये, तो दो भव होते हैं। इस कारण दो भव या तीन भवसम्बन्धी कथनमें विरोधका सद्भाव नहीं रहता है। सात-आठ भवकी गति–आगतिके विषयमें भी यही समाधान है। वर्तमान भवको सम्मिलित करनेपर आठ भव, उसको छोडनेपर सात भव होते है।

३ जो विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है, वह छह प्रकारका है। वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है, सरल वचनगत पदार्थको जानता है, सरल कायगत-पदार्थको जानता है, कुटिल मनोगत पदार्थको जानता है, कुटिल वचनगत पदार्थको जानता है, कुटिल कायगत पदार्थको जानता है। यह वर्तमान जीव तथा अवर्तमान जीवोंके अथवा व्यक्तमनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंके द्वारा चिन्तित अचिन्तित सुख-दुःख लाभालाभादिको जानता है।[1]

इसका क्षेत्र जघन्यसे योजन पृथक्त्व है। यह उत्कृष्टसे मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर जानता है। बाहर नहीं जानता है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका क्षेत्र ४५ लाख योजन वर्तुलाकार न होकर [2]विष्कम्भात्मक है, चौकोर रूप है। अत एव मानुपोत्तर पर्वतके बाहरके कोणमे स्थित विपयोंको भी विपुलमतिज्ञानवाला जानता है।

कालकी अपेक्षा यह जघन्यसे सात आठ भव, उत्कृष्टसे असंख्यात भवोंकी गति आगतिका प्ररूपण करता है।[3]

विशेष—शंका–इस मनःपर्ययज्ञानावरण प्ररूपणामे मनःपर्ययज्ञानका निरूपण क्यों किया गया ? ज्ञानमे कर्मत्वका समन्वय कैसे होगा ?

समाधान-मनःपर्ययज्ञानावरणके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है। यहाँ आवरण किये जानेवाले ज्ञानमे आवरण अर्थात् मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका उपचार किया गया है।

इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा की गयी।

---

१ "चितियमचिंतिय वा अद्धंचितियमणेयभेयगय। ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा।" –गो०जी० गा० ४४८। त०रा० पृ० ५९। २ "णरलोएत्ति य वयण विक्खम्भणियामय ण वट्टस्स। तम्हा तग्घणपदर मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठ ॥"–गो० जी० गा० ४५५। ३. "दुगतिगभवा हु अवर सत्तट्ठभवा हवति उक्कस्स। अडणवभवा हु अवरमसखेज्ज विउलउक्कस्स ॥"–गो० जी० गा० ४५६।

४. यं तं केवलणाणावरणीयं कम्मं तं एयविधं। तस्स परूवणा कादव्वा भवदि। सयं भगवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुरमणुसस्स लोगस्स अगदि-गदिं चयणोपवादं बंधं मोक्खं इड्ढिं जुडिं[2] अणुभागं तक्कं कलं मणो-माण(णु)गिक-भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोगे सव्वजीवाणं सव्वभावे समं सम्मं जाणदि। एवं केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

[केवलज्ञानावरणप्ररूपणा]

४. जो केवलज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी प्ररूपणा की जाती है। जिनेन्द्र भगवान्को केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी उपलब्धि हो चुकी है। वे स्वयं स्वर्गवासी देव, असुर[3] अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, तिर्यंच तथा मनुष्यलोककी गति, आगति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, युति (जीवादि द्रव्योंका मिलना), अनुभाग, तर्क, पत्रछेदनादि कला, मनजनित ज्ञान, मानसिक विषय, राज्यादि एवं महाव्रतादिका पालन करना, रूप भुक्ति, कृत, प्रतिसेवित (त्रिकालमे पंचेन्द्रियोके द्वारा सेवित), आदि कर्म अरह अर्थात् अनादि कर्मको सर्वलोकमे, सर्व जीवोके सर्वभावोंको युगपत् सम्यक् प्रकारसे जानते है।

विशेषार्थ—[4]केवली भगवान् त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोकसम्बन्धी सम्पूर्ण गुण पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते है। "ऐसा कोई ज्ञेय नहीं हो सकता है, जो केवली भगवान्के ज्ञानका विषय न हो। ज्ञानका धर्म ज्ञेयको जानना है और ज्ञेयका धर्म है ज्ञानका विषय होना। इनमे विषयविषयिभाव सम्बन्ध है। जब मति और श्रुतज्ञानके द्वारा भी यह जीव वर्तमानके सिवाय भूत तथा भविष्यत् कालकी वार्ताका परिज्ञान करता है, तब केवली भगवान्के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पदार्थोंका ग्रहण करना युक्तियुक्त ही है। प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेपर आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे प्रदीपका प्रकाशन करना स्वभाव है, उसी प्रकार ज्ञानका भी स्वभाव स्व तथा परका प्रकाशन करना है। यदि क्रमपूर्वक केवली भगवान् अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार न हो पाता। अनन्तकाल व्यतीत होनेपर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती। आत्माकी असाधारण निर्मलता होनेके कारण एक समयमें ही सकल

---

१ "असुराश्च भवनवासिन, देवासुरवचन देशामर्पकमिति ज्योतिपा व्यन्तराणा तिरश्चा ग्रहण कर्तव्यम्।"–ध० टी०। २ "जीवादिदव्वाण मेलण जुदी। पत्तच्छेद्यादि कला णाम। मणोजणिद णाण वा मणो वुच्चदे। रज्जमहव्वयादिपरिपालण भुत्ती णाम। पचहि इदिएहि तिसुवि कालेसु ज सेविद त पडिसेविद णाम। आद्यकर्म आदिकम्म णाम, अत्थवजणपज्जायभावेण सव्वेसिं दव्वाणमादि जाणदि त्ति भणिद होदि। रह अन्तरम्। अरह अनन्तरम्। अरह कर्म अरहस्कर्म त जानाति। सुद्धदव्वट्ठियणयविसएण सव्वेसिं दव्वाणमणादित्त जाणदि त्ति भणिद होदि।" ध० टी० प० १२७२। ३ असुर व्यन्तरोके भेदविशेषका ज्ञापक होते हुए भी यहाँ सुरोसे भिन्न असुर इस अर्थमे प्रयुक्त हुआ है। इस कारण तिर्यंच भी असुर शब्दके द्वारा गृहीत हुए हैं।–ध० टी०। ४ "सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।"–त० सू० १।२९। ५ "न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तरप्रतिषेधात्। ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञ स्यादसति प्रतिबन्धने। दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने॥" –अष्टसह० पृ० ४६।५०।

५. दंसणावरणीयस्य कम्मस्स णव पगदीओ। वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसपगदीओ। आयुगस्स कम्मस्स चत्तारि पगदीओ।

पदार्थोंका ग्रहण होता है। 'जब ज्ञान एक समयमे सम्पूर्ण जगत्का या विश्वके तत्त्वोंका बोध कर चुकता है, तब आगे वह कार्यहीन हो जायगा' यह आशंका भी युक्त नहीं है, कारण काल द्रव्यके निमित्तसे तथा अगुरुलघुगुणके कारण समस्त वस्तुओंमे क्षण क्षणमे परिणमन-परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था, वह आज वर्तमान बनकर आगे अतीतका रूप धारण करता है। इस प्रकार परिवर्तनका चक्र सदा चलनेके कारण ज्ञेयके परिणमनके अनुसार ज्ञानमे भी परिणमन होता है। जगत्के जितने पदार्थ है, उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोक अनन्तगुणित भी होता, तो केवल-ज्ञानसिन्धुमे वह बिन्दुतुल्य समा जाता। इस केवलज्ञानकी प्राप्ति मुख्यतासे ज्ञानावरणके क्षयसे होती है, किन्तु ज्ञानावरणके साथ दर्शनावरण तथा अन्तरायका भी क्षय होता है। इन तीन घातिया कर्मोंके पूर्व मोहका क्षय होता है। मोहक्षय हुए बिना कैवल्यकी उपलब्धि नहीं होती है। उज्ज्वल तथा उत्कृष्ट ज्ञानोंकी प्राप्तिके लिए मोहका निवारण होना आवश्यक है। अनन्त केवलज्ञानके द्वारा अनन्त जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण होनेपर भी वे पदार्थ सान्त नहीं होते है। अनन्त ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थोंको अनन्त रूपसे बताता है, इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अबाधित रहती है। कोई-कोई व्यक्ति सोचते है, सर्वज्ञका भाव सकल पदार्थोंका अवबोध नहीं है, किन्तु केवल आत्माका ज्ञानप्राप्त व्यक्ति उपचारसे सर्वज्ञ कहलाता है, वास्तवमे सर्वज्ञ कोई नहीं है।

यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। जब ज्ञान क्षायोपशमिक अवस्थामे रहता है, तब वह अनेक पदार्थोंका साक्षात्कार करता है, जब वह ज्ञान क्षायिक अवस्थाको प्राप्त करता है, तब उस ज्ञानको न्यून बताकर आत्माके ज्ञान रूपमे सीमित सोचना असम्यक् है। क्षायिक अवस्थामे आबाधक कारण दूर होनेपर ज्ञानकी वृद्धि स्वीकार न कर, उसे न्यून मानना अयोग्य है। शंकाकार यह सोचे कि किस कारणसे सुविकसित मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्ययरूप ज्ञानचतुष्टय क्षीण होकर कैवल्यकालमे आत्माके ज्ञानरूपमे सीमित हो जाते हैं। आत्माका स्वभाव ज्ञान है। प्रतिबन्धक सामग्रीके अभाव होनेपर ऐसी कोई भी सामग्री नहीं है, जो आत्माकी सर्वज्ञताको क्षति पहुँचा सके, अतः जिनशासनमे आत्माकी सर्वज्ञताको काल्पनिक नहीं, किन्तु वास्तविक रूपमे मान्यता प्रदान की गयी है।

इस प्रकार केवलज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

[दर्शनावरणादिकर्मप्ररूपणा]

५. दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृतियाँ हैं–चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि।

वेदनीय कर्मकी साता तथा असाता–ये दो प्रकृतियाँ है।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

नरक मनुष्य, तिर्यंच, देवायु ये आयु कर्मकी चार प्रकृतियाँ हैं।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं बंध-पगदीओ। य तं गदिणामं कम्मं तं चदुविधं-णिरय-गदि याव देवगदि त्ति। या(य)था पगदिभंगो तथा कादव्वो। गोदस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। अंतराइगस्स कम्मस्स पंच पगदीओ। एवं पगदिसमुक्कित्तणा समत्ता।

६. जो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुवि०-ओघेण आदेसेण य। ओघे णाणंतराइगस्स पंच पग० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? [सव्वबंधो।] दंसणाव० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वाओ पगदीओ बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणबंधमाणस्स

नाम कर्मकी बयालीस बन्ध प्रकृतियाँ हैं-गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपाग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, विहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थकर।

इस नामकर्ममे जो गति नामका कर्म है, उसके चार भेद हैं-नरकगति, देवगति मनुष्यगति, तिर्यंचगति। इस प्रकार जिस प्रकृतिके जितने भेद हैं, उतने भेद समझ लेना चाहिए। अर्थात् षट्खडागम वर्गणाखडान्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमें जिस प्रकार कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है तदनुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—गतिके सिवाय नामकर्मकी ये प्रकृतियाँ भी भेदयुक्त है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय जाति। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण शरीर। औदारिकादि रूप पञ्च बन्धन तथा पंच संघात। समचतुरस्र, न्यग्रोधपरि-मण्डल, कुब्ज, स्वाति, वामन, हुण्डक-संस्थान। औदारिक-शरीरांगोपाग, वैक्रियिक-शरीरांगो-पांग, आहारक-शरीरागोपांग। वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित, असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन। शुक्ल, कृष्ण, नील, पीत, लाल वर्ण। सुगन्ध, दुर्गन्ध। खट्टा, मीठा, चिरपिरा, कटु, कषायला रस। ठंडा, गरम, स्निग्ध, रूक्ष, हलका, भारी, नरम, कठोर-रूप-स्पर्श। नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी। प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति। ये ६५ उत्तर प्रकृतियाँ है, जो पिण्डरूपसे १४ कही गयी है। ६५ उत्तर भेदवाली पिण्ड प्रकृतियोंमे २८ भेदरहित अपिण्ड प्रकृतियोंको जोड़नेपर नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियाँ होती हैं।

उच्चगोत्र नीचगोत्रके भेदसे गोत्रकर्म दो प्रकारका है।

दान-लाभ-भोग-उपभोग तथा वीर्यान्तराय ये अन्तरायकी पाँच प्रकृतियाँ है। सब प्रकृतियाँ १४८ होती है।

विशेष—इन कर्म प्रकृतियोंके विशेष भेद किये जाये, तो अनन्त भेद हो जाते है।

इस प्रकार प्रकृति-समुत्कीर्तन समाप्त हुआ

[सर्वबन्धनोसर्वबन्धप्ररूपणा]

६. जो सर्वबन्ध तथा नोसर्वबन्ध है, उसका ओघ अर्थात् सामान्य और आदेश अर्थात् विशेषसे दो प्रकार निर्देश होता है।

ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्व-बन्ध ? [इनका सर्वबन्ध होता है।]

विशेषार्थ—ज्ञानावरण अथवा अन्तरायके पंच भेदोंमे-से अन्यतमका बन्ध होनेपर

णोसव्वबंधो। एवं मोहणीय-णामाणं। वेयणी०-आयु-गोदा० किं सव्वबंधो णोसव्व-बंधो? णोसव्वबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति, णवरि अणुदिसा० याव सव्वट्ठत्ति दंसणा०-णोसव्वबंधो। एदेण बीजेण णेदव्वं। एवं उक्कस्सं-बंधो अणुक्कस्सं-बंधोपि णेदव्वं। यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो दु० णिद्देसो। ओघे० आदेसे०। ओघे० णाणंतराइगस्स पंचविहस्स किं जहंणबंधो, अजहंणबंधो? अजहंण-बंधो। दंसणावरणीय-मोहणीय-णामाणं वि किं जहण्णबंधो, अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। वेदणी०-आयु-गोदा० किं जह० अजह०? जहणबंधो। एवं याव आण (अणा)हारग त्ति णेदव्वं। यो सो [1]सादिय-बंधो अणादिय बंधो ४, तस्स

शेष चार भेदोंका नियमसे बन्ध होता है। सर्व भेदोंका बन्ध होनेके कारण इनका सर्वबन्ध कहा गया है।

प्रश्न—दर्शनावरण कर्मका सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है?

उत्तर—सम्पूर्ण प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध होता है। सर्व प्रकृतियोंमें-से न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध है।

मोहनीय तथा नाम कर्ममें दर्शनावरणके समान जानना चाहिए अर्थात् सर्व प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध और कुछ न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध होता है। वेदनीय, गोत्र तथा आयुकर्ममें क्या सर्वबन्ध है, अथवा नोसर्वबन्ध है? नोसर्वबन्ध है।

विशेषार्थ—साता, असाता वेदनीय, उच्च, नीच गोत्र इन युगलोंमें-से किसी एकका बन्ध होगा तथा अन्यका अबन्ध होगा। इसी प्रकार आयुचतुष्टयमें-से अन्यतमका बन्ध होगा, शेषका अबन्ध होगा। इसलिए वेदनीय, गोत्र तथा आयुका नोसर्वबन्ध कहा है।

आदेशसे यह क्रम अनाहारक पर्यन्त जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोंमें दर्शनावरण तथा मोहनीयका नोसर्वबन्ध होता है। इस कथनको आगे भी अन्य मार्गणाओंमें सर्व नोसर्वबन्धका बीजभूत समझना चाहिए।

[उत्कृष्टबन्ध-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा]

इसी प्रकार उत्कृष्टबन्ध तथा अनुत्कृष्टबन्धमें भी जानना चाहिए।

विशेष—सर्वबन्ध नोसर्वबन्धमें ओघ तथा आदेशसे जैसा वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

[जघन्यबन्ध-अजघन्यबन्धप्ररूपणा]

जो जघन्यबन्ध तथा अजघन्यबन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं। ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध है? अजघन्यबन्ध है। दर्शनावरण, मोहनीय तथा नामकर्मका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्य-बन्ध? जघन्यबन्ध है तथा अजघन्यबन्ध है। वेदनीय, आयु तथा गोत्रका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध? जघन्यबन्ध है।

अनाहारक मार्गणापर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

---

१ 'सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स। तदिया सादिय सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ॥"-गो० कर्म० गा० १२२।

इमो दुवि० । ओघे० आदे० ।

७. ओघे० सादिय-बंधो णाम तत्थ इमं अट्ठपदं एक्का वा छा वा पगर्द। वोच्छिण्णाओ संतिओ भूयो बज्झदि त्ति । एसो सादियबंधो णाम ।

[सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा]

जो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश है ।

७ सादि बन्धका यह अर्थपद है कि एक कर्म अर्थात आयु कर्मका, छह कर्मों अर्थात् वेदनीयको छोडकर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरा रूप छह कर्मोंका बन्ध व्युच्छिन्न होनेके पश्चात् पुनः बन्ध होना सादिबन्ध है ।

विशेषार्थ—आयुका निरन्तर बन्ध नहीं होता है । आयुका बन्ध होकर रुक जाता है पुनः बन्ध होता है अत एव इसका सादिबन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अध्रुव भी है । आयुके विषयमे गोम्मटसार कर्मकाण्डमे लिखा है कि भुज्यमान आयुके उत्कृष्ट छह मास अवशेष रहनेपर देव तथा नारकी मनुष्यायु वा तिर्यचायुका बन्ध करते हैं । भोग-भूमिया जीव छह मास अवशेष रहनेपर देवायुका ही बन्ध करते है । मनुष्य तथा तिर्यंच भुज्यमान आयुका तीसरा भाग अवशेष रहनेपर चारों आयुका बंध करते है । तेजकायिक तथा वातकायिक जीव एव सप्तम पृथ्वीके नारकी तिर्यच आयुको ही बाँधते है । एकेन्द्रिय वा विकलेन्द्रिय मनुष्यायु वा तिर्यचायु ही का बन्ध करते है ।

एक जीव एक भवमें एक ही आयुका बन्ध करता है । वह भी योग्यकालमे आठ बार ही बाँधता है । वहाँ सर्वत्र तीसरा-तीसरा भाग शेष रहनेपर बाँधता है ।

आठ अपकर्षके कालोंमे पहली बारके बिना द्वितीयादिक बारमे पूर्वमे जो आयु बाँधी थी, उसकी स्थितिकी वृद्धि, हानि व अवस्थिति होती है । पहली बार आयुकी जो स्थिति बाँधी थी उसके पश्चात् यदि दूसरी बार, तीसरी बार इत्यादिक बन्ध योग्य कालमे पहली स्थितिसे यदि अधिक आयुका बन्ध हुआ है तो पीछे जो अधिक स्थिति बँधी उसकी प्रधानता जाननी चाहिए । यदि पूर्वबद्ध स्थितिकी अपेक्षा न्यून स्थिति बँधी तो पहली बँधी अधिक स्थितिकी प्रधानता जाननी चाहिए । आयुके बन्धको करते हुए जीवके परिणामोंके कारण आयुका अपवर्तन अर्थात् घटना भी होता है । इसे अपवर्तन घात कहते है ।

उदय प्राप्त आयुके अपवर्तनको कदलीघात कहते है । यह भी ज्ञातव्य है कि तीसरा भाग तीसरा भाग अवशेष रहनेपर आगामी आयुका बन्ध होगा ही ऐसा एकान्त नियम नहीं है । उस कालमे आयुके बन्ध होनेकी योग्यता है । वहाँ आयुका बन्ध होवे तथा न भी होवे । (गो० क० बडी टीका पृ० ८३६–८३८ गाथा ६३९—६४३) उपशान्त कषाय गुण-स्थानमे जब कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, वहाँ केवल सातावेदनीयका ही बन्ध होता है । जब वह जीव गिरकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आता है, तब ज्ञानावरणादिका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिका सादिबन्ध कहा गया है ।

---

१ "सादी अबधबधे सेढि अणारूढगे अणादी हु । अभवसिद्धम्हि धुवो, भवसिद्धे अद्धुवो बधो ॥"

८. एवं मूलपगदि-अट्ठपदभंगो कादव्वो । एदेण अट्ठपदेण दुवि० ओघे० आदेसे० । ओघे० [1]पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्तं सोलसकसा०-भयं-दुगुं०-तेजा-कम्म०-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पंचंतराइ० किं सादि० ४ ? सादियबंधो वा० ४ । सादासादं सत्तणोकसाय-चदुआयु-चदुग०-पंचजा०-तिण्णिसरी०-छस्संठा०-तिण्णि-अंगो०-छस्संघड० चत्तारि आणुपु०-परघादुस्सास-आदावुज्जोवं दोविहायगदि-तसादि-दसयुगलं तित्थयरं णीचुच्चागोदाणं किं सादि०४ ? सादियअद्धुवबंधो । एवं अचक्खु० । भवसिद्धि० धुवरहिदं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

९. यो सो बंधसामित्तविचयो णाम तस्स इमो णिद्देसो ओघे० आदे० । ओघे० चोद्दस-जीवसमासा णादव्वा भवंति । तं यथा मिच्छादिट्ठि याव अजोगिकेवलि त्ति । एदेमिं चोद्दस-जीवसमासाणं पगदिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि ।

---

८ इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदभग (प्रयोजनभूत पदोंके भंग) करना चाहिए। इस अर्थपदसे इस बातको लक्ष्यमे रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आदेश-द्वारा दो प्रकार निर्देश करते है।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आदेशका अर्थ विशेष है। ओघसे ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण आदि ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव. ये चारो बन्ध होते है ? सादि, अनादि ध्रुव अध्रुव बन्ध होते है।

साता, असाता, भय जुगुप्सा विना ७ नोकषाय, ४ आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ सस्थान, ३ आगोपाग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थकर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र इनके क्या सादि आदि चार बन्ध होते हैं ? सादि तथा अध्रुव बन्ध हैं।

ऐसा अचक्षु दर्शनमे जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमे ध्रुव भग नहीं है। अनाहारकपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए।

[वन्धस्वामित्वविचयप्ररूपणा]

९ जो वन्धस्वामित्वविचय है–उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते है। ओघसे–मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह [2]जीवसमास—गुणस्थान होते हैं। इन चौदह जीवसमासों–गुणस्थानोंमे प्रकृतिवन्धकी व्युच्छित्ति कहनी चाहिए।

---

१ 'घादितिमिच्छकसाया भय-तेजगुरु-दुग-णिमिण वण्णचओ। सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं च दुधा ॥" —गो० क० गा० १२३–१२४ । २. "एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेवट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति। जीवाः समस्यन्ते एष्विति जीवसमासाः । तेषां चतुर्दशानां जीवसमासानां चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः ।" —ध० टी० भा० १ पृ० ९१,१३१ ।

१०. पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगित्ति-उच्चागोद-पंच-अंतराइगाणं को बंधको, अबंधो० ? मिच्छादिट्ठिप्पहुदि याव सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदा त्ति बंधा। सुहुमसां-पराइय-सुद्धिसंज०द्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा

गुणस्थान	बन्ध व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियाँ	विवरण
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्मत्रय, विकलेन्द्रिय, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।
सासादन	२५	४ अनन्तानुबन्धी, स्त्यानत्रिक, दुर्भगत्रिक, संस्थान ४, संहनन ४, दुर्गमन, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यचायु।
मिश्र	०	×
अविरत	१०	अप्रत्याख्यानावरण ४, वज्रवृषभसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-आंगोपांग, मनुष्यद्विक तथा मनुष्यायु।
देशविरत	४	प्रत्याख्यानावरण ४।
प्रमत्तसंयत	६	अस्थिर, अशुभ, असाता, अयश कीर्ति, अरति, शोक।
अप्रमत्तसंयत	१	देवायु।
अपूर्वकरण	३६	निद्रा प्रचला ये प्रथम भागमें। छठेमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्माण, आहारद्विक, समचतुरस्र संस्थान, सुरद्विक, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय। चरममें हास्य रति भय जुगुप्सा।
अनिवृत्तिकरण	५	प्रथम भागमें पुरुषवेद, २रेमें सं० क्रोध, ३रेमें सं० मान, ४ थेमें सं० माया, ५ वेंमें सं० लोभ।
सूक्ष्मसाम्पराय	१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यश कीर्ति, उच्चगोत्र
उपशांतकषाय	०	×
क्षीणमोह	०	×
सयोगकेवली	१	सातावेदनीय।
अयोगकेवली	०	×
	१२०	गो० क० गा० ९४-१०२।

१० ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतपर्यन्त बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत द्रव्यके चरम समय तक पहुँचकर अन्तमें बन्धकी व्युच्छित्ति हो

अबंधा । थीणगिद्धितिगं-अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे० तिरिक्खायु०-तिरिक्खग० च-
दुसंठा०-चदुसंघा०-तिरिक्खगदिपा० उज्जो० अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज
णीचागोदा० को बंधो, को अबंधो? मिच्छादि० सासणसम्मादिट्ठि त्ति। एदे
बंधा, अवसेसा अबंधा। णिद्दापयलाणं को बंधगो, को अबंधो ? मिच्छादि-
ट्ठिपहुदि याव अपुव्वकरणपविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकर-
णद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।
सादावेद० को बंधो, को अबंधो? मिच्छादिट्ठिप्पभुदिं (हुडि) याव सयोगकेवली
बंधा सजोगकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि एदे बंधा, अवसेसा
अबंधा। असादावेद०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसगित्ति को बं० को अबं०?
मिच्छादिट्ठि पभुदि (हुडि) याव अपमत्त (पमत्त) संजदा त्ति बंधा। एदे बंधा
अवसेसा अबंधा। मिच्छत्त-णपुसंक०वेद-णिरयायु०-णिरयगदि-चदुजादि हुंडसं-
ठाण-असंपत्तसेवट्टसंघ०-णिरयगदिपाओग्गाणुपु०-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साधा-
रण० को बंधो, को अबं०? मिच्छादिट्ठी बंधा अवसेसा अबं०। अपचक्खाणावर०
४-मणुसगदि-ओरालियसरी०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरिसभसंघ० - मणुसगदिपाओ० को
बंधको० अबं०? मिच्छादिट्ठिपभुदि याव असंजद० बंधा। एदे बं० अवसेसा अबं०।

जाती है। इसलिए आदिके १० गुणस्थानवाले जीव बन्धक है, शेष अबन्धक हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, ४ संस्थान, ४ संहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रके बन्धक-अबन्धक कौन है? मिथ्यादृष्टिसे सासादन सम्यक्त्वीपर्यन्त बन्धक है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक है।

निद्रा प्रचलाका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसयतोंमे उपशमको तथा क्षपकोंपर्यन्त बन्धक हैं। अपूर्वकरणके कालमे संख्यातवे भाग वीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

सातावेदनीयका कौन बन्धक-अबन्धक हैं, मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यन्त बन्धक है। सयोगकेवलीके कालके अन्तिम समय व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है, शेप अबन्धक है।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्तिके कौन बन्धक हैं? कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसयतपर्यन्त बन्धक है। ये बन्धक हैं, शेप अबन्धक है।

मिथ्यात्व, नपुसकवेद, नरकायु, नरकगति, ४ जाति, हुण्डकसस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिक सहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त तथा साधारणका कौन बन्धक, कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। शेप अबन्धक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आगोपांग, वज्रवृपभनाराच सहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका कौन बन्धक है? कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असयत सम्यक्त्वपर्यन्त बन्धक है। शेप अबन्धक है।

पंचिंदि० वेगुव्वि० तेजाकम्म० समचदु० वेउ० अंगो०-वण्ण०४ देवाणुपु० - अगुरु०४ पसत्थवि० थीरा-(थिर -सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं को बंध० को अब'० ? मिच्छादि० याव अपुव्व० उवस० खवा बंधा० । अपुव्वकरण० संखेज्जाभागं गंतू० बंधो वोच्छे० । एदे बधा अव० [अबंधा] । आहारस० आहारस०अंगोवं० को ब'० को अब'० ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतूण बंधो० [वोच्छिज्जदि] । एदे बंधा अवसेसा [अबंधा] । तित्थयरस्स को ब'०, को अब'० ? असंज० याव अपुव्वकर० बंधा० । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतू० । एदे ब'० अवसेसा अबंधा० । कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदकम्मं बंधदि ? तत्थ इमेणेहि सोलसकारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि । दंसणविसुज्झदाए, विणयसंपण्णदाए, सीलवदेसु णिरदिचारदाए, आवासएसु अपरिहीणदाए, खणलव-पडिमज्झ(वुज्झ) णदाए, लद्धिसंवेगसंपण्णदाए, यथा छामे(थामे) तथा तवे, साधूणं समाधिसंधारणदाए, साधूणं वेज्जावच्चयोगयुत्तदाए, साधूणं पासुगपरिचागदाए, अरहंत-भत्तीए, बहुस्सुदभत्तीए, पवयणभत्तीए, पवयणवच्छल्लदाए, पवयणपभावणदाए अभि-

आहारक शरीर, आहारक आंगोपांगका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? अप्रमत्त, अपूर्वकरणके संख्यातवें भाग व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? असंयत सम्यग्दृष्टिसे अपूर्वकरणपर्यन्त बन्धक है। अपूर्वकरणके संख्यात भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक है।

शंका—कितने कारणोसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ?

समाधान—इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है। दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु निरतिचारता, आवश्यकेषु अपरिहीनता, क्षण-लव-प्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुसमाधिसन्धारणता, वैयावृत्त्य-योगयुक्तता, साधु-प्रासुकपरित्यागता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचन-

१ धवला टीकामें जो षोडशकारणोंके नाम गिनाये है, उनके क्रममे थोडा अन्तर है। यहाँ आठवें नम्बरपर 'साधुसमाधिसंधारणता'के स्थानमें 'साधुप्रासुकपरित्यागता' पाठ है। ९वें नम्बरपर 'वैयावृत्त्य-योगयुक्तता'के स्थानमें 'समाधिसंधारणता' पाठ है। न० १० में 'साधु प्रासुकपरित्यागता'के स्थानमे 'वैयावृत्त्य-योगयुक्तता' पाठ है। शेष पाठ समान हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें इस प्रकार पाठभेद है—न० ४ में अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, न० ५ में संवेग, ६ मे शक्तित त्याग, न० १० में अर्हद्भक्ति, न० १४ में आवश्यकापरिहाणि, न० १६ में प्रवचनवत्सलत्व पाठ है। तत्त्वार्थसूत्र तथा भूतबलिस्वामी-द्वारा कथित भावनाओंके नामोंमें भी कहीं-कहीं अन्तर है। तत्त्वार्थसूत्रमें 'संवेग', 'साधुसमाधि', 'शक्तित त्याग', 'मार्गप्रभावना' पाठ है, उसके स्थानमें क्रमशः 'लब्धिसंवेगसम्पन्नता', 'साधु-समाधिसंधारणता', 'प्रासुकपरित्यागता', 'प्रवचनप्रभावनता' पाठ है। आचार्यश्रीके महाबन्धमें पाठ नहीं है। एक नवीन भावना क्षणलवप्रतिबोधनता सम्मिलित की गयी है।

क्खणं णाणोपयुत्तदाए। इदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवो तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि।

वत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि जब अन्य कर्मोंके बन्धके कारण नहीं बताये गये तब तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके कारणोंका सूत्रकारने क्यों पृथक् रूपसे उल्लेख किया है?

इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य धवला टीकामें लिखते हैं कि तीर्थंकरके बन्धके कारण ज्ञात न होनेसे उनका पृथक् उल्लेख करना उचित है। उसके बन्धका कारण मिथ्यात्व नहीं है, कारण मिथ्यात्वी जीवके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। सम्यग्दृष्टिके ही तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। असंयम भी बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि संयमी जीव भी उसके बन्धक होते हैं। कषाय भी बन्धका कारण नहीं है, कारण कषायके होते हुए भी इसके बन्धका विच्छेद देखा जाता है अथवा बन्धका आरम्भ भी नहीं होता है। कदाचित् मन्द कषायको बन्धका कारण कहें, तो यह भी नहीं बनता है, कारण तीव्र कषाययुक्त नारकियोंमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध देखा जाता है। तीव्र कषाय भी उसका कारण नहीं है, क्योंकि मन्द कषायवाले सर्वार्थसिद्धिके देवों और अपूर्वकरणगुणस्थानवालोंमें भी उसका बन्ध होता है। बन्धका कारण कदाचित् सम्यक्त्वको कहें, तो यह भी ठीक नहीं है। सम्यग्दर्शन होते हुए भी बन्धका कहीं-कहीं अभाव देखा जाता है। यदि दर्शनकी निर्मलताको कारण कहें तो दर्शनमोहके क्षय करनेवाले सभी व्यक्तियोंके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा भी नहीं है। अतः दर्शनकी शुद्धता भी कारण नहीं है। कार्यकारणभावका नियम तो तब बनता है, जब कारणके होनेपर नियमसे कार्य बन जाये। सब क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तो तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध नहीं करते हैं। ऐसी स्थितिमें उत्पन्न होनेवाली शंकाके निराकरणके लिए भूतबली स्वामीने कहा है कि इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्रका बन्ध करते हैं।

शंका—नामकर्मके भेद तीर्थंकरकी गोत्र संज्ञा क्यों की गयी?

समाधान—उच्चगोत्रके बन्धके अविनाभावी होनेसे तीर्थंकरप्रकृतिको भी गोत्र कहा है[1] (?)

तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, इस बातका परिज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'तत्थ' शब्दका ग्रहण किया है।

शंका—[2]तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ अन्य गतियोंमें क्यों नहीं होता है?

समाधान—तीर्थंकरप्रकृतिमें सहकारी कारण केवलज्ञानसे उपलक्षित जीवद्रव्य है। उसके बिना बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। मनुष्यगतिमें केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है। इससे मनुष्यगतिमें ही बन्धका प्रारम्भ कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यगतिमें केवलज्ञान उत्पन्न होकर तीर्थंकरप्रकृति पूर्ण विकसित हो अपना कार्य कर सकती है, अन्य गतिमें यह बात नहीं है। अतः तीर्थंकरप्रकृतिका अंकुरारोपण मनुष्यगतिमें ही होता है।

---

१ कथं तित्थयरस्स णामकम्मावयवस्स गोदसण्णा? ण, उच्चगोदबंधाविणाभावित्तणेण तित्थयरस्सवि गोदत्तसिद्धीदो—बंधसामित्तविचय पृ० २८ ताम्रपत्रीय प्रति। २ "अण्णगदीसु किं ण पारंभो होदित्ति वुत्ते ण होदि, केवलणाणोवलक्खियजीवदव्वसहकारिकारणस्स तित्थयर-णामकम्मबंधपारंभस्स तेण विणा समुप्पत्ति-विरोहादो।"—ध० टी० प० ५३६।

गोम्मटसार कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकामे लिखा है कि तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध मनुष्य-गतिमे प्रारम्भ किया जाता है, क्योकि अन्य गतियोमे विशिष्ट विचार, क्षयोपशम आदि सामग्रीका अभाव है। इसी कारण मनुष्यगतिका सूचक 'णरा' यह पद ९३ गाथामे आया है। टीकाकारके ये शब्द महत्त्वपूर्ण है—"नरा इति विशेषण शेषगतिज्ञानमपाकरोति, विशिष्ट-प्रणिधान-क्षयोपशमादिसामग्रीविशेषाभावात्" (पृ० ७८)।

किन्ही आचार्योका मत है कि इस तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रथमोपशम सम्यक्त्वमे नही होता है, क्योकि उसका काल स्तोक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमे षोडशकारण भावनाएँ नही भायी जा सकतीं। महाबन्धकारका यह अभिमत नही है। यह बन्ध प्रत्यक्षकेवली, श्रुत-केवलीके चरणोके समीप ही होता है, कारण अन्यत्र उस प्रकारकी विशिष्ट विशुद्धताका अभाव है।[1]

बन्धसामित्तविचय (मूल पृ० ७५) मे लिखा है, "पारद्धतित्थयर-बंधादो तदियभवे तित्थयरसतकम्मियजीवाण मोक्खगमणणियमादो" तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धारम्भके भवसे तृतीय भवमे तीर्थंकर कर्मके सत्त्वयुक्त जीवोंके मोक्षगमनका नियम है। अतएव तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक तीन भवसे अधिक ससारमे नही रहता है।

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इस प्रकृतिके बन्धके कारण सोलह कहे गये है। द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेसे एक कारण भी इसके बन्धका हेतु है, दो भी कारण होते हैं, अतः सोलह ही होते है या नहीं इस सशयके निवारणके लिए सोलह कारणोकी गणना सूत्रमे की है।

इन भावनाओके स्वरूपपर वीरसेनाचार्यने बधसामित्त विचय नामक तृतीय खण्डकी धवलाटीकामे विशद विवेचन किया है। उसका मर्म इस प्रकार है—

दर्शनविशुद्धता—यह भावना सोलह कारण भावनाओमे प्रथम सगृहीत की गयी है। इसका भाव तीन मूढता तथा अष्टमलरहित निर्मल सम्यग्दर्शनका लाभ होना है।

शंका—यदि इस एक ही भावनासे तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है, तो सभी सम्यक्त्वी जीव उसका बन्ध क्यो नही करते ?

समाधान—शुद्ध नयसे मात्र तीन मूढता तथा अष्टमलोसे व्यतिरिक्तपना ही दर्शन-विशुद्धता नहीं है इसके साथ-ही-साथ साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययुक्तता अरहन्तभक्ति बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचन-प्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता आदिका भी समावेश होना आवश्यक है। इस प्रकार अन्य भावनाओंका भी सग्रह करनेवाली दर्शनविशुद्धता तीर्थंकरका बन्ध करती है।

विनयसम्पन्नता भी तीर्थंकरकर्मको बाँधती है। विनयके ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रकी अपेक्षा तीन भेद है। ज्ञानविनयमे अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, बहुश्रुतिभक्ति और प्रवचनभक्ति सगृहीत है। दर्शनविनयका अर्थ है प्रवचनोपदिष्ट सम्पूर्ण तत्त्वोका श्रद्धान तथा त्रिमूढता और अष्टमलका त्याग करना। इसमे अरहन्त-सिद्धभक्ति क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता तथा प्रवचनप्रभावनताका सद्भाव पाया जाता है। चरित्र विनयमे शीलव्रतेषु निरतिचारिता,

---

[1] प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषद्वितीयोपशम वा। असंयतादिअप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थकरबन्धं प्रारभन्ते, तेऽपि प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपान्ते एव । अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वे इति भिन्नविभक्तिकरण [illegible] सम्यक्त्वे [illegible] स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् [illegible] तद्बन्धप्रारम्भो न इति केषाचित् पक्ष ज्ञापयति। केवलिद्वयान्ते एवेति नियम, तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासंभवात् [illegible] पृ० ७८।

आवश्यकेपु अपरिहीनता, यथाशक्ति तप, साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रवचनवत्सलता सगृहीत है। इस प्रकार अनेक भावनाओंसे समन्वित एक विनयसम्पन्नता रूप भावना तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध करती है। यह दर्शन तथा ज्ञानकी विनय देव तथा नारकियोंमे कैसे सम्भव हो सकती है ? इससे इसे मनुष्योंमें ही कहा है।

शंका—जिस प्रकार यहाँ देव-नारकियोंके दर्शन और ज्ञान-विनयका अभाव कहा है उसी प्रकार चारित्र-विनयका अभाव क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—ज्ञानदर्शन विनयका विरोधी चारित्र भी नहीं हो सकता। अर्थात् ज्ञान-दर्शन विनयके अभावमे चारित्र-विनयका भी अभाव होगा। यह बात प्रकट करनेको चारित्र-विनयका पृथक् उल्लेख नहीं किया है।

शीलव्रतेपु निरतिचारतासे भी तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध होता है।[1] हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रहसे विरति होना व्रत है। व्रतका रक्षण करनेवाला शील कहलाता है। मद्यपान, मासभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष-वेद, नपुसक वेदका अपरित्याग अतिचार कहलाता है। इनका अभाव करना शीलव्रतेपु निर-तिचारता है। इससे तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

शंका—यहाँ शेष पन्द्रह कारण किस प्रकार सम्भव होंगे ?

समाधान—सम्यग्दर्शन, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसवेगसम्पन्नता, साधुसमाधि-सन्धारणता, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, साधुप्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनताके बिना शीलव्रतेपु अनतिचारता सम्भव नहीं है। असंख्यात गुणश्रेणियुक्त कर्मनिर्जरामें जो हेतु है, उसे व्रत कहते है। सम्यक्त्वके बिना केवल हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म तथा परिग्रहके त्यागमात्रसे ही वह गुणश्रेणी निर्जरा नहीं हो सकती, कारण दोनोंके द्वारा होनेवाले कार्यका एकके द्वारा सम्पन्न होनेका विरोध है। षट्द्रव्य नवपदार्थके समूह रूप लोकको विषय करनेवाली अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना शीलव्रतोंमे कारणभूत सम्यक्त्वकी अनुपपत्ति है। इस प्रकार उसमे सम्यग्दर्शनके समान सम्यग्ज्ञानका भी सद्भाव पाया जाता है। यथाशक्ति तप, आवश्यकापरिहीनता तथा प्रवचनवत्सलत्वरूप चारि-त्रविनयके बिना यह शीलव्रतेषु निरतिचारिता नहीं बन सकती है। इस प्रकार व्यापक अर्थयुक्त यह भावना तीर्थंकरनामकर्मके बन्धका कारण है।

आवश्यकेपु-अपरिहीनता—समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्गके भेदसे आवश्यक छह प्रकार कहा गया है। शत्रु-मित्र, मणि-पाषाण, सुवर्ण-मृत्तिका-मे राग द्वेषका अभाव समता है। अतीत अनागत तथा वर्तमान कालसम्बन्धी पचपरमेष्ठियों-का भेद न करके 'णमो अरहंताण, णमो सिद्धाण' इत्यादि द्रव्यस्तुतिका कारण नमस्कार स्तुति कहलाता है। वृषभादि चौबीस तीर्थंकर, भरतादि क्षेत्रोंके केवली, आचार्य, चैत्यालयादिकका पृथक्-पृथक् रूपसे नमस्कार करना अथवा गुणोंका अनुस्मरण करना वन्दना है। पच महा-व्रतो तथा ८४ लाख उत्तरगुणोमे लगे हुए कलंकोंका प्रक्षालन करना प्रतिक्रमण है। महाव्रतोंके

---

१ "हिंसालियचोज्ज-बभ-परिग्गहेहिंतो विरदी वद णाम। वदपरिरक्खण सील णाम। सुरावाण—मास-भक्खण कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रइ-सोग-भय-दुगुछित्थि-पुरिस-णउसयवेदापरिच्चागो अदिचारो। एदेसिं विणासो णिरदिचारो सपुण्णदा, तस्स भावो णिरदिचारदा"—बन्धसामित्तविचय पृ० ३०।

विनाशके कारण अथवा उनमे मलिनता लगानेवाले दोषोंका जिस प्रकार अभाव होगा, उस प्रकार मै करूँगा। इस प्रकार चित्तसे आलोचना करके ८४ लाख व्रतोंकी शुद्धिका प्रतिग्रह करना प्रत्याख्यान है। शरीर, आहारादिकसे मन वचनकी प्रवृत्तिको अलग करके ध्येयमे रोकनेको व्युत्सर्ग कहते हैं। इन छह आवश्यकोंको अपरिहीनता— अखण्डताको आवश्यका-परिहीनता कहते है। इसके द्वारा तीर्थंकरधर्मका बन्ध होता है।

यहाँ शेप कारणोंका अभाव नहीं होता है। दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, व्रतशील-निरतिचारता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधु-समाधि-सन्धारण, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रासुकपरित्यागता; अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचन-प्रभावना, प्रवचनवत्सलता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना छह आवश्यकोंकी निरति-चारिता नहीं बन सकती है। अतः आवश्यकेषु अपरिहीनता तीर्थंकरनामकर्मका चतुर्थ कारण है।

क्षण[1]-लव-प्रतिबोधनता—'क्षणलव' शब्द कालविशेपका द्योतक है। उस कालविशेषमे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत तथा शीलरूप गुणोका उज्ज्वल करना अर्थात् कलंकका प्रक्षालन करना अथवा व्रतादिकी प्रदीप्ति अर्थात् वृद्धि करना प्रतिबोध है। उसका भाव प्रतिबोधनता है। क्षणलवोंकी प्रतिबोधनताको क्षणलवप्रतिबोधनता कहते है। यह अकेली भावना भी तीर्थंकर-नामकर्मका बन्ध करती है। यहाँ भी पूर्वकी भाँति शेप कारणोंका अन्तर्भाव रहता है।

लब्धिसंवेगसम्पन्नता—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमे जीवके समागमका नाम लब्धि है। लब्धिके लिए जो संवेग है—वह लब्धिसंवेग[3] है। उसकी सम्पन्नताको लब्धिसंवेगसम्पन्नता कहते हैं। शेप कारणोंके अभावमे इसका सद्भाव नहीं बनता है, कारण उनके अभावका और लब्धिसंवेग-सम्पन्नताके सद्भावका विरोध है।

यथाशक्ति तप—बल-वीर्यको प्राकृतमे 'थाम' कहते है। अनशनादि बाह्य, विनयादि-अंतरंग द्वादश प्रकारके तप है। शक्तिके अनुसार तप करनेमे तीर्थंकरकर्मका बन्ध होता है। यह भावना ज्ञान, दर्शनके बलसे सम्पन्न धीर पुरुषके होती है तथा दर्शनविशुद्धतादिके अभावमे यह नहीं पायी जा सकती है। इससे अकेली इस भावनाको तीर्थंकरनामकर्मका कारण कहा है।

साधुप्रासुक-परित्यागता—जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, क्षायिक सम्यक्त्वकी साधना करता है उसे साधु कहते हैं। प्रासुकका एक अर्थ है 'वह वस्तु, जिससे जीव निकल गये हों', दूसरा अर्थ है निरवद्य-निर्दोप वस्तु। साधुओंको ज्ञान, दर्शन, चारित्र-का परित्याग अर्थात् दान प्रासुकपरित्यागता है। ज्ञानदर्शनचरित्रका परित्यागरूप दान गृहस्थोंमे सम्भव नहीं हो सकता, कारण वहाँ चारित्रका अभाव है। रत्नत्रयका उपदेश भी गृहस्थोंमे नहीं बन सकता है। कारण उनमे दृष्टिवादादि उपरके सूत्रोंके उपदेशका अधिकार नहीं है। अतः यह साधु-प्रासुकपरित्यागतारूप कारण महर्षियोंके होता है।

यहाँ भी शेप कारणोंका अभाव नहीं है। अरहन्तादिककी भक्ति, नवपदार्थोंका श्रद्धान, शीलव्रतोंमे निरतिचारिताके अभावमे ज्ञान, चारित्रका परित्याग अर्थात् दान असम्भव है,

1 "आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो। सत्तुस्सासा थोवो सत्त थोवा लवो भणियो॥" —गो० जी०। 2 "खणलवा णाम कालविसेसा। सम्मद्दंसण-णाण-वद-सीलगुणाणमुज्जालणं कलंकपक्खालणं संधुक्खणं वा पडिबुज्झणं णाम। तस्स भावो पडिबुज्झणदा। खणलवं पडि पडिबुज्झणदा खणलवपडिबुज्झणदा॥" —ध० टी० प० ५५८। 3 "संवेग धर्मोत्साहो धर्मे धर्मफले चित्त।" —पञ्चा०।

यस्स इणं कम्मस्स उदयेण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्ञा पूजणिज्ञा वंदणिज्ञा णमंसणिज्ञा धम्मतित्थयरा जिणा केवली (केवलिणो) भवंति। एवं ओघभंगो पंचिंदियतस०२ भवसि०।

कारण इसमें विरोध आता है। अतः केवल इस भावनासे भी तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

साधुसमाधिसन्धारणता—ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें सम्यक् प्रकारसे अवस्थान होना समाधि है। भले प्रकार धारण करनेको सन्धारण कहते हैं। साधुओंकी समाधिका भले प्रकार धारण करना साधुसमाधिसन्धारण है। किसी कारणसे प्राप्त होनेवाली समाधिको देखकर सम्यक्त्वी प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतातिचारवर्जित अरहन्तादिकसे भक्तिवश जो धारण करता है, वह समाधिसन्धारण है। यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नहीं है, क्योंकि इसका सद्भाव उन कारणोंके अभावमें नहीं बन सकता है।

वैयावृत्त्ययोगयुक्तता—जिस कारणसे जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचनवत्सलतादिके द्वारा वैयावृत्त्यमें लगता है, उसे वैयावृत्त्ययोगयुक्तता कहते हैं। इस प्रकार अकेली इस भावनासे भी तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है। यहाँ शेप कारणोंका यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए।

अरहन्त-भक्ति—घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले, केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंके देखनेवाले अरहन्त हैं। उनकी भक्तिसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। यह भावना दर्शन-विशुद्धतादिके अभावमें नहीं पायी जाती है, कारण इसमें विरोध आयेगा।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशांगके पारगामीको बहुश्रुत कहते हैं। उनमें भक्तिका अर्थ है, उनके द्वारा व्याख्यान किये गये आगमका अनुगमन करना अथवा अनुष्ठानका प्रयत्न करना बहुश्रुत भक्ति है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना यह सम्भव नहीं है।

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त अर्थात् बारह अगोंको प्रवचन कहते हैं। 'प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनम्' श्रेष्ठ आत्माके वचनोंको प्रवचन कहा है। उनके प्रति भक्तिको प्रवचनभक्ति कहते हैं। इसमें भी शेप कारणोंका अन्तर्भाव रहता है।

प्रवचनवत्सलता—महाव्रती, देवसयमी तथा असंयत सम्यग्दृष्टिमें प्रेम रखना प्रवचन-वत्सलता है। इससे ही तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध कैसे होता है—यह शंका नहीं करनी चाहिए, कारण महाव्रतादि आगमिक विषयोंमें गाढानुरागका दर्शनविशुद्धतादिसे अविनाभाव है।

प्रवचनप्रभावनता—प्रवचन अर्थात् आगमकी प्रभावना करनेका भाव प्रवचनप्रभा-वनता है। उत्कृष्ट प्रवचनप्रभावनाका दर्शनविशुद्धताके साथ अविनाभाव है।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण अर्थात् 'बहुबार' भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुतमें उपयोगको लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता है। इससे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना इसकी अनुपपत्ति है।

इन सोलह कारणोंसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। अथवा सम्यग्दर्शनके होनेपर शेप कारणोंमें-से एक-दो आदिके संयोगसे भी बन्ध होता है।

इस कर्मके उदयसे सुर, असुर तथा मनुष्यलोकके द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके कर्ता जिन केवली होते हैं।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भंग जानना चाहिए।

११. आदेसेण णिरएसु पंचणाणा०-छदंसणा०-सादासादं बारसकसा० सत्त-णोक० मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालियतेजाक०-समचदु०-ओरालिय० अंगोवंगवज्जरिस०-वण्ण०४ मणुसगदिपा०-अगुरुगलहु० ४ पसत्थवि० तस०४ थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमिणं उच्चागोदं पचअंत० को बं०? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धिआदि-पणुवीसं ओघं। मिच्छत्त-णपुंसकवे०-हुंडसंठाणं असंपत्तसे० को बं० ? मिच्छादि० बंधा। एदे बंधा अवसेसा अब०। मणुसायु ओघं। तित्थयरं को बं० ? असंजदस०। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा। एवं पढम-विदिय-तदि-यासु। चउत्थि-पंचमि-छट्ठीसु एवं चेव, णवरि तित्थगरं णत्थि। सत्तमाए छट्ठिभंगो, णवरि मणुसायु णत्थि। मणुसग०-मणुसग०पा०-उच्चा० को बं० ? सम्मामिच्छा०-असंज०। एदे बं०। अवसे० [अबंधा]। तिरिक्खायु० को बं० ? मिच्छादिट्ठी बंधा। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा।

---

११ आदेशसे, नारकियोंमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता असाता वेदनीय, अनन्तानुबन्धी ४ को छोडकर शेप १२ कपाय, (स्त्रीवेद, नपुसकवेद बिना) ७ नोकपाय, मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदा-रिक अगोपाग, वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, वज्रवृपभसहनन, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है ? सर्व बन्धक है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धि आदि २५ प्रकृतियोका ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त बन्धक है। मिथ्यात्व, नपुसकवेद, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका सहननका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेप अबन्धक हैं। मनुष्यायुके बन्धकका ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् अविरत गुणस्थान पर्यन्त बन्धक है। तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? असंयत सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक है। शेप अबन्धक हैं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त ऐसा ही जानना चाहिए। चौथी, पॉचवी तथा छठी पृथ्वियोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यहॉ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है।

सातवीं पृथ्वीमे-छठी पृथ्वीके समान भग है। विशेप, यहॉ मनुष्यायु नहीं है। मनुष्यगति मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका कौन बन्धक है ? सम्यग्मिथ्यात्वी तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीव बन्धक है। ये बन्धक है। शेप अबन्धक है। तिर्यञ्चायुका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक है। शेप अबन्धक है।

---

१२. तिरिक्खेसु-पंचणाणावरणं छदंसणा० सादासादं अट्ठक०सत्तणोक०देवगदि० पंचिंदि० वेउव्विय-तेजा-क० समचदु० वेगुव्वि० अंगो०-वण्ण०४-देवगदिपा० अगुरुग०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमि० उच्चागो० पंचअंतराइ० को बं० ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा त्ति सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु-मणुसायु-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय०अंगो०-पंचसंघड०-दोआणुपुव्वि० उज्जोवं अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा०को बं० ? मिच्छादिट्ठि-सासण०। एदे बं०, अवसेसा अबं०। मिच्छत्तदंडओ ओघो। अपच्चक्खा०४ को बं० ? मिच्छादि०याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति। एदे बं०, अवसेसा [अबंधा]। देवायु०

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है। इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है[1]। मरण मिथ्यात्वगुणस्थानमे ही होता है। तिर्यञ्चायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। मनुष्यद्विक तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिश्र तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे ही होता है, नीचे नहीं होता है।

१२. तिर्यञ्चोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन रूप ८ कषाय, स्त्रीवेद नपुंसकवेद बिना सात नोकषाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर देशसंयमी पर्यन्त सर्वबन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी (तिर्यञ्च, मनुष्यानुपूर्वी), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय[2] तथा नीचगोत्रका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक हैं। मिथ्यात्व दण्डकमें ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष—मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थानादि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित है। उनके बन्धक मिथ्यादृष्टि होते है। वे बन्धक हैं। शेष अबन्धक है।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक है। शेष अबन्धक हैं। देवायुका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि,

---

१ "छट्ठो त्ति य मणुआऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥"–गो० क० गा० १०६। २. वज्रवृषभसंहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु इन छह प्रकृतियोकी "उवरिं छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा"—(गो० क० १०८ गा०) के अनुसार सासादनमें बंधव्युच्छित्ति होती है, अत असंप्राप्तासृपाटिकासंहननके बिना शेष ५ संहनन कहे गये हैं।

को बंध० ? मिच्छादि० सासणसम्मा० असंजद० संजदासंजदा त्ति बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-पंच णाणा० णव दंस० सादासा० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खमणुसायु-तिरिक्खमणुसगदि-पंचिदि०(पंचजा०)-ओरालि० तेजाकम्म० छस्संठाणं ओरालिय-सरीर-अंगोवं० छस्संघड०-वण्ण०४-दोआणुपु०-अगुरुगलहुग०४-आदावुज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुगलं णिमिणं णीचुच्चागो०-पंचतरा० को ब०? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। एवं सव्व-अपज्जत्ताणं सव्व-एइंदियाणं सव्वविगलिंदि०। ...

... [अत्र ताडपत्रं त्रुटितम्।]

सासादन सम्यक्त्वी, असंयत सम्यक्त्वी तथा देश संयमी बन्धक हैं। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक हैं।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतीमें तिर्यञ्चोंके समान भंग जानना चाहिए।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, साता, असाता, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ९ नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय-(जाति पंच जाति) औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, ६ संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४, मनुष्य-तिर्यञ्चानुपूर्वी, अगुरुलघु ४ (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति), निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक हैं? सर्व बन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तकों, सम्पूर्ण एकेन्द्रियों, सर्व विकलेन्द्रियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—लब्ध्यपर्याप्तक[1] तिर्यंचोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका अभाव रहनेसे इनकी गणना नहीं की गयी है। इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है।

[ताडपत्र नष्ट हो जानेसे इस प्रकरणका आगामी विषय नष्ट हो गया है। ग्रन्थके प्रकरणसे ज्ञात होता है कि आचार्य महाराजने मनुष्य गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा 'बंध सामित्त-विचय' प्ररूपणाका वर्णन किया होगा। सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे श्री गोम्मटसार कर्मकाण्डके आश्रयसे कुछ प्रकाश डाला जाता है]

मनुष्यगति—यहाँ मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं। बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। यहाँका वर्णन ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारकद्विकका बन्ध न होनेसे शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध १०१ का होता है। मिश्र गुणस्थानमें ६९ का बन्ध होता है। यहाँ सासादन गुणस्थानमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली अनन्तानुबन्धी आदि २५ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा। इसके सिवाय मनुष्यगति-द्विक, मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग इन छह प्रकृतियोंकी भी सासादन गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होती है। सामान्यतया इनकी अविरतमें बन्धव्युच्छित्ति होती थी।

---

[1] "तिरियाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥" गो० क० गा० १०९।

१२. तिरिक्खेसु-पंचणाणावरणं छदंसणा० सादासादं अट्ठक०सत्तणोक०देवगदि० पंचिंदि० वेउव्विय-तेजा-क० समचदु० वेगुव्वि० अंगो०-वण्ण०४-देवगदिपा० अगुरुग०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमि० उच्चागो० पचंअंतराइ० को बं० ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा त्ति सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु-मणुसायु-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय०अंगो०-पंचसंघड०-दोआणुपुव्वि० उज्जोवं अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा०को बं० ? मिच्छादिट्ठि-सासण०। एदे बं०, अवसेसा अबं०। मिच्छत्तदंडओ ओघो। अपच्चक्खा०४ को बं० ? मिच्छादि०याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति। एदे बं०, अवसेसा [अबंधा]। देवायु०

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है। इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है[1]। मरण मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। तिर्यञ्चायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। मनुष्यद्विक तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिश्र तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ही होता है, नीचे नहीं होता है।

१२. तिर्यञ्चोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन रूप ८ कषाय, स्त्रीवेद नपुंसकवेद बिना सात नोकषाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर देशसंयमी पर्यन्त सर्वबन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ सहनन,[2] दो आनुपूर्वी (तिर्यञ्च, मनुष्यानुपूर्वी), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक है। मिथ्यात्व दण्डकमें ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष—मिथ्यात्व, हुण्डक सस्थानादि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित है। उनके बन्धक मिथ्यादृष्टि होते है। वे बन्धक हैं। शेप अबन्धक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक है। शेप अवन्धक हैं। देवायुका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि,

---

१ "छट्ठो त्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥"–गो० क० गा० १०६। २ वज्रवृषभ-सहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु इन छह प्रकृतियोकी "उवरिं छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा"—(गो० क० १०८ गा०) के अनुसार सासादनमें बन्धव्युच्छित्ति होती है, अत वज्रवृषभनाराचसंहननके बिना शेष ५ सहनन कहे गये हैं।

है। सम्यक्त्वी जीवकी उत्पत्ति भवनत्रिक तथा देवागनाओंमे नहीं होती इससे यहाँ पूर्वोक्त दो गुणस्थान होते है। सौधर्मेन्द्रकी इन्द्राणीकी पर्यायमे भी सम्यक्त्वीका उत्पाद नहीं होता। जन्म धारणके पश्चात् पर्याप्त अवस्थामे सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है। सौधर्म ईशान स्वर्गमे निर्वृत्यपर्याप्तावस्थामे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होनेसे वहाँ बन्धयोग्य १०१+१=१०२ कही गयी हैं।

सनत्कुमारादि सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे ९९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनके पर्याप्त अवस्थामे १०१ का बन्ध कहा गया है। उसमे-से उक्त दो प्रकृतियाँ यहाँ घट जाती है।

आनतादि स्वर्गों तथा नव ग्रैवेयकोंमे पर्याप्त अवस्थामे ९७ का बन्ध होता था उसमे-से मनुष्यायुको घटानेसे ९६ का बन्ध निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे कहा गया है।

नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानोंमे पूर्वोक्त ७२ प्रकृतियोंमें-से मनुष्यायुको बन्धके अयोग्य होनेसे घटानेपर निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे ७१ का बन्ध कहा गया है।

सौधर्मादि नव ग्रैवेयक पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें मिथ्यात्व सासादन तथा असयतमें तीन गुणस्थान होते है, आगे सम्यक्त्वी जीवका ही उत्पाद होनेसे चौथा गुणस्थान कहा है।

नरकगति—यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानमे बन्धव्युच्छित्तिवाली सोलह प्रकृतियोंमे-से मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद तथा असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर शेष बारह प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है। इन बारह प्रकृतियोंके सिवाय देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांग, देवायु तथा आहारकद्विक इन सात प्रकृतियोंका भी बन्ध नहीं होनेसे १२+७=१९ प्रकृतियोंको १२० मे घटानेसे १०१ का बन्ध कहा गया है। यहाँ प्रथमसे चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थान कहे गये है।

चौथे, पाँचवे, छठे तथा सातवे नरकोंमे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमे १०१−१=१०० प्रकृति बन्ध योग्य कही है। सातवीं पृथ्वीमे मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है। वहाँसे निकलकर जीव पशु पर्यायको ही प्राप्त करता है, अतः सातवीं पृथ्वीमे १००−१=९९ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

पहली पृथ्वीमे निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका अभाव होनेसे १०१−२=९९ को बन्ध योग्य कहा है। यहाँ मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं।

दूसरे नरकसे छठे नरक पर्यन्त अपर्याप्तावस्थामे केवल मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ तीर्थंकर, मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १०१−३=९८ को बन्ध योग्य कहा है।

सातवे नरकमे अपर्याप्त अवस्थामे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ अपर्याप्त अवस्थामे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रका बन्ध न होनेसे ९८−३=९५ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

तिर्यंचगति—तिर्यंचोंके सामान्य तिर्यंच, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्तनिर्यंच तथा योनिमत् तिर्यंच इस प्रकार जो चार भेद कहे गये हैं, उनके पाँच गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचोंमे तीर्थंकर तथा आहारकद्विक इन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव रहनेसे १२०−३=११७ का बन्ध होता है। मनुष्यगतिके समान तिर्यञ्चोंमे भी वज्रवृषभनाराचसंहनन औदारिकद्विक, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा मनुष्यायुकी बन्धव्युच्छित्ति अविरतके बदलेमे सासादन गुणस्थानमे होती है।

निर्वृत्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें चार आयु तथा नरकद्विकका बन्धाभाव होनेसे बन्धयोग्य ११७−६=१११ प्रकृतियाँ हैं। इनके मिथ्यात्व, सासादन तथा असयत ये तीन गुणस्थान होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका बन्ध न होनेसे ११७−८=१०९ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानका सद्भाव कहा गया है।

इन्द्रिय मार्गणा—पर्याप्तक एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन एकादश प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १२०−११ =१०९ प्रकृतियोंका बन्ध कहा गया है। इनके प्रथम और द्वितीयगुणस्थान होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चौदह गुणस्थान कहे गये हैं।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें आहारकद्विक, नरकद्विक तथा आयुचतुष्टय इस प्रकार आठ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे १२०−८=११२ का बन्ध कहा है। इनके १, २, ४, ६ तथा तेरहवे गुणस्थान कहे हैं। आहारकमिश्रकाययोगावस्थामें जीव निर्वृत्यपर्याप्तक होता है। उस समय प्रमत्तसंयतावस्था पायी जाती है। केवली भगवान्‌के समुद्‌घातकालमे औदारिक मिश्रकायके समय निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था पायी जाती है।

लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको छोडकर १२०−११=१०९ का बन्ध बताया गया है। गुणस्थान प्रथम ही होता है।

कायमार्गणा—पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकायवाले जीवोंमें मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान होते है। इनकी १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अग्निकायिकों, वायुकायिकोंमें मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०९−४=१०५ का बन्ध है। गुणस्थान मिथ्यात्व ही होता है। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है—"ण वहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।" ॥११५॥

लब्ध्यपर्याप्तकों, साधारण वनस्पतिकायिकों, सम्पूर्ण सूक्ष्मस्थावर जीवोंमें तथा तेजकायिक वायुकायिकोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता है। नारकी जीवोंमें भी अपर्याप्तावस्थामे सासादनका अभाव है।

योगमार्गणा—असत्य मन तथा असत्यवचनयोग, उभय मन तथा वचन योगोंमें मिथ्यात्वसे आदि क्षीण कषाय पर्यन्त द्वादश गुणस्थान पाये जाते हैं।

सत्य मन, सत्य वचन तथा अनुभय मन तथा अनुभय वचनमें सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है।

औदारिक काययोगमे त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है। मनुष्यगतिके समान वर्णन जानना चाहिए। औदारिकमिश्र काययोगमे आहारक द्विक, नरकद्विक, नरकायु और देवायु इन छह प्रकृतियोंके विना १२०−६=११४ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असयत तथा सयोगी जिन ये गुणस्थान पाये जाते है।

वैक्रियिक काययोगमे सौधर्म-ईशान स्वर्गके समान १०४ प्रकृतियोका बन्ध होता है। वैक्रियिक मिश्र काययोगमे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे १०४−२=१०२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन तथा असयत गुणस्थान होते है।

आहारक काययोगमे छठा गुणस्थान होता है। यहाँ ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक मिश्रयोगमे देवायुका बन्ध नहीं होनेसे ६३−१=६२ का बन्ध होता है।

कार्माण काययोगमे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तथा त्रयोदशम गुणस्थान पाये जाते है। यहॉ औदारिकमिश्रकाययोग सम्बन्धी ११४ प्रकृतियोंमें-से मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुको घटाने-पर ११२ का वन्ध होता है।

वेदमार्गणा – तीनों वेदोंमें प्रथमसे नवम गुणस्थान पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहॉ तीनो वेदोंमे १२० प्रकृतियॉ बन्ध योग्य कही गयी है।

स्त्रीवेदीके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान कहे गये है। यहॉ चार आयु, तीर्थंकर, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन १३ प्रकृतियोंको छोड़कर १२० – १३ = १०७ का वन्ध होता है।

नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयतगुणस्थान कहे गये हैं। यहॉ चार आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन द्वादश प्रकृतियोंके विना १०८ का वन्ध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिका वन्धक जव नरकमें जाता है, तव उसके अपर्याप्तक दशामें तीर्थकरका वन्ध होनेसे यहॉ १०८ का वन्ध कहा है। ऐसा स्त्रीवेदीमें नही होता है। सम्यक्त्वी जीव प्रथम नरक तो जाता है और वहॉ नपुसकवेदी होता है किन्तु वह स्त्रीवेदी नहीं होता है।

पुरुषवेदीके १२० प्रकृतियोंका वन्ध होता है। निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें उसके आहारक-द्विक, नरकद्विक, तथा चार आयुको छोडकर १२० – ८ = ११२ का वन्ध होता है।

कषायमार्गणा—यहॉ १ से १० पर्यन्त गुणस्थान कहे गये है। यहॉ बन्ध १२० प्रकृति-का होता है।

ज्ञानमार्गणा—कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि ज्ञानोंमें तीर्थंकर तथा आहारकद्विकको छोडकर १२० – ३ = ११७ का वन्ध होता है। यहॉ मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान कहे गये हैं। सुमति, सुश्रुत तथा सुअवधिज्ञानोंमें चौथेसे वारहवे पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहॉ वन्धयोग्य ७९ प्रकृतियॉ कही गयी है।

मनःपर्यय ज्ञानमे प्रमत्तसयतसे क्षीणकपायपर्यन्त गुणस्थान हे। यहॉ ६५ प्रकृतियॉ कही गयी है।

मनःपर्यय ज्ञानमे प्रमत्तसयतसे क्षीणकपाय पर्यन्त गुणस्थान है। यहॉ ६५ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। यहॉ आहारकद्विकका भी वन्ध होता है।[1] मनःपर्ययज्ञानीके आहारकद्विकके उदयका विरोध है। केवलज्ञानमे सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थान पाये जाते है। सयोग-केवलीके केवल सातावेदनीयका वन्ध होता है। अयोगी जिनके वन्धका अभाव है।

संयममार्गणा—असंयम मार्गणामे आदिके चार गुणस्थान है। यहाँ संयम अवस्थामे वॅधनेवाली आहारकद्विकका वन्ध न होनेसे वन्ध योग्य १२० – २ = ११८ प्रकृति कही गयी है।

देशसंयमीके पाचवॉ गुणस्थान होता है। सामायिक तथा छेदोपस्थापना संयममे ६, ७, ८, ९ पर्यन्त चार गुणस्थान होते है। यहॉ ६५ प्रकृति वन्ध योग्य है।

परिहार विशुद्धि संयममे छठवे, सातवे गुणस्थान होते है। यहॉ भी ६५ प्रकृतिका वन्ध होता है। इस संयमीके आहारकद्विकका वन्ध तो होता है। किन्तु उसका उदय नहीं होता है।

यथाख्यात संयम – यह ११वे से १४वें पर्यन्त होता है। उपशान्त कपायसे सयोगी जिन पर्यन्त केवल सातावेदनीय का वन्ध होता है। चौदहवे गुणस्थानमे वन्धाभाव है क्योकि वहॉ योगका अभाव हो जाता है।

दर्शनमार्गणा – चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनमे १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहॉ १२० प्रकृतिका वन्ध होता है।

---

१. अत्र आहारकद्वयोदय एव विरुध्यते, नाहारकद्वयबन्धोऽस्तिदस्य ।

निर्वृत्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें चार आयु तथा नरकद्विकका बन्धाभाव होनेसे बन्धयोग्य १७–६=१११ प्रकृतियाँ हैं। इनके मिथ्यात्व, सासादन तथा असयत ये तीन गुण-थान होते है।

लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका बन्ध न होनेसे १७–८=१०९ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानका सद्भाव कहा गया है।

इन्द्रिय मार्गणा—पर्याप्तक एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, वायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन एकादश प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १२०–११ =१०९ प्रकृतियोंका बन्ध कहा गया है। इनके प्रथम और द्वितीयगुणस्थान होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चौदह गुणस्थान कहे गये हैं।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें आहारकद्विक, नरकद्विक तथा आयुचतुष्टय इस प्रकार आठ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे १२०–८=११२ का बन्ध कहा है। इनके १, २, ४, ६ था तेरहवे गुणस्थान कहे है। आहारकमिश्रकाययोगावस्थामें जीव निर्वृत्यपर्याप्तक होता है। उस समय प्रमत्तसंयतावस्था पायी जाती है। केवली भगवान्‌के समुद्घातकालमे औदारिक मिश्रकायके समय निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था पायी जाती है।

लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको छोड़कर १२०–११=१०९ का बन्ध बताया गया है। गुणस्थान प्रथम ही होता है।

कायमार्गणा—पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकायवाले जीवोंमें मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान होते है। इनकी १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अग्निकायिकों, वायुकायिकोंमें मनुष्यद्विक,उच्चगोत्र तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०९–४=१०५ का बन्ध है। गुणस्थान मिथ्यात्व ही होता है। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है—"ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।" ॥११५॥

लब्ध्यपर्याप्तकों, साधारण वनस्पतिकायिकों, सम्पूर्ण सूक्ष्मस्थावर जीवोंमें तथा तेजकायिक वायुकायिकोंमे सासादन गुणस्थान नहीं होता है। नारकी जीवोंमे भी अपर्याप्ता-वस्थामे सासादनका अभाव है।

योगमार्गणा—असत्य मन तथा असत्यवचनयोग, उभय मन तथा वचन योगोंमें मिथ्यात्वसे आदि क्षीण कषाय पर्यन्त द्वादश गुणस्थान पाये जाते हैं।

सत्य मन, सत्य वचन तथा अनुभय मन तथा अनुभय वचनमें सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है।

औदारिक काययोगमे त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है। मनुष्यगतिके समान वर्णन जानना चाहिए। औदारिकमिश्र काययोगमे आहारक द्विक, नरकद्विक, नरकायु और देवायु इन छह प्रकृतियोंके विना १२०–६=११४ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असयत तथा सयोगी जिन ये गुणस्थान पाये जाते है।

वैक्रियिक काययोगमे सौधर्म-ईशान स्वर्गके समान १०४ प्रकृतियोका बन्ध होता है। वैक्रियिक मिश्र काययोगमे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे १०४–२=१०२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन तथा असयत गुणस्थान होते है।

आहारक काययोगमे छठा गुणस्थान होता है। यहाँ ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक मिश्रयोगमे देवायुका बन्ध नहीं होनेसे ६३–१=६२ का बन्ध होता है।

[कालपरूवणा]

१३. .....जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० दे०। तित्थ०-जह० चदुरासीदि-वाससहस्साणि, उक्क० तिण्णि साग० सादिरे०। पढमाए याव छट्ठित्ति पढमदंड-बंधकालो जह० दसवाससहस्साणि सागरोपम-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-सागरोप० सादिरे०। उक्क० अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वो (दव्वा)। साद[दं] डगे तिरिक्खगदि-तिगं पविट्ठं जह० एगस० उक्क० अंतो०। थीणगिद्धिदण्डओ णिरयोघो। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भा(भ)णिदव्वा। एवं मिच्छत्त-दंडओ। पुरिसवेददंडओ अप्पप्पणो ट्ठिदी० दे०। दो आयु० ओघं। तित्थयर० पढमाए जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० सागरो० देसू०। बिदियाए जह० सागरो० सादिरे०। उक्क० तिण्णि सागरो० देसू०। तदियाए जह० तिण्णि साग० सादिरे०। उक्क० तिण्णि साग० सादिरे०। सत्तमाए णेरइ ओघो। णवरि दंसणातियं मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खपगदितियं च जह० अंतो०। मणुस० मणुसाणुपुव्वि० उच्चागो० जह० अंतो०। तित्थयर० णत्थि।

क्षायिक सम्यक्त्वमें चौथेसे चौदहवे पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ भी ७९ का बन्ध होता है।

संज्ञी मार्गणा – सञ्ज्ञी जीवके १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ १२० का बन्ध होता है।

असञ्ज्ञीके प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान होते हैं। यहाँ तीर्थंकर तथा आहारकद्विकके विना १२० – ३ = ११७ का बन्ध कहा गया है।

आहार मार्गणा – यहाँ १ से १३ गुणस्थान होते हैं। १२० प्रकृतिका बन्ध होता है।

अनाहारकोंके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, तेरहवे गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ ४ आयु, आहारकयुगल, नरकद्विकके विना १२० – ८ = ११२ का बन्ध कहा है।

कालप्ररूपणा

[ताड़पत्र नं० ७८ नष्ट हो जानेके कारण इस प्ररूपणाका प्रारम्भिक अंश भी विनष्ट हो गया। प्रकरणको देखते हुए ज्ञात होता है कि यहाँ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिका वर्णन चल रहा है और ओघका वर्णन नष्ट हो गया है]

विशेष – यहाँ एक जीवकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

१३ नरकगतिमें जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन तेतीस सागरोपम है। एकजीवकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल ८४ हजार वर्ष, तथा उत्कृष्ट साधिक तीन सागर प्रमाण है। प्रथम नरकसे छठे नरक पर्यन्त प्रथम दण्डकका बन्धकाल जघन्यसे दशहजार वर्ष, एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर सत्रह सागरसे कुछ अधिक है तथा उत्कृष्ट अपने-अपने नरककी स्थिति प्रमाण जानना चाहिए। अर्थात क्रमशः एक सागर, तीन सागर, सात सागर दस सागर सत्रह सागर तथा बाईस सागर प्रमाण है। साता दण्डकमें तिर्यंच-गतित्रिकमें प्रविष्ट जीवका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। स्त्यानगृद्धि दण्डकका बन्धकाल नरक गतिकी ओघ रचनाके समान है। विशेष यह है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

१४. तिरिक्खेसु पंचणाणा० छदंसण० मिच्छ० अट्ठक० भयदुगुंछ० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंत० बंध० जह० खुद्दाभव०, उक्क० अणंतकालं असंखे० [पोग्गलपरियट्टं०]। एवं थीणगिद्धितिगं अणंताणु० आदि० (?) अट्ठकसाय ओरालिय०, णवरि जह० एगस०। सादासा०-छण्णोकसा०-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठाणं ओरालिय० अंगो० छसंघड०-दोआणुपु०-आदावुज्जोव० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ थिरादि दो यु० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जस० अजस० जह० एगस०, उक्क० अंतो०।

विशेष – ओघ रचनावाला ताड़पत्रका अंश नष्ट हो गया, अतः ओघ रचना अज्ञात है।

मिथ्यात्व दण्डकमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकमें अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण किन्तु कुछ कम बन्धकाल है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का बन्धकाल ओघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धकाल प्रथम पृथ्वीमें जघन्यसे चौरासी हजार वर्ष है, उत्कृष्टसे देशोन एक सागर है।

विशेषार्थ – इस कथनसे विदित होता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक नरकमें कमसे कम ८४ हजार वर्षकी आयुको प्राप्त करेगा। उदाहरणार्थ श्रेणिक महाराजके जीवने नरकमें जाकर ८४ हजार वर्षकी आयु प्राप्त की है।

दूसरी पृथ्वीमें जघन्य बन्धकाल साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है। तीसरी पृथ्वीमे जघन्य साधिक तीन सागर, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ – तीसरी पृथ्वीमें सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पायी जाती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ उत्पन्न होनेवाला जीव किंचित् ऊन सात सागर पर्यन्त सम्यक्त्वी रहनेसे उतने काल पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है, किन्तु इस सम्बन्धमें यह आगम बताता है कि उस प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तीन सागर है। इससे अधिक बन्धकालकी कल्पना करना आगम बाधित होगा।

सातवीं पृथ्वीमे – नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि दर्शनावरण ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगतित्रिकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। [चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमे भी तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।]

१४ तिर्यंचोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका जघन्यसे बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है[1]। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी आदि आठ कषाय, तथा औदारिक शरीरमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए[2]। विशेष यह है, कि यहाँ जघन्य बन्धकाल एक समय है। साता-असातावेदनीय, ६ नोकषाय, २ गति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश-

---

१. "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अन्तोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं"–षट्खं० का० ४८। २ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।"–षट्खं० का० ५, ७, ८।

पुरिसवे०-देवग०-वेउव्वि० समच० वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तिण्णि पलिदो०। चदुआयु० तिरिक्खगदितिगं ओघं। पंचिंदिय० परघा० उस्सासं तस०४ जह० एग०। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदो० सादिरे०।

१५ पंचिंदि० तिरिक्ख० ३ ओघं। पढमदंडओ जह० खुदा०। पज्जत्तजोणिणीसु [जहण्णेण] अंतो०। उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। एवं थीणगिद्धितिगं अट्ठकसा०। णवरि जह० एगस०। सादद्दंडओ तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्खग-

---

र्कातिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तीन पल्य है। चार आयु और तिर्यंचगतित्रिकका ओघके समान जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है।

१५ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें – ओघके समान जानना चाहिए। प्रथम दण्डकमें जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है। तिर्यंच-पर्याप्तक तथा योनिमतियोंमें (जघन्य) अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण बन्धकाल है।

विशेषार्थ – एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य तिर्यंच मरकर विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ। वहाँ संज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदोंमें क्रमसे आठ-आठ पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तथा असंज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुंसकमें पूर्ववत् आठ-आठ पूर्व कोटि प्रमाण काल क्षेप करके पश्चात् लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर उनमें-के स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेदी जीवोंमें पुनः आठ-आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल व्यतीत करके पश्चात् संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ-आठ पूर्व कोटियों तथा पुरुष वेदियोंमें सात पूर्वकोटियाँ भ्रमण करके पश्चात् देवकुरु, वा उत्तरकुरुमें तिर्यंचोंमें पूर्व बद्धायुके वश पुरुष या स्त्री तिर्यंच हुआ तथा तीन पल्योपम काल व्यतीत करके मरा और देव हुआ। इस प्रकार पूर्वकोटि पृथक्त्व वर्ष अधिक तीन पल्य कहे हैं। (ध० टी० का० पृ० ३६७, ३६७)

इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक तथा आठ कषायका भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय है। साता दण्डकमें तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए।

१४. तिरिक्खेसु पंचणाणा० छदंसण० मिच्छ० अट्ठक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंत० बंध० जह० खुद्दाभव०, उक्क० अणंतकालं असंखे० [पोग्गलपरियट्टं०]। एवं थीणगिद्धितिगं अणंताणु० आदि० (?) अट्ठकसाय ओरालिय०, णवरि जह० एगस०। सादासा०-छण्णोकसा०-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठाणं ओरालिय० अंगो० छसंघड०-दोआणुपु०-आदावुज्जोव० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ थिरादि दो यु० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जस० अजस० जह० एगस०, उक्क० अंतो०।

विशेष – ओघ रचनावाला ताड़पत्रका अंश नष्ट हो गया, अतः ओघ रचना अज्ञात है।

मिथ्यात्व दण्डकमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकमें अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण किन्तु कुछ कम बन्धकाल है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का बन्धकाल ओघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धकाल प्रथम पृथ्वीमे जघन्यसे चौरासी हजार वर्ष है, उत्कृष्टसे देशोन एक सागर है।

विशेषार्थ – इस कथनसे विदित होता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक नरकमे कमसे कम ८४ हजार वर्षकी आयुको प्राप्त करेगा। उदाहरणार्थ श्रेणिक महाराजके जीवने नरकमें जाकर ८४ हजार वर्षकी आयु प्राप्त की है।

दूसरी पृथ्वीमें जघन्य बन्धकाल साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है। तीसरी पृथ्वीमें जघन्य साधिक तीन सागर, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ – तीसरी पृथ्वीमें सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पायी जाती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ उत्पन्न होनेवाला जीव किंचित् ऊन सात सागर पर्यन्त सम्यक्त्वी रहनेसे उतने काल पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है, किन्तु इस सम्बन्धमें यह आगम बताता है कि उस प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तीन सागर है। इससे अधिक बन्धकालकी कल्पना करना आगम बाधित होगा।

सातवीं पृथ्वीमे – नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि दर्शनावरण ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगतित्रिकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। [चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमे भी तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।]

१४ तिर्यंचोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका जघन्यसे बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है[1]। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी आदि आठ कषाय, तथा औदारिक शरीरमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए[2]। विशेष यह है, कि यहाँ जघन्य बन्धकाल एक समय है। साता-असातावेदनीय, ६ नोकषाय, २ गति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश-

---

१. "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं"–षट्खं० का० ४८। २ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।"–षट्खं० का० ५, ७, ८।

थिरादिदोयु०दूभग-दुस्स०-अणादे०-जस०-अज्जस०-णीचागो० जहण्णे० एग० । उक्क० अंतो० । पुरिस० देवग०४ समच० पसत्थ० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । मणुसिणीसु देव० । पंचिंदिय० परघादु० तस०४ तिरिक्खोघं । आहार०२ जह० एग० । उक्क० अंतो० । तित्थ० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० ।

१८. देवेसु–पंचणा० छदंसणा०बारसक०भयदुगुं०ओरालिय०तेजाक०-वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पचंत० जह० दसवस्ससहस्सा० । उक्क० तेत्तीसं सा० । थीणगिद्धितिग० मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० एग० । [णारि] मिच्छ० अंतो० । उक्क० एक्कत्तीसं सा० । सादासा० छण्णोक० तिरिक्ख० एइंदि०

दितिगं ओरालियं च पविट्ठं। पुरिसवेददंडओ तिरिक्खोघं। णवरि जोणिणीसु देसू०। चदु आयु० ओघं। पंचिंदि० दंडओ तिरिक्खोघं।

१६. पंचिंदिय-तिरि०-अप० पंचणाणा०-णवदं० मिच्छ०-सोलसक०-भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० जह० खुद्दा०। उक्क० अंतो०। दो आयु ओघं। सेसाणं जह० एगस०। उक्क० अंतो०। एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च।

१७. मणुस०३-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंच-(पंचंत०) जह० एग०। [उक्कस्सेण] तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। एवं मिच्छ०। णवरि जह० खुद्दा०। पज्जत्त(०)मणुसिणि अंतो०। सादावे० चदुआयु ओघं। असाद०-छण्णोक०-तिण्णिगदि-चदु जाति(दि)-ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय-अंगो०-छसंघ०-तिण्णिआणु०-आदावुज्जो० अप्पस०-थावरादि०४-

तिर्यंचगतित्रिक तथा औदारिक शरीरमें विशेष जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकका तिर्यञ्चोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यञ्चोंमें कुछ कम जानना चाहिए। चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय दण्डकमें तिर्यञ्चोंके ओघवत् है।

१६ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है[1]।

मनुष्य तिर्यंचायुका बन्धकाल ओघवत् है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार सपूर्ण अपर्याप्तक त्रसों तथा स्थावरोंमें जानना चाहिए।

१७ मनुष्य सामान्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, (उत्कृष्ट) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है। इसी प्रकार मिथ्यात्वका भी बन्धकाल है। इतना विशेष है कि मनुष्य सामान्यमें जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है।[2] पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनीमें जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सातावेदनीय, चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकपाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपाग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४,

१ "पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।" – षट्खं० का० १५, ६७।

२ "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त–मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।"–षट्खं० का० ६८-७०।

यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य मिथ्यात्वीके ४७ पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य है, पर्याप्त मिथ्यात्वी मनुष्यके २३ पूर्वकोटियाँ अधिक हैं। मनुष्यनी मिथ्यादृष्टिके सात पूर्वकोटि अधिक है। यथा–"मणुसमिच्छादिट्ठिम्मि चे य सत्तेतालपुव्वकोडीओ अहिया होंति, पज्जत्तमिच्छादिट्ठीण तेवीसपुव्वकोडीयो, मणुसिणि मिच्छादिट्ठीसु सत्त पुव्वकोडीओ अहियाओ।"–ध० टी० का० पृ० ३७३।

१६. एइंदिएसु-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पचतरा० जह० खुदा०। उक्क० अणंतकालम०। बादरे० अंगुल० असं०। सुहुमे असंखेज्जा लोगा। बादर एइंदिय-पज्जत्ता० जह० अंतो०। उक्क० संखेज्जवस्ससहस्सा०। सुहुम-एइंदि० पज्जत्त जहण्ण० अंतो०। तिरिक्खगदितियं जह० एय०। उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवं सुहुम बादरे अंगुलस्स असंखे०। पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुम-पज्ज० जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं सादादीणं जह० एय०। उक्क० अंतो०। दो आयु० ओघ। एवं सव्व-एइंदियाणं णेदव्वं। विगलिंदिया०-पंचणा०णवदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं० ओरालियतेजाक०-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण पंचंतरा० जह० खुद्दाभ० पज्जत्ते० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। दो आयु ओघ। सेसाणं सा [दा] दीणं जह० एयस०। उक्क० अंतो०।

पंचसं० पंचसंघ० तिरिक्खगदिपाओ० आदावुज्जो०-अप्पसत्थवि०[थावर-]थिरादिदो-युग० दूभगदुस्सर०-अणादे०-जस०-अजस० णीचा० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० मणुस० पंचिदि० समच० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थवि० तस० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तेत्तीसं सा०। दो आयु ओघो (ओघं)। तित्थय० जह० वेसाग० सादि०। उक्क० तेत्तीसं सा०। एव सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदिकालो णेदव्वो याव सव्वट्ठा त्ति। णवरि भवण-वा०-वाण-वेंत०-जोदिसि० तित्थय० णत्थि। सणक्कुमारादि पंचिदियसंयुतं कादव्वं। एवं एइंदिय थावरि(रं) णत्थि। आणदादि० तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि०३ णत्थि। मणुसगदि धुवं कादव्वं।

सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है।[1]

साता असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, पञ्च संस्थान, पञ्च संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य वन्धकाल एक समय है, उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ – यह उत्कृष्ट बन्धकालका कथन सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी अपेक्षा है।

दो आयुका वन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल साधिक दो सागर है, उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ – देवगतिकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कल्पवासी[2] देवोंमें होता है। सोधर्मद्विकमे आयु साधिक द्विसागरोपम है और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागरोपम है। इस अपेक्षा यहाँ वर्णन किया गया है।

इस प्रकार सब देवोंमे अपनी-अपनी स्थिति-प्रमाण बन्धका काल सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जानना चाहिए। इतना विशेष है कि भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। सनत्कुमारादि देवोंमें पंचेन्द्रियका संयोग करना चाहिए। वहाँ एकेन्द्रिय तथा स्थावर नहीं है।

विशेष – सौधर्मद्विकके आगे केवल पंचेन्द्रिय जातिका बन्ध होता है, एकेन्द्रिय, स्थावर प्रकृतिका वन्ध नहीं होता है।

आनतादि स्वर्गोमे – तिर्यचगतित्रिक अर्थात् तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी तथा उद्योतका वन्ध नहीं है। यहाँ मनुष्यगतिका ध्रुव रूपसे भंग करना चाहिए। (कारण, यहाँ मनुष्यगतिका ही वन्ध होता है)।

विशेष – शतारचतुष्टय नामसे ख्यात तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका वन्ध शतार-सहस्रारसे ऊपर नहीं होता है।

---

१ 'देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि? एगजीव पडुच्च जहण्णे अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणि।"–षट्खं० का० ८७-८६।

२ "कप्पित्थीसु ण तित्थ '–गो० क० गा० ११२-। षट्० टी० भा० १ पृ० ६१, १३१।

परघादुस्सास तस०४ जह० एग० । उक्क० पंचासीदि सागरोवमसद० । समचद० पसत्थवि० सुभग सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागो० जह० एग० । उक्क० बेछावट्ठि-साग० सादि० तिण्णि-पलिदो० देसू० । तित्थय० जह० अंतो० उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरेयाणि । पंचकायाण-पंचणा०णवदस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरा-लिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० खुदा० । उक्क० असंखेज्जा लोगा अणंतकालं असंखेज्जा पो०, अड्ढाइज्ज पोग्गल० । बादरेसु कम्मट्ठिदि अंगुलस्स असंखे० कम्मट्ठिदि० । बादरे पज्जत्ते जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससह० । सुहुमे [पज्जत्ते] सुहुमएइंदियभंगो । सेसाणं सागारीणं जह०

२०. पंचिंदि० तस०२–पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त०-सोलसक०-भयदुगुं० तेजाक०-वण्ण०४-अगु०-उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा० पज्जत्ते० अंतो०। उक्क० सागरोपमसह० पुव्वकोडिपुध०। पज्जत्ते सागरोपम-सद-पुध०। तसेसु-बेसाग० सहस्साणि पुव्वकोडिपुध०, पज्जत्ते बेसागरोपमसहस्साणि। सादावे० चदुआयु ओघं। असादा० छण्णोक० णिरयग०-चदुजा०-आहारदुगं पंचसंठाणं-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदावुज्जो०-अप्पस० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग० दुस्सर० अणादेज्ज० जस० अज्ज० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० ओघं। तिरिक्खगदितिगं ओरालि० ओरालिय० अंगोवं० जह० एय०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। मणुसग० वज्जरि० मणुसाणु० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा०। देवग०४ जह० एय०। उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। पंचिंदि०

हजार वर्ष प्रमाण है[१]। मनुष्य तथा तिर्यंच आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त्त प्रमाण है।

२० पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमें –५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है। विशेष यह है कि पर्याप्तकों-में जघन्य बन्धकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण है।[२] इनका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथकत्वसे अधिक सहस्र सागरोपम है। विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमें सागरोपम शतपृथकत्व प्रमाण है। त्रसोंमें दो हजार पूर्वकोटिपृथकत्वाधिक है। इनके पर्याप्तकोंमें दो हजार सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है[३]। सातावेदनीय तथा आयु ४ का बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकषाय, नरकगति, ४ जाति, आहारकद्विक, पच सस्थान, पंच सहनन, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश कीर्तिका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्त-मुहूर्त है। पुरुषवेदका बन्धकाल ओघकी तरह जानना चाहिए। तिर्यंचगतित्रिक, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपागका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगति, वज्रवृषभ सहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है।

---

१ "बीइंदिया तीइंदिया-चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।"–षट्खं० का० १२८–१३०।

२ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि, सागरोवमसदपुधत्त।"–षट्खं० का० १३४–१३६।

३ "तसकाइय–तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बेसागरोवमसहस्साणि।" –षट्खं० का० १५२–१५३।

खुद्दा० तिरिक्खाऊ० उक्क० अंतो०। दो आयु ओघं। देवगदि०४ तित्थय० जहण्ण० अंतो०। सेसाणं सादासादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो०। वेउव्वियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगु०ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमि०-तित्थय०पंचंत० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो०। आहारमिस्स०-पंचणा०छदंसण०-चदुसंजल०-पुरिस०-भयदु० देवगदि० पंचि० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वियअंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ०-तस०४-सुभग सुस्स०-आदेज-णिमिण तित्थय० (ग०) उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो०। णवरि तित्थय० जह० एग० उक्क० अंतो०।

एग० । उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । णवरि तेज० वाउका० मणुसगदि०४ वज्जरि० [वज्जं] तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो ।

२१. पंचमण० पंचवचि०–सव्वपगदीणं बंधे (बंध)कालो जह० एग० । उक्क० अंतो० । एवं वेउव्विका० आहारका० । का [य] जोगि०–पंचणा० णवदंसण०-मिच्छत्त०सोलसक०भयदु०ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे०पोग्गलपरियट्टं । तिरिक्खगदितिगं ओघं । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियकायजोगीसु–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय - तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतरा० जह० एग० । उक्क० बावीस-वस्स-सहस्साणि देसू० । तिरिक्खगदि-तिगं जह० एग० उक्क० तिण्णि-वस्स-सहस्साणि देसू० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियमिस्स०–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं० ओरालिय–तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा जह०

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुका ओघवत् जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमें, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्र रूप चतुष्क तथा वज्रर्षभनाराच संहननको (छोड़कर) तिर्यञ्चगतित्रिकका ध्रुवभंग है ।

२१ पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोगमें–सर्व प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । ऐसा ही वैक्रियिक काययोग तथा आहारक काययोगमें है । काययोगमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यञ्चगतित्रिकका ओघवत् है । शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । औदारिक काययोगियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट कुछ कम २२ हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ–एक तिर्यञ्च, मनुष्य या देव २२ हजार वर्षकी आयुवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और जघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसने पर्याप्तियोंको पूर्ण किया । इससे अपर्याप्त दशामें औदारिकमिश्रके कालको घटाकर औदारिक काययोगका काल कुछ कम २२ हजार वर्ष रहा । अथवा देवका यहाँ एकेन्द्रियोंमें उत्पाद नहीं कहना चाहिए, कारण, उसके जघन्य अपर्याप्त काल नहीं होगा । (ध० टी० का० पृ० ४११)

तिर्यञ्चगति-त्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे तीन हजार वर्षसे कुछ कम है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है ।

औदारिकमिश्रकाययोगमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल तीन समय कम क्षुद्रभव प्रमाण है, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

खुद्दा० तिसमऊ० उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । देवगदि०४ णिरयग० जहण्ण० अंतो० । सेसाणं सादासादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । वेउव्वियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमि०-तित्थय०पंचंत० जहण्ण० अंतो० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । आहारमिस्स०—पंचणा०छदंसण०-चदुसंजल०-पुरिस०-भयदु० देवगदि० पंचिं० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वि०-अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण तित्थयरं० (ग०) उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । णवरि णिरया० जह० एग० उक्क० अंतो० ।

एग०। उक्क० अंतो०। दो आयु ओघं। णवरि तेज० वाउका० मणुसगदि०४ वज्जरि० [वज्जं] तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो।

२१. पंचमण० पंचवचि०–सव्वपगदीणं बंधे (बंध)कालो जह० एग०। उक्क० अंतो०। एवं वेउव्विका० आहारका०। का [य] जोगि०–पंचणा० णवदंसण०-मिच्छत्त०सोलसक०भयदु०ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०। उक्क० अणंतकालं असंखे०पोग्गलपरियट्टं। तिरिक्खगदितिगं ओघं। सेसाणं सादादीणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। ओरालियकायजोगीसु–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय - तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतरा० जह० एग०। उक्क० बावीस-वस्स-सहस्साणि देसू०। तिरिक्खगदि-तिगं जह० एग० उक्क० तिण्णि-वस्स-सहस्साणि देसू०। सेसाणं सादादीणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। ओरालियमिस्स०–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्तं० सोलसक०भयदुगुं० ओरालिय–तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा जह०

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुका ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमे, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्ररूप चतुष्क तथा वज्रर्षभनाराच संहननको (छोड़कर) तिर्यञ्चगतित्रिकका ध्रुवभंग है।

२१ पॉच मनोयोग, पॉच वचनयोगमे–सर्व प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। ऐसा ही वैक्रियिक काययोग तथा आहारक काययोगमें है। काययोगमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्मण शरीर, वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है। तिर्यञ्चगतित्रिकका ओघवत् है। शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। औदारिक काययोगियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्मण शरीर वर्ण ४ अगुरुलघु उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट कुछ कम २२ हजार वर्ष है।

विशेषार्थ–एक तिर्यञ्च, मनुष्य या देव २२ हजार वर्षकी आयुवाले एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ और जघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसने पर्याप्तियोंको पूर्ण किया। इससे अपर्याप्त दशाके औदारिकमिश्रके कालको घटाकर औदारिक काययोगका काल कुछ कम २२ हजार वर्ष है। [illegible] देवका यहाँ एकेन्द्रियोंमे उत्पाद नहीं कहना चाहिए, कारण, उसके जघन्य [illegible] नहीं होगा। (ध० टी० का० पृ० ४११)

तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे तीन हजार वर्षसे कुछ कम है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है।

औदारिकमिश्रकाययोगमें–५ ज्ञानावरण ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्मण शरीर वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल तीन समय कम क्षुद्रभव प्रमाण है, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है।

खुद्दा० तिसमऊ० उक्क० अंतो०। दो आयु ओघं। देवगदि०४ तित्थय० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं सादासादादीणं जह० एय० उक्क० अंतो०। वेउव्वियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमि०-तित्थय०पंचंत० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो०। आहारमिस्स०-पंचणा०छदंसणा०-चदुसंजल०-पुरिस०-भयदु० देवगदि० पंचिं० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्विय-अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्स०-आदेज्ज-णिमिण तित्थयं० (ग०) उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो०। णवरि तित्थय० जह० एग० उक्क० अंतो०।

विशेषार्थ-एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें तीन मोड़े करके क्षुद्रभव-प्रमाण आयुवाला सूक्ष्म वायुकायिक जीव हुआ। वहां ३ समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक लब्ध्य-पर्याप्तक हो जीवित रहकर मरा। पुनः विग्रह करके कार्माणकाययोगी हुआ। इस प्रकार तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल सिद्ध हुआ। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार जानना चाहिए कि कोई जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहण प्रमाण उनमें परावर्तन करके पुन पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी बन गया। इन सब संख्यातभवोंका काल मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही रहता है। (ध० टी० का० पृ० ४१६)

दो आयुमें ओघवत् जानना चाहिए। देवगति ४ और तीर्थंकरका जघन्य तथा उत्कृष्ट वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा उत्कृष्ट वन्धकाल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। वैक्रियिकमिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अन्तरायका जघन्य तथा उत्कृष्ट वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ-एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिमग्रैवेयकमें दो विग्रह करके उत्पन्न हो सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्तक हुआ अथवा एक भावलिंगी मुनि दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्त हुआ। इस प्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जघन्य वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट वन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार है कि कोई मिथ्यात्वी जीव सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालके अनन्तर पर्याप्त हुआ। इसी प्रकार एक नरक-बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्वी हो दर्शनमोहका क्षपण करके मरण कर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त कालमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको करता है। यहाँ दोनोंमें जघन्य कालसे दोनोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। (ध० टी० का० पृ० ४२८-४२९)

शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

आहारकमिश्र काययोगमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस–कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीथकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट

सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । कम्मइगका०–देवगदि०४ तित्थय० जह० एग०, उक्क० बेसम० । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० एग० उक्क० तिण्णिसम० ।

२२. इत्थिवेद०–पंचणा०णवदंस०मिच्छत्तं० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० (तेजाक०) वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० पलिदोपमसदपुधत्तं । णवरि मिच्छ० जह० अंतो० । सादासादा० छण्णोक० (छण्णोक०) दोगदि-चदुजादि-आहारदुगं पंचसंठाण-पंचसंघ दो-आणु० आदा-उज्जो०-अप्पसत्थ० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० जस० अजस० णीचागो० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस० मणुसगदि० पंचिदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु-पसत्थ० तस-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा०

बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। कार्माणकाययोगमें – देवगति ४, तीर्थंकरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दो समय प्रमाण बन्धकाल है। शेष सर्व प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन समय है।

विशेषार्थ – सासादन या असंयतसम्यक्त्वी कार्माणकाययोगियोंका सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें [illegible] होनेका अभाव है। वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकान्तमें भी इनकी उत्पत्ति नहीं होती। इससे उत्कृष्ट दो समय कहा है।

तीन समय प्रमाण बन्धकाल इस प्रकार है–एक सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव अधस्तन सूक्ष्म [illegible]में तीन विग्रहवाले मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे [illegible] होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कार्माण-[illegible] रहकर तथा चौथे समयमें औदारिकमिश्र काययोगी हो गया। तीन विग्रह करनेकी [illegible] इस प्रकार है। त्रसलोकवर्ती प्रदेशपर वाम दिशासम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे [illegible] और तीन राजू प्रमाण जा, पुनः १०½ राजू नीचेकी ओर इषुगतिसे जाकर, [illegible] और चार राजू प्रमाण जाकर कोणयुक्त दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती [illegible]में उत्पन्न होनेवालेके ३ विग्रह होते हैं। (ध० टी० का० ४३४-४३५)

[illegible] स्त्रीवेदमें–५ ज्ञानावरण ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, [illegible] कार्माण शरीर वर्ण ४ अगुरुलघु उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय [illegible] शतपृथक्त्व है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वका बन्धकाल जघन्यसे [illegible]। साता असाता वेदनीय. ६ नोकषाय, दो गति, ४ जाति, आहारकद्विक, [illegible] ५ संहनन दो आनुपूर्वी. आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर४, [illegible] दुर्भग दुस्वर अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल [illegible] अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद. मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, [illegible], वज्रवृषभसंहनन मनुष्यानुपूर्वी प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग,

[illegible] केवचिरं [illegible] होंति ? [illegible]
[illegible] ।"–षट्. [illegible]

जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदोवमं देसू० । चदुआयु ओघं । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णिपलिदोप० देसू० । ओरालिय० परघादुस्सास० बादर-पज्जत्त-पत्तेय० जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादिरे० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । पुरिसवे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पचंतरा० जह० अंतो० । उक्क० सागरोप-मसदपुध० । पुरिसवेद ओघं । मणुसगदिपंचगं जह० एग० । उक्क० तेत्तीस सा० । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदोप० सादिरे० । पंचिंदिय-परघादुस्सा० तस०४ जह० एग० । उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं०(द०) । समचदु०पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० बेच्छावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि

सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन ५५ पल्योपम प्रमाण है।[1]

विशेषार्थ – एक जीव ५५ पल्य स्थितिवाली देवी रूपसे उत्पन्न हुआ। उसने छह पर्याप्ति पूर्ण की, अन्तर्मुहूर्त विश्राम किया, पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया। पश्चात् जीवन पूर्ण करके मरण किया। अतः उसके तीन अन्तर्मुहूर्त कम ५५ पल्योपम प्रमाणकाल सम्यक्त्वयुक्त स्त्री-वेदका है, उसमें पुरुषवेदादिका बन्ध करनेके कारण उनका बन्धकाल देशोन ५५ पल्योपम कहा है।

चार आयुका ओघवत् जानना चाहिए। देवगति चतुष्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्योपम बन्धकाल है। औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ५५ पल्योपम बन्धकाल है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। पुरुषवेदमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे सागरोपम शत-पृथक्त्व है। पुरुषवेदका बन्धकाल ओघवत् है।

विशेष – इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत बार भ्रमण करता हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदी हुआ, सागरोपम शत पृथक्त्वकाल पर्यन्त भ्रमण करके अविवक्षित वेदको प्राप्त हो गया। (ध० टी० का० पृ० ४४१)

मनुष्यगतिपंचक अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर प्रमाण है। देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है। पंचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट १६३ सागरोपम है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तीन पल्याधिक छयासठ सागरोपम जानना चाहिए।

---

१ "इत्थिवेदेसु असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि। सासणसम्मादिट्ठी ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।" षट्खं० का० ५,७, २३०, २३४।

पलिदो० देसू० । सादादि ज० [एग० उक्क० अंतो०] । आयुगचदुक्ख(क्कं) इत्थिभंगो । तित्थयरं ओघं । णपुंसक०–पंचणा० णवदंसण० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, मिच्छत्तं खुद्दा० । उक्क० अणंतकालं-असंखे० । पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिसभसंघ० मणुसाणु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । तिरिक्खगदितिगं ओघं० । देवगदि०४ जह० एग० उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । पंचिंदिय० ओरालिय अंगो० परघादुस्सा०-तस०४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० तिण्णि सागरो० सादिरे० । अवगद०–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पु० जस० उच्चागो० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० । सादावे० ओघं । सुहुमसंप०–पंचणा०

सातादिकका जघन्यसे [एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है] आयुचतुष्कका स्त्रीवेदके समान भंग है । तीर्थंकरका ओघवत् है । नपुंसक वेदमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका क्षुद्रभव प्रमाण है । इनका उत्कृष्ट बन्धकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर आदेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण है ।

चदुदंस० सादा० जस० उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० । कोधादि०४–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । णवरि माणे तिण्णि संज० । मायाए दोण्णि संज० । लोभे०–पंचणा० चदुदंस० लोभसंज० पंचंतरा० जहण्णु०–अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । अकसाई०–सादावे० ओघं । एवं यथाखादं । एवं चेव केवलणा० केवलदं० । णवरि जह० अंतो० ।

२३. मदि०-सुद०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० तिण्णि भंगो ओघ । तिरिक्खगदि-तिगं ओघं । मणुसग० मणुसाणुपु० जह० एग० । उक्क० एकतीसं० सादिरे० । देवगदि-वेउव्वियस० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवगदिपाओ० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-

जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है[1] ।

कोधादि चतुष्कमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेपका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । विशेप यह है कि मानकपायमे तीन सज्वलन, माया कपायमे दो सज्वलनका बन्ध है । लोभकपायमे – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सज्वलन लोभ, ५ अन्तरायका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेप प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । अकपायियोंमे--सातावेदनीयका ओघवत् बन्धकाल है । इसी प्रकार यथाख्यात संयममे जानना चाहिए । केवलज्ञान, केवलदर्शनमे भी ऐसा ही जानना चाहिए । इतना विशेप है कि यहाँ जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

२३. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके तीन[2] भग ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेषार्थ–अभव्यसिद्धिक जीवकी अपेक्षा अनादि अपर्यवसित काल है । भव्यसिद्धिकके मिथ्यात्वका अनादि सपर्यवसित काल है । तीसरा भग सादि सान्तका है । इसी तीसरे भंगमे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण बन्धकाल है । (ध० टी० काल० ३२४–३२५)

तिर्यंचगति-त्रिकका ओघके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग,

१ "चउण्ह उवसमा केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त, चदुण्ह खवगा एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्ता उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।"–षट् खं० काल० २२–२८ ।

२ "एगजीव पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो जहण्णेण अतोमुहुत्त , उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ट देसूण ।"–षट् खं० काल० ३१०–३१३ ।

आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । पंचिंदि० ओरालि० अंगो० परघादु० सा०(दुस्सा०) तस०४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ओरालियस्स० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे० । आयु ओघं । सेसं जह० एग० । उ० अंतो० । एवं मिच्छादिट्ठि० अब्भवसिद्धि० एवं चेव । णवरि धुवि-याणं अणादियो अपज्जवसिदो । विभंगे०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० तिरिक्खगदि० पंचिंदि० ओरालिय-तेजाकम्म० ओरालिय० अंगो० वण्ण०४ तिरिक्खगदि-पाओ० अगु०४, तस०४ णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०, मिच्छत्त० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एक्कत्तीस देसू० । आयु ओघं । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । आभि० सुद० ओधिणा०–पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदिय० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्स० आदे० णिमि०

संजदाणं एवं चेव। णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, असंजदे धुविगाणं मदिभंगो। पुरिस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सादिरे०। तिरिक्खगदि-तिग मणुसग० वज्जरिस० मणुसाणु० देवगदि०४ आयु० तित्थयरं च ओघं। सेसाणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। चक्खु-दंस० तस-पज्जत्तभंगो। णवरि सादा० जह० एग०। उक्क० अंतो०। अचक्खुद ओघ। णवरि साद० चक्खुदं० भंगो०।

२५. किण्ण० णील० काउ०--पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु०

परिहारविशुद्धि संयमके विषयमे 'खुद्दाबंध' मे लिखा है संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण अन्तोमुहुत्त, उक्क-

तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस-सत्तसा० सादिरे०। सादासा० छण्णोक० दोगदि० चदुजादि० वेउव्वि० पंचसं० वेउव्वि० अंगो० पंचसंघ० दो-आणु० आदाउज्जो० अपसत्थ० थावरादि०४ थिरादि दोण्णियुग० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्स० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सत्तार [स] सत्त-साग० देसू०। चदुआयु० जहण्णु० अंतो०। तिरिक्खगदि-पंचिदि० ओरालि० ओरालि० [अंगो०] तिरिक्खाणुपु० परघादु० तस०४ णीचा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरे०। णवरि

जघन्य वन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बन्धकाल ३३ सागर है, १७ सागर है, सात सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ – नीललेश्याधारी कोई जीव कृष्णलेश्यायुक्त हो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण विश्राम कर मरण करके सातवीं पृथ्वीमें ३३ सागरप्रमाण कृष्णलेश्यासहित रहा। मरण कर अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त भावनावश वही लेश्या रही। इस कारण दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक ३३ सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल रहा। मिथ्यात्वादिका बन्धकाल भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँचवीं पृथ्वीमें उत्पत्तिकी अपेक्षा नीललेश्यामें साधिक १७ सागर तथा तीसरे नरककी अपेक्षा कापोत लेश्यामें साधिक सात सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है। (ध० टी० काल० ४५७-४५८)

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, दो गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन ३३ सागर, १७ सागर तथा ७ सागर है।

विशेषार्थ – कोई २८ मोहनीयकी सत्तायुक्त मिथ्यात्वी जीव तीसरी, पाँचवीं तथा सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्ति पूर्ण करके दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें विश्राम लिया। तथा तीसरेमें विशुद्ध होकर चौथे अन्तर्मुहूर्तमें वेदक सम्यक्त्व धारण किया और तीसरी तथा पाँचवीं पृथ्वीमें सात तथा १७ सागर प्रमाण क्रमशः पुरुषवेदादिका बन्ध किया, पश्चात् मरण किया। अतः सात तथा सत्रह सागरमें मिथ्यात्व दशाके तीन अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। सातवीं पृथ्वीमें ६ अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। कारण वहाँसे मिथ्यात्वके बिना निर्गमन नहीं होता है। मरणके एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ। दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें आयुबन्ध किया, तीसरेमें विश्राम किया, बादमें निर्गमन किया। इस प्रकार पूर्वके तीन और पश्चात्के तीन इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम तेंतीस सागर प्रमाण बन्धकाल है। (ध० टी० काल० ३५९, ३६२)

चार आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यंचगति, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक [अंगोपांग], तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ तथा नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है, १७ सागर तथा ७ सागर

तिरिक्खगदि-तिगं णील० काउ० साद० भंगो। किण्ण० णील० तित्थय० जहण्णु० अंतो०। काउ० जह० अंतो०। उक्क० तिण्णि साग० सादिरे०। तेउ०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० पुरिसवे० भयदुगु० मणुसगदि० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सरादेज्ज० णिमि० तित्थयं० उच्चा० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धितिग० अणंताणुबं०४ एय०। उक्क० बेसागरोप० सादिरे०। णवरि केसिंच० जह० एगस०। तिण्णि आयु० देवगदि०४ जहण्णु० अंतो०। ओरालिय० जह० दसवस्स-सहस्साणि देस० अथवा पलिदोपमं सादि०। उक्क० बेसागरोप० सादिरे०। सेसाणं जह० एगस०, उक्क० अंतो०। पम्माए-पंचणा० णवदं० मिच्छत्तं सोलसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसग० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चागो० तित्थय० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धि० अणंताणु०४ एगस०। उक्क० अट्ठारस० सादि०।

णवरि केसिंच एगस० । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० जहण्णे० बेसाग० सादिरे०। उक्क० अट्ठारस० सादिरे० । सेसं तेउभंगो । णवरि एइंदि० आदाव-थावरं णत्थि ।
सुक्काए – पंचणा०छदंसण०(णा०)बारसक०पुरिसवे०भयदु०तेजाकम्म०समचदु०-वण्ण०४ अगु० पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं तित्थयरं० उच्चा० पंचंतरा० जह० एग० । धुविगाणं अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । थीणगिद्धितिगं अणंताणु०४ जह० एग०, मिच्छ० अंतो० । उक्क० एक्कत्तीसं सादि० । दो आयु० सादादीणं च ओघं । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० मणुसाणु० जह० अट्ठारस० सादिरे० उक्क तेत्तीस० । वज्जरिसभ० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं० । सेसाणं

सबका उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। विशेष, उपरोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य काल किन्हीं आचार्योंके मतमें अन्तर्मुहूर्तकी जगह एक समय प्रमाण है।

विशेषार्थ – वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव [illegible] होनेपर पद्मलेश्यावाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और [illegible] देवोंमें जाकर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक १८ सागर [illegible], तब पद्मलेश्या नष्ट हो गयी। उसकी अपेक्षा इस लेश्यामें ज्ञानावरणादिका [illegible] कहा है।

औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगका जघन्य साधिक दो सागर, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका बन्धकाल तेजोलेश्याके समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि पद्मलेश्यामें एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरका बन्ध नहीं है।

शुक्ललेश्यामें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजसकार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय है। किन्तु ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन सबका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३३ सागर है।

विशेषार्थ – एक मनुष्य शुक्ललेश्यासहित अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागर पर्यन्त शुक्ललेश्यायुक्त रहा। पश्चात् मरण किया। इस प्रकार शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण रहा। (ध० टी० काल० ३४७, ४७२)

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, मिथ्यात्वका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, तथा इनका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३१ सागर है।

विशेषार्थ – एक द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु मरणके समीपमें अन्तमुहूर्त पर्यन्त शुक्ल-लेश्या धारण कर मरा और द्रव्यसंयमके प्रभावसे उपरिम ग्रैवेयकमें शुक्ललेश्यायुक्त ३१ सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हुआ और अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर उसी क्षण शुक्ललेश्या-रहित होकर च्युत हुआ। उसके प्रथम अन्तर्मुहूर्त अधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल होगा। (ध० टी० काल० पृ० ४७२)

दो आयु तथा साता आदिक प्रकृतियोंका बन्धकाल ओघके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल साधिक १८ सागर तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है।

जह० एग०, उक्क० अंतो० । भवसिद्धिया ओघं । णवरि अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि ।

२६. खइगं–आभिणि०भंगो । णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । मणुसगदि-पंचगं जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सा० । सादावे० दो आयु० देवगदि०४ ओघं । वेदगसं०–धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० । मणुसगदिपंचग जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि-पलिदोप० देसू० । सेसं ओधिभंगो । उवसम०–पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसगदिपंचगं पंचिंदिय० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज णिमिणं तित्थयरं उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं पगदी० जह० एगं०, उक्क० अंतो० ।

सासणे–पंचणा०णवदंसण०(णा०)सोलसक० भयदु० तिण्णिगदि० पंचिंदि० चदुसरी० समचदु० दो-अंगो० वण्ण०४ तिण्णि-आणुपुव्वि० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं णीचुच्चागो० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। तिण्णि-आयु० ओघं। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। सम्मामि०–सादासादा० चदुणोक० थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जहण्णु० अंतो०।

२७. सण्णि० – धुविगाणं जह० खुद्दाभ०, उक्क० सागरोपमसदपु०। सेसं पंचिंदिय-

विशेषार्थ – असंयतसम्यक्त्वी अथवा देशसंयमीकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ पर्यन्त एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। (ध० टी० काल० ४८२–४८४)

सासादनसम्यक्त्वमे – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति (नरकगतिरहित), पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अंगोपाग, वर्ण ४, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीच उच्च-गोत्र तथा ५ अन्तरायोका [1]जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट ६ आवली प्रमाण है।

विशेषार्थ–कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, उसकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय प्रमाण है। कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका छह आवली प्रमाणकाल शेष रहनेपर सासादनमे आ गया। वहाँ छह आवली प्रमाण काल व्यतीत कर मिथ्यात्वमे पहुँचा। इस प्रकार जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट छह आवली कहा है।

तीन आयुका ओघके समान काल है। विशेष – यहाँ नरकायुका बन्ध नहीं होता है।

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्मिथ्यादृष्टिमे – साता, असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

विशेषार्थ – कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणामयुक्त हो मिश्र गुणस्थानमे सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त रहकर चतुर्थ गुणस्थानमे चला गया, अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानी हुआ, वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पुनः संक्लेशवश मिथ्यात्वी हुआ। इसी प्रकार कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणाम-युक्त हो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण मिश्र गुणस्थानी रहा, बादमे मिथ्यात्वी हो गया अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी सक्लेशवश मिश्र गुणस्थानमे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण काल व्यतीत करके पुनः अविरतसम्यक्त्वी हो गया। इनकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानका जघन्य, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

सञ्ज्ञीमें –[2] ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट शत-

---

१ "एकजीव पडुच्च जहण्णंण एगसमओ उक्कस्सेण छआवलियाओ।" –षट् खं० काल० ७, ८।

२ "एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्त।" –षट् खं० काल० ३३०-३२।

पज्जत्तभंगो। णवरि सादि ओधिभंगो। असण्णीसु—पचणा० णवदं० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा०। उक्क० अणंतकाल, असंखे०। चदु-आयु० तिरिक्खगदि-तिगं ओरालि० ओघं०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२८. आहारगे०—पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदु० तिरिक्खगदि-ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तिरिक्खगदिपाओ० अगुरु० उप० णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०। मिच्छत्तस्स खुद्दाभ० तिसमऊ०। उक्क० अंगुलस्स [असंखेज्जदिभागो] असंखेज्जाओ ओस[प्पिणि-उस्सप्पिणीओ]। तित्थय० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सादि०। सेसा ओघं०। अणाहार० कम्मइग-भंगो। एवं कालं समत्तं।

पृथक्त्व सागर है। शेष प्रकृतियोंका पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके समान भंग है। विशेष यह है कि साता वेदनीयमें अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। असंज्ञीमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसकार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है। चार आयु, तिर्यंचगति-त्रिक, औदारिक शरीरका बन्धकाल ओघवत जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

२८ आहारकोंमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र, ५ अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्य एक समय है। मिथ्यात्वका तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इनका उत्कृष्ट काल अंगुलका [असंख्यातवाँ भाग] असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् जानना चाहिए। [3]अनाहारकोंमें – कार्माण काययोगीके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार (एक जीवकी अपेक्षा) बन्धकालका वर्णन समाप्त हुआ।

[अंतराणुगमपरूवणा]

२९. अंतराणुग० दुवि० ओघे० आदे० । ओघे–पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-पुरिस० हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजाकम्म०-समचदु०-

[अन्तरानुगम]

२९ अन्तरानुगममे यहाँ (एक जीवकी अपेक्षा) ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते है।

विशेषार्थ – छक्खंडागम सुत्तके खुद्दाबन्ध (क्षुद्रकबन्ध) नामक दूसरे खण्डमे निम्न-लिखित एकादश अनुयोगद्वार कहे है : "**एकजीवेण सामित्तं, एकजीवेण कालो, एगजीवेण अतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणा-जीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि**' २ (पृष्ठ २५) – एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचय, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नानाजीवोकी अपेक्षा काल, नानाजीवोकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व ।

महाबन्धके पयडिबन्धाहियारमे उक्त अनुयोगद्वारोके सिवाय सण्णियास परूवणा (सन्निकर्ष प्ररूपणा) तथा भावानुगमका भी निरूपण किया गया है ।

शंका – काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणाका कथन क्यो किया गया ?

समाधान – 'कालपरूवणाए विणा अन्तर-परूवणाणुववत्तीदो' – कालकी प्ररूपणाके बिना अन्तर प्ररूपणाकी उपपत्ति नहीं बैठती। इस काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणा ही कहा जाना चाहिए, कारण एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य अनुयोगद्वार नही है। वीरसेन स्वामीने कहा है "**पुणो अंतरमेव वत्तव्वं, एगजीव संवधिणो अण्णस्स अणिओग-द्दारस्साभावा**" (धवलाटीका क्षुद्रकबन्ध पृष्ठ २६)।

अन्तर शब्दके अनेक अर्थ है उनमे-से यहाँ छिद्र, मध्य अथवा विरह रूप अर्थ लेना चाहिए। आचार्य अकलकदेवने लिखा है "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्र-मध्य विरहेष्व-न्यतमग्रहणं" (रा० वा० पृ० ३०)[1]

ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र-

---

१ बहुष्वर्थेषु दृष्टः प्रयोग , क्वचिच्छिद्रे वर्तते, 'सान्तर काष्ठ सच्छिद्रमिति' । क्वचिदन्यत्वे 'द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्त' इति, क्वचिन्मध्ये हिमवत्सागरान्तर इति । क्वचित्सामीप्ये "स्फटिकस्य शुक्लरक्ताद्यन्तरस्थस्य तद्वर्णतेति शुक्लरक्तसमीपस्थस्येति गम्यते । क्वचिद्विशेषे" ।

वारि-वारिज-लोहाना काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारी पुरुष-तोयानामन्तर महदन्तरम् ।। इति

महान् विशेष इत्यर्थ । क्वचिद्बहिर्योगे "ग्रामस्यान्तरे कूपा , इति, क्वचिदुपसव्याने 'अन्तरे शाटका' इति, क्वचिद्विरहेऽनभिप्रेतश्रोतृजनान्तरे मन्त्र मन्त्रयते, तद्विरहे मन्त्रयते इत्यर्थ । तत्रेह छिद्र-मध्य-विरहेष्वन्यतमो वेदितव्य " त० रा० पृ० ३० । अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामतरगमणं णत्थित्तगमण अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो । एदस्स अतरस्स अणुगमो अतराणुगमो ।। (खुद्दाबन्ध पृ० ३, सूत्र १ टीका)

[illegible]भंगो । णवरि सादि ओधिभंगो । असण्णीसु–पंचणा० णवदं० मिच्छ० सोल-
सक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा० । उक्क०
[illegible], असंखे० । चदु-आयु० तिरिक्खगदि-तिगं ओरालि० ओघं । सेसाणं जह०
एग० उक्क० अंतो० ।

८८ आहारगे०–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदु० तिरिक्खगदि-
ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तिरिक्खगदिपाओ० अगुरु० उप० णिमिणं णीचा०–
पंचंत० जह० एग० । मिच्छत्तस्स खुद्दाभ० तिसमऊ० । उक्क० अंगुलस्स [असंखेज्जदि-
भागो] असंखेज्जाओ ओस[प्पिणि-उस्सप्पिणीओ] । तित्थय० जह० एग०, उक्क०
[illegible] सादि० । सेसा ओघ० । अणाहार० कम्मइग-भंगो । एवं कालं समत्तं ।

इत्थिवेदा० जह० एग०, उक्क० वेच्छावट्ठि-साग० सादिरे० । णपुसक० पचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागो० जह० एग०, उक्क० वेच्छावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । णिरय-मणुस-देवायु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं-असंखेज्जा० । तिरिक्खायु० जह० अंतो, उक्क० सागरोवमसदपु० । णिरयगदि-देवगदि० वेउव्वि० वेउव्वि० अंगो० दोआणुपु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं-असं० । तिरिक्खगदि० तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोपम-सद० । मनुसगदि-मणुसाणु० उच्चा० जह० एग० उक्क० असंखेज्जा लोगा । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोपमसदं । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । [आहार०] आहार० अंगो० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० देसू० ।

स्त्रीवेदका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागर है । नपुंसक वेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट किंचित् न्यून तीन पल्य अधिक एक सौ बत्तीस सागर प्रमाण है । नरकमनुष्य-देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसागरपृथकत्व है । नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपाग, नरक-देवानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल—असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ त्रेसठ सागरपृथक्त्व है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असख्यात लोक प्रमाण है । ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ पच्चासी सागर प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, वज्रवृषभ संहननका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक तीन पल्य है । [आहारक शरीर] आहारक अंगोपांगका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन अन्तर है ।

विशेषार्थ – एक अनादि मिथ्यादृष्टिजीवने अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रूप तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर अनन्त संसारका छेद करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । इस अप्रमत्त गुणस्थानमे अन्तर्मुहूर्त रहकर प्रमत्त हुआ और अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरावर्तन काल व्यतीत कर अन्तिम भवमे सम्यक्त्व अथवा देशसंयमको प्राप्त कर दर्शन मोहनीय ३ और अनन्तानुबन्धी ४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसयत हो गया । इस प्रकार अप्रमत्तसयतका अनन्तर काल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों बार परावर्तन करके अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है । यही अन्तर आहारक-द्विकके बन्धके विषयमें होगा । कारण, आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयतमे होता है । (ध० टी० अन्तरा० पृ० १७)

३०. आदेसे०—णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगुं०-पंचि०-ओरालिय-तेजाकम्म०-ओरालिय०-अंगा०-वण्ण०४अगु०४तस०४णिमिण-तित्थय० - पंचंत०-णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सादासा० पुरिस० चदुणो० समचदु० वज्ज०रिसभसं०, पसत्थवि० थिरादि-तिण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदे०जह० एग०, उक्क० अंतो०। इत्थिवे०-णवुंस० दोगदि० पंचसंठा० पंचसं० दो आयु० (आणुपु०) अप्पसत्थवि० उज्जो० दुभग दुस्सर अणादेज्ज०-णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। दो

आयु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणा। एवं पढमादि याव छट्ठित्ति। धुविगाणं तित्थय० णत्थि अंत०। सादद्दंड० ओघं। णवरि मणुस० मणुसग०पाओ०-उच्चागोदं पविट्ठ०। सेसे णिरयोघं। णवरि अप्पप्पणो ट्ठीदी भाणिदव्वा। सत्तमाए पुढवीए णिरओघं। णवरि दोगदि-दो आणुपु०-दोगोदं० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं०देसूणा।

३१. तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंस० अट्ठक०-भय-दु०-तेजा-कम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धि३ मिच्छ०-अणंताणु०४ जह० अंतो०, उक्क०तिण्णि पलिदोव०देसू०। एवं इत्थि०। णवरि जह०एग०।

एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है। विशेष–यहाँ 'दो आयु' के स्थानमें दो आनुपूर्वी पाठ उपयुक्त लगता है, कारण दो आयुका अन्तर आगे कहा गया है। दो आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम छह माह अन्तर है।

विशेषार्थ – नारकियोंमें भुज्यमान आयुके अधिकसे अधिक छह माह और कमसे कम अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर आगामी बध्यमान मनुष्य-तिर्यंच आयुका बन्ध होता है। किसी जीवने छह महीने जीवन शेष रहनेपर प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें नरकगतिमें परभवकी आयुका बन्ध किया और पश्चात् मरणसमयमें पुनः बन्ध किया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर होगा।

इस प्रकार प्रथमसे छठी पृथिवी पर्यन्त जानना चाहिए। यहाँ ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकरका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ – तीर्थंकर प्रकृतिवाला जीव मिथ्यात्वसहित मरण कर मेघा नामकी तीसरी पृथ्वीसे नीचे नहीं जाता। इससे उसके बन्धका अन्तर तीसरी पृथ्वी तक जानना चाहिए, नीचेकी पृथिवियोंमें नहीं जानना चाहिए।

सातादण्डकका ओघके समान अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रमें प्रविष्टके विशेष जानना चाहिए।

[1] शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके ओघके समान है। विशेष यह है कि यहाँ प्रत्येक नरकमें अपनी-अपनी स्थिति-समान अन्तर जानना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें सामान्य नरकके समान अन्तर है। इतना विशेष है कि दो गति, दो आनुपूर्वी, दो गोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर अन्तर है।

३१. तिर्यंचोंमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका बन्धका अन्तर नहीं है। क्योंकि इनका निरन्तर बन्ध होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदका अन्तर समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय (और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य) है।

---

१ "पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसुमिच्छादिट्ठि–असजदसम्मादिट्ठीणमंतर केवचिर कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवम, तिण्णि, सत्त, दस, सत्तारस, बावीस, तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि"—षट्खं० अन्तरा० २८-३०।

अणंताणु०४जह० अंतो०, इत्थिवेद०जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोव०देसू० । सादासादं० पंचणोक० देवगदि०४ पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा०-पसत्थवि०-तसचदुरं थिरादिदोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणा०४ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । णपुंसय०तिगदि-चदुजादि ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय०अंगो०-छस्संघ० तिण्णि आणपु०-अप्पसत्थ० आदाउज्जो०-थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिदे० । आयु-चत्तारि तिरिक्खोघं । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदु० ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उपघा० णिमिणं पचंत० णत्थि अंत० । सादासाद० सत्तणोक० दोगदि-पंचजादि-छस्संठाण०-ओरालिय० अंगो०-छसंघ०-दोआणु० परघादुस्सा० आदा-वुज्जो०-दोविहा०-तसादिदस-युगल-णीचुच्चा०गोदाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोआयु० जहण्णु०अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च ।

अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा स्त्रीवेदका जघन्य एक समय तथा इन सबका उत्कृष्ट कुछ कम ३ पल्य अन्तर है ।

विशेषार्थ – मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक कुक्कुट, मर्कट आदिमे उत्पन्न हुए वा दो माह गर्भमे रहकर निकले । मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमे आगामी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वसहित मरण किया । पुनः इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे न्यून तीन पल्योपम काल तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । यही अन्तर मिथ्यात्व आदिका भी है ।

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि अन्तर है ।

नपुंसकवेद, देवगतिके बिना ३ गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, पाँच सस्थान, औदारिक अगोपांग, छह सहनन, ३ आनुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ समान है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पंच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति (मनुष्य-तिर्यंचगति), ५ जाति, ६ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि-दस-युगल, नीच-उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है । दो आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

३४. देवेसु–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०-४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०णिमिणं तित्थय०पंचंतरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुंसक० पंचसंठा० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस-सा० सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव०जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणो ट्ठिदिअंतरं कादव्वं। एइंदिएसु पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदुगुं० ओरालियतेजाक० वण्ण०४ जह० एग०, उक्क० अंतो०। ※दोआयु० णिरयभंगो०। तिरिक्खगदि--तिरिक्ख० उज्जो० जह० एग०, उक्क० अट्ठारससा०सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव० जह० एग०, उक्क० बे साग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणोट्ठिदि अंतरं कादव्वं।※

---

३४ देवोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-शरीर, तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबधी४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद तथा पाँच संस्थानका जघन्य अतर एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका जघन्य एक समय अंतर है, उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवोंमे अपनी अपनी स्थितिका अतर लगाना चाहिए।

विशेषार्थ—सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावर प्रकृतियोका बन्ध होता है। इनके बन्धका अन्तर देवगतिकी अपेक्षा साधिक दो सागर उक्त स्वर्ग-युगलकी अपेक्षा है।

दो आयुका नरकगतिके समान अन्तर है, जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ६ माह है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेष—शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तथा उद्योतका बन्ध होता है। इन स्वर्ग-युगलमे आयु साधिक १८ सागर प्रमाण कही है। इस दृष्टिसे यहाँ बन्धका अन्तर कहा है।

खुद्दाबन्धमें देवगति सामान्यको लक्ष्य कर यह कथन किया गया है – देवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है "**जहण्णेण अंतोमुहुत्त**" सूत्र १२। इस पर धवला टीकामे यह स्पष्टीकरण किया गया है, 'देवगतिसे आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व मनुष्योमे उत्पन्न होकर पर्याप्तियाँ पूर्ण कर देवायु बाँध पुन. देवोंमे उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। (क्षु० २,७ पृ० १९०) इस कथनसे यह स्पष्ट होता है कि कोई-कोई जीव अल्पायु युक्त मनुष्य होनेसे गर्भावस्थामें ही मरण कर मंदकषायवश देवगतिको प्राप्त करते है।

देवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल असंख्यात, पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, **उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा**, "कारण धवला टीकामे लिखा है, देवगतिसे चयकर शेष तीन गतियोंमें अधिकसे अधिक आवलीके असंख्यातवे भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन

※ एतच्चिह्नान्तर्गत पाठोऽधिक प्रतिभाति।

३५. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णत्थि अंत०। सादासाद-सत्तणोक० तिरिक्खगदि-पंचजादि० छसंठा० ओरालिय० अंगोवं०-छसंघ० तिरिक्खाणु० परघादुस्सासं आदावुज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगलं णीचा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि सादिरे०। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादि०। मणुसगदि-मणुसाणु०उच्चागो० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। बादरेसु अंगुलस्स असंखे०। बादरपज्जत्ते० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुमे असंखेज्जा लोगा। सुहुम पज्जत्ते जह० एग०,

---

आनत-प्राणत कल्पवासी (आणद-पाणद-मिच्छाइट्ठिस्स) मिथ्यादृष्टि देवके मासपृथक्त्वमात्र मनुष्यायु बाँधकर फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हो मास पृथक्त्व जीवित रहकर पुन. अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचसम्मूर्छन पर्याप्त जीवोंमे उत्पन्न होकर सयमासयम ग्रहण करके आनतादि कल्पोंकी आयु बाँधकर वहाँ उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त मास-पृथक्त्व प्रमाण जघन्य अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

नवग्रैवेयक विमानवासियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं** ॥२९॥" अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन रूप है। अनुदिशादि अपराजित पर्यन्त विमानवासियोंका जघन्य अन्तर '**जहण्णेव वासपुधत्तं**' ॥ ३१ ॥ कहा है। "**उक्कस्सेण वे सागरोवमाणि सादिरेयाणि**" ॥३२॥ उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम है। इस विषयमे धवलाटीकामे इस प्रकार खुलासा किया गया है — अनुदिशादि देवके पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर एक पूर्व कोटि तक जीकर सौधर्म-ईशान स्वर्गको जाकर वहाँ अढाई सागरोपमकाल व्यतीत कर पुन पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमे उत्पन्न होकर सयमको ग्रहण कर अपने-अपने विमानमें उत्पन्न होनेपर उनका अन्तरकाल साधिक दो सागरोपम प्रमाण प्राप्त होता है। (पृष्ठ १६७)

सर्वार्थसिद्धिसे चयकर एक ही भवमे मुक्ति होती है, अतः वहाँ अन्तरका अभाव सूचक यह सूत्र कहा है—"**सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अन्तरं णिरंतरं**" ॥३४॥ खु० पृ० १९७॥

३५ एकेन्द्रियोंमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, तिर्यंचगति, पंच जाति, ६ संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दसयुगल और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष कुछ अधिक अन्तर है। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक ७ हजार वर्ष है। मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है। बादरोंमे अंगुलका असंख्यातवाँ भाग अन्तर है। बादर पर्याप्तकमे संख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्ममें असख्यात लोक है। सूक्ष्मपर्याप्तकमे जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

स्साणि सादिरेयाणि। विगलिंदियेसु एइंदियभंगो। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बारसवस्ससहस्साणि (बारसवस्साणि) एगूणवण्णं रादिंदियाणि छम्मासाणि सादिरे०। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० चत्तारि वस्साणि देसू०, सोलस रादिं० सादिरे०, बे मासाणि देसू०।

३६. पंचिंदिय-तस-तेसिं चेव पज्जत्ता० पंचणा० छदंसणा० सादासा० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दापचलाणं जहण्णु० अंतो०। थीणगिद्धि३ मिच्छ० अणंताणु०४

उत्कृष्ट अन्तरको इन सूत्रों-द्वारा कहा गया है—'बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४४, ४५, ४६ ॥' द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक अन्तर होता है, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है। इस सम्बन्धमें वीरसेन स्वामीका कथन है कि विवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमें-से निकलकर अविवक्षित एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गल परिवर्तनरूप भ्रमण करनेसे कोई विरोध नहीं आता (खु० बं० पृ० २०१-२०२)।

विकलत्रयमें एकेन्द्रियके समान अन्तर है। यहाँ इतना विशेष है कि मनुष्यगतित्रिकका साताके समान भंग है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक बारह वर्ष, साधिक उनचास रात्रि-दिन, साधिक छह मास अन्तर है[1]। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन चार वर्ष, कुछ अधिक सोलह रात्रि-दिन तथा कुछ कम दो माह अन्तर है।

३६ पंचेन्द्रिय, त्रसकाय तथा उनके पर्याप्तकोंमें[2]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता वेदनीय, ४ सञ्ज्वलन, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा, प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

१ "द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षा, त्रीन्द्रियाणा एकान्नपञ्चाशद्रात्रिदिवानि, चतुरिन्द्रियाणा षण्मासा।"—त० रा० पृ० १४६।

२ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं। असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं।"—षट्खं० अंतरा० सूत्र ११४-१२१।

३७. पंचमण० पंचवचि०—पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० चदुआयु० तेजाकम्म० आहारदुग० वण्ण०४ अगु० उपघा०-णिमिण तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगीसु—पंचणा० छदंसणा०

---

३७ पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोगमे - ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्णचतुष्क अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोका अन्तर नही है। शेपका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मनोयोगी वचनयोगी जीवोके योगोके अन्तरपर खुद्दाबन्धमे यह कथन पाया जाता है, "**जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" - सूत्र ५९-६०। योगमार्गणाके अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी जीवोका अन्तर कितने काल तक होता है ? कमसे कम अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। महाबन्धमे जो ज्ञानावरणादि अन्तराय पर्यन्त प्रकृतियोके सिवाय शेप प्रकृतियोका अन्तर उक्त योगोमे "**जह० एग०**"-जघन्यसे एक समय कहा है। उसका भाव यह है कि उक्त योगोमे बॅधनेवाली प्रकृतियोंके बन्धका विरहकाल कमसे कम एक समय जानना चाहिए। क्षुद्रकबन्धमे सामान्य अपेक्षासे योगका अन्तर बताया है। एक योगसे अन्य योगको प्राप्त करनेके पश्चात् पुनः पूर्वयोगको प्राप्त करनेमे मध्यवर्ती काल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त होगा। धवलाटीकामे यह शका-समाधान आया है।

शंका - इन पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंका एक योगसे दूसरेमे जाकर पुनः उसी योगमे लौटनेपर एक समय प्रमाण अन्तर क्यों नही पाया जाता ?

समाधान - नहीं पाया जाता, क्योंकि जब एक मनोयोग या वचनयोगका विघात हो जाता है या विवक्षित योगवाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक समयके अन्तरसे पुनः अनन्तर समयमे उसी मनयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

उक्त योगोंका उत्कृष्ट अन्तरका काल असंख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है। सूत्रकार भूतबलि स्वामी कहते है, "**उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्ज-पोग्गल-परियट्टं**" (६१ सूत्र)। इसका स्पष्टीकरण धवला टीकामे इस प्रकार किया गया है - मनयोगसे वचन योगमें जाकर वहाँ अधिक काल तक रहकर पुन काययोगमे जाकर और वहाँ भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होकर आवलीके असख्यातवे भागप्रमाण पुद्गल परिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः मनयोगमे आये हुए जीवके उक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। शेप चार मनयोगी पाँच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि इस अपेक्षासे उनमे कोई विशेपता नहीं है। (पृ० २०६ खु० बं०)

इस प्रकरणमे खुद्दाबंधका यह कथन ध्यान देने योग्य है - "**कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं**" सूत्र ६२, ६३, ६४। काययोगी

---

१ "जोगाणुवादेण—पचमणजोगि--पचवचिजोगीसु, कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठि--सजदासजद—पमत्त- अप्पमत्तसजद- सजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणेगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर। सासणसम्मादिट्ठि- सम्मामिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतरं। चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च णत्थि अतर णिरतर। चदुण्ह खवगाणमोघ।"—षट्खं० अंतरा० सूत्र १५३, १५६-१५९।

चेव वेउव्वियमि० । णवरि दो आयु० णत्थि । आहार० आहारमिस्स०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० तेजाक० देवायु० देवगदि० पंचिंदि० वेउव्वि० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिणं तित्थयर० उच्चा० पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा०-चदुणोक०-

तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

औदारिक तथा औदारिक काययोगी जीवोंका अन्तर खुद्दाबन्धमें 'जहण्णेण एक-समओ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि' (६५, ६६, ६७ सूत्र) जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण है। धवला टीकामें कहा है—

शंका—औदारिकमिश्र काययोगी तो अपर्याप्त अवस्थामें होता है, जब कि जीवके मनयोग और वचनयोग होता ही नहीं है, अतः औदारिक मिश्र काययोगका एक समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है?

समाधान—नहीं, हो सकता है। औदारिक मिश्र काययोगसे एक विग्रह करके कार्माण काययोगमें एक समय रहकर दूसरे समयमें औदारिकमिश्रमें आये हुए जीवके औदारिक-मिश्र काययोगका एक समय अन्तर प्राप्त हो जाता है। औदारिक काययोगका उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार जानना चाहिए, औदारिक काययोगसे चार मनयोगों व चार वचनयोगोंमें परि-णमित हो मरण कर तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर वहाँ अपनी स्थितिप्रमाण रहकर, पुनः दो विग्रह कर मनुष्यमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोग-सहित दीर्घकाल रहकर पुनः औदारिक काययोगमें आये हुए जीवके नौ अन्तर्मुहूर्तों व दो समयोंसे अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण औदारिक काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।

औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरो पम होता है, क्योंकि नारकी जीवोंमें-से निकलकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोगको प्रारम्भ कर कमसे कम कालमें पर्याप्तियोंको पूर्ण कर औदारिक काययोगके द्वारा औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर कर कुछ कम पूर्व कोटिकाल व्यतीत करके तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्र काययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। (धवला टीका खु० बं० पृ० २०८)

वैक्रियिक काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगका समझना चाहिए। विशेष, यहाँ मनुष्य-तिर्यंचायु नहीं है। आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमें[1] – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि

१ आहारककायजोगि-आहारकमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ७४, ७५, ७६ सूत्र खु० बं० पृ० २१०।

पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ थिरादितिण्णियु० सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्व-कोडिदेसू०। इत्थि० णवुंस० तिरिक्खग० एइंदिय० पंचसंठा० पंचसंघ० तिरि-क्खाणु० आदाबुज्जो० अप्पसत्थवि० थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। णिरयायुजह० अंतो०। उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। तिरिक्खायु-मणुसायु जह० अंतो०। उक्क० पलिदोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०। उक्क० अट्ठावण्णं पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। दोगदि० तिण्णि जा० वेउव्वि० वेउव्विय० अंगो० दोआणुपु० सुहुम-अपज्जत्त० साधार०जह०एग० उक्क०

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी या नपुसक-वेदी जीव ५५ पल्योपमवाली देवीमे उत्पन्न हुआ। छहो पर्याप्तियोको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमे आगामी भवकी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया। इस प्रकार कुछ कम ५५ पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अन्तर जानना चाहिए। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ६५)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, पचेन्द्रियजाति, समचतुरस्र सस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि अन्तर है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतिकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर भाव-स्त्रीवेदी किन्तु द्रव्य पुरुष हुआ। एक कोटिपूर्वकी आयु प्राप्त की। गर्भसे लेकर आठ वर्ष बीतनेपर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके साथ-साथ सकलसंयमको भी प्राप्त किया। पश्चात् सक्लेशवश गिरकर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरणरूप ८ कषायका बन्ध करके मरण किया। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायोंके बन्धकका अन्तर कुछ कम एक कोटिपूर्व कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंच गति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानु-पूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य प्रमाण है। नरकायुका जघन्य अन्त-र्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम कोटिपूर्वका त्रिभाग है। तिर्यंचायु, मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशतपृथक्त्व है।

विशेषार्थ—कोई २८ मोहकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्त्रीवेदी था। मरणकर देवोंमे उत्पन्न हुआ। छहो पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदक-सम्यक्त्वी हुआ (४) पश्चात् मिथ्यात्वी हो गया। तिर्यंच आयु अथवा मनुष्यायुका बन्ध कर मरण किया और पल्यशत पृथक्त्व कालप्रमाण परिभ्रमण कर तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर सम्यक्त्वसहित हो मरण किया। इस प्रकार असयत सम्यक्दृष्टि स्त्रीवेदी जीवकी अपेक्षा पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर होता है। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ९६)

देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ५८ पल्योपम पूर्वकोटि पृथक्त्व है। दो गति, तीन जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका

ताणु०४ इत्थि णपुंसक० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग० दुस्सरअणादे० णीचा० जह० अंतो०, एगस०। उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सादासादा० पंचणो० पचिंदि० समचदु० परघादु०-पसत्थ० तस०४ थिरादि-दोण्णियु०-सुभ०-सुस्सर-आदे० जह० एग०, उक्क० अंतोमु०। अट्ठक० दोआयु० वेउव्वि० छक्क० मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। चदुजा० आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे०। ओरालिय० ओरालि०अंगो० वज्जरिसभ० जह० एक०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। तित्थय० जहण्णु० अंतो०। अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगि० उच्चा० पंचंत० जहण्णु०

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीर्यचगति, ५ संस्थान, ५ सहनन, तीर्यचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त अथवा एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।[1]

विशेषार्थ–मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वयुक्त हो, सातवे नरकमे उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त किया। आयुके अन्तमे मिथ्यात्वको पुन प्राप्त करके (४) आयुको बाँध (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोसे कम तेतीस सागरोपम नपुमकवेदी मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर रहा। (पृ० १०७) यही अन्तर मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका होगा।

साता असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ८ कषाय, २ आयु, वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिक, आहारकद्विकका ओघवत् जानना चाहिए। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है। जाति ४, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। तीर्थंकरका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ—खुद्दाबन्धमे स्त्रीवेदीका जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-ग्रहणकाल "**जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं**" (सूत्र ८१) कहा है। उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं**" (८२) असख्यातपुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल कहा है।

पुरुषवेदीका जघन्य अन्तर एक समय "**जहण्णेण एगसमओ**" (८४) कहा है। इसका खुलासा वीरसेन स्वामीने इस प्रकार किया है . पुरुषवेदसहित उपशम श्रेणीको चढकर अपगतवेदी हो एक समय तक पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमे मरणकर पुरुषवेदी जीवोंमे उत्पन्न होनेवाले जीव पुरुषवेदका अन्तर एक समय मात्र पाया जाता है। (खु०

[1] "णउंसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।" —षट्० ख० अंतरा० २०७-९।

थीणगिद्धितियं मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं दोआयु० उज्जोवं तित्थयरं च। सादासादाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं बंधगा (?) वेदणीयभंगो। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण। णवरि देवायु-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं आयु० बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० बंधगा (?) छसंघ० साधारणेण अबंधगा पंचचोद्दस०। पच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा खेत्तभंगो। आहारदुगं देवायुभंगो। सुक्काए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा०

भाग स्पृष्ट है, क्योंकि पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घातका अभाव है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ५/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि मेरु मूलसे पाँच राजु मात्र मार्ग जाकर सहस्रार कल्पका अवस्थान है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। मनुष्य तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरका इसी प्रकार है। साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे इसी प्रकार वेदनीयका भंग है। विशेष, देवायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका ८/१४ है। तीन आयु (नरकायु बिना) के बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका ५/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४ है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ६ संहननके बन्धकों अबन्धकोंका सामान्यसे ५/१४ है।

विशेष—देशसंयमी पद्मलेश्यावाले जीवोंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा शतार सहस्रार कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे ५/१४ कहा है।[2]

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग भंग है।

विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक प्रमत्तसंयतोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।[3]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंके ८/१४ है।

शुक्ल लेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-

---

१. पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। पंचचोद्दसभागा वा देसूणा। खु० बं० सू० २०३-२०८। २ "संजदासंजदेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं० फो० सू० १५९-१६०। ३ 'प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभाग।" –स० सि० १।८।

भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसाय-मणुसायु-तित्थयरं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो. केवलिभंगो। सादं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। असादं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो०। एवं णेदव्वं। भवसिद्धि ओघं।

जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ६/१४ है।[1] अबन्धकोंके केवली-भग है।[2]

विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असंयत सम्यक्त्वी शुक्ललेश्यावालोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोंने ६/१४ स्पर्श किया है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पद परिणत संयतासंयतोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत शुक्ल-लेश्यावालोंने ६/१४ भाग स्पर्श किया है। कारण तिर्यंच संयतासंयतोंका शुक्ललेश्याके साथ अच्युत कल्पमे उपपाद पाया जाता है। मिश्रगुणस्थानमे उपपाद तथा मारणान्तिक पद नहीं होते हैं। (पृ० ३००)

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषाय, मनुष्यायु, तीर्थंकरके बन्धकोंके ६/१४ भाग हैं। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली भंग है। साताके बन्धकोंके ६/१४ भाग तथा केवली-भग है। अबन्धकोंके ६/१४ है। असाताके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। अबन्धक नहीं है। देवगति ४ के बन्धकोंके ६/१४ हैं। अबन्धकोंके ६/१४ तथा केवली-भंग है। शेप प्रकृतियोंका इसी प्रकार निकालना चाहिए।

भव्यसिद्धिकोंमे[3] ओघवत् भंग है।

विशेपार्थ—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है। स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालमे भव्यसिद्धिक एव अभव्यसिद्धिक जीवो-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। वर्तमान कालमे क्षेत्रके समान प्ररूपणा है। अतीत कालमे ८/१४ विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मनुष्य भाग स्पृष्ट है। वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। भव्यसिद्धिक जीवोंमे शेप पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है। (खु० बं० टी० पृ० ४४५)।

---

१ "सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा।" –सू० १६२–१६३। २ सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा असखेज्जा वा भागा। सव्वलोगो वा। –खु० ब० सू० २०९–२१६। ३ "भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति ओघ।" –पट्खं० फो० सू० १६५। भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो –खु० ब० सू० २१७-२१८।

२१३. सम्मादिट्ठि ओधिभंगो। णवरि केवलिभंगो कादव्वो। खइग-सम्मादिट्ठि० पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा केवलिभंगो। एवं सेसाणं पगदीणं सम्मादिट्ठि-भंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं अबंधगा, देवगदि०४ बंधगा खेत्तभंगो।

२१३ सम्यक्त्वियोंमे[1] अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ केवली-भग करना चाहिए।

विशेष—सम्यक्त्वमार्गणामें चतुर्थसे लेकर चौदहवे गुणस्थानका सद्भाव है। इस कारण यहाँ केवली-भंग भी कहा है।

क्षायिक सम्यक्त्वीमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका केवली-भंग है।

विशेपार्थ—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अविरत गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वीने ८/१४ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी० फो० पृ० ३०२)।

विशेपार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोंमे स्वस्थानपदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श किया है (यह कथन विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा है)।

समुद्घात पदोंसे क्षायिक सम्यग्दृष्टियों-द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पृष्ट है। इनके द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातगत केवलीकी अपेक्षा वातवलयको छोडकर शेप समस्त लोकमें व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते है। दण्डसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। कपाट समुद्घातगत केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है[2] (खु० ब० टीका पृ० ४४६-४५१)।

इस प्रकार शेप प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके समान भंग है। मनुष्यगति ५ के अबन्धकोंमें तथा देवगति ४ के बन्धकोंमे क्षेत्रके समान भंग है।

---

१ "सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलित्ति।" –सू० १६७।

२ खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। असखेज्जा वा भागा वा। सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –खु० बं० सू० २३०-२३९।

२१४. वेदगे ओधिभंगो पत्तेगेण साधारणेण । अबंधगा णत्थि । उवसमस० खइगसम्मादिट्ठिभंगो । णवरि केवलिभंगो णत्थि । तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो । सासणे धुविगाणं बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा णत्थि । सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठबारह० । दोण्णं बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा णत्थि । एवं चदुणोक० । थिरादि-तिण्णि-युगलं । इत्थि० पुरिस० बंधगा अबंधगा अट्ठएक्कारसभागो० । दोण्णं बंधगा अट्ठएक्कारस० । अबंधगा णत्थि । एवं पंचसंठा० पंचसंघ० (?) दो विहाय० दोसर० । दो आयु-

---

२१४ वेदकसम्यक्त्वमे—अवधिज्ञानके समान प्रत्येक तथा सामान्यसे भंग है। यहाँ अवन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—वेदक सम्यक्त्वियोंने स्वस्थान तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा देशोन ६/१४ भाग स्पृष्ट है। तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे देवोंमे उत्पन्न होनेवाले वेदक सम्यग्दृष्टियो-द्वारा ६/१४ स्पृष्ट है[1]।

उपशमसम्यक्त्वमे-क्षायिकसम्यक्त्वीके समान भंग है। विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है। तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यक्त्वियों-द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। उपपाद तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उपशम सम्यक्त्वियों-द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि मानुष क्षेत्रमे ही मरणको प्राप्त होनेवाले उपशम सम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं (**माणुसखेत्तम्मि चेव मरंताणं उवसमसम्माइट्ठीणमुवलंभादो**)।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंमें ८/१४ भाग यहाँ क्यों नहीं कहा?

समाधान—ऐसा निरूपण करनेपर सासादन सम्यग्दृष्टिके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी ८/१४ भाग होते है, ऐसा सन्देह न हो अत. उसके निराकरणके लिए यह निरूपण नहीं किया गया है। (पृ० ४५४ खु० ब०)[2]

सासादनमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धक नहीं है। साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार हास्यादि चार नोकषाय तथा स्थिरादि तीन युगलमे जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है। अबन्धक नहीं है। ५ सस्थान (हुण्डक बिना), ५ संहनन (असम्प्राप्तासृपाटिका बिना), दो विहायोगति तथा दो

---

१ वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दस-भागा वा देसूणा । उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । छच्चोद्दसभागा वा देसूणा -खु० व० सू० २४०-२४५ । २ उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्ज-दिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि-भागो । -खु० व० सू० २४६-२५० ।

मणुसगदिदुगं उच्चागोदं बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारह०। खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठबारह०। तिण्णि आयु-बंधगा अट्ठचोद्दस०। अ-
बारहभागो। तिरिक्खगदिदुगं णीचागोदं च बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा ३
भागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारहभागो। ति
बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० ओरालि० अंगो पंचसं
बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा पंचचोद्दसभागो। उज्जोवं बंधगा अबंधगा
भागो। सुभग-आदे० बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारहभागो
अणादे० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठचोद्दस० दोण्णं बंधगा वेदणीय

स्वरमे इसी प्रकार है।

विशेष—पंच संहननका कथन आगे भी आया है अतः यह पाठ अधिक
होता है। तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४
अबन्धकोंके ८/१४ तथा १२/१४ है। देवायुके बन्धकोंमे क्षेत्रवत् भंग है। अबन्धकोंमे ८/१४, १
तीन आयु (नरक बिना) के बन्धकोंके ८/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। तिर्यंचगति, तिर्यंचा
नीचगोत्रके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ हैं। अबन्धकोंके ८/१४ हैं। देवगति ४ के बन्धकोंके ५/१४
अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ हैं। तीनो गतियोंके (नरक बिना) बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अब
नहीं है। औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाग, ५ सहननके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्ध
के ५/१४ हैं। उद्योतके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। सुभग, आदेयके बन्धकोंके ८/१४
अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ हैं। दुर्भग, अनादेयके बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४ है। सुभ
दुर्भग तथा आदेय-अनादेयके बन्धकोंमें वेदनीयके समान भंग है।

विशेषार्थ—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भा
स्पर्श किया है। अतीतकालमे विहारवत्स्वस्थान पदसे परिणत सासादन गुणस्थानी जीवों
देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। उसने समुद्घात पदोसे लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्
किया है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे देशोन ८/१४ भाग
स्पृष्ट है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन १२/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मेरु मूलसे नीचे पॉच राजु
और ऊपर सात राजु आयामसे मारणान्तिक समुद्घात पाया जाता है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन
११/१४ भाग स्पृष्ट है क्योंकि सासादन गुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले
छठी पृथ्वीके नारकियोंके ५/१४ भाग उपपादसे प्राप्त होते है तथा देवोंसे तिर्यंचोंमे उत्पन्न होने-
वाले जीवोंके ६/१४ भाग प्राप्त होते है इन दोनोंके जोड रूप ११/१४ भाग प्रमाण स्पर्शन होता है।

प्रश्न—ऊपर ७/१४ भाग क्यों नही प्राप्त होते है?

समाधान—नही, क्योंकि सासादन सम्यक्त्वियोंकी एकेन्द्रियोमें उत्पत्ति नहीं है।

प्रश्न—एकेन्द्रियोमे मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए सासादन सम्यग्दृष्टि जीव
उनमे क्यों नहीं उत्पन्न होते?

समाधान—नही, क्योंकि आयुके नष्ट होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाते

एइंदियपगदीणं एइंदियभंगो। आहारादि (१) (आहार०) ओघं। णवरि केवलि-भंगो णत्थि। अणाहार० कम्मइगभंगो। णवरि वेदणीयं साधारणेण ओघं।

एवं फोसणं समत्तं

असंज्ञीमें—क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, एकेन्द्रियादि प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है।[1]

आहारकोंमे[2] ओघवत् भंग है। किन्तु केवलिभंग नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ स्वस्थान उपपाद समुद्घात पदोंसे सर्वलोक स्पर्शन है। विहारवत्-स्वस्थानसे ८/१४ भाग है। वैक्रियिक समुद्घातसे तीनों लोकोंका संख्यातवाँ भाग है। (खु० बं० टी० पृ० ४६१)

विशेष—मिथ्यादृष्टी जीवके सर्वलोक है, सासादनके लोकका असंख्यातवाँ भाग, ८/१४, १२/१४ भाग है। मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वीके लोकका असंख्यातवाँ भाग, ८/१४ है। देशसंयतके असंख्यातवाँ भाग वा ६/१४ है। प्रमत्तसंयतसे सयोगि जिनपर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग है। विशेष, सयोगकेवलीके प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घात आहारक अवस्थामें नहीं होते।

अनाहारकोंमे—कार्माण काययोगवत् है। विशेप, वेदनीयका सामान्यसे ओघवत् भंग है[3]।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

---

१. असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगा। -खु० बं० सू० २७५। २ "आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठि ओघ। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघ। पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।" -षट्खं० फो० सू० १८१-१८३। ३ "अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभि सर्वलोक स्पृष्ट। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभाग, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोना। सयोगकेवलिना लोकस्यासंख्येयभाग सर्वलोको वा। अयोगकेवलिना लोकस्यासंख्येयभाग।" -स० सि० १-८। "अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो। णवरि विसेसो। अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।" -सू० १८४-१८५। अणाहारा केवडिय खेत्त फोसिद? सव्वलोगो वा -खु० बं० सू० २७८-२७९।

[कालाणुगम-परूवणा]

२१६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।

२१७. तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० आहारदुगं वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण० तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । सादासादाणं बंधा अबंधगा० सव्वद्धा । दोण्णं बंधगा अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं सेसाणं पगदीणं

[कालानुगम]

२१६ कालानुगमका (नानाजीवोंकी अपेक्षा) ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

विशेषार्थ—यहॉ [1]**केवचिरं कालादो होंति** कितने काल तक रहते है इसका अर्थ धवला टीकाकार इस प्रकार करते है 'क्या नरकगतिमें नारकी जीव अनादि अपर्यवसित है ? क्या अनादि सपर्यवसित है ? क्या सादि अपर्यवसित है ? क्या सादि सपर्यवसित हैं ?' इस शंकाका यहॉ उद्दीपन किया गया है । इसके उत्तरमे कहा है नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमे नारकी जीव सर्वकाल रहते है अर्थात् नारकी जीव अनादि—अपर्यवसित है, शेप तीन विकल्पोंमें नहीं है । जिस प्रकार नारकियोंका सामान्यसे अनादि—अपर्यवसित संतान काल कहा है, उसी प्रकार सातों पृथिवियोंमे ही नारकियोंका सन्तानकाल अनादि-अपर्यवसित है । **"पादेक्कं संताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्तं होदि"**—इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता ।

२१७ ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं[2] ? नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । साता असाताके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते है । दोनोंके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते है ? सर्वकाल होते है ।

विशेषार्थ—यहॉ मूलमें 'आगत बन्धा' का अर्थ बन्धक है । 'बन्धसामित्तविचय'

---

१ केवचिर कालादो होति त्ति एदस्सत्थो—णिरयगदीए णेरइया किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, किं सादि-अपज्जवसिदा किं सादि-सपज्जवसिदा त्ति सिस्सस्स आसकुद्दीवणमेदेण कय । अणादि-अपज्जवसिदा होति सेस तिसु वियप्पेसु णत्थि जहा णेरइयाण सामण्णेण अणादिओ अपज्जवसिदो सताणकालो वुत्तो तवा सत्तसु पुढवीसु णेरइयाण पि । पादेक्क सताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्त होदि । –खुद्दाबन्ध टीका पृ० ४६२, ४६३ सूत्र १, २ । २ "ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा । सव्वकाल णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीण वोच्छेदो णत्थि त्ति भणिद होदि ॥"–ध० टी० का० पृ० ३२३ । "सासणसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।" –पट्खं० का० सू० ५, ६ ।

वेदणीय-भंगो। णवरि तिण्णिआयु-बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। तिरिक्खायु-बंधाबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। एवं चदुआयुगाणं। एवं ओघभंगो काजोगीसु ओरालियकाजोगी० भवसिद्धि० आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धिये दोवेदणीयस्स अबंधगा केव० कालादो होंति ? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सेसाणं मग्गणाणं वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। णवरि काजोगि-ओरालियका० तिण्णं आयुगाणं जहण्णेण एगसमओ।

२१८. आदेसेण णेरइयेसु धुविगाणं बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। मणुसायु-बंधगा केव० जहण्णुक्कसेण अंतोमुहुत्तं।

तृतीय खण्डमे पंचम सूत्रमे आगत शब्द "को बन्धो को अबन्धो ?" की टीकामे वीरसेन आचार्य कहते है "बंधो बंधगोत्ति भणिदं होदि।" (पृ० ७)—बन्धका भाव बन्धक है।

शेष प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है। विशेष, ३ आयुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। तिर्यचायुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं। इसी प्रकार चार आयुका जानना चाहिए।

[1]काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारक मार्गणामें ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोंमे दो वेदनीयके[2] अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

विशेष—दोनो वेदनीयके अबन्धक अयोगी जिनकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल कहा है।

शेष मार्गणाओंमे सामान्यसे वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं। विशेष, काययोगियों, औदारिक काययोगियोंमे तीन आयुके बन्धक कितने काल तक होते हे ? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते हैं।

२१८ आदेशसे–नारकियोमे ध्रुवप्रकृतियोंके बन्ध कितने काल तक होते है ? सर्वकाल होते है। अबन्धक नही है।[3] स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, उद्योत और तीर्थकरके बन्धकोंमे ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए। तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। मनुष्यायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्य तथा उत्कृष्टसे

---

१ जोगाणुवादेण कायजोगी ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा –खु० बं० सू० १६, १७। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा (४२, ४३) आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा (५४, ५५)। २ "चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।"–षट्खं० का० सू० २६। ३. "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।–षट्खं० का० ३३।

अबंधगा सव्वद्धा। दो-आयु बंधगा केवचिरं? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं पत्तेगेण सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। साधारणेण अबंधगा णत्थि। एवं सव्वणेरइगाणं।

२१९. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघं। सेसाणं सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। एवं एइंदि० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-पत्तेय० तेसिं बादर-बादर-अपज्जत्त-सव्वसुहुम० वणप्फदि-णिगोद-मदि० सुद० असंजद० तिण्णि लेस्सा० अब्भवसि० मिच्छादिट्ठि-असण्णित्ति।

२२०. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु चदुआयु जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा।

अन्तर्मुहूर्त होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंमे सर्व विकल्प पृथक् पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते हैं। साधारणसे अबन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए।

२१९. [1]तिर्यंचगतिमे चार आयुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं? ओघके समान जानना चाहिए। शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण हैं।[2] एकेन्द्रिय, पृथ्वी-कायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके बादर तथा बादर अपर्याप्तकोंमे, सर्व सूक्ष्मोंमे, वनस्पतिनिगोदोंमे, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि-लेश्यात्रय, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पर्यन्तमे पूर्ववत् जानना चाहिए।

२२०. पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे–चार आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग पर्यन्त होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए।[3]

---

१ "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० ४७। २ "एइदिया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १०७। "पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १३९। 'बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (१४८) "सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउ-काइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सुहुमेइंदिय पज्जत्तअपज्जत्ताण भंगो।' –सू० १५१। "णाणाणुवादेण मदि अण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।" (२६०) "असजदेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि ओघ।" (२७५)। "किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (२८३)। "अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३१५)। "मिच्छादिट्ठी ओघ।" (३२९)। "असण्णी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३३४)। ३ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिदिय, तिरिक्खा पंचिदियतिरि-क्खपज्जत्ता पंचिदिय तिरिक्खजोणिणी पंचिदिय तिरिक्ख अपज्जत्ता" केवचिर कालादो होति? सव्वद्धा। (४,५)

वेदणीय-भंगो। णवरि तिण्णिआयु-बंधगा केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। तिरिक्खायु-बंधाबंधगा केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। एवं चदुआयुगाणं। एवं ओघभंगो कायजोगीसु ओरालियकायजोगी० भवसिद्धि० आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धिये दोवेदणीयस्स अबंधगा केव० कालादो होंति? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सेसाणं मग्गणाणं वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। णवरि कायजोगि-ओरालियका० तिण्णं आयुगाणं जहण्णेण एगसमओ।

२१८. आदेसेण णेरइयेसु धुविगाणं बंधगा केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा केव० कालादो होंति? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। मणुसायु-बंधगा केव० जहण्णुक्कसेण अंतोमुहुत्तं।

तृतीय खण्डमे पंचम सूत्रमे आगत शब्द "को बन्धो को अबन्धो?" की टीकामे वीरसेन आचार्य कहते है "वंधो वंधगोत्ति भणिदं होदि।" (पृ० ७)—बन्धका भाव बन्धक है।

शेष प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है। विशेष, ३ आयुके बन्धक कितने काल तक होते है? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। तिर्यंचायुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं? सर्वकाल होते हैं। इसी प्रकार चार आयुका जानना चाहिए।

[1]काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारक मार्गणामें ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोंमे दो वेदनीयके[2] अबन्धक कितने काल तक होते है? सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

विशेष—दोनो वेदनीयके अबन्धक अयोगी जिनकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल कहा है।

शेष मार्गणाओंमे सामान्यसे वेदनीयके अबन्धक नहीं है। विशेष, काययोगियों, औदारिक काययोगियोंमे तीन आयुके बन्धक कितने काल तक होते है? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते हैं।

२१८ आदेशसे–नारकियोंमे ध्रुवप्रकृतियोंके बन्ध कितने काल तक होते हैं? सर्वकाल होते है। अबन्धक नहीं हैं।[3] स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, उद्योत और तीर्थंकरके बन्धकोंमे ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए। तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। मनुष्यायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं? जघन्य तथा उत्कृष्टसे

---

१ जोगाणुवादेण कायजोगी ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा –खु० बं० सू० १६, १७। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा (४२, ४३) आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा (५४, ५५)। २ "चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।"–षट्खं० का० सू० २६। ३. "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।–षट्खं० का० ३३।

अबंधगा सव्वद्धा। दो-आयु बंधगा केवचिरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं पत्तेगेण सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। साधारणेण अबंधगा णत्थि। एवं सव्वणेरइगाणं।

२१९. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघं। सेसाणं सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। एवं एइंदि० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-पत्तेय० तेसिं बादर-बादर-अपज्जत्त-सव्वसुहुम० वणप्फदि-णिगोद-मदि० सुद० असंजद० तिण्णि लेस्सा० अब्भवसि० मिच्छादिट्ठि-असण्णित्ति।

२२०. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु चदुआयु जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा।

अन्तर्मुहूर्त होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते है। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते है। शेष प्रकृतियोंमें सर्व विकल्प पृथक्-पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते हैं। साधारणसे अबन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार सर्व नारकियोंमे जानना चाहिए।

२१९ [1]तिर्यंचगतिमे चार आयुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते है ? ओघके समान जानना चाहिए। शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण है।[2] एकेन्द्रिय, पृथ्वी-कायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके बादर तथा बादर अपर्याप्तकोंमे, सर्व सूक्ष्मोंमे, वनस्पतिनिगोदोंमे, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि-लेश्यात्रय, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि असज्ञी पर्यन्तमे पूर्ववत् जानना चाहिए।

२२० पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे–चार आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग पर्यन्त होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते है। शेष प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए।[3]

---

१ "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० ४७। २ "एइदिया केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १०७। "पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १३९। 'बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (१४८) "सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउ-काइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सुहुमेइदिय पज्जत्तअपज्जत्ताण भगो।' –सू० १५१। "णाणाणुवादेण मदि अण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।" (२६०) "असजदेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि ओघ।" (२७५)। "किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (२८३)। "अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३१५)। "मिच्छादिट्ठी ओघ।" (३२९)। "असण्णी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३३४)। ३ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदिय, तिरिक्खा पंचिंदियतिरि-क्खपज्जत्ता पंचिंदिय तिरिक्खजोणणी पंचिंदिय तिरिक्ख अपज्जत्ता" केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा। (४,५)

२२१. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-दो आयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस० अपज्जत्त-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-पज्जत्ताणं।

२२२. मणुसेसु सादासादबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। दोआयु० बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। दोआयु० बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा सव्वद्धा। चदुआयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा।

२२३. एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि चदुआयु पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा।

---

२२१ पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पचेन्द्रिय तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तकोंमे दो आयु (नर-तिर्यंचायु) के बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। सर्वविकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय त्रस इनके अपर्याप्तकोंमें बादर-पृथ्वी-जल-अग्नि-वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक तथा इनके पर्याप्तकोमे इसी प्रकार जानना चाहिए।[1]

२२२ मनुष्योमे–साता असाता वेदनीयके बन्धकोंका सर्वकाल है।[2] दोनों वेदनीयके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य-उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।[3]

विशेष—दोनों वेदनीयके अबन्धक अयोगिजिनोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कहा गया है।

दो आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। दो आयुके बन्धक जघन्य-उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त होते हैं। अबन्धकोंका सर्वकाल है। चारों आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते है। अबधक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंके सवभंग सर्वकाल जानना चाहिए।

२२३. मनुष्य पर्याप्तकों, मनुष्यनियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयुके प्रत्येक तथा सामान्यसे बन्धक जघन्य और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होते है। अबन्धक कितने काल तक होते है? सर्वकाल होते हैं।

---

१ इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया। तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। १२, १३। कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादर वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा –१४,१५, खु० बं०। २ मणुसगदीए मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा (४,५)। ३ "चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।"–षट्खं० का० ७६।

२२४. मणुस-अपज्जत्तगेसु-धुविगाणं बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। दो-आयु० पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ओरालि० अंगो० छसंघड० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसरं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि। सेसाणं वेदणीयभंगो।

२२५. देवाणं णिरयभंगो। णवरि एइंदियपयडि जाणिदूण भाणिदव्वं।

२२६. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता वेदणीयं साधारणेण अबंधगा जहण्णुक्क-

---

२२४ मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकों[1]मे-ध्रुव प्रकृतियोके वन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग पर्यन्त होते है। अबन्धक नहीं है। साता-असाता वेदनीयके बन्धक अवन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं। दोनोंके बन्धक जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण पर्यन्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं। अबन्धक नहीं है। दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक-अबन्धक प्रत्येक साधारणसे जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग है। औदारिक अंगोपाग, छह सहनन, परघात उच्छ्वास-आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक अबन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग है। सामान्य तथा प्रत्येकसे इसी प्रकार जानना चाहिए। शेपका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

२२५. देवोंमें-नारकियोंके समान भंग[2] है। विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय प्रकृतिको भी जानकर कहना चाहिए।

विशेष—नारकी जीव मरणकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य या तिर्यंच होते है, किन्तु देवोकी उत्पत्ति एकेन्द्रियोंमे भी होती है। अतः देवगतिमें एकेन्द्रिय जातिके बन्धका भी उल्लेख है।

२२६ पंचेन्द्रिय त्रस तथा इनके पर्याप्तकोंमे-साधारणसे वेदनीयके अबन्धकोंका

---

१ "मणुस-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्खं० का० ८३-८४। खुद्दाबंध सू० ६, ७, ८।
२ "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा। सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ।" –षट्खं० का० ३६। देवगदीए देवा केवचिर कालादो होति? सव्वद्धा। –खु० व० सू० ९, १०। "सासण-सम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" (५,६)। "सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" (९, १०) असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।"–षट्खं० का० १३।

स्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। सेस-भंगा सव्वद्धा।

२२७. एवं तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०। णवरि वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सादासादाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं दोयुगलचदुगदि-पंचजादि-दोसरीर-छसंठाण-चदुआणुपुव्वि० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदं च। आहारदुगं दो-अंगो० छस्संघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दो विहाय० दोसर० तित्थय० पत्तेगेण साधारणेण बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क०, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा।

२२८. एवं चक्खुदं० अचक्खुदं० सण्णि त्ति। णवरि चक्खुदं० सण्णि० आयु०

जघन्य उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। शेष भंग सर्वकाल हैं।

२२७ तीन मनोयोग, तीन वचनयोगमे इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि वेदनीयके सामान्यसे अबन्धक नहीं है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग काल है। दो मन तथा दो वचनयोगमें-पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ४ संज्वलन भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका काल सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। हास्यादि दो युगल चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस स्थावरादि नव युगल तथा दो गोत्रोंमे भी इसी प्रकार जानना, अर्थात् अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है तथा बन्धकोंका सर्वकाल है। आहारकद्विक, २ अंगोपांग, ६ संहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, २ स्वर तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकों अबन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे सर्वकाल है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका सर्वकाल है।[1]

२२८ चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन तथा संज्ञी जीवोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष,

---

१ जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा —खु० बं० १६, १७।

दोविहायगदि-दोसराणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। तित्थयरं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। आहारका०–धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। सेसाणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारमि०–धुविगाणं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। वेदणीय-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। दोण्णं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। आयु० तित्थय० सादभंगो।

२३२. इत्थिवे०–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदुग-परघादुस्सास-आदा-उज्जोव-तित्थयराणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। णिद्दापचल(ला)-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। एवं

तथा दो स्वरोंके बन्धकों-अबन्धकोंका काल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

आहारककाययोगियोंमे[1] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

आहारकमिश्रमे[2]—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। दोनोंके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। आयु तथा तीर्थंकरमे साताके समान भंग है।

सव्वाणं णेदव्वं ।

२३०. एवं कम्मइयका० । णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छ० अणंताणु०४ बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा जह० एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। देवगदि०४ तित्थयरं बंधगा जह० एगस० । उक० संखेज्जसमया । अबंधगा सव्वद्धा। ओरालिय-बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जह० एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जसमया ।

२३१. वेउव्विकायजोगिस्स देवोघं । वेउव्वियमिस्स० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एग समओ । दोवेदणीय-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस असंखेज्जदिभागो । दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे दिभागो । अबंधगा णत्थि । एवं तिण्णं वेदाणं दोण्णं युगलाणं दोगदि-दोजादि-छस्संठ दोआणुपुव्वि-तसथावरादि-पंच-युगल-दोगोदाणं च । ओरालि-अंगोवंग-छस्संघ

[illegible]
-[illegible]

तिण्णि-वेद-जस०-अजस० दोगोदं च । हस्सरदि-अरदि-सोगं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा । दोण्णं युगलाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण वि हस्सरदीणं भंगो । चदुआयुगाणं बंधगा पत्तेगेण जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चदुआयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । एवं पुरिसवेदस्स वि । एवं चेव णवुंसगवेद-कोधादितिण्णं कसायाणं । णवरि तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चदुआयुगाणं अबंधगा सव्वद्धा । एवं चेव लोभे वि । णवरि पंचणा० चदुदं० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा णत्थि । अवगदवेदेसु–सादस्स बंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा सव्वद्धा । अकसाइगेसु–सादस्स बंधगा अबंधगा सव्वद्धा । एवं केवलणा० केवलदंस० ।

२३३. विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एग-

अवन्धकोंका सर्वकाल है । दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नहीं है । तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए । हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । दोनो युगलोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धकों-का जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमे प्रत्येक तथा सामान्यसे हास्य-रतिके समान भंग जानना चाहिए । चार आयुके बन्धकोंका प्रत्येकसे जघन्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोंका सर्वकाल है । सामान्यसे चार आयुके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असंख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोंका सर्वकाल है ।

पुरुषवेदमें–इसी प्रकार जानना चाहिए । नपुंसकवेदमे भी इसी प्रकार है । क्रोध-मान-मायाकषायमें भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि तिर्यंच आयुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । सामान्यसे चार आयुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । लोभकषायमें–इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नहीं है ।

अपगत वेदमें–साता-वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । अबन्धकोंका सर्वकाल है ।

अकषायियोंमें–साता वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । [1]केवलज्ञान, केवल-दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

२३३. विभंगज्ञानमें–पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग जानना चाहिए । विशेष यह है

[illegible] कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ? [illegible] –खु० बं० सू० [illegible] । [illegible] "[illegible] मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-[illegible] केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा" –खु० बं० सू० ३[illegible], ३[illegible] । [illegible] केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।"–षट्खं० का० [illegible] । [illegible] णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागो [illegible] ।

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा णत्थि ।

२३८. तेऊ देवोघं । एवं पम्माए वि । सुक्काए धुविगाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसं मणुस-पज्जत्तभंगो ।

२३९ सम्मादि० दोआयु ओधिभंगो । सेसं सव्वद्धा । एवं खइग-सम्मा० । दोआयु सुक्कभंगो । वेदगे०—धुविगाणं बंधा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि । सेसं ओधिभंगो । णवरि साधारणेण अबंधगा णत्थि ।

२४०. उवसमसम्मा०—धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

चाहिए । सूक्ष्मसाम्परायसंयममें सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकषाय वा अनिवृत्ति बादर साम्पराय प्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमे मरणकर देवोंमे उत्पन्न होनेपर एक समय जघन्यकाल पाया जाता है । उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, उसमे संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका समावेश है । (खु० ब० टीका पृ० ४८३, ४७४)

२३८ तेजोलेश्यामे–देवोंके ओघ समान है । पद्मलेश्यामे–इसी प्रकार है । शुक्ललेश्यामे–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तकके समान भंग है ।

२३९ सम्यग्दृष्टियोंमे–दो आयुके बन्धकों अबन्धकोंका ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमे सर्वकाल भंग है । क्षायिकसम्यक्त्वियोंमे–इसी प्रकार है । दो आयुका शुक्ललेश्याके समान भंग है । वेदकसम्यक्त्वियोंमे–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष यह है कि सामान्यसे अबन्धक नहीं है ।

२४० उपशमसम्यक्त्वियोंमे–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है ।

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सादासाद-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। मणुसगदि-पंचगं बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं अबंधा। णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। आहारदुगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं तित्थयरस्स। चदुणोकसायाणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं थिरादितिण्णियुगलाणं। सासणे–धुविगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं वेदणीयं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा। साधारणेण बंधगा अबंधगा जहण्णेण एग-

---

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। साता-असाताके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। मनुष्यगतिपंचकके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। देवगति ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार अबन्धकोंका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। आहारकद्विकके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरका इसी प्रकार जानना चाहिए। चार नोकषायोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। स्थिरादि तीन युगलोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

सासादनमें—[1]ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंमें प्रत्येकसे इसी प्रकार है। सामान्यसे बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ

---

१ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–षट्खं० का० ५-६।

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा णत्थि ।

२३८. तेउ० देवोघं । एवं पम्माए वि । सुक्काए धुविगाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसं मणुस-पज्जत्तभंगो ।

२३९. सम्मादि० दोआयु ओघिभंगो । सेसं सव्वद्धा । एवं खइग-सम्मा० । दोआयु सुक्कभंगो । वेदगे०-धुविगाणं बंधा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि । सेसं ओधिभंगो । णवरि साधारणेण अबंधगा णत्थि ।

२४०. उवसमसम्मा०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

[illegible] । [1]सूक्ष्मसाम्परायसंयममें सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकषाय या अनिवृत्ति बादर साम्पराय प्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर एक समय [illegible] पाया जाता है । उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, उसमें संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका समावेश है । (खु० ब० टीका पृ० ४८३, ४७४)

२३८. तेजोलेश्यामें-देवोंके ओघ समान है । पद्मलेश्यामें-इसी प्रकार है । [3]शुक्ललेश्यामें-ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तकके समान भंग है ।

२३९. सम्यग्दृष्टियोंमें-दो आयुके बन्धकों अबन्धकोंका ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें सर्वकाल भंग है । क्षायिकसम्यक्त्वियोंमें-इसी प्रकार है । दो आयुका शुक्ललेश्याके समान भंग है । वेदकसम्यक्त्वियोंमें-ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष यह है कि सामान्यसे अबन्धक नहीं है ।

२४०. [illegible]उपशमसम्यक्त्वियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है ।

---

1. "[illegible] सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ।" –२७२ । [illegible] "[illegible] मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सव्वद्धा" –षट्खं० का० २९१ । [illegible] –२९४ । "सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।" –२९५ । "संजदासंजदपमत्तअप्पमत्त- [illegible] –३०६ । 3 "सुक्कलेस्सिएसु चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ।" –३०८ । [illegible] सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा" –खु० बं० सू० ४४, ४५ । 4 "उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो [illegible] जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।" –षट्खं० का० सू० ३२६-३२७ । [illegible] सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो" –खु० बं० कालाणुगम सू० ४६-४८ । "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय- [illegible] केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।" –३३३-३३४ ।

[अंतराणुगम-परूवणा]

२४३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।

'२४४. तत्थ ओघेण–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण-तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं, णिरंतरं। तिण्णि आयु० बंधगा जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। तिरिक्खायुबंधाबंधगा णत्थि अंतरं। चदुआयु बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसविगप्पाणं बंधगा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं काजोगि (?)।

२४५. ओघभंगो काजोगि-ओरालियकाजोगि-भवसिद्धि-आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धि०।

[अन्तरानुगम]

[अन्तर शब्द छिद्र, मध्य, विरह आदि अनेक अर्थोंका द्योतक है। यहाँ अन्तर शब्द विरहकालका द्योतक है। एक वस्तु अवस्थाविशेषमे कुछ समय रहकर कुछ कालके लिए अवस्थान्तर रूप हो गयी और बादमें वह उस अवस्थाविशेषको पुन प्राप्त हो गयी। इस मध्यवर्ती कालको अन्तर कहते है। यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।]

२४३ यहाँ ओघ तथा आदेशकी अपेक्षा अन्तरका दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

२४४ ओघसे ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर बन्ध है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे लिखा है "**निर्गतमन्तरमस्माद्राशेरिति णिरंतरं**", जिस राशिमें अन्तरका अभाव है वह निरन्तर है। '**णत्थि अन्तरं**'–अन्तर नहीं है यह प्रसज्य प्रतिषेध है, क्योंकि यहाँ विधिकी प्रधानताका अभाव है। '**णिरंतरं**' निरन्तर है यह पर्युदास प्रतिषेध है, कारण यहाँ प्रतिषेधकी प्रधानता नही है। इस प्रकार प्रसज्य और पर्युदास रूप अभाव युगलका कथन किया गया है। (खु० ब० अं० पृ० ४७९-४८०)

नरक-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। अबन्धक नहीं है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। चार आयुके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२४५ काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारकमे ओघकी तरह अन्तर जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमे विशेष जानना चाहिए।

---

१ "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्रमध्यविरहेष्वन्यतमग्रहणम्।" –त० रा० पृ० ३०। "अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामान्तरगमण णत्थित्तगमण अण्णभावव्वहाणमिदि एयट्ठो।" –ध० टी० अन्तरा० पृ० ३।

समओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं। दोआयु० बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। मणुसायुगं० देवभंगो। अबंधगा जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। एवं सासणेण वि।

२५१. सम्मामि० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासादाणं बंधगा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं सासणेण वि। अबंधगा णत्थि।

२५२. अणाहारे धुविगाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। देवगदिपंचगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा।

एवं कालं समत्तं।

तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। मणुसायु ओघं। दो-आयु० तिरिक्खायुभंगो। सेसं णत्थि अंतरं। एवं पंचिंदिय-तस-अपज्ज० विगलिंदिय-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादर-वणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ताणं। णवरि तेउ० आयु चउव्वीसं मुहुत्तं।

२४८. मणुसेसु—चदु-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। दो वेदणी० अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मास०। मणुसिणीसु वासपुधत्तं। सेसं णत्थि अंतरं। मणुस-अपज्ज० सव्वाणं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

२४९. देवाणं–णिरयभंगो। णवरि सव्वट्ठे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें तिर्यंचायुका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुका ओघवत् अन्तर है। दो आयुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, बादर पृथ्वी, बादर अप्, बादर तेज, बादर वायु, बादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। विशेष, तेजकायमें आयुका २४ मुहूर्त अन्तर है।

२४८ मनुष्यगतिमें—चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। दो वेदनीयके अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह है।

विशेष[1]—साता-असातायुगलके अबन्धक अयोगकेवली होंगे। उनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।

मनुष्यनियोंमें[2]—दोनों वेदनीयोंके अबन्धकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका अन्तर नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें—सर्व प्रकृतियोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किसलिए होता है?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है और स्वभावमें युक्तिवादका प्रवेश नहीं है, क्योंकि उसका भिन्न विषय है। (ध० जी० अंत० टीका० पृ० ५६)

२४९ देवोंमें—नरकके समान भंग है।[3] विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमें पल्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाण अन्तर है।

---

१ "चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण छम्मासं।" –**षट्खं० अंतरा० १६, १७।** "उत्कृष्टेन षण्मासाः।" –स० सि० १, ८। २ 'मणुस-मणुसपज्जत्त–मणुसिणीसु चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं।"–७०, ७१। "मणुस–अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।" ७८। मणुस अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो—**खु० बं० अं०सू०८-१०।** "किमट्ठ-मेदस्स महंतस्स रासिस्स अंतरं होदि? एसो सहाओ एदस्स। ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसो अत्थि भिण्णविसयादो।" –ध० टी० अं० पृ० ५६। "उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–९६। ३ देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अन्तरं णिरंतरं (११-१३) भवणवासिय जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिय देवा देवगदिभंगो १४-**खु० बं० अंतरा०।**

२४६. आदेसेण णेरइगेसु–दो-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं, अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं, मासं, वेमासं, चत्तारि मासं, छम्मासं, बारसमासं। एवं सव्वणेरइगाणं। सेसं पगदीणं णत्थि अंतरं।

२४७. तिरिक्खेसु–आयु० ओघं। सेसं णत्थि अंतरं। एवं एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० तेसिं चेव बादरअपज्ज० सव्वसुहुम-सव्ववणप्फदि-णिगोद-बादरवणप्फदि-पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त-मदि० सुद० असंज० तिण्णिले० अब्भवसिद्धि-मिच्छादिट्ठि याव असण्णित्ति। एदेसिं च किंचि विसेसं ओघादो साधेदूण णेदव्वं। पंचिंदिय तिरिक्ख०४ तिण्णि आयु० ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तजोणिणीसु चउव्वीसं मुहुत्तं। चदु-आयु-तिरिक्खायुभंगो। पंचिंदिय-

२४६. आदेशसे–नारकियोंमें मनुष्यायु तिर्यंचायुके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त, ४८ मुहूर्त, पक्ष, मास, दो मास, चार मास, छह मास तथा बारह मास अन्तर है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है, कारण उनका निरन्तर बन्ध होता है।

२४७ तिर्यंचोंमें—आयुके बन्धकोंका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों का अन्तर नहीं है।[1] इसी प्रकार एकेन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा इनके बादर अपर्याप्तक भेदोंमें, सम्पूर्ण सूक्ष्म, सर्व वनस्पतिनिगोद, बादरवनस्पति—प्रत्येक तथा उनके अपर्याप्तकोंमें एवं [2]मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान[3], असंयम,[4] तीन लेश्या[5], अभव्यसिद्धिक[6], मिथ्यादृष्टिसे असञ्ज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इनमें पायी जानेवाली विशेषताओंको ओघ-वर्णनसे जानकर निकालना चाहिए।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंचअपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें—तीन आयुका ओघवत् है। तिर्यंचायुके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्तक योनिमती तिर्यंचोंमें अन्तर २४ मुहूर्त है। चार आयुके बन्धकोंमें तिर्यंचायुके समान भंग है।

१ "एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं, णिरंतरं (१५-१७), कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्ता-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं।" १८,१९, २ "णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतरं" (३६-३८)। ३ "संजमाणुवादेण संजदा' संजदासंजदा असंजदाणमंतरं णत्थि अंतरं णिरंतरं" (३९-४१)। ४ "लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतरं (४८-५०) भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभव-सिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतरं (५१-५३)। ५ 'सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतरं" (५४-५६)। ६ "सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतरं"—खु० बं० सूत्र ६३-६५ अन्तराणुगम।

तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। मणुसायु ओघं। दो-आयु० तिरिक्खायुभंगो। सेसं णत्थि अंतरं। एवं पंचिंदिय-तस-अपज्ज० विगलिंदिय-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादर-वणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ताणं। णवरि तेउ० आयु चउव्वीसं मुहुत्तं।

२४८. मणुसेसु—चदु-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। दो वेदणी० अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मास०। मणुसिणीसु वासपुधत्तं। सेसं णत्थि अंतरं। मणुस-अपज्ज० सव्वाणं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

२४९. देवाणं-णिरयभंगो। णवरि सव्वट्ठे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोमे तिर्यंचायुका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुका ओघवत् अन्तर है। दो आयुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमे अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, बादर पृथ्वी, बादर अप्, बादर तेज, बादर वायु, बादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तकोमे जानना चाहिए। विशेष, तेजकायमे आयुका २४ मुहूर्त अन्तर है।

२४८ मनुष्यगतिमें—चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। दो वेदनीयके अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह है।

विशेष[1]—साता-असातायुगलके अबन्धक अयोगकेवली होंगे। इनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।

मनुष्यनियोंमें[2]—दोनों वेदनीयोंके अबन्धकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका अन्तर नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमे—सर्व प्रकृतियोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किसलिए होता है?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है और स्वभावमे युक्तिवादका प्रवेश नहीं है, क्योंकि उसका भिन्न विषय है। (ध० जी० अत० टीका० पृ० ५६)

२४९ देवोंमे—नरकके समान भंग है।[3] विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमे पल्योपमके संख्यातवे भाग प्रमाण अन्तर है।

---

१ "चदुण्ह खवग-अजोगिकेवलीणमंतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मास।" –षट्खं० अंतरा० १६, १७। "उत्कृष्टेन षण्मासा।" –स० सि० १, ८।
२ 'मणुस-मणुसपज्जत्त–मणुसिणीसु चदुण्हमुवसामगाणमंतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।"–७०, ७१। "मणुस–अपज्जत्ताणमंतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय।" ७८। मणुस अपज्जत्ताणमंतर केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो—खु० ब० अ०सू०८–१०। "किमट्ठ-मेदस्स एस्महंतस्स रासिस्स अंतर होदि? एसो सहाओ एदस्स। ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसो अत्थि भिण्णविसयादो।" –ध० टी० अ० पृ० ५६। "उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–९६। ३ देवगदीए देवाणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अन्तरं णिरंतर (११-१३) भवणवासिय जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिय देवा देवगदिभगो १४–खु० ब० अंतरा०।

पंचिंदियतस०२ तिण्णि आयु-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण चउ० तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। पज्जत्ते चउ० सेसं मणुसोघं। तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०-चदुआयु० बंधगा जहण्णेण उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। सेसं णत्थि अंतरं।

२५०. दोमण० दोवचि०-चदुआयु० तिण्णि मणभंगो। पंचणा० चदुसंज० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा णत्थि अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं। सेसं पत्तेगेण साधारणेण णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं। णवरि थीणगि० मिच्छत्त-बारसक० दोअंगो० छस्संघ० परघादुस्सासं आहारदुगं आदाउज्जोवं दो-वि० दोसरं बंधगा अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५१. एवं चक्खु० अचक्खु० सण्णि त्ति। णवरि अचक्खुदंस० आयु० ओघं। ओरालियमिस्स०-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०, उक्क०

पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमें—तीन आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर जानना चाहिए। पर्याप्तकोंमें २४ मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए।

तीन मनोयोगी, तीन वचनयोगीमें—४ आयुका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।[1]

२५०. दो मनयोगी, दो वचनयोगीमें—४ आयुके अन्तरका तीन मनोयोगीके समान भंग है। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। पाँच ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है। शेष बन्धकोंका सामान्य तथा प्रत्येक रूपसे अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ६ माह अन्तर है। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आहारकद्विक, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५१. इसी प्रकार अचक्षुदर्शनसे संज्ञी पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष यह है कि अचक्षुदर्शनमें आयुका ओघवत् अन्तर है।

औदारिक मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।[2]

विशेष—इस योगमें ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक सयोगकेवली होंगे। वहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। कारण, कपाट

---

१ जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं णिरंतरं (७१-७३)। २ "ओरालियमिस्सकायजोगि-अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्तं।' –षट्खं० अंतरा० १६६-६७।

वासपुधत्तं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण मासपुधत्तं । दोआयु० छस्संघ० दोविहाय० दोसर० बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं । णवरि मणुसायु ओघं । तित्थयर० बंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण य णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

२५२. वेउव्वियका०–देवोघं । वेउव्वियमिस्स-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ अबंधगा, तित्थय० बंधगा ओरालियमिस्सभंगो । सेसाणं बंधाबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० बारसमुहुत्तं । णवरि एइंदिय०३ चउव्वीस मुहुत्तं ।

समुद्घात रहित केवली जघन्यसे एक समय तथा उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व पर्यन्त होते हैं।–ध० टी० अन्तरा० पृ० ६१ ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। दो आयु, ६ संहनन और २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। विशेष यह है कि मनुष्यायुके विषयमें ओघवत् जानना।[1] तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है। अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

विशेष—इस योगमें तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव होंगे। उनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर कहा है।

शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५२ वैक्रियिक काययोगमें—देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है।[2]

विशेषार्थ—सर्व वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंके पर्याप्तियोंको पूर्ण कर लेनेपर एक समयका अन्तर होता है। देव तथा नारकियोंमें न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते हैं तो बारह मुहूर्त तक ही रहते हैं। यह कैसे जाना?

समाधान—जिण-वयण-विणिग्गय-वयणादो—जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनोंसे जाना जाता है। (खु० बं० टीका पृ० ४८५)

अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धकोंका तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका औदारिक मिश्रकाय योगके समान भंग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धको अबन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है। विशेष यह है कि एकेन्द्रियत्रिकका अन्तर २४ मुहूर्त जानना चाहिए।

---

१ "असजदसम्मादिट्ठीणमंतर केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्तं।"–१६३-६४। २ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं।" –षट्खं० अंतरा० १७०–१७१।

२५३. आहार० आहारमिस्स०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं बंधाबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

२५४. कम्मइग-कायो ओरालियमिस्स भंगो ।

२५५. इत्थिवेदे-धुविगाण बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि । णिद्दा-पचला-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ उप० णिमिणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं बारसकसा० ओरालि० छस्संघ० आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बंधगा० णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं वेदणीय-तिण्णिवेद-जस० अजस० तित्थय० दोगोदाण । सेसाणं पत्तेगेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । साधारणेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं ।

२५६. एव पुरिसवेदं णवुंसगवेदं । णवरि पुरिसे यं हि वासपुधत्तं, तं हि वासं सादिरेयं । इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो । णवुंसगे ओघं ।

२५७. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो। णवरि तिरिक्खायु ओघं। एवं लोभे, णवरि छम्मासं।

२५८. अवगदवेदेसु सादबंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसं बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण छम्मासं। अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५९ अकसाइगेसु साद-बंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं केवलदंसणा०। विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो।

२६० आभि० सुद० ओधि० दो-आयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं। सेसाणं दो-मणभंगो। ओधिणा० वासपुधत्तं।

२६१. एवं मणपज्जव० ओधिदं०। णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं।

होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हो गये। पुनः ४, ५ मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुन १, २ मासका अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढे। इस प्रकार संख्यात वार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढनेपर साधिक वर्ष प्रमाण अन्तर हो जाता है। क्योंकि निरन्तर ६ मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार 'पुरुपवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अन्तर जानना चाहिए। [1]कितनी ही सूत्र पोथियोंमे पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर ६ मास पाया जाता है। (जीवट्ठाण अन्तरा० पृ० १०६)

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बन्धकों अबन्धकोंमे पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भंग जानना चाहिए। नपुसकवेदमे—ओघवत् जानना चाहिए।

२५७ क्रोध-मान-मायाकषायमे-पुरुषवेदके समान भंग है। विशेष इतना है कि तिर्यचायुके बन्धकों अबन्धकोका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। लोभकषायमे-इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष, यहाँ अन्तर छह मास जानना चाहिए।

२५८. अपगतवेदमे-साताके बन्धको अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतिके बन्धकोंमे जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अन्तर है। अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५९ अकषायियोंमे—साताके बन्धकों अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना। विभंगावधिमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए।

२६० आभिनिबोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमे-दो आयु अर्थात् मनुष्य—देवायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमे दो मनयोगियोके समान भंग है। अवधिज्ञानियोंमे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२६१ मनःपर्ययज्ञान अवधि दर्शनमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि मनःपर्ययज्ञानमें देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

२५७. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो। णवरि तिरिक्खायु ओघं। एवं लोभे, णवरि छम्मासं।

२५८. अवगदवेदेसु सादबंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसं बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण छम्मासं। अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५९ अकसाइगेसु साद-बंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं केवलदंसणा०। विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो।

२६०. आभि० सुद० ओधि० दो-आयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं। सेसाणं दो-मणभंगो। ओधिणा० वासपुधत्तं।

२६१. एवं मणपज्जव० ओधिदं०। णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं।

होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हो गये। पुनः ४, ५ मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुन १, २ मासका अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढे। इस प्रकार सख्यात बार स्त्रीवेद और नपुसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढनेपर साधिक वर्ष प्रमाण अन्तर हो जाता है। क्योकि निरन्तर ६ मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार 'पुरुषवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अन्तर जानना चाहिए। [1]कितनी ही सूत्र पोथियोंमे पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर ६ मास पाया जाता है। (जीवट्ठाण अन्तरा० पृ० १०६)

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बन्धकों अबन्धकोंमे पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग जानना चाहिए। नपुंसकवेदमे–ओघवत् जानना चाहिए।

२५७ क्रोध-मान-मायाकषायमे–पुरुषवेदके समान भग है। विशेष इतना है कि तिर्यचायुके बन्धकों अबन्धकोका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। लोभकषायमे–इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष, यहाँ अन्तर छह मास जानना चाहिए।

२५८. अपगतवेदमे–साताके बन्धको अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतिके बन्धकोमे जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अन्तर है। अबन्धकोका अन्तर नहीं है।

२५९ अकषायियोंमे—साताके बन्धकों अबन्धकोमे अन्तर नही है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना। विभंगावधिमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोका भग जानना चाहिए।

२६० आभिनिबोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमे–दो आयु अर्थात मनुष्य—देवायुके बन्धकोका [2]जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमे दो मनयोगियोके समान भग है। अवधिज्ञानियोंमे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२६१ मनःपर्ययज्ञान अवधि दर्शनमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि मनःपर्ययज्ञानमे देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है।[3]

---

१ केसुवि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदमतर छम्मासा – जी० अंत० पृ० १०६। २ "आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण मासपुधत्त।" –षट्खं० अतरा० २३२, २४१, २४२, २४५। ३ "मणपज्जवणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –२४६, २४९, २५०।

२५३. आहार० आहारमिस्स०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं[1]। अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसाणं बंधाबंधगा जह० एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं।

२५४. कम्मइग-कायो ओरालियमिस्स भंगो।

२५५. इत्थिवेदे-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा णत्थि। णिद्दा-पचला-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ उप० णिमिणं बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं बारसक०। दोअंगो० छस्संघ० आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बंधगा० णत्थि अंतरं। अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं वेदणीय-तिण्णिवेद-जस० अजस० तित्थय० दोगोदाणं। सेसाणं पत्तेगेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं। सामण्णेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं।

२५६. एवं पुरिसवेदं णवुंसगवेदं। णवरि पुरिसे यं हि वासपुधत्तं, तं हि वासं सादिरेयं। इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो। णवुंसगे ओघं।

२५३ आहारक तथा मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है।[1] अबन्धकोंमें अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५४ कार्माणकाययोगमें—औदारिक मिश्रकाययोगके समान भंग जानना चाहिए।[2]

२५५ स्त्रीवेदमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। उनके अबन्धक नहीं हैं। निद्राप्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका अन्तर नहीं है।[3] अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २स्वरके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका भी अन्तर नहीं है। इसी प्रकार वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर तथा २ गोत्रका जानना। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका प्रत्येकसे अन्तर नहीं है। सामान्यसे भी इनका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५६ पुरुषवेद नपुंसकवेदमें इस प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि पुरुषवेदमें[4] वर्ष-पृथक्त्वके स्थानमें साधिकवर्ष जानना चाहिए।

विशेष—पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गये, अतः अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर युक्त हो गये। पुनः ६ मास व्यतीत

१ "आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –१७४–१७५। २ "इत्थिवेदेसु दोण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघ।" –षट्खं० अंतरा० १८७। ३ "णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –षट्खं० अंतरा० १२, १३। ४. "पुरिस वेदएसु दोण्ह खवाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वास सादिरेय।" –षट्खं० अंतरा० १९३, २०४, २०५।

२५७. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो। णवरि तिरिक्खायु ओघं। एवं लोभे, णवरि छम्मासं।

२५८ अवगदवेदेसु सादबंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसं बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण छम्मासं। अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५९ अकसाइगेसु साद-बंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं केवलदंसणा०। विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो।

२६० आभि० सुद० ओधि० दो-आयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं। सेसाणं दो-मणभंगो। ओधिणा० वासपुधत्तं।

२६१. एवं मणपज्जव० ओधिदं०। णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं।

होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हो गये। पुनः ४, ५ मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुन १, २ मासका अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढ़े। इस प्रकार सख्यात वार स्त्रीवेद और नपुसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढनेपर साधिक वर्ष प्रमाण अन्तर हो जाता है। क्योंकि निरन्तर ६ मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार 'पुरुपवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अन्तर जानना चाहिए। [1]कितनी ही सूत्र पोथियोमे पुरुपवेदका उत्कृष्ट अन्तर ६ मास पाया जाता है। (जीवट्ठाण अन्तरा० पृ० १०६)

स्त्रीवेद, पुरुपवेद तथा ४ आयुके बन्धकों अबन्धकोंमे पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग जानना चाहिए। नपुसकवेदमे–ओघवत् जानना चाहिए।

२५७ क्रोध-मान-मायाकपायमे–पुरुषवेदके समान भंग है। विशेप इतना है कि तिर्यचायुके बन्धकों अबन्धकोका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। लोभकपायमे–इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष, यहॉ अन्तर छह मास जानना चाहिए।

२५८. अपगतवेदमे–साताके बन्धको अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। शेप प्रकृतिके बन्धकोंमे जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अन्तर है। अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५९ अकषायियोंमे—साताके बन्धकों अबन्धकोमे अन्तर नहीं है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना। विभंगावधिमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोका भग जानना चाहिए।

२६० आभिनिवोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमे–दो आयु अर्थात मनुष्य—देवायुके बन्धकोका [2]जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। शेप प्रकृतियोंमे दो मनयोगियोके समान भग है। अवधिज्ञानियोंमे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२६१ मनःपर्ययज्ञान अवधि दर्शनमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेप यह है कि मनःपर्ययज्ञानमे देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है।[3]

१ केसुवि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदसतर छम्मासा – जी० अत० पृ० १०६। २ "आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –षट्खं० अतरा० २३२, २४१, २४२, २४५। ३ "मणपज्जवणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –२४६, २४९, २५०।

२६२. एवं परिहारे संजदु० (?) तं चेव, णवरि मास-पुधत्तं । एवं सामाइ० छेदोप० । संजदासंजदा० सुहुमस० सव्वाणं बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्मासं अंतरं । अबंधगा णत्थि । यथाक्खाद०-सादबंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण छम्मास० (सं) ।

२६३. तेउपम्माणं-तिण्णि-आयु० बंधा जह० एगस० । उक्कस्सेण अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं ।

२६४ सुक्काए- दो आयु० मासपुधत्तं ।

२६५. सम्मादिट्ठि आभिणिभंगो । खइगसम्मा० वासपुधत्तं । सेसाणं णत्थि अतरं । वेदगसम्मा० आयु० आभिणिभंगो । सेसं णत्थि अंतरं ।

२६६ उवसमसम्मा०-पंचणा० छदंस०चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-

२६२ परिहारविशुद्धिमे इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वर्षपृथक्त्व-के स्थानमे मासपृथक्त्व अन्तर जानना चाहिए । इसी प्रकार सामायिक छेदोपस्थापना संयममे जानना चाहिए। संयतासयत और सूक्ष्मसाम्पराय सयममे सर्व प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है । अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके बिना जघन्यसे एक समय देखा जाता है। उत्कृष्टसे अन्तर छह मास होता है, कारण क्षपकश्रेणी आरोहणका छह मासोंसे अधिक उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता है । (खु० ब० टी० पृ० ४८२) ।

यथाख्यातसयममे-साता वेदनीयके बन्धकोंका अन्तर नहीं है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट छह मास अन्तर जानना चाहिए।

विशेष—साता वेदनीयके अबन्धकोंका इस संयममे अयोगकेवली गुणस्थान है। उसका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ।

२६३ तेजोलेश्या-पद्मलेश्यामे-तीन आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ४८ मुहूर्त तथा पक्षप्रमाण अन्तर है ।

२६४ शुक्ललेश्यामे-दो आयुके बन्धकोंका मासपृथक्त्व अन्तर है ।

२६५ सम्यग्दृष्टियोंमे-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है। क्षायिक सम्यक्त्वीमे दो आयुके बन्धकोंका वर्षपृथक्त्व अन्तर है । शेष प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है । वेदक सम्यक्त्वियोंमे-आयुके बन्धकोंका आभिनिबोधिक ज्ञानके समान है। शेष प्रकृतियोंमे अन्तर नहीं है ।

२६६ उपशमसम्यक्त्वियोंमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४,

१ सुहुमसापरायसुद्धिसजदाण अतर केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मासाणि -खु० बं० सू० ४२-४४ । २ 'चदुण्ह खवगअजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मास ।" -१६, १७ । ३ "चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।" -षट्खं० अं० सू० ३४३, ४४ ।

आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोदं पंचंतराइगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। [अबंधगा] जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। णवरि वज्जरिस० अबंधगा सत्तरादिंदियाणि। मणुसगदि०४ वज्जरिसभ-भंगो। दोवेदणी० बंधा-अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं बंधगा जहण्णे० एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा णत्थि। चदुणोक० बंधा-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० वासपुधत्तं। एवं परियत्ति [माणि] याणं। अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० चोद्दसरादिदियाणि। पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जह० एगस०। उक्क० सत्तरादिंदि०। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० पण्णारसरादिंदि०। आहारदुगं तित्थयरं बंधगा जह० एगस०। उक्क० वास-

अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात रात-दिन है[1]।

विशेषार्थ—रात्रिंदिव शब्द द्वारा दिवसका ग्रहण किया गया है क्योंकि सम्मिलित दिन तथा रात्रिमें दिवसका व्यवहार देखा जाता है। (खु० ब० टीका पृ० ४६२)

[अबन्धकोंका] जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

विशेष—इन प्रकृतियोंके अबन्धक उपशान्तकषायी होंगे, उनका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है।

विशेष यह है कि वज्रवृषभनाराचके अबन्धकोंका अन्तर सात दिन-रात है। मनुष्य-गति ४ के बन्धकोंका अन्तर वज्रवृषभनाराचसंहननके समान है। दो वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है। साता असाताके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है। अबन्धक नहीं है। चार नोकषायों अर्थात् हास्यादिचतुष्कके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १४ दिन-रात है[2]। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १५ दिनरात है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके

१ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि।" –षट्खं० अं० सू० ३५६, ३५७। रादिंदियमिदि दिवसस्स गहणं। अहोरत्तेहि मिलिएहि दिवसववहारदंसणादो। एत्थ उवसहारगाहा – सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति। विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो॥ –खु० ब० टी० पृ० ४६२। २ "संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण चोद्दसरादिंदियाणि।" –षट्खं० अं० सू० ३६०, ३६१। ३ "पमत्तअप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण पण्णारसरादिंदियाणि।" –३६४, ६५।

पुधत्तं । अबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ।

२६७. सासणे-सव्वे विगप्पा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सम्मामि० ।

२६८. अणाहारे—धुविगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं सेसाणं । णवरि देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं । तित्थयरं बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । अबंधगा णत्थि ।

एवं अंतरं समत्तं ।

बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात हैं।

२६७ [1]सासादनमें सर्व विकल्प जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार सम्यङ्मिथ्यात्वमें जानना।

२६८ अनाहारकोंमें[2]-ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धको अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए। विशेष, देवगति चारके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है। अबन्धक नहीं है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

---

१ "सासणसम्मादिट्ठी- सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" -३७५, ७६। २ आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतर केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं, णिरंतरं। -खु० बं० सू० ६६-६८।

ओदइगो वा खइगो वा [असाद-बंधगात्ति को भावो ?] ओदइ० । [अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा] खइगो वा खयोवसमिगो वा । दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? खइगो भावो । इत्थि० णवुंस० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो । ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० पारिणामिगो भावो । पुरिसवे० बंधगात्ति ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा ।

सातावेदनीयके बन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक या क्षायिक है ।

विशेष—सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्तिवाले अयोगकेवली गुणस्थानमे क्षायिकभाव है, किन्तु असाताके बन्धक किन्तु साताके अबन्धकके औदयिक भाव है, कारण साता और असाताके परस्पर प्रतिपक्षी होनेसे असाताके बन्धकालमे साताका अबन्ध होगा । इस दृष्टिसे औदयिक भावका निरूपण किया है ।

[असाता वेदनीयके बन्धकोंके कौन-सा भाव है ?] औदयिक है । [अबन्धकोंके कौन-सा भाव है ? औदयिक] या क्षायिक या क्षायोपशमिक है ।

विशेष—असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसयतमे होती है, अतएव अप्रमत्त गुणस्थान-की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है ।

दोनोंके बन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? क्षायिकभाव है । ।

विशेष—यहाँ दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिकभाव कहा है ।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंमे कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक है । इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके अबन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

तिण्णं वेदाणं बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? खइगो वा उवसमिगो वा। इत्थि णवुंसकभंगो [अरदिसोग] चदु-आयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० आदाउज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ अप्पसत्थवि० (अथिरादिछक्कं) उच्चागोदं (णीचागोदं) च। पुरिसभंगो हस्सरदि-देवगदि-पंचिंदि० वेउव्वि० आहार० समचदु० दोअंगो० देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थविहाय० तस०४ थिरादि-छक्कं तित्थयरं [उच्चागोदं च]। पत्तेगेण साधारणेण चदुआयु-दो-अंगो० छस्संघ०२ विहाय० दोसराणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा। णवरि चदुआयु० छस्संघ० अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। दो युगल-चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर० छसंठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा। एवं ओघभंगो मणुसगदि (?) तिगं

तीनो वेदोके बन्धकोमे कौन-सा भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन-सा भाव है ? क्षायिक या औपशमिक है।

विशेष—वेदत्रयके अबन्धकके अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमे क्षायिक तथा औपशमिक भाव कहे है।

[अरति शोक] ४ आयु, देवगतिको छोडकर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थानको छोडकर शेष पॉच संस्थान, औदारिक अंगोपाग, ६ संहनन, देवानुपूर्वीके बिना तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके(?) बन्धकोमे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके बन्धकोके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् बन्धकोके औदयिक भाव है तथा अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहॉ अप्रशस्त विहायोगतिका दो वार उल्लेख आया है। प्रतीत होता है, अस्थिरादिपट्कके स्थानमे अप्रशस्तविहायोगतिका पुनः उल्लेख हो गया है। यहॉ उच्चगोत्रके स्थानमे नीचगोत्रका पाठ उचित प्रतीत होता है।

हास्य, रति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक तथा आहारक-अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उछ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थंकर प्रकृति, [उच्च गोत्र] के बन्धकोमे पुरुषवेदके समान भग है, अर्थात् बन्धकोंमे औदयिक भाव है, अबन्धकोंमें औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपमिक है। प्रत्येक तथा सामान्यसे ४ आयु, २ अगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरोंके बन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक भाव है। विशेष, ४ आयु, ६ संहननके अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसस्थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायिक भाव है।

पंचिंदिय-तस०२ पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालिय का० चक्खु० अचक्खु० सुक्कले० भवसिद्धि० सण्णि-अणाहारग (?) त्ति। णवरि जोगादिसु (अजोगिसु) वेदणीय अबंधगा णत्थि।

२७१. आदेसेण णेरइगेसु–धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं अणंताणुबंधि०४ बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। सादासादबंधगा अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति०? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोकसा० थिरादि-तिण्णियुगलं०। मिच्छत्तं बंधगा

विशेष—गोत्रादिके अवन्धक उपशान्तकषाय या क्षीणकषाय गुणस्थानमे होंगे, वहाँ औपशमिक क्षायिक भाव कहे है।

मनुष्यत्रिक (मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनी), पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पच मनोयोगी, पंच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यक, भव्यसिद्धिक, संज्ञी तथा अनाहारकोंमे(?) ओघके समान भंग है। इतना विशेष है कि (अ)योगादिकोंमे वेदनीयके बन्धक नहीं है (?)।

विशेष—अनाहारकोंका कथन आगे पृष्ठ २७८ पर आया है, अत: यहाँ आहारकोंका पाठ सम्यक् प्रतीत होता है। वेदनीयके अवन्धक, अयोगकेवली होते है। इस दृष्टिसे 'जोगादिसु'के स्थानपर 'अजोगी' पाठ सगत प्रतीत होता है।

२७१ आदेशसे–नारकियोंमे ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अवन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। साता असाताके वन्धकों अवन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है।

विशेष—नरक गतिमे साताका वन्धक असाताका अबन्धक होगा, असाताका बन्धक साताका अवन्धक होगा इसलिए अन्यतरके वन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

दोनोंके वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवन्धक नहीं है। इसी प्रकार चार नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलमे जानना चाहिए। मिथ्यात्वके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है।

विशेषार्थ—इस प्रसंगमे धवलाटीकामे महत्त्वपूर्ण शंका-समाधान किया गया है।

शंका—मिथ्यात्वके वन्धक मिथ्यादृष्टिके सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदय रूप उपशमसे और मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिरूप भाव उत्पन्न होता है। अतः उनके क्षायोपशमिक भाव क्यों नहीं माना जाये?

समाधान—सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षय अथवा सदवस्थारूप उपशम अथवा अनुदयरूप उपशमसे मिथ्यादृष्टि भाव नहीं होता। कारण, ऐसा माननेमे दोष आता है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है। ऐसा न माननेपर अनवस्था दोष आयेगा। कदाचित यह कहा जाये कि मिथ्यात्वके

त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । इत्थि० णवुंस-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० अबंधगात्ति-पारिणामियो वि । पुरिस बंधा-अबंधगा त्ति ओदइगो भावो । तिण्णि वेदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा णत्थि । एवं इत्थि-णवुंसभंगो तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु०उज्जोव-अप्पसत्थवि०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च । पुरिसभंगो मणुसायु-मणुसगदि-समचदु०-वज्जरिसभ० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदे० तित्थय० उच्चागोदं

उत्पन्न होनेके कालमे जो भाव विद्यमान है, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते है, तो फिर ज्ञानदर्शन असंयम आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जायेंगे, किन्तु ऐसा नही है, कारण इस प्रकारका व्यवहार नहीं पाया जाता। अतएव यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि भाव होता है कारण इसके बिना मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति नही होती (ध० टी० भाव० पृ० २०७) इससे मिथ्यात्वके बन्धकोंके औदयिक भाव कहा है ।

मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है ।[1]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है । अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

विशेष—यहाँ उक्त वेदद्वयके अबन्धक किन्तु पुरुषवेदके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।

यहाँ इतना विशेष है कि नपुसकवेदके अबन्धकोमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

पुरुषवेदके बन्धको अबन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ।

विशेष—नरक गतिमे आदिके चार ही गुणस्थान होते है और पुरुषवेदकी बन्ध-व्युच्छित्ति नवे गुणस्थानमे होती है, तब पुरुषवेदके अबन्धकका भाव अन्य वेदोंके बन्धका समझना चाहिए। अन्य वेदोंका बन्ध होते हुए पुरुषवेदका बन्ध न होना यहाँ पुरुषवेदका अबन्धकपना है । इस अपेक्षासे अबन्धकके औदयिक भाव कहा है ।

तीन वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अबन्धक नही है ।

तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, पॉच सस्थान, पॉच सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रमे स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेदके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव है, अबन्धकोके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रमे पुरुषवेदके समान भंग है, अर्थात् बन्धकों अबन्धकोके औदयिक भाव है। शेष प्रकृ-

[1] अणताणुबधीणमुदएणेव सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइयो भावो किण्ण उच्चदे ? आइल्लेसु चदुसु वि गुणट्ठाणेसु चारित्तावरणतिव्वोदएण पत्तासजमेसु दसणमोहणिबधणेसु चारित्तमोहविवक्खाभावा। अप्पिदस्स दसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण, खएण, खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदित्ति पारणामिओ भावो । –ध० टी० भा० पृ० २०७ ।

२७२. तिरिक्खेसु-दु(धु)विगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा पारिणामिगो भावो। वेदणी० णिरयभंगो। एवं चदुणोकसा०। थिरा-दितिण्णियुग० तिण्णिवेदं णिरयभंगो। अपच्चक्खाणा०४ बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खयोवसमिगो भावो। इत्थि-णवुंसभंगो

न पाइए बिना ही उदय दीये निर्जरै सोई क्षय अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक तिनिका सत्तास्वरूप उपशम तिनि दोऊनि कौ होतै क्षायोपशम हो है" (गो० जी० पृ० ३७)

इस प्रकार क्षयोपशमके विषयमें दो प्रकारसे निरूपण किया गया है।

२७२ तिर्यंचोंमे-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अवन्धक नहीं है।

विशेष—इनके अबन्धक उपशान्त कषायादि गुणस्थानवाले होंगे। तिर्यंचोमें केवल आदिके पॉच गुणस्थान होते है, इस कारण तिर्यंचोमे ध्रुव प्रकृतियोंके अवन्धकोंका अभाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक हैं। अवन्धकोके कौन भाव हैं ? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है। वेदनीयका नरक गतिके समान भंग है, अर्थात् साता-असाताके बन्धक अबन्धकोंमे औदयिक भाव है। दोनोंके बन्धकोंमे औदयिक भाव है, अबन्धक नहीं है।

चार नोकषायमें इसी प्रकार है। स्थिरादि तीन युगल, तीन वेदके बन्धकों अबन्धकोंमे नरकगतिके समान भंग है। अप्रत्याख्यानावरण चारके बन्धकोके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं। अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायोपशमिक भाव हैं।

विशेष—यहॉ देशसंयमी तिर्यंचोकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। इस सम्बन्धमे धवलाकार इस प्रकार स्पष्टीकरण करते हैं—क्षयोपशमरूप संयमासंयम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होनेपर उत्पन्न होते है। यहॉ प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और नोकषायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रका विनाश नहीं होता। इस कारण प्रत्याख्या-नादिके उदयकी क्षय संज्ञा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोकी उपशम संज्ञा भी है कारण वे चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करतीं। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न हुए भाव को क्षायोपशमिक भाव कहा है[1]।

कोई आचार्य कहते हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयमें उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा चारों संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकों-के उदयाभावी क्षय, उनके सदवस्थारूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्या-ख्यानावरण चारके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम होता है।

इस सम्बन्धमे धवलाकारका यह कथन है कि—उदयके अभावकी उपशम संज्ञा करनेसे उदयसे विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकोंकी उपशम

---

[1] "देशविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।" – गो० जीव०।

धवलाटीकामें सम्यक्त्व प्रकृतिको 'वेदगसम्मत्तफद्दय'–वेदक-सम्यक्त्व स्पर्धक कहा है। वहाँ कहा है "दर्शन मोहनीयकी अवयव स्वरूप देशघाती लक्षणवाले वेदक सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

वेदकसम्यक्त्व प्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि उनमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धन शक्तिका अभाव है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके उदयाभावको उपशम कहते है। इस प्रकार उपर्युक्त क्षय तथा उपशम इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

गोम्मटसार जीवकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है–"**एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते। इदमेव क्षायोपशमिक-सम्यक्त्वं नाम दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्व-प्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात्**" (पृ० ५०) –इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अनुभव करनेवाले जीवके उत्पन्न होनेवाला तत्त्वार्थका श्रद्धान वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है। इसे ही क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहा है, क्योंकि दर्शन मोहके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव लक्षणक्षय होनेसे तथा देशघाति स्पर्धक रूप सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर तथा उसके आगेके अनुदय अवस्थाको प्राप्त स्पर्धकोंका सदवस्था लक्षण उपशम होनेपर यह उत्पन्न होता है।

आचार्य पूज्यपाद भी क्षायोपशमिक भावके लक्षणमें देशघाति स्पर्धकोंका उदय, सर्वघातिस्पर्धकोंका उदय क्षय तथा उनका सदवस्था रूप उपशम कहते हैं। उन्होंने सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है, "**सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमात् देशघातिस्पर्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति** (स० सि० अ०२, सू० ५ की टीका पृ० ६३) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आचार्य अकलंकदेवने सर्वार्थसिद्धिकी उपरोक्त परिभाषाको स्वीकार कर उसपर भाष्य लिखकर स्पष्टीकरण किया है। (रा० वा० पृ० ७४ सू० ५, अ० २)।

इस समस्त विवेचनको दृष्टिमें रखनेपर यह ज्ञात होता है कि धवला टीकामें क्षयोपशमकी भिन्न प्रकार व्याख्या की गयी है। वहाँ आचार्य सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको क्षय न कहकर देशघातिके स्पर्धकोंको 'क्षय' संज्ञा प्रदान करते है तथा सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार क्षय और उपशम युक्त भावको धवला टीकामें क्षयोपशम कहा है। पूज्यपाद, अकलंकदेव आदिने देशघातिके उदयका प्रतिपादन किया है, अतः उन्होंने देशघातिकी 'क्षय' संज्ञाका समर्थन नहीं किया है। जब देशघातिके उदयसे चल, मल तथा रुचिशैथिल्य रूप[1] अगाढ दोष उत्पन्न होते है, तब देशघातिको 'क्षय' स्वीकार करनेमे कठिनता उपस्थित होती है।

क्षयोपशमके विषयमें गोम्मटसार टीकामें पं० टोडरमलजीने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है · "सर्वत्र क्षयोपशमका स्वरूप ऐसा ही जानना जहाँ प्रतिपक्षी कर्मके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइये तीहि सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदयनिषेक सम्बन्धी तिनिका उदय

---

१ आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थित कम्प्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते। तद्यथा सर्वेषामर्हत्परमेष्ठिना अनन्तशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शान्तकर्मणे शान्तिक्रियायै शान्तिनाथदेव प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनाशनादिक्रियायै पार्श्वनाथदेव प्रभुरित्यादिप्रकारेण रुचिशैथिल्यसम्भवात्, यथा वृद्धकरतलगतयष्टि शिथिलसबन्धतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यम्। –गो० जी० संस्कृत टीका पृ० ५१।

२७३. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३ । णवरि जोणिणीसु खइगं णत्थि । सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वे० (?) खयोवसम-पारिणामियं णत्थि । विगप्पा ओदइ० ।

२७४. एवं अणुद्दिस याव सव्वट्ठत्ति ।

२७५. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकाय० आहार० आहारमि० मदि०

का उदय नहीं है, इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। एकेन्द्रियके सिवाय देव और नारकी भी संहननरहित पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा सम्यक्त्वत्रयकी दृष्टिसे औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव भी अबन्धकोंमें कहे हैं।

२७३ पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त तथा पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमें इसी प्रकार जानना। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यंचोंमें क्षायिक भाव नहीं है।

विशेष—तिर्यंच-स्त्रीमें क्षायिक भावके अभावका कारण यह है कि दर्शन मोहनीयका क्षपण मनुष्य गतिमें ही होता है और बद्धायुष्क क्षायिकसम्यक्त्वी जीवकी स्त्रीवेदी रूपसे उत्पत्ति नहीं होती। अतः स्त्रीतिर्यंचमें क्षायिक भाव नहीं पाया जाता। (ध० टी० भावा० पृ० २१३)

सर्व अपर्याप्त त्रसोंमें [औपशमिक, क्षायिक] क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक नहीं है। [सर्व] विकल्पोंमें औदयिक भाव है।

२७४ अनुदिश स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव भी है।

इसपर धवलाकार इन शब्दोंमें प्रकाश डालते हैं, "जैसे वेदक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि कारणका अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशम श्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। (जी० भावा० टीका पृ० २१६)

२७५ सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पचकाय आहारक [illegible] आहारकमिश्र

सुद० विभंग० अब्भवसि० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० असण्णि त्ति। णवरि मदि० सुद० विभंगे मिच्छ० अबंधगात्ति को भावो? पारिणामिगो भावो।

२७६. देवाणं णिरयोघं याव णवगेवज्जा त्ति। णवरि देवोघादो याव सोधम्मीसाणा त्ति। एइंदिय-आदाव-थावर-बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा। तप्पडिपक्खाणं बंधा-अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्वी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगावधिमे मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव है? पारिणामिक भाव है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचकाय, अभव्यसिद्धिक, असञ्ज्ञी, मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व गुणस्थान कहा है। अत इनके औदयिक भाव जानना चाहिए। मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगज्ञानमे मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान पाये जाते है। उनमे मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानवाले जीवोंके दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा परिणामिक भाव कहा गया है। सासादन गुणस्थानमे पारिणामिक भाव है, मिश्रगुणस्थानमे क्षायोपशमिक भाव कहा है। गोम्मटसार जीवकाण्डमें लिखा है, "**मिश्रगुणस्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति। कुत? मिथ्यात्वप्रकृते सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणामुपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात्**" (संस्कृत टीका पृ० ३४)—मिश्रगुणस्थानमे क्षायोपशमिक भाव किस प्रकार होता है? मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाति-स्पर्धकोका उदयाभाव लक्षण क्षय होनेपर तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय होनेपर और उदयको प्राप्त न हुए तिर्यंकोंके उपशम होनेपर यह क्षायोपशमिक भाव होता है।

आचार्य वीरसेन धवलाटीकामे इस परिभाषासे असहमति प्रकट करते हुए कहते है "तण्ण घडदे" यह परिभाषा घटित नही होती है। उनका कथन है, "**सम्मामिच्छत्तुदए संते सद्दहणासद्दहणप्पओ करंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ। तत्थ जो सद्दहणंसो सो सम्मत्तावयवो। तं सम्मामिच्छत्तुदओ ण विणासेदि त्ति सम्मामिच्छत्त खओवसमियं**" (जी० भा० टीका पृ० १९८) सम्यक्त्व-मिथ्यात्व कर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शबलित (मिश्रित) जीव परिणाम उत्पन्न होता है, उसमे जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नही करता है, इससे सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहाँ सासादन गुणस्थानकी दृष्टिसे दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है।

२७६. देवोंमे–नव ग्रैवेयकपर्यन्त देवोमें नारकियोके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्य देवोंसे सौधर्म ईशान स्वर्ग पर्यन्त विशेष है। एकेन्द्रिय आतप स्थावरके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणमिक भाव है। इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंके

---

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभगज्ञानेपु मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति॥ –स० सि० पृ० ११। एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। पृथ्वीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। असज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्।

को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधा णत्थि। भवणवासि-वाणवेंतर जोदिसिगेसु खइगं णत्थि।

२७७. ओरालिमि० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-पारिणामियो वि अत्थि। सादबंधाबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा, खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा

कौन भाव हैं ? औदयिक है। दोनोके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है, अबन्धक नहीं है। भवनवासी, बाण व्यन्तर तथा ज्योतिषियोंमे क्षायिक भाव नहीं है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे यह शंका समाधान दिया गया है—

शंका—भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमे क्षायिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिषी देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी, सर्वविकलेन्द्रिय, सर्वलब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियोंमे सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है। तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमे दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका अभाव है। इससे उक्त भवनत्रिक आदि देव-देवियोंमे क्षायिक भाव नहीं बतलाया गया। (जीव० ध० टीका भावा० पृ० २१५)

२७७ औदारिक मिश्र काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है।

विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक कपाट समुद्घातयुक्त सयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है। अबन्धकोके कौन भाव है ? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। मिथ्यात्वके अबन्धकोंमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेषार्थ—शंका—यहाँ औपशमिक भाव क्यो नहीं कहा गया ?

समाधान—[1]चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण न होनेसे इस योगमे उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता।

शंका—उपशम श्रेणीपर चढते-उतरते हुए संयतजीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है।

---

१ ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परुविदो ? ण, चउगइ उवसमसम्मादिट्ठीण मरणाभावादो ओरालियमिस्सम्हि उवसमसम्मत्तस्सुवलभाभावा। उवसमसेढि चडत-ओअरंत संजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरण, अत्थि त्ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा। –ध० टी० भा० पृ० २१९।

णत्थि। इत्थिणवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमियो वा। णवरि णवुंसगेसु पारिणामियो वि अत्थि। पुरिसवेदगेसु बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो?

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वीके औदारिक मिश्रकाययोग नहीं होता, कारण इनकी देवोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है। (ध० टी० भावाणु० पृ० २१९)।

साताके बन्धको अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है। साता-असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है, अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—शंका—जब साताके बन्धको-अबन्धकोंमें औदयिक भाव कहा, तब असाताके बन्धकों अबन्धकोंमें औदयिक भाव ही कहना था। यहाँ असाताके अबन्धकोंमें औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है?

समाधान—यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रयोगमें मिथ्यात्व, सासादन, अविरत तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते हैं। साताके अबन्धक अयोगकेवली ही होंगे, जिनने साताकी बन्ध व्युच्छित्ति कर ली है। औदारिक मिश्रकाययोगमें अयोगकेवली गुणस्थान न होनेसे साता असाताके युगलके अबन्धकोंका यहाँ अभाव कहा है।

साता और असाताके बन्धकोंके औदयिक भाव है। साताका बन्ध होनेपर असाताका बन्ध नहीं होता और असाताका बन्ध होनेपर साताका बन्ध नहीं होता, कारण ये परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं। एकके बन्ध होनेपर अन्यका अबन्ध होगा। यह अबन्ध बन्धव्युच्छित्तिका द्योतक नहीं है। अबन्धके अनन्तर तो पुन बन्ध हो भी जाता है किन्तु जिस गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति हुई है उसमें आनेके पूर्व उस प्रकृतिका बन्ध नहीं होगा। साताकी बन्धव्युच्छित्ति जब सयोगकेवली गुणस्थानमें होती है तब साताके अबन्धका अर्थ है असाताका बन्ध। असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है उसके पूर्व असाताके अबन्धका तात्पर्य साताके बन्धका होगा। प्रमत्त संयतके आगे असाताके अबन्धका भाव उसकी बन्धव्युच्छित्तिका होगा। इस कारण औदारिक मिश्रयोगकी अपेक्षा साताके अबन्धक तथा बन्धकके औदयिक भाव कहा है। कारण यहाँ साताके अबन्धकके असाताका बन्ध होगा। असाता वेदनीयकी बात दूसरी है, वहाँ असाताके बन्धकके औदयिक भाव होगा और असाताके अबन्धक अर्थात् साताके बन्धक सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव होगा। असाताके अबन्धकके अप्रमत्त आदि गुणस्थान इस योगमें नहीं होंगे, इसलिए यहाँ औदयिक भावके साथ क्षायिक भाव भी असाताके अबन्धकके साथ जोड़ा गया है। साताका अबन्धक इस योगमें चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जायेगा, उसके असाताका बन्ध होगा। इससे बन्धक अबन्धकके औदयिक भाव कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके बन्धक कौन भाव है? औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि नपुंसक वेदके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इस योगमें उपशम सम्यक्त्वका अभाव होनेसे औपशमिक भाव नहीं कहा। पुरुष वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है?

णवुंस० पारिणामियो भावो। पुरिस० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा। तिण्णं बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। एवं इत्थिभंगो तिरिक्खग० चदुसंठा० चदुसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोद च। णवुंसकभंगो चदुजादि-हुंडसंठा० असंपत्तसे० आदाव-थावरादि०४। पुरिसभंगो चदुणोक० दोगदि० पंचिंदि० दोसरीर-समचदु० दोअंगो० वज्जरिसभ० दो-आणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णि युगलं सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि ओरालियमिस्स-भंगो।

२८०. इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तिय-मिच्छत्त-बारसक० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा

अबन्धकोंमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इसके अबन्धक सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा है।

पुरुष वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक है।

विशेष—इस योगमे पुरुषवेदके बन्धका अभाव प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातगत सयोगकेवलीके होगा, यहाँ मोह-क्षयजनित क्षायिक भाव है। अन्य वेदद्वयके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा है।

तीनों वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक है।

विशेष—यहाँ सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

तिर्यंचगति, चार सस्थान, चार सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रका स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए। चार जाति, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप तथा स्थावरादि चारमे नपुसक-वेदके समान भग जानना चाहिए। चार नोकषाय, दो गति, पंचेन्द्रिय जाति, दो शरीर समचतुरस्रसंस्थान, दो अगोपाग, वज्रवृषभसंहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास प्रशस्त विहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्च गोत्रके बन्धकोंमे पुरुषवेदके समान भग जानना चाहिए। प्रत्येक और सामान्यसे औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए।

२८० स्त्रीवेदमे[1]—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक मिथ्यात्व बारह कषायके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक है तथा

[1] वेदानुवादेन त्रिपु वेदेपु मिथ्यादृष्टयादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानानि सन्ति। – ष० खं० सू० ११।

२७८. वेउव्वियका०—देवोघं। वेउव्वि० मि० तं चेव। णवरि आयु-णत्थि।

२७९. कम्मइगका० धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? खइगो भावो। थीणगिद्धितियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। मिच्छ०[अ]बंध० पारिणामियो भावो। साद-बंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असादबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। इत्थि-णवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा।

अपेक्षा औदयिक भाव कहा जा सकता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी बन्ध व्युच्छित्तियुक्त इस योगमें सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

२७८ वैक्रियिक काययोगियोंमे देवोंके ओघवत् जानना चाहिए।

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमे देवोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका बन्ध नहीं पाया जाता है।

विशेष—इस योगमें मिथ्यात्वीके औदयिक, सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक तथा असंयत सम्यक्त्वीके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव है।

२७९ कार्माण काययोगियोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अबन्धक अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे है। सयोगकेवलीकी भी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

मिथ्यात्वके बन्धकों(?)के कौन भाव हैं? पारिणामिक भी है।

विशेष—यहाँ बन्धकोंके स्थानपर अबन्धक पाठ ठीक बैठता है, कारण पारिणामिक भाव सासादन गुणस्थानमे पाया जाता है जहाँ मिथ्यात्वका अबन्ध है।

साताके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है। साता-असाता दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है, अबन्धक नहीं है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। नपुंसकवेदके

---

१ "कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघ। कुदो? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाण पारणामिएण, कम्मइयकायजोगि-असजदसम्मादिट्ठीण ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि सजोगिकेवलीण खइएण भावेण ओघम्मि गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलभा।" —जी० भा० सू० ४० पृ० २२१।

आदइ० । अबंध० उवसमि० खइगो० । एवं सव्वाणं ओघं । णवरि जस० अज्जस० दोगोदं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो ।

२८१. एवं पुरिस० णवुंस कोधादि०४ । णवरि कोधे पुरिस० हस्सभंगो । माणे तिण्णं संजलणा० । मायाए दोण्णं संजलणा० । लोभे लोभ-संजल० धुविगाणं भंगो । सेस-संजलणं णिद्दाभंगो ।

२८२. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जस० उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । सादबंध० को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो ।

२८३. अकसाइगेसु–साद-बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधगा० खइगो भावो ।

क्षायिक भाव मानना चाहिए, इससे अतिप्रसगकी आशा नही करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगवश अतिप्रसग दोषका परिहार होता है । (ध० टी० भावाणु० पृ० २०५–६)

इतना विशेष है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तथा दो गोत्रोका प्रत्येक सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है ।

२८१ पुरुषवेद, नपुसकवेद तथा क्रोध आदि चार कषायोमे इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि क्रोधमे, पुरुषवेदके बन्धकोका हास्यके समान भग है । मानमे, तीन सज्वलन, मायामे, दो सज्वलन तथा लोभमे लोभ सज्वलनके बन्धकोका ध्रुव प्रकृतिके समान भग है, अर्थात् बन्धकोंके औदयिक और अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । संज्वलन कषायमे बन्ध होनेवाली शेष प्रकृतियोके बन्धकोका निद्राके समान भग है । अर्थात् बन्धकोके औदयिक, अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक है ।

२८२ अपगत वेदमे – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । इनके बन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक है ।

साता वेदनीयके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

विशेषार्थ—अपगत वेदियोंमे द्रव्य वेदका नाश नहीं होता । यहां भाव वेदका विनाश होता है । धवला टीकामे लिखा है, मोहनीयके द्रव्य कर्म स्कन्धको अथवा मोहनीय कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं । उनमें वेदजनित जीवके परिणामका अथवा परिणामके साथ मोहकर्म-स्कन्धका अभाव होनेसे जीव अपगतवेद होता है । (ध० टी० भा० पृ० २२२)

खयोवस० । मणुस-देवायु बंधा० ओदइ० । अबंधगा ओदइ० खयोव० । तिण्णिआयु० बंधा० ओदइ० । अबंध० ओदइ० खयोव० । इत्थि-णवुंसग-भंगो तिरिक्खगदि-एइं-दियजादि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० थावरदूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च । मणुसगदि-ओरालि० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० बंध० ओदइगो भावो । अबं० ओदइ० खयोवसमिगो वा । देवगदि०४ पंचिंदि० आहारदुग-समचदु० पसत्थवि० तस० सुभग-सुस्सर-आदे० तित्थय० बंध० अबं० ओदइगो भावो । तिण्णं गदीणं बंध० ओदइ० । अबंधगा णत्थि । एदेण बीजपदेण णेदव्वं ।

२८९. एवं पम्माए, एइंदिय० आदाव-थावरं वज्ज ।

२९०. वेदगे–धुविगाणं बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधा णत्थि । सेसाणं तेउ-भंगो ।

अबन्धकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

विशेष—अन्य आयुबन्धकी अपेक्षा औदयिक भाव है तथा तिर्यंचायुके अबन्धक अविरतसम्यक्त्वीके सम्यक्त्वत्रयवालोंकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है ।

मनुष्यायु-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक, क्षायोपशमिक भाव है । तिर्यंच-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।

विशेष—तेजोलेश्यामें नरकायुका बन्ध नहीं होनेसे उसका ग्रहण नहीं किया है ।

आयुत्रयके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक तथा क्षायोपशमिक है ।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद, नपुंसक-वेदके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बन्धकोंके औदयिक है । अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है ।

मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन तथा मनुष्यानु-पूर्वीके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक वा क्षायोपशमिक भाव है ।

देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा तीर्थंकरके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । तीन गतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धक नहीं है । इसी बीजपदके द्वारा अन्य प्रकृतियोंका वर्णन जानना चाहिए ।

२८९ पद्मलेश्यामें – इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष[1] यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थावर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

२९० वेदकसम्यक्त्वमें – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धक नहीं है ।

---

१ "मिच्छस्स तिमणवय वार न हि तेउपम्मेसु ।" –गो० क० गा० १२० ।

२६१. उवसम०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ पंचिंदि० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयर० उच्चागोदं पंचंत० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंध० उवसमियो भावो। साद-बंधा-अबंध० ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो? ओदइ०। अबंधगा त्ति०-ओदइग० उवस० खयोवस०। दोण्णं बंधगा० ओदइ०। अबंधा णत्थि। अट्ठकसा० बंध० ओदइगो भावो। अबंध० उवस० खयोवसमिगो वा। हस्सरदि० बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंध० ओदइगो वा उवसमिगो वा। अरदि-सोगं बंधगा त्ति ओदइ०। अबंधगा० ओदइ० उवस० खयोव०। दोण्णं बंधगा त्ति

विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक [1]उपशान्तकषायी होते है। इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक नही कहे है।

शेष प्रकृतियोमें तेजोलेश्याके समान भंग है।

२९१ उपशम सम्यक्त्वमे[2] – ५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक रहित ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, पंचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र तथा पॉच अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औपशमिक भाव है। साता वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाता वेदनीयके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है।

साता असाताके बन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक है। अबन्धक नही है। आठ कषायोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक वा क्षायोपशमिक है।

हास्य रतिके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा औपशमिक है। अरति-शोकके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है।

विशेष—अरति-शोकके अबन्धक किन्तु हास्य-रतिके बन्धककी दृष्टिसे औदयिक भाव है। अरति, शोककी बन्ध व्युच्छित्ति प्रमत्तसयतोंके होती है। अतएव अरति, शोकके, अबन्धक अप्रमत्त सयतोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

हास्य-रति, अरति-शोक इन दोनों युगलोके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक भाव है।

विशेष—इन चारोंके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती होंगे, वहाँ चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

---

[1] "क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असयतसम्यग्दृष्टयादीनि अप्रमत्तान्तानि।" –स० सि० पृ० १२।
[2] "औपशमिकसम्यक्त्वे असयतसम्यग्दृष्टयादीनि उपशान्तकषायान्तानि।" –पृ० १२।

ओदइ०। अबंध० उवसमिगो भावो। एवं दोगदि-दोआणु० दोसरीर-दोअंगोवंग-आहारदुग-थिरादि-तिण्णियुगलं।

२९२. अणाहारे-कम्मइगभंगो। णवरि साद० ओघं। साधारणेण वि ओघं। मिच्छत्त-संजुत्ताओ सोलस-पगदीओ ओघाओ। सव्वत्थ याव अणाहारग त्ति बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो।

एव भावं समत्तं।

इस प्रकार मनुष्य-देव गति, दो आनुपूर्वी, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, २ अंगोपाग, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलोंके वन्धकोंमे कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक भाव है।

२९२ अनाहारकमें—कार्माण-काययोगके समान भंग है[1]। विशेप यह है कि यहाँ साता वेदनीयका ओघवत् भंग जानना चाहिए। इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत् जानना चाहिए। मिथ्यात्व सयुक्त[2] १६ प्रकृतियोका ओघवत् भंग है। अनाहारकपर्यन्त सर्वत्र वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है।

विशेषार्थ—अनाहारकोंमे मिथ्यात्व गुणस्थानकी अपेक्षा औदयिकभाव है। सासादनकी अपेक्षा पारिणामिक है। चतुर्थ गुणस्थानकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपमिक है। समुद्घातगत सयोगी तथा अयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

---

१ "मिच्छत्तहुंडसंढा सपत्तेयक्खथावरादाव। सुहुमतिय वियलिंदी णिरयदुणिरयायुग मिच्छे॥" -गो० क० गा० ९५। २ "अणाहाराण कम्मइयभंगो। णवरि विसेसो अजोगिकेवलि त्ति को भावो? खइओ भावो। -जी० भावा० सूत्र० ९२, ९३। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगत सयोगकेवल्ययोगकेवली च॥" -स० सि० सू० ८, अ० १, पृ० १२।

अणंतगुणा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे० ।

२६६. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा । चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

२६७. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीण अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीण बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा । पंचिंदिय०-बंधगा जीवा अणंतगुणा । चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । बीइंदिय बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पंचण्हं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा । वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा । ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा । तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं । सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा जीवा । वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंत-

---

न्धक जीव इनसे अनन्तगुणे है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव इनसे संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

२६६ सर्वस्तोक मनुष्यायुके बन्धक जीव है । नरकायुके बन्धक इनसे असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

२६७. देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । चारों गतियोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । चारों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पाँच जातियोंके अबन्धक जीव सबसे अल्प हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे कम हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणे हैं । पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । तैजस-कार्मण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका [illegible] चाहिए । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । [illegible]

जीवा विसेसाहिया। थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा अणंतगुणा। णिद्दापचलाबंधगा जीवा विसेसाहिया। चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा सादासादाणं दोण्णं पगदीणं अबंधगा जीवा। सादबंधगा जीवा अणंतगुणा। असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया।

२६४. सव्वत्थोवा लोभसंजलण-अबंधगा जीवा। माय-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। माण-संजलणअबंधगा जीवा विसेसाहिया। कोधसंजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणावर०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया, बंधगा जीवा अणंतगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। कोधसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। माणसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। मायसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। लोभसंजलण-बंधगा जीवा विसे०।

२६५. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणं अबंधगा जीवा। पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा

इनसे विशेष अधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। चार दर्शनावरणके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं।

साता असाता दोनों प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे कम अर्थात् स्तोक हैं। साताके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणित हैं। दोनोंके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—साता असाताके अबन्धक अयोगकेवली हैं। उनकी संख्या ५६८ है। गोम्मटसार जीव काण्डमें लिखा है—प्रमत्त गुणस्थानवाले ५९३९८२०६ हैं, अप्रमत्त गुणस्थानवाले २९६९९१०३ हैं, उपशम श्रेणीवाले चार गुणस्थानवर्ती ११९६, क्षपक श्रेणीवाले चारों गुणस्थानवर्ती २३९२ हैं, सयोगीजिन ८९८५०२ हैं। इनको जोड़नेपर ८९९९९३९९ संख्या होती है। तीन घाटि नव कोटि प्रमाण समस्त सकल संयमियोंकी संख्यामें-से उक्त प्रमाण घटानेपर ५९८ अयोगीजिन कहे गये हैं। (गो० जी० सं० टीका पृ० १०८५)

२६४ सबसे स्तोक लोभ सज्वलनके अवन्धक जीव हैं। माया संज्वलनके अबन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं। मान संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। माया संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। लोभ सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२६५. नव नोकषायोंके अबन्धक जीव सर्वसे स्तोक अर्थात् अल्प हैं। पुरुषवेदके

अणंतगुणा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे०।

२६६. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

२६७. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीण अबंधगा जीवा अणंतगुणा। मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा। पंचिंदिय०-बंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बीइंदिय बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पंचण्हं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा। ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं। सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा जीवा। वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंत-

---

बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव इनसे संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२६६ सर्वस्तोक मनुष्यायुके बन्धक जीव हैं। नरकायुके बन्धक इनसे असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

२६७ देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतियोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पाँच जातियोंके अबन्धक जीव सबसे अल्प हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यात-गुणे हैं। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। आहारक शरीरके बन्धक सबसे स्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणे हैं। पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस-कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सबस्तोक हैं। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक

गुणा। तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा वज्जरिसभसंघडणं बंधगा जीवा। वज्जणारायाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अद्धणारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। खीलिय० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असंपत्तसेवट्ट० बंधगा. जीवा संखेज्जगुणा। छस्संघडण-बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा वण्ण०४ णिमिण-अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा, अणंतगुणा। यथागदि तथाआणुपुव्वि। सव्वत्थोवा अगुरु० उपघा० अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० बंधगा जीवा अणंतगुणा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगुरु० उपघा० बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा आदावुज्जो० बंधगा जीवा, अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा पसत्थविहाय० सुस्सर० बंधगा जीवा। अप्पसत्थविहाय० दुस्सर० बंधगा. जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा तसथावर-अबंधगा जीवा। तस० बंधगा जीवा अणंतगुणा। थावरबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। एवं सेसाणं जुगलाणं गोदंतियाणं। सव्वत्थोवा तित्थयर-बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा अणंतगुणा। सव्वत्थोवा पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा। बंधगा जीवा अणंतगुणा।

जीव असंख्यातगुणे है। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। तीनों अगोपांगोके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वज्रवृषभसंहननके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। वज्रनाराचसहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अर्धनाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। कीलित संहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। असंप्राप्तासृपाटिका संहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। छह संहननके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। वर्णचतुष्क तथा निर्माणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। गतिके समान आनुपूर्वीका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। आतप, उद्योतके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। प्रशस्त विहायोगति, सुस्वरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। त्रस-स्थावरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। त्रसके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। स्थावरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार गोत्र कर्म है अन्तमे जिनके-ऐसे शेष युगलोंका क्रम जानना चाहिए।

विशेष—बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय-सदृश नामकर्मकी शेष युगल प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व त्रस-स्थावरके समान जानना चाहिए। गोत्र कर्मका भी ऐसा ही है।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव अनन्तगुणे है। ५ अन्तरायोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

२९८. आदेसेण—गदियाणुवादेण णिरयगदि-णेरइएसु-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। छदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया।

२९९. सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा, असादबंधगा जीव संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीव विसेसाहिया।

३००. सव्वत्थोवा अणंताणुबं०४ अबंधगा जीवा। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। बारसकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा विसेसाहिया। णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदु० बंधगा जीवा विसे०।

३०१. सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। दोण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा णत्थि। एवं दो आणु० दो विहाय० थिरादिछ-युगलं दोगोदं च। समचदु० बंधगा जीवा सव्वत्थोवा। सेससंठाणं बंधगा जीवा

---

२९८ आदेशसे—गतिके अनुवादसे नरक गतिके नारकियोंमे स्त्यानगृद्धित्रिकके अवन्धक जीव सर्व स्तोक है। वन्धक जीव असख्यातगुणे है। छह दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेपाधिक है।

विशेप—५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायके सर्व नारकी बन्धक है। अबन्धक नहीं है। इस कारण इनका अल्पवहुत्व यहाँ नहीं कहा है। उनका एक साथ निरन्तर बन्ध होता है।

२९९. साताके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। असाताके वन्धक जीव सख्यातगुणे है। दोनोंके वन्धक जीव विशेपाधिक हैं।

३०० अनन्तानुवन्धी ४ के अवन्धक जीव सर्व स्तोक है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेपाधिक है। वन्धक जीव असख्यातगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कपायोंके वन्धक जीव विशेपाधिक है। पुरुपवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्रीवेदके वन्धक सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके वन्धक जीव विशेपाधिक है। नपुसकवेदके वन्धक जीव सख्यातगुणे है। अरति, शोकके वन्धक जीव विशेपाधिक है। भय, जुगुप्साके वन्धक जीव विशेपाधिक हैं।

३०१ मनुष्यायुके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनों आयुओंके वन्धक जीव विशेपाधिक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है।

मनुष्यगतिके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके वन्धक जीव विशेपाधिक हैं। अवन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंमे जानना चाहिए।

समचतुरस्रसंस्थानके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेप संस्थानोंके वन्धक जीव संख्यात-

संखेज्जगुणा। एवं संघड०। सव्वत्थोवा उज्जोवं बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा। सव्वत्थोवा तित्थयरं बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

३०२. एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि मज्झिमासु सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। दोण्णं आयुगस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा सत्तमाए पुढवीए मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-उच्चागोदाणं बंधगा जीवा। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुव्वि-णीचागोदाणं बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा णत्थि। सव्वत्थोवा तिरिक्खायुबंधगा जीवा, अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा।

३०३. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा। बंधगा जीवा अणंतगुणा। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा। असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा णत्थि। सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अणंताणुबं०४ अबंधगा असंखेज्जगुणा। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसे०। बंधगा जीवा अणंतगुणा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावरण०४ (?) बंधगा जीवा विसेसा०। अट्ठकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा

गुणे है। इस प्रकार सहननमे भी जानना चाहिए।

उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। तीर्थंकर प्रकृति-के बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

३०२ इसी प्रकार सात पृथ्वियोंमे जानना चाहिए। विशेप यह है कि मध्यम पृथ्वियो-मे मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। दोनों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव असख्यातगुणे है।

सातवीं पृथ्वीमें—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। दोनोंके (मनुष्यगति तिर्यंचगति आदि) बन्धक जीव विशेप अधिक है। अबन्धक नही है। तिर्यं-चायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

३०३ तिर्यंचोंमें—स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। बन्धक जीव अनन्त गुणे है। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेपाधिक हैं।

सातावेदनीयके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोके बन्धक जीव विशेप अधिक है। अबन्धक नही है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेप अधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। ८ कपाय, ८ प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेप—यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकके स्थानमे अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा। णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुंच्छाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। आयु० अंगोवं० संघ० आदा० उज्जो० विहाय० संठाणं च मूलोघं। सव्वत्थोवा पंचिंदिय-बंधगा जीवा। सेस-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा देव-गदिबंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंत-गुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा वेउव्विय-बंधगा जीवा। ओरालियबंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-बंधगा जीवा विसेसा०। संठाणं णिरयभंगो। सव्वत्थोवा परघादुस्सा० बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं सादासादभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खाणं। णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असं-खेज्जगुणं कादव्वं।

३०४ पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु–दंसणावरण-मोहणीय-गोदे एसेव भंगो। सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु-बंधगा

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

आयु, अंगोपांग, संहनन, आतप, उद्योत, विहायोगति, संस्थानके बन्धकोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेष जातियोंके बन्धक जीव संख्यात-गुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। औदा-रिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

संस्थानोंके बन्धकोंमें नरकगतिके समान भंग है। अर्थात् समचतुरस्र संस्थानके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। परघात, उछ्वासके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष युगलोंके बन्धकोंमें साता-असाताका भंग जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' है वहाँ 'असंख्यातगुणा' लगाना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय-तिर्यंच पर्याप्तकोंका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है, अतः प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान उनका वर्णन होगा।

३०४ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमें – दर्शनावरण मोहनीय और गोत्रके बन्धकोंमें यही भंग जानना चाहिए।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों

३०५. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु–सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगा जीवा। इत्थिवेदबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोग बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। भयदु० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा णत्थि। सव्व[त्थोवा] पंचिंदिय-बंधगा जीवा०। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदियबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगो० आदा-उज्जो० बंध० जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। संठाण-संघडण० पर० उस्सा० दो विहा० तस-थावरादि-दसयुगलं दोगोदं च पंचिंदिय तिरिक्खभंगो। एवं सव्व-अपज्जत्तगाणं तसाणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं च। णवरि वणप्फदि काय-णिगोदेसु सव्व-त्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०।

३०६ मणुसेसु–सव्वत्थोवा पंचणा० अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्ज-

---

३०५ पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे – पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्री-वेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक सख्यातगुणे है।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचगतिके बन्धक सख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक विशेषाधिक हैं, अबन्धक नहीं है। पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक सख्यातगुणे है। दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यात-गुणे है। औदारिक अगोपाग, आतप उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। सस्थान, सहनन, परघात उच्छ्वास दो विहायोगति त्रस-स्थावरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धकोंमे पचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भग जानना चाहिए।

इसी प्रकार सर्व लब्ध्यपर्याप्तक त्रसो, सर्व एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और सर्व पचकाय-वालोंमे है। विशेष यह है कि वनस्पति काय-निगोदियामें मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। दोनोंके अबन्धक जीव सख्यातगुणे है।

३०६ मनुष्योंमे – ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है, बन्धक जीव अस-

गुणा। एवं अंतराइगाणं चेव। सव्वत्थोवा चदुदंस० अबंधगा जीवा। णिद्दापचला-अबंधगा जीवा विसेसा०। थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिद्दापचला-बंधगा जीवा विसेसा०। चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा सादासाद-अबंधगा जीवा। साद-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। असाद-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा लोभसंजल० अबंधगा जीवा। मायासंज० अबं० जीवा विसेसा०। माणसंज० अबं० जीवा विसेसा०। कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावरण०४ अबं० जीवा संखेज्ज०। अपच्चक्खाणाव०४ अबं० जीवा संखेज्ज०। अणंताणुबंधि०४ अबं० जीवा संखेज्जगु०। मिच्छ० अबं० जीवा विसेसा०। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा०। कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा०। लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा णवण्णं णोकसायाणं अबंधगा जीवा। पुरिस० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। सेसं तिरिक्खोघं। सव्वत्थोवा णिरयायु-बंधगा जीवा। देवायु-बंधगा

ख्यातगुणे है। इसी प्रकार अन्तरायोंमे भी जानना। अर्थात् अबन्धक जीव सर्व स्तोक और बन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

चार दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। निद्रा-प्रचलाके अबन्धक जीव विशेपाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। निद्रा-प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। चार दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेपाधिक हैं।

साता, असाता वेदनीयके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। साताके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेपाधिक है।

लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेपाधिक है। मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेपाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेपाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेपाधिक है। क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेपाधिक हैं। मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेपाधिक है। लोभ-सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

नव नोकपायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेप प्रकृतियोके तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए।

अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अबंधगा जीवा संखेज्जगु०। अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं ओघ-भंगो। णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असंखेज्जगुणं कादव्वं। सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा। अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा।

३०७. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एसेव भंगो। णवरि यं हि असंखेज्जगुणं दव्वं, तं हि संखेज्जगुणं कादव्वं। यासु सरिसताओ इमाओ पगदीओ गदिसु च जादिसु च णिरयगदि-पंचिंदिय पच्छा कादव्वा। आहारसरीरबंधगा थोवा। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा०। तसादि-चदुयुगलाणं च। सव्वत्थोवा अबंधगा जीवा अप्पसत्थाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तसादि०४ बंधगा जीवा संखेज्ज०। विहाय० सरणाम तिरिक्खिणीभंगो।

३०८ देवेसु–णिरयभंगो। एवं याव सदरसहस्सारत्ति। किंचि विसेसो देवोघादो याव ईसाण त्ति, तं पुण इमं। सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा। इत्थिवे०

लघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष युगलोंमें ओघके समान भंग जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' कहा है वहाँ 'असंख्यातगुणा' कर लेना चाहिए।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३०७ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोंमें—इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। यह विशेष है कि जहाँ असंख्यातगुणित द्रव्य कहा है, वहाँ संख्यातगुणित कर लेना चाहिए।

जो गति और जाति नामकी समान प्रकृतियाँ हैं उनमें नरक गति और पंचेन्द्रिय जातिको पीछे कर लेना चाहिए।

विशेष—चारों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं, मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं, तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं, नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

पंच जातियोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। पंचेन्द्रियको छोड़कर शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पंचेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

आहारक शरीरके बन्धक स्तोक हैं। ५ शरीरके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तैजस कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

यही क्रम त्रस, बादर पर्याप्त, प्रत्येकके युगलोंमें भी लगा लेना चाहिए।

स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन अप्रशस्त प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। त्रसादिक चतुष्कके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। विहायोगति, स्वर नामक प्रकृतियोंमें तिर्यंचिनीके समान भंग जानना चाहिए।

३०८ देवोंमें नारकियोंके समान भंग जानना चाहिए। यह बात शतार, सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जाननी चाहिए। किन्तु देवोघकी अपेक्षा ईशान स्वर्ग पर्यन्त किंचित् विशेषता है। वह यह है।

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स बंधगा जीवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । संघड० आदा-उज्जो० दोविहाय० दोसर० ओघभंगो । एवं विसेसो णादव्वो आणद याव णवगेवज्जा त्ति । सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा मिच्छत्त-बंधगा जीवा । अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्तस्स अबंधगा जीवा विसेसा० । सेसबंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा इत्थि-बंधगा जीवा । णवुंसबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसो० बंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे०

विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्थावर, आतपका बन्ध होता है। सहस्रार पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध होता है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—देवोंका विकलत्रयमें उत्पाद नहीं होता। इससे दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चौइन्द्रिय जातिके बन्धकोंका उल्लेख नहीं है। देवोंका एकेन्द्रियमें उत्पाद होनेसे एकेन्द्रिय जातिका वर्णन किया गया है।

औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघवत् जानना चाहिए।

आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यन्त विशेषता निकाल लेनी चाहिए।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमें तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है। सानत्कुमारादिमें एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका बन्ध नहीं होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिकके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मिथ्यात्वके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक विशेषाधिक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक सबसे स्तोक हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति शोकके बन्धक

---

1 "कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं ।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥" –गो० क० गा० ११२ ।

2 "णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।
सोलस चेव अबंधा भवणतिए णत्थि तित्थयरं ॥" –गो० क० गा० ११३ ।

वंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसायुबंध० जीवा थोवा। अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । णग्गोद० बंध० जीवा थोवा। सादिय० वंध० जीवा संखेज्जगु० । खुज्ज० वंध० जीवा संखेज्ज० । वामण० वंध० जीवा संखेज्जगु० । हुंडसं० वंध० जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंध० जीवा संखेज्ज० । संघडणं संठाणभंगो । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खाणं वंधगा जीवा संखेज्ज० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । तित्थयरं बंधगा जीवा थोवा । अवंधगा जीवा संखेज्ज० । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वत्थोवा हस्सरदि बंध० जीवा । अरदिसोग-वंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । आयु० तित्थय० आणदभंगो । णवरि सवट्ठे आयु० वंधगा जीवा थोवा । अबंध० जीवा संखेज्ज० ।

३०९. पंचिंदियेसु-पंचणा० सव्वत्थोवा अबंध० जीवा । बंधगा जीवा अस-

जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेदके वन्धक विशेष अधिक है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेपाधिक है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

विशेष—आनतादि स्वर्गोमे एक मनुष्यायुका ही बन्ध होता है।

न्यग्रोधपरिमण्डल सस्थानके वन्धक जीव सबसे स्तोक है। स्वाति सस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। कुब्जकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वामनके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हुण्डकसस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। समचतुरस्र संस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे है।

सहननोंमे संस्थानके समान भग है। अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके वन्धक जीव सबसे स्तोक है।

इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ अर्थात् सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। शेप युगलोंके विपयमे नरक गतिके समान भंग हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धिमें – हास्य-रतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अरति-शोकके वन्धक जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेद तथा भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेप युगलोंमे नरक गतिके समान भंग है।

आयु तथा तीर्थंकरके वन्धकोंमें आनतके समान भंग है। विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयुके वन्धक सर्व स्तोक है। अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेपार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोकी सख्या[1] सख्यात होनेसे यहाँ 'असख्यात'का उल्लेख नहीं किया गया है। जीवट्ठाणमे उनका प्रमाण मनुष्यनीके प्रमाणसे तिगुना कहा है, **'मणुसिणिरासीदो तिउणमेत्ता हवंति'** (ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६)।

३०९ पचेन्द्रियोंमे – ५ ज्ञानावरणके अवन्धक जीव सबसे स्तोक है। वन्धक जीव

१ "सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।" – जीव० ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६ ।

ज्ज०। चदुदंस० अबंध० जीवा थोवा। णिद्दापचला-अबंध० जीवा विसेसा०। थीणगिद्धि०३ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। बंध० जीवा असंखेज्ज०। णिद्दा-पचलाणं बंध० जीवा विसेसा०। चदुण्णं दंसणावरणाणं बंध० जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा लोभ-संजल० अबंधगा जीवा। माया-संज० अबंध० जीवा विसेसा०। माणसंज० अबंध० जीवा विसेसा०। कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा०। पचक्खाणावरणी०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा (?)। [अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज०।] अणंताणुबंध०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा०[1]। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। एत्तो पडिलोमं विसेसाहियं। सादा-साद-पंचजादि संठाण-संघड० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगल० तित्थय० दोगोद० पंचंतराइगाणं मणुसोघं। मणुसायुबंधगा जीवा थोवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असं-

असंख्यातगुणे हैं। ४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे स्तोक है। निद्रा प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है। ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

लोभ सञ्ज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। माया सञ्ज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। मान सञ्ज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। क्रोध सञ्ज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक सकल संयमी हैं। उनकी संख्या तीन घाटि नव कोटि प्रमाण है, अतः 'असंखेज्जगुणा'के स्थानमें 'संखेज्जगुणा' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमी तेरह करोड प्रमाण कहे गये हैं। उनसे अधिक तिर्यंच पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। (गो० जी० गा० ६२४)

अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

इससे विपरीत क्रम विशेष अधिकका शेष बन्धकोंमें लगाना चाहिए अर्थात् अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीवोंमें विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए तथा क्रोध, मान, माया तथा लोभ संज्वलनमें विशेषाधिककी योजना प्रत्येकमें करनी चाहिए।

साता, असाता पंचजाति ६ संस्थान, ६ संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति त्रसादि दस युगल, तीर्थंकर, दो गोत्र, ५ अन्तरायोंके बन्धकोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए।

[1] सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टय संयतासंयताश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिता। –स० सि० पृ० १३।

मिच्छा सावय-सासण-मिस्साऽविरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥–गो० जी० ६२४।

खेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुण्णं आयुगाण बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि बंध० जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा सखेज्ज० । सव्वत्थोवा आहारस० बंध० जीवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइ-बंधगा जीवा विसेसाहिया । आहार०अंगो० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । गदिभंगो आणुपुव्वीए ।

३१०. पंचिंदिय पज्जत्तगेसु-एसेव भंगो । णवरि आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । चदुगदिअबंधगा जीवा थोवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदिबंधगा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचजादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तीइंदि० बंध० जीवा संखेज्ज० ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक है । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है ।

४ गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचो शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक अंगोपागके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपागके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीर अंगोपागके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनो अगोपागके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग जानना चाहिए ।

३१० पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें—ऐसे ही (पंचेन्द्रिय समान) भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि आयुके बन्धक जीवोंमे पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भंग करना चाहिए । चारो गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगति-के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पाँचो जातिके अबन्धक जीव स्तोक है । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

बीइंदि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) आहारस० बंध० जीवा थोवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंध० जीवा विसेसाहिया । आहारस० अंगो० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णि अंगो० अबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । [तस] थावरादि०४ अबंधगा जीवा थोवा । [थावरादि] बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तसादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । थिरादि६ युगल-दोगोदाणं अबंधगा थोवा । थिरादिछक्क-उच्चगोदाणं च बंधगा असंखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवरि दोविहा० दोसर० पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । एवं विसेसो तसेसु पंचिंदियोघं । णवरि पज्जत्तगेसु तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णामस्स सव्वत्थोवा चदुगदि-अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदि-बंध० जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा असंखेज्जगुणा । तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-

---

एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं (?) ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं । पाँचो शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरांगोपांगके बन्धक जीव स्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । [त्रस] स्थावरादि चतुष्कके अबन्धक जीव स्तोक हैं । [स्थावरादिके] बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रसादिचतुष्कके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्थिरादि छह युगल, २ गोत्रोंके अबन्धक जीव स्तोक हैं । स्थिरादिषट्क तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं अर्थात् अस्थिरादि षट्क तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । विशेष यह है कि २ विहायोगति, २ स्वरोंके विषयमें पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए ।

त्रस जीवोंमें—पचेन्द्रियके ओघवत् विशेषता जाननी चाहिए । इतना विशेष है कि इनके पर्याप्तकोंमें तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

नामकर्मसम्बन्धी चार गतियोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पाँचों जातियोंके अबन्धक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पचेन्द्रिय जातिके बन्धक

बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदिय-बंध० जीवा संखेज्जगुणा। तस-थावरादि चदुयुगलं [अ]बंधगा जीवा थोवा। तसादि०४ बंधगा जीवा असंखेज्ज०। थावरादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगु०। एदेण बीजेण णेदव्वं। पंचमण० तिण्णिवचि० छण्णं कम्माणं पंचिंदियभंगो। णवरि वेदणो० अबंधा णत्थि। मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज०। चदुआयु-बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा थोवा। णिरयगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु०। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा थोवा। चदुरिंदिय-बंध० जीवा असंखेज्ज०। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचिंदिय० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। एइंदिय० बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचण्णं जादीणं बंधगा जीवा विसेसा०। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा थोवा। आहारस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तेजाक०

जीव सख्यातगुणे है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

त्रस स्थावरादि चार युगलके [अ]बन्धक जीव स्तोक है। त्रसादि चारके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। स्थावरादि ४ के बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। इस बीजसे अर्थात् इस ढंगसे अन्य प्रकृतियोंमे जानना चाहिए।

विशेष—त्रस-स्थावरादि चार युगलके समान शेष बचे स्थिर, शुभ, सुभगादि युगलोंका वर्णन जानना चाहिए।

५ मनोयोगी, ३ वचनयोगियोंमें ६ कर्मोंके बन्धक जीवोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग निकालना चाहिए। विशेष यह है कि वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं।

मनुष्यायुके वन्धक जीव स्तोक हैं। नरकायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। चारों आयुके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

चारों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं। नरक गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्य गतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

पाँचों जातिके अबन्धक जीव स्तोक हैं। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। त्रीन्द्रिय जातिके वन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोइन्द्रिय जातिके वन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। पंचेन्द्रिय जातिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रिय जातिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पाँचों जातियोंके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

पाँचों शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं। आहारक शरीरके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके वन्धक जीव

बंधगा जीवा विसेसाहिया। संठाणं अंगोवं० संघड० वण्ण०४ आदा-उज्जो० दोवि-हाय० तसथावरादि-छयुगल-णिमिण-तित्थयर० पंचिंदियभंगो। गदिभंगो आणुपुव्वि०। अगु० उप० अबं० जीवा थोवा। परघादुस्सा० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगलाणं अबंधगा जीवा। सुहुमादितिण्णिबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बादरादि-तिण्णि बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०।

३११. वचिजोगि-असच्चमोसवचि० तसपज्जत्तभंगो। कायजोगीसु ओरालियका०-ओघभंगो, किंचि विसेसा० (सो०)। ओरालिय-मिस्से—सव्वत्थोवा छदंसणा० अबंधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा० संखेज्ज०। अबंधगा (बंधगा) जीवा अणंतगु०। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अणं-ताणु०४ अबंधगा० संखेज्ज०। मिच्छ० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा अणतगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा० विसेसा०। बारसक० बंधगा० जीवा विसेसा०।

संख्यातगुणे है। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस स्थावर तथा स्थिरादि ६ युगल, निर्माण और तीर्थंकरके बन्धकोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए।

आनुपूर्वीमें गतिके समान जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव स्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

बादरादि तीन युगलोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। सूक्ष्मादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बादरादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

३११ वचनयोगी, असत्यमृषा वचनयोगी अर्थात् अनुभय वचनयोगीमें त्रस पर्याप्तकके समान भंग हैं।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियोंमें – ओघके समान भंग है। किन्तु उसमें जो विशेषता है उसे जानना चाहिए।

औदारिक मिश्रमें – ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक (बन्धक) जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—द्वितीय बार आगत स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धकके स्थानमें बन्धकका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। बारह कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

तिण्णं गदीणं [अ]बंधगा जीवा थोवा। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिण्णि गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा चदुण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरं बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा० अणंतगु०। तेजाक० बंधगा० विसेसा०। वेउव्विय अंगो० बंधगा जीवा थोवा। ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा अणंतगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। गदिभंगो आणुपुव्वि। सेसं ओघं।

३१२. वेउव्वियका० वेउव्वियमि० देवोघं।

३१३. आहार० आहारमि० सव्वट्ठभंगो।

३१४. कम्मइ० ओरालिय-मिस्स-भंगो। णवरि सव्वत्थोवा छदंसणा० अबंधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखे०। बंधगा जीवा अणंतगुणा। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। मिच्छ० अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा अणंतगु०। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। बारसक० बंध० जीवा

तीन गतिके[अ]बन्धक जीव स्तोक हैं। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ नरकगतिका बन्ध नहीं होता है। इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया गया है।

चारों शरीरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं

वैक्रियिक अंगोपागके बन्धक जीव स्तोक हैं। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

आनुपूर्वीमे गतिके समान भग कहना चाहिए। शेष प्रकृतियोमे ओघवत् जानना चाहिए।

३१२. वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिक मिश्रयोगीमे देवोंके ओघवत् जानना चाहिए।

३१३ आहारक काययोगी और आहारक मिश्रयोगीमे सर्वार्थसिद्धिके समान भंग हैं।

३१४. कार्माण काययोगियोमे – औदारिक मिश्र काययोगीके समान भंग कहना चाहिए। विशेष यह है कि ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। स्त्यानगृद्धि ३ के अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कषायके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक

विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगु० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एदेण कमेण णेदव्वं ।

३१५. इत्थिवेद०—सव्वत्थोवा णिद्दापचलाणं अबंधगा जीवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिद्दापचलाणं बंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंसण० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं मणभंगो । सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा० चदु० अबंधगा जीवा । अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंध० जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पचक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंजलण-बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पुरिसवेद-बंधगा जीवा । इत्थिवेद-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भय-दुगुं० बंधगा जीवा विसेसा० । णवणोक० बंधगा जीवा विसेसा० । आयुचदुक्क-पंचिंदि०-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं

हैं । तीनों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । इस क्रमसे अन्यत्र जानना चाहिए ।

विशेष—इस योगमे नरकगतिका बन्ध नहीं होता है ।

३१५ स्त्रीवेदमे – निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । चारों दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—यहाँ दर्शनावरण ४ के अबन्धक जीव नहीं पाये जाते । वे उपशान्तकषाय गुणस्थानमे पाये जाते हैं ।

वेदनीयके बन्धक जीवोमे मनोयोगीके समान भंग हैं ।

प्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । ४ सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नव नोकषायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ आयुके बन्धकोंमे पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए ।

अबंधगा जीवा। देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० मणुसगदिबंधगा संखेज्ज०। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदि-बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा पंचजादि-अबंधगा जीवा। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तीइंद० बंध० जीवा संखेज्ज०। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। पंचसरीर० छसंठा० तिण्णि-अंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसरं मणजोगिभंगो। सव्वत्थोवा अगु० उप० अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० अबंध० जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा संखेज्ज०। अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। तसथावरादि पंचयुगल-तित्थयर-दोगोदा० मणजोगिभंगो। णवरि जस-अजस० दोगोदाणं साधारणेण अबंधगा णत्थि। सव्व-त्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगल-अबंधगा जीवा। सुहुमादितिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा असंखेज्ज०। बादरादि-तिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एवं पुरि-सवे०। णवुंसगवे० ओघभंगो। णवरि विसेसो वि इत्थिवेदेण माधिज्जदि। अवगद

चारों गतिके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुण हैं। तिर्यंच-गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

पच जातियोंके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। त्रीइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंका प्रमाण वर्णन करनेसे छूट गया प्रतीत होता है।

५ शरीर, ६ संस्थान, ३ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक जीवोंमें मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

त्रस, स्थावर, स्थिरादि ५ युगल, तीर्थंकर, २ गोत्रके विषयमे मनोयोगियोंमे समान भंग हैं। विशेष यह है कि यशःकीर्ति, अयश कीर्ति तथा दोनों गोत्रोंके सामान्यसे अवन्धक नहीं है। बादरादि तीन युगलके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। सूक्ष्मादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बादरादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेष—यहाँ सूक्ष्मादि तीन तथा बादरादि तीनके बन्धकोंके साथमे युगल शब्द अधिक प्रतीत होता है। कारण सूक्ष्मादि तीन युगलके ही अन्तर्गत बादरादि तीन प्रकृतियाँ हैं, एवं बादरादि तीन युगलमे सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियाँ है।

पुरुषवेदमे—स्त्रीवेदके समान भंग है।

नपुंसकवेदमे—ओघवत् भग है। विशेष, स्त्रीवेदसे जो विशेषता हो, उसे निकाल लेना चाहिए।

वेदेसु–सव्वत्थोवा पंचणा० बंधगा० । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं चदुदंसणा०, साद० जस० उच्चगो० पंचंत० । सव्वत्थोवा कोधसंजल० बंधगा । माण-संजल० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । तस्सेव अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मायासंज० अबंधगा जीवा विसे० । माण-संज० अबं० जीवा विसे० । कोध-संज० अबंध० जीवा विसेसा० ।

३१६. कोधे–णवुंसकभंगो । णवरि णव णोकसायं ओघं । माणे–सव्वत्थोवा कोध-संज० अबं० जीवा । सेसं ओघं । णवरि कोध बंधगा जीवा विसे० । माण-माय-लोभ संजलणबंधगा जीवा विसेसा० । मायाए–सव्वत्थोवा माणसंज० अबं० जीवा । सेसं माणकसाइ-भंगो । णवरि मायलोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । लोभे–मोह० ओघं । सेसं कोधभंगो । अकसाइ–सव्वत्थोवा साद-बंध० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । एवं केवलणा० केवलदंसणा० ।

३१७. मदि० सुद०–सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा

अपगतवेदियोंमे—५ ज्ञानावरणके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार ४ दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके बन्धकों अबन्धकोंमें भी जानना चाहिए ।

क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । माया संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

३१६ क्रोधमें—नपुंसकवेदके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि ९ नोकषायोंके बन्धकोंमें ओघवत् जानना चाहिए ।

मानमें—क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । शेष प्रकृतियोंमें ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, क्रोधके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान, माया, लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

मायामें—मान-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । शेष प्रकृतियोंमें मान-कषायियोंके समान भंग जानना । विशेष यह है कि माया, लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

लोभमें—मोहनीयकी प्रकृतियोंमें ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें क्रोधके समान भंग हैं ।

अकषाय जीवोंमें—साता वेदनीयके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनवाले जीवोंमें जानना चाहिए ।

३१७ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें—मिथ्यात्वके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान तथा श्रुताज्ञानमें मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान पाये जाते

अणंतगुणा। सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मत्त-संयुत्तं णत्थि। विभंगे–सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबं० जीवा। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा०। दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण छस्संघ० दो-विहा० तसथावरादि छयुगलाणं दोगोद० देवोघ-भंगो। सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्ज०। चदुण्णं आयुबंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदि-बंध० जीवा थोवा। देवगदि-बंध० जीवा असंखेज्ज०। मणुसगदि बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। एवं आणुपु०। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा थोवा। तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचिंदि० बंध० जीवा असंखेज्ज०। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसा०। वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा थोवा। ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज०।

हैं। मिथ्यात्वके अवन्धक सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहे गये हैं। मिथ्यात्वके वन्धक अनन्तगुणे कहे गये है, क्योंकि मिथ्यात्वी जीवोंकी संख्या अनन्त है। परिमाणानुगममें कहा है "मिच्छत्तस्स वंधगा अणंता"।

सोलह कषायके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बारेमें तिर्यंचोंके ओघ-समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ सम्यक्त्वके साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंका अभाव है।

विशेष—तीर्थंकर तथा आहारकद्विकका सम्यक्त्वके साथ ही बन्ध होता है। अतः यहाँ इनका वन्ध न होगा।

विभगज्ञानियोंमे–मिथ्यात्वके अवन्धक जीव सर्वस्तोक है। बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं। सोलह कषायके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं। २ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, २ विहायोगति, त्रस-स्थावर स्थिरादि ६ युगल तथा दो गोत्रोंमे देवोंके ओघवत् भंग हैं।

मनुष्यायुके वन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। नरकायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे है। चारों आयुके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

नरकगतिके वन्धक जीव स्तोक हैं। देवगतिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे है। मनुष्य-गतिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आनुपूर्वियोंमे जानना चाहिए।

चौइन्द्रिय जातिके वन्धक जीव स्तोक है। त्रीइन्द्रिय जातिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। द्वीन्द्रिय जातिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पंचेन्द्रिय जातिके वन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं। एकेन्द्रियके वन्धक जीव संख्यातगुणे है। ५ जातियोंके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

वैक्रियिक शरीरके वन्धक जीव स्तोक हैं। औदारिक शरीरके वन्धक जीव असंख्यात-

जीवा विसे० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा. सत्तणोक० अबंधगा जीवा । हस्सरदिबंधगा जीवा असंखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसेसा० । भयदुगुंछाबंधगा जीवा विसेसा० । ❀लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक०❀ पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवाउगं बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्ण बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । दोण्ण गदीण्णं अबंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंधगा जीवा असखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्णं बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पंचिंदि० सम-चदुर० वज्जरिसभ-संघ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चागोदाणं अबंधगा । बंध० जीवा असंखेज्ज० । पंचसरी० अबंधगा जीवा थोवा । आहारसरीर-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णि-अंगो० अबंधगा जीवा । आहार० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय०

विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

सात नोकषायके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अरति शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदके बन्धक मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती हैं । स्त्रीवेदके बन्धक सासादन पर्यन्त हैं । अतः इस सम्यक्ज्ञानके वर्णनमे उक्त वेदद्वयको छोड़कर सात नोकषायका कथन किया गया है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

विशेषार्थ—नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है । तिर्यंचायुकी सासादनमे बन्ध व्युच्छित्ति कही है, इससे यहाँ इन दो आयुओंका कथन नहीं किया गया है ।

दोनों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्च गोत्रके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

५ शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीनों अंगोपांगके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक अंगोपांगके

---

* एतच्चिह्नान्तर्गत पाठोऽधिक प्रतिभाति ।

इयम्म-णत्थि अप्पाबहुगं। यथाक्खादस्स-अबंधगा जीवा थोवा। बंधगा जीव संखेज्जगुणा। संजदासंजदा-परिहारभंगो। णवरि थोवा देवायु-तित्थयर-बंधगा जीवा अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। असंजद-तिरिक्खोघं। णवरि अपच्चक्खाणावरणस्स अबंधगा णत्थि। तित्थयरं ओघं।

३२१. चक्खुदंस०-तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं। णवरि एदेसिं दोण्ण विसेसो णादव्वो।

३२२. तिण्णिलेस्सा-असजदभंगो। तेऊए-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि३ अबं०। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। छदंसण० बंधगा जीवा विसेसा०। दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण० छसघ० आदाउज्जो० दोविहा० तसथाव० थिरादिछयुगं दोगोदं देवोघं। सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अपच्चक्खाणा०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। अणंता०

सूक्ष्मसाम्परायमे अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—यहाँ ज्ञानावरण ५, अन्तराय ५, दर्शनावरण ४, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा सातावेदनीयका बन्ध होता है। इनके बन्धकोमे हीनाधिकपनेका अभाव है। यहाँ इन १७ प्रकृतियोका बन्ध सबके पाया जायेगा।

यथाख्यातसयममे—अबन्धक जीव स्तोक है। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यथाख्यात सयम उपशान्त कषायसे अयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है। अयोगी जिनको छोड़कर शेष जीवोके साता वेदनीयका ही बन्ध होता है। अयोगी जिन ५९८ कहे गये हैं। ये अबन्धक हैं। इनकी अपेक्षा बन्धक सख्यातगुणे कहे है।

संयतासयतोमे-परिहारविशुद्धिके समान भग है। विशेष, देवायु तथा तीर्थंकरके बन्धक स्तोक है। अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। असयममे—तिर्यंचोके ओघवत् है। विशेष, यहाँ अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक नहीं हैं। तीर्थंकर प्रकृतिका ओघवत् जानना चाहिए।

विशेषार्थ—असयममे अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध होता है। इससे उसके अबन्धकका निषेध किया है।

३२१. चक्षुदर्शनमे—त्रस पर्याप्तकके समान भग हैं।

अचक्षुदर्शनमे—ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है, कि इन दोनोंमे जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिए।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन त्रसोके ही होता है। चक्षुदर्शनी असंख्यात कहे हैं। अचक्षुदर्शन स्थावरोंके भी होता है। अचक्षुदर्शनी अनन्त हैं। (खु० ब० द्र० प्र० सू० १४१, १४४)

३२२ कृष्णादि तीन लेश्यामे—असंयतके समान भग है।

तेजोलेश्यामे—स्त्यानगृद्धिके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ सस्थान, ६ संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका देवोघके समान समझना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सबसे कम है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अब-

णुबं०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त ० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जी असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंज० बंधगा जीवा विसेसा० सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देव बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णि बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० जीवा असंखेज्ज० एवं विनिज्जदि । एव पुण परिज्जदि । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंध जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसेसा अबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदिबंधगा जी संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० एवं आणुपुव्वि० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । आहारग० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वियबंधगा जी

असंखे० । ओरालि० बंध० जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णं अंगो० एवं चेव । णवरि तिण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा संखेज्ज० । एवं पम्माए । णवरि थोवा इत्थिवेदाणं बंध० जीवा । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खायु बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । सव्वत्थोवा आहारम० बंधगा जीवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादियसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

हुंडसंठाण-बंधगा जीवा संखेज्ज०। समचदुर० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। छण्ण बंधगा जीवा विसेसा०। वज्जरिसभ-संघ० बंधगा जीवा थोवा। वज्जणाराच० बंधगा जीवा संखेज्ज०। उवरि संखेज्जगुणं कादव्वं। छस्संघड० बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। उज्जोव-तित्थय० बंधगा जीवा थोवा। अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० बंधगा जीवा थोवा। तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा असंखेज्ज०। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। थिरादि तिण्णि युगलं देवोघं। सुक्काए-पंचणा० पंचिंदि० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा थोवा। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। चदुदं० अबंधगा जीवा थोवा। णिद्दापचला० अबंधगा जीवा विसेसाहिया। थीणगिद्धि ३ [अ]बंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे०। चदुदं० बंधगा जीवा विसेसा०। वेदणीयं देवोघं। लोभ-संज० अबंधगा जीवा थोवा। माया-संज० अबं० जीवा विसे०। माण संज० अबं० जीवा विसे०। कोध संज० अबं० जीवा विसे०। पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा संखेज्ज०। अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा असंखेज्ज०। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। अणंताणु०४ [अ]बंधगा जीवा

असंखे० । ओरालि० बंध० जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णं अंगो० एवं चेव । णवरि तिण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा संखेज्ज० । एवं पज्जत्ताए । णवरि थोवा इत्थिवेदाण बंध० जीवा । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादियसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

वामणसं० जीवा संखेज्ज० । हुंडसं० बंध जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंधगा जीवा संखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । एव छस्संघ० । दोविहा० सुभगादि-तिण्णि युगल-णीचुच्चागो० अबं० जीवा थोवा । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तप्पडिपक्खाण बंधगा जीवा संखेज्ज० । थिरादितिण्णियुगलाणं भंगो । सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । भवसिद्धि०-- ओघं । अब्भवसिद्धिया--मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जीवा णत्थि ।

३२३. सम्मादिट्ठीसु--सव्वत्थोवा पंचणा० पंचिंदि० समचदु० वजरिसभ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थविहा० तस०४ सुभगादितिण्णियु० णिमिण तित्थय० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा । अबंध० अणंतगुणा । सव्वत्थोवा णिद्दापचला-बंधगा जीवा । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० अणंतगुणा । णिद्दापचला अबंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा थोवा । असाद-बंधगा जी० संखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा थोवा ।

विसेसा० । अबंधगा (बंधगा) जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबंधगा (?) बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणावरण० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसंज० बंधगा जीवा विसे० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा णव-पुंस० अबंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंसक० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा दोण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा थोवा । आहारस० बंध० जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा छस्संठा० अबं० जीवा । णग्गोद-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सादिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

वेदणीय-भंगो । एवं खइग-सम्मा० । णवरि थोवा देवायु-बंधगा जीवा । मणुसा०-
बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा । पच्चक्खाणा०४
बंधगा जीवा विसे० । एवं चदुसंजल० बंधगा जीवा विसे० । अबं० अणंतगुणा । सेसं
पडिलोमेण भाणिदव्वं । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा । अरदिसोग बंधगा जीवा संखेज्ज० ।
भयदु० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवेद-बंधगा जीवा विसे० । अबं० अणंतगुणा । सेसं
पडिलोमेण भाणिदव्वं । वेदगे—सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा । अपच्च-
क्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पच्चक्खाणा०४
बंधगा जीवा विसे० । चदुसंज० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा हस्सरदि-बंधगा
जीवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । भयदु० पुरिसवे० बंधगा जी० विसे० ।
मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा
विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा

पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे०। कोध-सं० बं० जी० विसे०। माणसंज० बंध० जी० विसेसा०। मायासंज० बंध० जी० विसेसा०। लोभसंज० बंधगा जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। मायासं० अबं० जीवा विसे०। माणसंज० अबं० जीवा विसेसा०। कोधसंज० अबं० जीवा विसे०। पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसे०। अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसेसा०। हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। भयदु० बंध० जीवा विसे०। पुरिस-वे० बंधगा जीवा विसे०। अबंध० अणंतगुणा। भयदु० अबं० जीवा विसे०। अरदिसोग-अबं० जीवा विसे०। हस्सरदि-अबं० जी० विसे०। मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंध० जीवा अणंतगुणा। देवगदि-बं० जीवा थोवा। मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। दोण्णं बंध० जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। एवं दो आणुपुव्वि०। आहारसरी० बंधगा जीवा थोवा। वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा अणंतगुणा। एवं तिण्णि-अंगो०। थिरादि-तिण्णियुगलं

वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगोवंग० । पंचसंघ० अबंधगा जीवा थोवा । वज्जरिसभ० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणा । पंचण्णं बंधगा जीवा विसे० । सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोक० दोगदि-दो-सरीर-दोअंगो० वज्जरिसभ० थिरादितिण्णियुगलं वेद[ग]भंगो । मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अब्भवसिद्धिग भंगो ।

३२४. सण्णी-मणजोगि-भंगो । आहार-ओघभंगो । अणाहार०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज०४ णिमि० अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंस० बंधगा जीवा थोवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगु० । ... बंधगा जीवा विसे० । सेसं ओघ । णवरि थोवा देवगदि-बंधगा । तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा [जीवा अणंतगुणा] तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा० संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । अगो० कम्मइगभंगो ।

असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुव्वि० । आहार० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा असखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं तिण्णि अंगोवंग० । वज्जरिसभ-संघ ओधिभंगो । सेसं युगलं देवोघं । उवसमसं०—ओधिभंगो । सासणे—वेदणीय पंचसंठा० उज्जोव-दोविहाय० थिरादि छयुग० दोगोदं णिरयोघं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । हस्सरदि-बंधगा जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । वेउव्वियस० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा असखेज्ज० ।

देवगतिके वन्धक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । दोनोंके वन्धक जीव विशेषाधिक है ।

इसी प्रकार दोनो आनुपूर्वियोंमे भी जानना चाहिए ।

आहारक शरीरके वन्धक जीव सर्व स्तोक है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हे । औदारिक शरीरके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस-कार्माण शरीरके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार तीनों अंगोपागमे भी जानना चाहिए । वज्रवृषभ-नाराच-सहननमे अवधिज्ञानके समान भंग है । शेष युगलोंमें देवोंके ओघ समान जानना चाहिए ।

उपशमसम्यक्त्वमे अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । सासादनसम्यक्त्वमें—वेदनीय, ५ सस्थान, उद्योत, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रके बन्धकोमे नरकके ओघवत् जानना चाहिए ।

पुरुषवेदके वन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । हास्य-रतिके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अरति-शोकके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके वन्धक जीव असख्यातगुणे हे । तीनोंके वन्धक जीव विशेषाधिक है । इनके अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं ।

विशेष—नरकायुका मिथ्यात्वगुणस्थान तक वन्ध होनेसे यहॉ उसका अभाव है ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके वन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । तीनोंके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकारका क्रम आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए ।

वैक्रियिक शरीरके वन्धक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके वन्धक जीव विशेषाधिक है । इसी प्रकार अंगोपागमे भी जानना चाहिए ।

ण्णाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगोवंग० । पंचसंघ० अबंधगा जीवा थोवा । वज्जरिसभ० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणा । पंचण्णं बंधगा जीवा विसे० । सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोक० दोगदि-दो-सरीर-दोअंगो० वज्जरिसभ० थिरादितिण्णियुगलं वेद[ग]भंगो । मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अब्भवसिद्धिय-भंगो ।

३२४. सण्णी-मणजोगि-भंगो । आहार-ओघभंगो । अणाहार०-पंचणा० पंचंत० वण्ण०४ णिमि० अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंस० अबंधगा जीवा थोवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगु० । छदंस० बंधगा जीवा विसे० । सेसं ओघ । णवरि थोवा देवगदि-बंधगा । तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा [जीवा अणंतगुण] तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा० संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । अगो० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं ।

---

५ संहननके अबन्धक जीव स्तोक हैं । वज्रवृषभनाराचसंहननके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । वज्रनाराच, नाराच आदि संहननोंके बन्धक जीवोंमें संख्यातगुणित क्रम जानना चाहिए । पाँचों संहननोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—हुण्डक संस्थानकी बन्धव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थानमें होनेसे उसका वर्णन नहीं हुआ ।

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वमें, २ वेदनीय, ७ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, २ अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन, स्थिरादि ३ युगलमें वेदकसम्यक्त्वके समान भंग जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञीमें अभव्यसिद्धिकोंका भंग जानना चाहिए ।

३२४ संज्ञीमें – मनोयोगियोंका भंग जानना चाहिए । आहारकमें – ओघवत् भंग है । अनाहारकोंमें – ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें ओघवत् है । विशेष यह है कि देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । तीनों गतिके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक [अबन्धगुणे हैं] तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—अनाहारकोंमें नरकगतिके बन्धकोंका अभाव है इससे उसकी यहाँ परिगणना नहीं हुई है ।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए । अंगोपांगमें कार्माण काययोगके समान भंग जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्थान-जीव-अल्प-बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१ "आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा । बंधा अणंतगुणा ।" —खु० बं० अप्पा० सू० [illegible] २०४ । २ "सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी । णेव सण्णी, णेव असण्णी अणंतगुणा । असण्णी [illegible] । —सू० २००-२०२ ।"

असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुव्वि० । आहार० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा असखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं तिण्णि अंगोवंग० । वज्जरिसभ-संघ ओधिभंगो । सेसं युगर्त देवोघं । उवसमसं०–ओधिभंगो । सासणे–वेदणीय पंचसंठा० उज्जोव-दोविहाय थिरादि छयुग० दोगोदं णिरयोघं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । हस्सर्रा बंधगा जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा ज विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बं जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा वि अब० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० आणुपुव्वि० । वेउव्वियस० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा अस

सव्वत्थोवा मणुसगदि-उच्चागो० बंधगा जीवा। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। उवरि सो चेव भंगो। णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा०। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि४ तिरिक्खगदि-णीचागो० बंधगा जीवा सरिसा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा०।

३२८. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्विय० बंधगा विसेसा०। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागोदस्स बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। अजस० बंधगा जीवा विसेसा०। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा०। णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा०।

विशेष, उच्चगोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक तीसरी पृथ्वी पर्यन्त पाये जाते हैं, नीचे नहीं पाये जाते।

सातवीं पृथ्वीमें–मनुष्यगति, उच्चगोत्रके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है, "चरिमे मिच्छेव तिरियाम्" (गो० क० १०६)। "छट्टोत्ति य मणुवाऊ।" सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही तिर्यंचायुका बन्ध होता है। मनुष्यायुका छठी पृथ्वी तक बन्ध कहा है इससे यहाँ मनुष्यायुका कथन नहीं किया गया है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे गुणे हैं। आगे इसी प्रकार सख्यातगुणे सख्यातगुणेका भंग है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगति और नीच गोत्रके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

३२८ तिर्यंचोमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता-वेदनीय, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इत्थि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० । णवरि असंखेज्जगुणं कादव्वं ।

२२२. पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त जोणिणीसु–सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । उच्चागोद बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसेसा० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जी० विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसा० । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा

असंखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । सादहस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

३३०. मणुसेसु–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । [तित्थयर बंधगा जीवा] संखेज्जगुणा । णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उच्चागोद० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसे० ।

बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। साता, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयश कीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

३३० मनुष्य गतिमें आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। [तीर्थंकरके बन्धक] संख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता वेदनीय, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयश कीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक है। मिथ्यात्वके

उवरि मूलोघं।

३३१. मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु०। णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंध० जीवा संखेज्जगु०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे०। अजस० बंधगा जीवा विसे०। णवुंस० बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे०। उवरि मूलोघं। मणुस-अपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

३३२. देवेसु सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंधगा असंखेज्ज०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०।

मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थि० बंधगा जी० संखे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा सरिसा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सोग-अज्जसगि० बंधगा जीवा सरिसा संखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । एवं भवण० याव ईसाणत्ति । णवरि जोदिसियसोधम्मीसाणे उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति बिदियपुढविभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जात्ति सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि-तिय० अणंताणु० बंधगा जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । अणुदिस-अणुत्तर० सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । असाद-अरदि-सोग-अजस० बधगा जीवा संखेज्जगु० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा

संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणादिके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

भवनवासियोंसे ईशान स्वर्गपर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि ज्योतिष्कदेव तथा सौधर्म, ईशान स्वर्गवासियोंमे उच्चगोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

सनत्कुमारसे सहस्रार स्वर्ग तक दूसरे नरकके समान भंग जानना चाहिए ।

आनतसे उपरिम ग्रैवेयक तक मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेष अधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक विशेषाधिक है । साता, हास्य रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता अरति शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्च गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक है ।

अनुदिश-अनुत्तरवासी देवोंमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्ति

एवं सव्वट्ठे। णवरि संखेज्जगुणं कादव्वं।

३३३. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं पंचिंदियतस-अपज्जत्ताणं च पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। णवरि एइंदिय-वणफदि-णिगोदेसु तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तेउ-वाउ०—मणुसगदि-मणुसाणुपु० उच्चागो० बंधगा जीवा णत्थि। पंचिंदिय-तसाणं मूलोघं। णवरि तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पंचिंदिय-पज्जत्तगेसु—सव्वत्थोवा आहार-बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज०। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। पुरिसवे० बंधगा जीवा

बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक हैं।

सर्वार्थसिद्धिमें ऐसा ही जानना चाहिए। विशेष, यहाँ 'संख्यातगुणे' क्रमकी योजना करना चाहिए।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी संख्या संख्यात कही गयी है अतः यहाँ बन्धकोंमें संख्यातगुणे क्रमकी योजनाका कथन किया गया है। खुद्दाबन्ध टीकामें लिखा है मनुष्यनियोंसे सर्वार्थसिद्धिवासी देव संख्यातगुणे हैं। धवलाटीकाकार लिखते हैं : "गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है। कोई आचार्य सात रूप, कोई चार रूप और कितने ही आचार्य संख्यात रूपमें संख्यात गुणकार कहते हैं। इससे यहाँ गुणकारके विषयमें तीन उपदेश हैं। इन तीनमें एक ही जात्य (श्रेष्ठ) है परन्तु वह जाना नहीं जाता, कारण इस विषयमें विशिष्ट उपदेशका अभाव है। इस कारण तीनोंका ही संग्रह करना चाहिए। (अप्पाबहुगाणुगम महादण्डक पृ० ५७७)।

३३३. सर्व एकेन्द्रिय सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकायवालोंमें पंचेन्द्रिय तथा त्रसके लब्ध्यपर्याप्तकोंमें – पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, एकेन्द्रिय वनस्पति निगोद जीवोंमें तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

तेजकाय वायुकायमें – मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्च गोत्रके बन्धक जीव नहीं हैं।

पंचेन्द्रिय तथा त्रसोंमें – मूलके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें - आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव

---

1. को गुणगारो ? संखेज्जसमया। के वि आइरिया सत्तरूवाणि के वि पुण चत्तारि रूवाणि, के वि संखेज्जरूवाणि गुणगारो त्ति भणंति। तेणेत्थ गुणगारे तिण्णि उवएसा। तिण्णं मज्झे एक्कोच्चिय सुत्ताणुसारी होदि, ण सव्वे, विसिट्ठोवएसाभावादो। तम्हा तिण्हं पि संगहो कायव्वो" —पृ० ५७७।

[illegible] —मो० ह० ५१४।

संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद०-बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

३३४. तस-पज्जत्तगेसु–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखे० गु० । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा सखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखे० गु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा सं० गु० । सादबंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालिय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० अबंधगा.(बंधगा) जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें सब्के ओघवत जानना चाहिए ।

३३४ त्रसपर्याप्तकोंमें – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उच्चगोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता-वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता अरति शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक (?) जीव विशेषाधिक हैं । शेष

इत्थिवे० । बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । वेउव्विय-कायजो०, वेउव्वियमि०-देवोघं । णवरि मिस्से आयुगं णत्थि । आहार० आहारमिस्स०—सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जसगित्ति-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया । कम्मइगका० सव्वत्थोवा देवगदि-वेउव्विय० बंधगा जीवा । उच्चागो० बंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसग० बंधगा जीवा संखे० गुणा । पुरिस० बंध० जीवा

वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साताके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतिके बन्धक जीवोंमें समान रूपसे विशेष अधिकका क्रम है।

वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगमें आयुका बन्ध नहीं है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें नरकायु तथा देवायुका बन्ध निषिद्ध है, कारण देव तथा नारकी मरण कर देव तथा नारकी अवस्थाको नहीं बाँधते हैं। वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें 'देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियाउगं णत्थि' (गो० क० ११८) के नियमानुसार मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका भी बन्ध नहीं होता है। इससे यहाँ आयुबन्धका निषेध किया है।

आहारक, आहारक मिश्रकाययोगियोंमें – तीर्थंकरके बन्धक सर्वस्तोक हैं। देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—आहारक तथा आहारक मिश्रकाययोगियोंमें इतना अन्तर है कि आहारक काययोगीके देवायुका बन्ध होता है, किन्तु आहारक मिश्रकाययोगियोंमें देवायुका बन्ध नहीं होता। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है "छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ।" (गाथा ११८)।

कार्मण काययोगियोंमें – देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुष-

संखेज्जगुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । [illegible]० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

३३६. इत्थिवे० पुरिस०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखे० गुणा । वेउव्विय-बंधगा जी० विसेसा० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अजस० हस्सरदि० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखे० गुणा । अज्ज० बंधगा जीवा

विसेसा० । णवुंसवंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागोद-बंधगा जीवा विसेसा० । ओराति० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचलाणं बंधगा जी० विसे० । तेजाक० बंधगा जी० विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । णवुंसगवे०—मूलोघं । णवरि भयदुगुंछादो उवरि तुल्ला विसेसा० ।

३३७. अवगदवे०—सव्वत्थोवा कोध-संज० बंधगा जीवा । माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसे० । लोभ-संज० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा संखेज्ज० । कसायाणुवादेण—कोधादि०४ याव भयदुगुं० ताव मूलोघं । उवरि साधेदूण भाणिदव्वं ।

३३८. मदि० सुद०—तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० ।

[illegible] बंधगा जीवा विसेसा० । विभंगे—सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । [illegible]-बंधगा जीवा असंखे० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा [illegible] संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जी० विसेसा० । [illegible]-बंधगा जी० असंखेज्ज० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जी० [illegible] गुणा । जस० बंधगा [जीवा] संखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० [illegible] बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचागोद० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा० ।

३३९ आभि० सुद० ओधि०—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । मणु-सायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिवेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । [illegible]-बंधगा जी० असं० गुणा । जस० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचला-बंधगा

जीवा विसेसा० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसाहिया । माणसं० बंधगा जीवा विसेसा० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० । मणपज्जव०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्स रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा विसे० । सादबंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि सोग-अज्ञ० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्विय० तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसं० बंधगा जीवा विसे० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसेसा० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० ।

३४०. एवं संजद-सामाइ० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भंगो । उवरि सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

३२१. परिहारे--सव्वत्थोवा देवायुबंधगा जीवा। आहार० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्स-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सेसाणं सरिसा विसेसा०।

३२२. संजदासंजदा--सव्वत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया।

३२३. असंजदेसु--तिरिक्खोघं। णवरि थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा० विसेसा०।

३२४. चक्खुदंसणी--तस-पज्जत्तभंगो। अचक्खुदंसणी--ओघं। ओधिदंसणी--ओधिणाणिभंगो।

३२५. तिण्णि लेस्सा--असंजदभंगो। तेउलेस्सि०--सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायुबंधगा असंखेज्ज०। देवगदि-वेउव्विय० बंधगा संखेज्जगुणा। उच्चागो०

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बंधगा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जी० विसे०। पच्चक्खाणावर०४ बं० जीवा विसे०। सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा०।

पम्माए—आहार० थोवा। मणुसाणु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। देवायु-बंधगा जीवा विसेसा०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बं० जीवा संखेज्जगु०। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे०। णीचागो० बं० जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा सरिसा असंखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सो०-अजस० बंध० सरिसा संखेज्जगुणा। देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। उच्चागो० बंध० जी० विसे०। पुरिस० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। उवरि तेउभंगो। सुक्काए—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा

बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि०-जस० बंधगा जी० असंखे० गु० । असाद अरदि-सो० अजस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जीव विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसे० सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । उवसम-सं०-सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा देवगदि-वेउव्विय-बंधगा जी० असंखेज्जगु० । उवरि ओधिभंगो ।

३४७. सासणे–सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीव असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जी० असंखे० गुणा । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखे० गुणा । मणुसगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । साद-हस्स-रदि-जस० बंध० जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जी० संखेज्जगुणा असाद-अरदि-सो० अज० बं० जीवा विसेसा० । अथवा असाद-अरदि-सो० अज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि० बंधग जी० विसे० । णीचागो० बंधगा जी० विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० ।

विसे०। साद-बंधगा जीवा विसेसा०। उवरि मणजोगिभंगो। असण्णी-मिच्छादिट्ठि-भंगो। आहार-ओघभंगो। अणाहार-कम्मइगभंगो।

एवं परत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं।

संखेज्जगुणा। बादर-एइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्ज
असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। सुहुम पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिय
गद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बादर-एइंदिय-पज्ज
त्तो चेव भंगो। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइं
अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स स
उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंध
संखेज्जगुणा। तेइंदिय अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहि
चदुरिंदिय अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। एवं पज्जत्तगेस
सादासादाणं णेदव्वं। पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंध
संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-सण्णि-अपज्ज
सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगु
पंचिंदिय असण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असा
उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-सण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सि
बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

३५८. चोद्दसण्णं जीवसमासाणं तिण्णि वेदाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरि
थोवा। सुहुम-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवे

संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । बादर० वेदणीयभंगो । एवं बादर सण्णि-असण्णि अपज्जत्तग त्ति वेदणीयभंगो । पंचिंदिय असण्णि-अपज्जत्तस्स (पज्जत्तस्स) देवगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । णिरयगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स० । पंचण्णं जादीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । चदुरिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं बादर-अपज्जत्ताणं । सुहुम-बादर-एइंदिय-पज्जत्ताणं [illegible] चेव भंगो । बेइंदिय-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एवं सेसाणं जादीणं । एवं पज्जत्ताणं च णेदव्वं । पंचिंदिय सण्णि-असण्णि-अपज्जत्ता सुहुम-अपज्जत्तभंगो । पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स— चदुरिं० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा ।

संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बादर० वेदणीयभंगो। [illegible] अपज्जत्तग त्ति वेदणीयभंगो। पंचिंदिय असण्णि-अपज्जत्तस्स [illegible]। देवगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। णिरयगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स०। पंचण्णं जादीणं जहण्णियाओ [illegible] सरिसाओ थोवाओ। सुहुम अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। चदुरिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं बादर-अपज्जत्ताणं। सुहुम-बादर-एइंदिय-पज्जत्ताणं [illegible] भंगो। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। [illegible] अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय-अपज्जत्त- [illegible] विसेसा०। एवं सेसाणं जादीणं। एवं पज्जत्ताणं च णेदव्वं। [illegible] सुहुम-अपज्जत्तभंगो। पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स— [illegible] उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

[परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व]

३५४ अब परस्थान-अद्धा अल्पबहुत्व प्रकृत है। यहाँ से परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालोंको जघन्य तथा उत्कृष्ट पद-द्वारा पृथक्-पृथक् करके ओघसम्बन्धी परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व कहेंगे।

विशेष—यहाँ परिवर्तमान प्रकृतियोंका परस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थानों-द्वारा अल्पबहुत्वका प्रतिपादन करते है। यहाँ ४ गति, ३ वेद, २ गोत्र, २ वेदनीय, ४ आयु, हास्य-रतियुगल तथा यशःकीर्तियुगल इन २१ प्रकृतियोंका ओघ तथा आदेशसे जघन्य, उत्कृष्ट कालका अल्पबहुत्व वर्णन किया गया है।

चार आयुको छोड़कर (पूर्वोक्त) सत्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है। ४ आयुके बन्धकोंका जघन्य काल सदृश रूपसे संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। देवगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। सातावेदनीय हास्य रति यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नरकगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात गुणा है। असाता अरति, शोक अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

३५५ तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि-

गुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सि० बंधगद्धा सरिसा संखे० गुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। मणुस० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। पुरिसवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंसगवे० उक्कस्सि० बंधग० विसेसा०। तिरिक्खग० उक्कस्सिया

है, मिथ्यात्व, सासादनमें नहीं होता। प्रथम द्वितीय[1] गुणस्थानमें ही तिर्यंचगति तथा नीच गोत्रका बन्ध होता है। इस प्रकार ये चार प्रकृतियाँ परिवर्तमान नहीं रहती हैं। कारण, प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका अभाव हो जाता है।

तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—आयुको छोड़कर पन्द्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य-काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें नरकगति तथा देवगतिका बन्ध नहीं होता है[2]। इस कारण आयुको छोड़कर शेष बची १७ प्रकृतियोंमें-से दो घटानेपर पन्द्रह प्रकृतियाँ रह जाती हैं।

मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे संख्यातगुणा है। दोनों आयुओंके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल

---

[1] "मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति॥"—गो० क० १०७।

[2] "सामण्णतिरियपंचिदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥"—गो० क० १०८।

गुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सि० बंधगद्धा सरिसा संखे० गुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। मणुस० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। पुरिसवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंसगवे० उक्कस्सि० बंधग० विसेसा०। तिरिक्खग० उक्कस्सिया

है, मिथ्यात्व, सासादनमें नहीं होता। प्रथम द्वितीय[1] गुणस्थानमें ही तिर्यंचगति तथा नीच गोत्रका बन्ध होता है। इस प्रकार ये चार प्रकृतियाँ परिवर्तमान नहीं रहती हैं। कारण, प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका अभाव हो जाता है।

तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—आयुको छोड़कर पन्द्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य-काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें नरकगति तथा देवगतिका बन्ध नहीं होता है। इस कारण आयुको छोडकर शेष बची १७ प्रकृतियोंमें-से दो घटानेपर पन्द्रह प्रकृतियाँ रह जाती हैं।

मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे संख्यातगुणा है। दोनों आयुओंके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य रति यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल

---

१ "मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति॥"—गो० क० १०७।

२ 'सासण-तिरियपंचिदियतुरस्सातिर्यासु एमेव।
तुरियतिवाद अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥"—गो० क० १०८।

३५८. तेउ० वाउ०–आयुगवज्जाणं एक्कारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जहण्णिया बंधगद्धा संखे० गुणा। [उक्क० बंधग० संखे० गुणा।] पुरिसवे० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा। असाद-अरदि-सो० अजस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंस० उक्क० बंधगद्धा विसेसा०। पंचमण० पंचवचि० वेउव्वि० वेउव्वियमि० आहार० आहारमि० कम्मइग० अवगदवे० कोधादि०४ सासण० सम्मामि० त्ति साधेदूण णेदव्वं। णवरि कोधा०४ कसायाणं साधेदूण णेदव्वं। कसायकालो थोवो। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। ओरालि० ओरालिमि० पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। विभंगे–णिरयभंगो। आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाणं अट्ठण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जह० बंधगद्धा संखे० गुणा। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग०

---
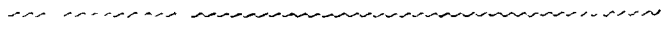
३५८. तेजकाय, वायुकायमें—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—अनुदिशसम्बन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमें अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति साता, असातामें वेदत्रयको जोड़नेसे ११ प्रकृतियाँ होती हैं। यहाँ वेदत्रयका बन्ध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमें उनको परिगणित किया है।

तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। [उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यातगुणा है।] पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता अरति शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

४ मनोयोगी, ४ वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक-आहारकमिश्रयोगी कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कषाय, सासादनसम्यक्त्वी, सम्यक्मिथ्यात्वीमें परिवर्तमान प्रकृतियोंके बन्धकोंका बन्धकाल निकालकर जान लेना चाहिए। विशेष-क्रोधादि चार कषायोंमें विचार करके भंग जानना चाहिए। कषायका काल स्तोक है। बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रकाययोगके—पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा अपर्याप्तकके समान भंग है।

विभंगावधिमें—नरकगतिके समान भंग है अर्थात् वहाँ १५ प्रकृतियाँ हैं। आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधिज्ञानमें—आयुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—यहाँ साता हास्य, रति. अरति, शोक, असाता, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति ये परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं।

आयुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc, Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 1 Second edition. Super Royal pp 14+58+144 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price Rs 8/-

Kannada Prāntīya Tādapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss in the Jaina Bhandāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc Edited with a Hindī Introduction etc by Pt K BHUJABALI SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 2 Super Royal pp 32+324. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1948 Price Rs 13/-

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (*c.* 16th century Vikrama Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough Edited by Pts MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp 108+548 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949, Price Rs 16/-

Ratna-Mañjūṣā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody Edited with a critical Introduction and Notes by Prof H D VELANKAR Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 5 Super Royal pp 8+4+72 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949 Price Rs 2/-.

Nyāyaviniscaya-vivarana :

The Nyāyaviniścaya of Akalanka (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (*c* 11th century A D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular Edited with Appendices etc by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 3 and 12 Super Royal Vol I. pp 68+546, Vol II pp 66+468 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954. Price Rs 15/- each

Mahāpurāna :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Gunabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A D) is an outstanding scholar, poet and teacher, and he occupies a unique place in Sanskrit Literature This work was completed by his pupil Gunabhadra Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc by Pt PANNALAL JAIN. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 8, 9 and 14 Super Royal Vol I Second edition, pp 8+68+746 Varanasi 1963, Vol II pp 8+556, Vol III pp 8+16+640, Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 to 1954 Price Rs 10/- each

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c Samvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by Pt HIRALAL JAIN The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratisthāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 3 Super Royal pp 230 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1952 Price Rs 5/-

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam :

This is an important commentary composed by the great logician Akalanka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20 Super Royal Vol I pp 16+[illegible], Vol II. pp 18+436 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1953 and 1957 Price Rs 12/- for each Vol

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Pandita Āśādhara (V. S. 13th [illegible]) In this edition brought out by Pt HIRALAL a number of [illegible] of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, [illegible] and Hemacandra are given Āśādhara's text is accompanied [illegible] Śrutasāgara's commentary of the same is also [illegible] There is a Hindī Introduction giving information about [illegible] There are some useful Indices Jñānapītha Mūrtidevī J[illegible] Granthamālā, Sanskrit Grantha No 11 Super Royal pp 288. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1954 Price Rs 4/-.

Jīvamdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvamdhara and his romantic adventures It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism The Sanskrit Text is edited by Pt. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvamdhara tale by Drs. A N UPADHYE and H L. JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 18 Super Royal pp 4+24 +20+344 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1958 Price Rs. 8/-

Padma-purāna :

This is an elaborate Purāna composed by Ravisena (V S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale It is edited by Pt PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāna Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26 Super Royal Vol I : pp 44+548, Vol II pp 16+460, Vol III pp 16+472 Bhāratīya Jñānapītha Kashī, 1958-59 Price Rs 10/- each

Siddhi-viniscaya :

This work of Akalaṅkadeva with Svopajñavṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature It is a feat of editorial ingenuity and scholarship The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author There are some 12 useful Indices Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23 Super Royal Vol I : pp 16+174+370, Vol II : pp 8+808 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959 Price Rs 18/- and Rs 12/-

Bhadrabāhu-Saṃhitā

[illegible] by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, [illegible] Hindī Translation and occasional Vivecana [illegible] SHASTRI There is an exhaustive Introduction [illegible] Jyotisa and the contents, authorship and [illegible] Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, [illegible] Grantha No 25 Super Royal pp 72+416 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959 Price Rs [illegible]

Upāsakādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri It deals with the duties of a householder Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc by Pt KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 28. Super Royal pp 116 + 539, Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs 12/-

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A D) Critically edited by Dr B Ch CHHABRA, Jt Director General of *Archæology in India and* S SANKARANARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 29 Super Royal pp 24 + 192 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs. 8/-

Satyaśāsana-parīkṣā

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi, critically edited for the first time by GOKULCHANDRA JAIN It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr NATHMAL TATIA Jñānapītha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No 30 Super Royal pp 56 + 34 + 62. Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs 5/-

पणवण्ण पलिदो० सादिरे०। मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ-संघ० मणुसाणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवमसदपु०। पुरिस०-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ अट्ठक०। इत्थिवे० ओघं। णिद्दापयला ओघं। सादासा० सत्तणो० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर० अणादे०णीचा० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि-सादि० तिण्णि पलिदो०देसू०। णिरयायु० इत्थिवेदभंगो। दोआयु० जह० अंतो०, उक्क०सागरोपमसदपु०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। णिरयगदि-चदुजादि-णिरया-णुपु०-आदावुज्जो०-थावरादि०४ जह० एगस० उक्क० तेवट्ठिसाग० सदं०। एवं तिरिक्खगदिदुगं। मणुसगदिपंचगं जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। देवगदि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपु०। णपुंस०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणं-

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक ५५ पल्य अन्तर है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्र-वृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर है।

पुरुषवेदमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायोका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, ८ कषाय, स्त्रीवेदका ओघके समान जानना चाहिए। निद्रा, प्रचलाका भी ओघके समान है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कर्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ सहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर प्रमाण अन्तर है। नरकायुका स्त्रीवेदके समान जानना। मनुष्य, तिर्यंचआयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शत-पृथक्त्व अन्तर है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६३ सागरोपम अन्तर है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिपचकका जघन्य एक समय उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है। देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व अन्तर है।

नपुसकवेदमे–५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क अगुरुलघु उपघात निर्माण और ५ अन्तरायोमे अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक

ताणु०४ इत्थि णपुंसक० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग० दुस्सरअणादे० णीचा० जह० अंतो०, एगस०। उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सादासादा० पंचणो० पंचिंदि० समचदु० परघादु०-पसत्थ० तस०४ थिरादि-दोण्णियु०-सुभ०-सुस्सर-आदे० जह० एग०, उक्क० अंतोमु०। अट्ठक० दोआयु० वेउव्वि० छक्क० मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभाग देसू०। चदुजा० आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे०। ओरालिय० ओरालि०अंगो० वज्जरिसभ० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। तित्थय० जहण्णु० अंतो०। अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगि० उच्चा० पंचंत० जहण्णु०

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तीर्यंचगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तीर्यं-चानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त अथवा एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।[1]

विशेषार्थ–मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वयुक्त हो, सातवे नरकमे उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त किया। आयुके अन्तमे मिथ्यात्वका पुनः प्राप्त करके (४) आयुको बाँध (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंमे कम तेतीस सागरोपम नपुंसकवेदी मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर रहा। (पृ० १०७) यही अन्तर मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका होगा।

साता असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ८ कषाय, २ आयु, वैक्रियिक पट्क, मनुष्यगतित्रिक, आहारकद्विकका ओघवत् जानना चाहिए। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है। जाति ४, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। तीर्थंकरका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—खुद्दाबंधमे स्त्रीवेदीका जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-ग्रहणकाल "**जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं**" (सूत्र ८१) कहा है। उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं**" (८२) असंख्यातपुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल कहा है।

पुरुषवेदीका जघन्य अन्तर एक समय "**जहण्णेण एगसमओ**" (८४) कहा है। इसका खुलासा वीरसेन स्वामीने इस प्रकार किया है पुरुषवेदसहित उपशम श्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो एक समय तक पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमे मरणकर पुरुषवेदी जीवोंमे उत्पन्न होनेवाले जीव पुरुषवेदका अन्तर एक समय मात्र पाया जाता है। (खु०

---

[1] "णउंसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।" —षट् खं० अंतरा० २०७-९।

अंतो० । सादावे० णत्थि अंत० ।

३९. कोध०—पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० सोलस० चदुआयु० आहारदुग० पंचंत० णत्थि अंत० । णिद्दा-पचला० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क०

ध० टीका पृ० २१४) इनका उत्कृष्ट अन्तर असख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल है, "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपयिट्टं**" (सूत्र २३)

नपुसक वेदीका जघन्य अन्तर "**जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" (८७) अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—नपुसकवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान—क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुवाले अपर्याप्तक जीवोंमें नपुंसकवेदको छोडकर स्त्री व पुरुपवेद नहीं पाया जाता और पर्याप्तकोंमे अन्तर्मुहूर्तके सिवाय क्षुद्रभवग्रहण काल नहीं पाया जाता।

नपुंसकवेदीका उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं**" (८८) सागेरापमशत पृथक्त्व है। क्योंकि नपुसकवेदसे निकलकर स्त्री और पुरुष वेदोंमे ही भ्रमण करनेवाले जीवके सागरोपम शत-पृथक्त्वसे ऊपर वहाँ रहना संभव नहीं है। पृ० २१५।

अपगत वेदमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। साता वेदनीयका अन्तर नहीं है।

विशेपार्थ—अपगतवेदीके "**उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" (९०) उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसका स्पष्टीकरण धवलाटीकामें इस प्रकार है, उपशम श्रेणीसे उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र सवेदी होकर अपगत-वेदित्वका अन्तर कर पुनः उपशमश्रेणीको चढकर अपगत वेदभावको प्राप्त होनेवाले जीवके अपगतवेदित्वका अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है। उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवों-का उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, "**उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं**" (९१)। इसका स्पष्टीकरण वीरसेन आचार्यने इस प्रकार किया है : किसी अनादि मिथ्या दृष्टि जीवने तीनों करण करके अर्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमे सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर उपशम श्रेणीको चढकर अपगतवेदी हो गया। वहाँसे फिर नीचे उतरकर सवेदी हो अपगतवेदका अन्तर प्रारम्भ किया और उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण भ्रमण कर पुनः ससारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेप रहनेपर उपशमश्रेणी-को चढकर अपगतवेदी हो अन्तरको समाप्त किया। पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपकश्रेणीको चढकर अवन्धक भावको प्राप्त किया। ऐसे जीवके अपगतवेदित्वका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अन्तर-काल प्राप्त हो जाता है।

३९ क्रोधमें–५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ—निद्रा, प्रचलाका बन्ध अपूर्वकरणके प्रथमभागपर्यन्त होता है। इन प्रकृतियोंका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण करके, उपशान्तकपाय पर्यन्त चढकर तथा

१ "अवगदवेदेसु अणियट्टि-उवसम-सुहुम उवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।" —षट्खं० अंतरा० २१४-२१७।

अंतो० । माणे-तिण्णि संजलणा०णत्थि अंत० । मायाए दोण्णि संज० णत्थि अंत० । सेसाणं कोधभंगो । लोभे-पंचणा० सत्तदसणा० मिच्छ० बारसक० चदुआयु० आहारदु० पंचंत० णत्थि अंत० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि णिद्दापचला जहण्णु० अंतो० । अकसाई-साद० णत्थि अंत० । केवलणा०-यथाक्खाद० केवलदंस० एवं चेव ।

४०. मदि० सुद०-पचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा० छण्णोक० पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग सुस्सर-आदेज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णपुंस० ओरालियस० पंचसंठा० ओरालिय० अंगो० छसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोप० दे० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकाल असंखे० । तिरिक्खायु० जह० अतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०, उक्क०

उतरते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागमे पुनः बन्ध प्रारम्भ कर देता है। इस कारण इनका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है।

मानमे-३ संज्वलनका अन्तर नहीं है। मायामे-दो संज्वलनका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंमे क्रोधके समान भंग जानना चाहिए। लोभकपायमे-५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष-निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अकपायीमे-सातावेदनीयका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—सातावेदनीयका अप्रमत्तसे लेकर सयोगीकेवली पर्यन्त निरन्तर बन्ध होता है। इस कारण उपशान्तकपाय या क्षीणकपायमे साताका अन्तर नहीं बताया है।

केवलज्ञान, यथाख्यात सयम, केवलदर्शनका अकपायकी तरह वर्णन जानना चाहिए।

४० मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्त कपायादि गुणस्थानमे होगे। इन कुज्ञानयुगलमे आदिके दो गुणस्थान ही पाये जाते है। इससे ज्ञानावरणादिका अन्तर नहीं कहा।

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकपाय, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, औदारिक शरीर, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। तीन आयु अर्थात् देव, नर, नरक आयुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गल परावर्तन है। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व अन्तर है। वैक्रियिक पट्कका जघन्य एक

अणंतकालं असंखे० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० एक्कतीसं सादि० । मणुसगदितिग ओघं । चदुजादि० आदाव-थावरादि०४ जह० एगस०, उक्क० एक्कतीसं सादि० । एवं अब्भवसिद्धियमिच्छादिट्ठि० । विभंगे-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० णिरय० देवायु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उपधा० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । दोआयु० देवोओघं । सेसाणं० जह० एग०, उक्क० अंतो । आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० सादासा० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचतु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि०

समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गल परावर्तन है। तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। मनुष्यगतित्रिकमें ओघकी तरह जानना चाहिए। ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। अभव्यसिद्धिकमिथ्यादृष्टिका भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। उसका स्पष्टीकरण धवला टीकामें इस प्रकार किया गया है : "मति अज्ञान तथा श्रुताज्ञानसे सम्यक्त्व ग्रहण कर मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमें आकर कमसे कम कालका अन्तर देकर पुनः मति अज्ञान, श्रुताज्ञान भावमें गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

उक्त अज्ञानी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण वेछावट्ठि सागरोपमाणि" (९९) दो छयासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपमकाल है। इसपर वीरसेन स्वामीने इस प्रकार प्रकाश डाला है किसी कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवके सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपमकाल प्रमाण सम्यग्ज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व-मिथ्यात्वको जाकर मिश्रज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपम-प्रमाण परिभ्रमण कर मिथ्यात्वको जानेसे दो छयासठ सागरोपम प्रमाण मतिश्रुत-अज्ञानोंका अन्तरकाल पाया जाता है।

शंका—दो छयासठ सागरोपमोंमें जो कुछ कम काल बतलाया है उसका क्या हेतु है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि उपशम सम्यक्त्व कालसे दो छयासठ सागरोपमोंके भीतर मिथ्यात्वका अधिक काल पाया जाता है (जीवट्ठाण अन्तराणुगम सूत्र ४ की टीका)। सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानको मतिश्रुत अज्ञान रूप मानकर कितने ही आचार्य उपर्युक्त अन्तर-प्ररूपणामें सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर नहीं दिलाते, पर यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वभावके अधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्वके समान एक अन्य जातिका बन जाता है अतः इस ज्ञानको कुमति कुश्रुत रूप माननेमें विरोध आता है।

विभंगावधिमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरक देवायु तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। दो आयुका देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

तस०४ थिरादि-दोण्णियुग० सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । दोआउ० देवग०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । मणुसगदिपंचगं जह० वासपुध०, उक्क० पुव्वकोडि० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसा० सादिरे० । एवं ओधिदं० सम्मादिट्ठित्ति ।

मणपज्जवणा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि-पंचिंदि० चदुसरीर० समचदु० दोअंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सादासा०-चदुणोक० थिरादितिण्णियु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० ।

वर्ण ४, अगुरुलघु४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब इन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बन्ध रुक गया । बादमें जैसे ही वह जीव नीचे गिरा कि इनका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो गया । इस दृष्टिसे इन ज्ञानोंमें बन्धका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है ।

आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है ।

विशेषार्थ—एक मनुष्यने अविरत दशामें अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका बन्ध किया । आठ वर्षकी अवस्थाके अनन्तर सम्यक्त्व तथा महाव्रतको एक साथ धारण कर एक पूर्व कोटिसे अवशिष्ट बची आयु प्रमाण महाव्रती रह मरणकालमें असंयमी बन पुनः ८ कषायोंका बन्ध किया । इस प्रकार देशोन पूर्व कोटि अन्तर होता है ।

दो आयु, देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ३३ सागर है । मनुष्य गतिपंचकका जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर है । अवधिदर्शन तथा सम्यक्त्वमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

मनःपर्ययज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—कोई मनःपर्ययज्ञानी उपशमश्रेणी चढ़कर उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका अबन्ध हो गया । पश्चात् वह सूक्ष्म-साम्परायादि गुणस्थानोंमें उतरा, तो पुनः उन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ हो गया । इस प्रकार यहाँ अन्तर जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।

साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अन्तर है ।

४१. एवं संजद० । एवं चेव सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजदा० । णवरि धुविगाणं णत्थि अंत० । सुहुमसंप० सव्वपगदीणं णत्थि अंत० । असंजदे धुविगाणं णत्थि अंत० । थीण०३ मिच्छ० अणंताणु०४ इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थ० उज्जो० दूभग-दुस्स०-अणादे० णीचागो० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं० देसू० णवरि थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो० । चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च ओघं । एइंदिय-दंडओ तित्थयरं च णपुंसकवेदभंगो । चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं ।

विशेषार्थ—कोई एक कोटिपूर्वकी आयुवाला जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ । आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें बन्ध किया । इसके अनन्तर मरणकाल आनेपर पुनः आयुका बन्ध किया । इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग देवायुका अन्तर होगा ।

विशेषार्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञानवालोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । क्योंकि मति, श्रुत, और अवधिज्ञानी देव या नारकी जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त कर मति-अज्ञान, श्रुताज्ञान, व विभंगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमें आनेपर उक्त ज्ञानोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है । यहाँ यह विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानी संयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त काल तक उस ज्ञानके विना रहकर फिर उसी मनःपर्ययज्ञानमें लाया जाना चाहिए । (धवला-टीका खु० ब० पृ० २२०)

४१. संयममें भी इसी प्रकार है । सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयतासंयतोंमें भी इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है । सूक्ष्मसाम्परायमें—सर्व प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है । असंयतमें—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद तिर्यंचगति ५ संस्थान ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—कोई मनुष्य या तिर्यंच मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मरणकर सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वी हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बन्ध रुका । इस प्रकारकी अवस्था आयुके अन्तकाल अवशेष रहने तक रही । पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः तिर्यंच आयुका बन्ध कर (५) विश्राम ले (६) निकला । इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बन्ध नहीं होनेसे इतना अन्तर रहा । (ध० टी० अन्तरा० पृ० १३४)

विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि ३ मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चार आयु वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिकका ओघवत् जानना चाहिए । एकेन्द्रिय दण्डक तथा तीर्थंकरका नपुंसकवेदके समान भंग जानना चाहिए । चक्षुदर्शनमें—त्रस पर्याप्तकोंके समान भंग जानना चाहिए । अचक्षुदर्शनमें—ओघवत् अन्तर जानना चाहिए ।

४२. किण्णाए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाक०० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ०-पंचंत० दो-आयु० णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो० । इत्थि० णपुंसक० दोगदि० पंचसंठा० पंचसंघ० दोआणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्स० अणादे० णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० दे० । दोआयुगस्स णिरयभंगो । वेउव्विय० वेउव्विय०अंगो० जह० एग०, उक्क० बावीसं सा० (१) । सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो० ।

४३. एवं णील-काऊणं । णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो । वेउव्वि० वेउव्वि०-अंगो० जह० एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसागरो० ।

खुद्दाबन्धमें चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तर 'जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं' (सूत्र ११६) क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इसपर धवलाटीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं, जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहण मात्र आयु स्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल चक्षु-दर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोंमें चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है, उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहण मात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनीका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (१२० सूत्र) असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

अचक्षुदर्शनी जीवोंके विषयमें 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' (सूत्र १२२) अन्तर नहीं है, वे निरन्तर होते हैं। अचक्षुदर्शनीका अन्तर केवलदर्शनी होनेपर हो सकता है, किन्तु केवल-दर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनकी उत्पत्तिका अभाव है। क्षायिक दर्शनके होनेपर क्षायोपशमिक दर्शनका अभाव हो जाता है।

४२. कृष्णलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तराय तथा २ आयुका अन्तर नहीं है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है [उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर अन्तर है] । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, २ गति, ५ संस्थान, ५ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है। दो आयुका नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट २२ सागर जानना चाहिए। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४३. इसी प्रकार नील तथा कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। विशेष, मनुष्यगतित्रिक-में सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सत्रह सागर तथा सात सागर अन्तर है।

---

१ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय–णीललेस्सिय–काउलेस्सियाणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ —खुद्दाबंध सूत्र १२५-१३० ।

४४. तेउ०–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म० आहार०-अंगो० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० पंचसंठाण० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि०। सादासाद-पंचणोक० मणुस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय०-अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थ० तस० थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्ख-मणुसायु० देवोघं। देवायुगं णत्थि अंतरं। देवगदि०४ जह० दसवस्ससह० अथवा पलिदो०-सादि०। उक्क० बेसागरो० सादि०।

४५. पम्माए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदिय० चदुसरी०-ओरालियअंगो० आहारस० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसं तेउभंगो। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। एइंदिय-आदाव-थावरं

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याके समान नील तथा कापोतलेश्यायुक्त दो जीवोंने वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपांगका बन्ध करके मरण किया और क्रमशः पाँचवें तथा तीसरे नरकमें जन्म धारण किया। वहाँ सत्रह सागर तथा सात सागरपर्यन्त उक्त दोनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं हो सका। पश्चात् मरण कर वे मनुष्य हुए, जहाँ उन प्रकृतियोंका पुनः बन्ध हो सका। इस प्रकार सत्रह तथा सात सागर प्रमाण अन्तर सिद्ध हुआ।

४४ तेजोलेश्यामें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, आहारक तैजस कार्माण शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त [और उत्कृष्ट साधिक दो सागर] है।

विशेषार्थ—तेजोलेश्यावाले किसी मिथ्यात्वी जीवने सौधर्मद्विकमें उत्पन्न हो साधिक दो सागर प्रमाण स्थिति प्राप्त की। वहाँ छहों पर्याप्ति पूर्ण कर विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको ग्रहण कर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वी हो मरण किया। उसकी अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व आदिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम कहा है।

स्त्रीवेद नपुंसकवेद तिर्यंचगति एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप उद्योत अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रका जघन्य एक समय उत्कृष्ट साधिक दो सागर है। साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति समचतुरस्र संस्थान औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति त्रस स्थिरादि दो युगल सुभग सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायु-मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवायुका अन्तर नहीं है। देवगति ४ का जघन्य दस हजार वर्ष अथवा साधिक पल्यप्रमाण है। उत्कृष्ट दो साधिक दो सागर है।

४५ पद्मलेश्यामें–५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण १२ कषाय, भय जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति चार शरीर औदारिक अंगोपांग आहारकशरीर, अंगोपांग वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ निर्माण तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। शेषका तेजोलेश्या-

णत्थि। देवगदि०४ जह० बेसाग० सादि०, उक्क० अट्ठारस० सादिरे०।

४६. सुक्काए—पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा०-पचंत० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला ओघं। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं देसू०। अट्ठक० देवायु० मणुसग० ओरालिय० ओरालियअंगो० मणुसाणु० णत्थि अंतरं०। मणुसायु० देवोघं। देवगदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। आहारदुगं जहण्णु० अंतो०। भवसिद्धिया[1] ओघं।

के समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर ग्रहण करना चाहिए। यहाँ एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका बन्ध सौधर्मद्विक पर्यन्त होता है। वहाँ पीतलेश्या पायी जाती है। पद्मलेश्यामें इनका बन्ध नहीं है, अत अन्तर नहीं कहा है।

देवगति ४ का जघन्य अन्तर साधिक दो सागर तथा उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेषार्थ—पद्मलेश्यावाले देवोंकी जघन्य स्थिति साधिक दो सागर है और उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। इनके देवगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होगा। इस अपेक्षा उपरोक्त अन्तर कहा है।

४६ शुक्ललेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, ४ संज्वलन, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मांण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभ-संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पंच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष–निद्रा-प्रचलाका ओघवत् जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। [उत्कृष्ट कुछ कम इकतीस सागर है।]

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाला द्रव्यलिंगी जीव ३१ सागरोंकी स्थितिवाले अन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर, विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें पुन मिथ्यात्वको प्राप्त कर मरण किया। इस प्रकार देशोन ३१ सागर प्रमाण मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर हुआ। इस अपेक्षा मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी आदिका अन्तर उतना ही कहा गया है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३१ सागर है। आठ कषाय, देवायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका अन्तर नहीं है। मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। भव्यसिद्धिकोंमें–ओघवत् जानना चाहिए।

१ भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतर केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतर, णिरंतर ॥ —खुद्दाबंध सूत्र १३१-१३२

कुदो ? भवियाणमभवियाण च अण्णोण्णसरूवेण परिणामाभावादो। —खुद्दाबंध टीका पृ० २३०।

४७. खइगसम्मादिट्ठि धुविगाणं अट्ठकसायाणं च ओधिभंगो। मणुसायु देवोघं। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंत०। देवगदि०४ आहारदुग जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सादादीणं ओधिभंगो।

४८. वेदगे धुविगाणं तित्थयरस्स च णत्थि अंत०। अट्ठक० दोआयु० मणुसगदिपंचगं ओधिभंगो। देवगदि०४ जह० पलिदोप० सादि०, उक्क० तेत्तीसं सा०। आहारदुग जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणा, अथवा तेत्तीसं सादिरे०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

४९. उवसम०–पंचणा० चदुदंस० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०

४७ क्षायिकसम्यक्त्वमें–ध्रुव प्रकृति तथा आठ कषायोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटिका त्रिभाग है।

विशेषार्थ—कोई क्षायिकसम्यक्त्वी जीव एक कोटिपूर्वकी आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर उसने आगामी देवायुका बन्ध किया और आयुके पूर्ण होनेके पूर्व पुनः उसी आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम एक कोटि पूर्वका त्रिभाग देवायुका अन्तर रहा।

मनुष्यगतिपंचकमें अन्तर नहीं है। देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। सातादि प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए।

४८ वेदकसम्यक्त्वमें ध्रुव प्रकृतियाँ तथा तीर्थंकर प्रकृतिका अन्तर नहीं है। आठ कषाय, (अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रत्याख्यानावरण ४), दो आयु, मनुष्यगतिपंचकका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। देवगति ४ का जघन्य साधिक पल्य है तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ—किसी वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यने सुरचतुष्कका बन्ध करनेके अनन्तर मरण करके सौधर्मद्विक या सर्वार्थसिद्धिमें जन्म धारण किया। वहाँ सौधर्मद्विककी जघन्य आयु साधिक पल्यप्रमाण वेदकसम्यक्त्वी रहा और सुरचतुष्कका बन्ध नहीं हुआ। मरणके बाद पुनः मनुष्य हो, उसका बन्ध प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस सागरप्रमाण वेदकसम्यक्त्वयुक्त रहकर सुरचतुष्कका बन्ध नहीं किया। मरण करके मनुष्य होकर सुरचतुष्कका बन्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त बन्धका अन्तर जानना चाहिए।

सुभ० सुस्स० आदे० णिमि० तित्थ० उच्चा० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिद्दा-प० अट्ठक० देवगदि०४ आहारदुग० जहण्णु० अंतो०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंतरं।[1]

५०. सासणे-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तिण्णिआयु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

५१. सम्मामि०-दो वेदणी०-चदुणो० थिरादितिण्णियु० जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं णत्थि अंतरं।

५२. सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तभंगो।[2] असण्णि-धुविगाणं णत्थि अंत०।

प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पंच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—किसी उपशमसम्यक्त्वी जीवने उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्त-कषाय गुणस्थान प्राप्त किया, तब ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति हो गयी पुनः नीचे गिरनेपर उन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ हो गया। इस दृष्टिसे यहाँ अन्तर कहा है।

निद्रा-प्रचला, आठ कषाय, देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—निद्रादिका बन्धक कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशम श्रेणीमें चढ़ा। वह जब अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तथा आगेके गुणस्थानोंमें चढ़ा, तब निद्रादिका बन्ध होना रुक गया। पश्चात् नीचे उतरनेपर पुनः बन्ध आरम्भ हो गया। इसका अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होगा।

मनुष्यगतिपंचकका अन्तर नहीं है।

५० सासादनसम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयु, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण ५, अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

५१ सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमें—दो वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।

५२ संज्ञीमें—पंचेन्द्रियपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए। असंज्ञीमें-ध्रुव प्रकृतियोंका

---

१ सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदकसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥१३३॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥१३४-१३५॥ —खुद्दाबंध २, पुस्तक ७, पृ० २३१।

२ सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।

३ असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ खुद्दाबंध सूत्र १४२-१४७।

चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च तिरिक्खोघं। सेसाणं जह० एग० स०, उक्क० अंतो०।

५३. आहारगे–पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचतु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णियुग० सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय०-पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचलाणं जहण्णु० अंतो०। तिण्णि आयु० आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। एवं चेव वेउव्वियछक्क-मणुसगदितिगं च। णवरि जह० एग०। ओरालिय० ओरालि०-अंगो० वज्जरिस० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। सेसाणं ओघं। अणाहार०[1] कम्मइगभंगो।

एवं अंतरं समत्तं।

अन्तर नहीं है। चार आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका तिर्यंचोंके ओघ समान जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है।

५३ आहारकोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, संज्वलन ४, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस कार्माण-शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा-प्रचलाका जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ३ आयु, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अंगुलके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका जानना चाहिए। विशेष इनका जघन्य एक समय प्रमाण है। औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभसंहननका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् है।

अनाहारकोंमें–कार्माण काययोगके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ।

[सण्णियासपरूवणा]

५४. सण्णियासो दुविधो सत्थाणसण्णियासो चेव परत्थाणसण्णियासो चेव। सत्थाणसण्णियासे पगदं। दुविधो णिद्देसो ओघे० आदेसे०।

५५. ओघे०-आभिणिबोधिय-णाणावरणीयं बंधंतो चदुण्णं णाणावरणीयाणं णियमा बंधगो। एवं एक्कमेक्कस्स बंधगो। णिद्दाणिद्दं बंधंतो अट्ठदंसणा० णियमा बंध०। एवं थीणगिद्धितियस्स। णिद्दं बंधं० थीणगिद्धितियं सिया बंधगो सिया अबंधगो, पंचदंसणा० णियमा बंधगो। एवं पचला०। चक्खुदंसणा० बंध० पंच-

---

[सन्निकर्षप्ररूपणा]

५४ सन्निकर्ष दो प्रकारका है, एक स्वस्थान सन्निकर्ष और दूसरा परस्थान सन्निकर्ष है। यहाँ स्वस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है। उसका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ—स्वस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली एकजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है। परस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली सजातीय एवं विजातीय प्रकृतियों-का ग्रहण किया गया है।

५५ ओघसे—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला शेष श्रुतादि ज्ञानावरण-चतुष्टयको नियमसे बाँधता है। इसी प्रकार एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला ज्ञानावरणकी शेष प्रकृतियोंका बन्धक है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणकी मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञानावरणरूप किसी भी प्रकृतिका बन्ध होनेपर शेष चार प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध होगा। ऐसा नहीं है कि अवधिज्ञानावरणका तो बन्ध होता रहे और मनःपर्ययज्ञानावरणादिका बन्ध न हो। पाँचों ज्ञानावरणके भेदोंका सदा एक साथ बन्ध होता रहता है।

निद्रानिद्राका बन्ध करनेवाला ८ दर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिकमें भी समझना चाहिए। निद्राका बन्धक स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्धक है भी और नहीं भी है। किन्तु वह दर्शनावरणपंचक अर्थात् चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण तथा प्रचलाका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध सासादन गुणस्थान तक होता है और निद्रा प्रकृतिका अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त बन्ध होता है, अतः निद्राका बन्ध होनेपर स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध होना अनिवार्य नहीं है। हो भी सकता है, नहीं भी होवे।

निद्राके समान प्रचलाका भी वर्णन जानना चाहिए। चक्षुदर्शनावरणका बन्धक जीव निद्रादिक पाँच दर्शनावरणका कथंचित् बन्धक है कथंचित् अबन्धक है, किन्तु अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणमें जानना चाहिए।

दंसणा० सिया बंधगो सिया अबंधगो, तिण्णि दंसणा० णियमा बंधगो। एवं तिण्णि दंसणा०। सादं बंधंतो असादस्स अबं०। असादं बंध० साद० अबं०।

५६. मिच्छत्तं बंधंतो सोलसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बंधगो, सिया अबंधगो। पुरिसवेदं सिया अबंधगो [बंधगो], सिया अबंधगो। णपुंस० सिया बंध० सिया अबंध०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बंधगो, ण चेव अबंध०। हस्स-रदि सिया बंध० सिया अबंध०। अरदि-सोगा० सिया बंध० सिया अबंध०। दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंधगो ण चेव अबंध०।

५७. अणंताणुबंधिकोधं बंधंतो मिच्छत्तं सिया बंध० सिया अबं०, पण्णारसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बं०, पुरिस० सिया बं०, णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बंधओ ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बं०। अरदिसोगं सिया बंध०। दोण्णं युगला० एक्कतरं बंध०, ण चेव अबं०। एवं तिण्णि कसायाणं।

५८. अपच्चक्खाणं कोधं बंधतो मिच्छत्त० अणंताणु०४ सिया बंधगो। सिया अबंध०। एक्कारसक०-भयदुगु० णियमा बंध०। इत्थिवे० सिया बंध०। पुरिसवं०[वे०] सिया बंध०। णपुंस० सिया बंध०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बंधगो। ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसो० सिया बं०। दोण्णि युग० एक्कतरं बंधगो ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाणं।

५९. पच्चक्खाणावर० कोधं बंधंतो मिच्छ० अट्ठकसा० सिया बं० सिया अबं०। सत्तक०-भयदु० णियमा बंधगो। इत्थि० सिया बं०। पुरिस० सिया बं०। णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बं०, ण चेव बंध० [अबंधगो]। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसोगाणं सिया बंधगो। दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंध०, ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाण।

६०. कोधसंज० बंधं० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० सिया बंध० तिण्णि संज०

---

५८ अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान तक बन्ध होता है, इस कारण अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धके साथ मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकी अनिवार्यता नहीं है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोधको छोड़कर शेष ग्यारह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनो वेदोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—हास्य-शोक, रति-अरति ये परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ है। अत जब हास्य-रतिका बन्ध होगा, तब शोक-अरतिका बन्ध नहीं होगा।

अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभमे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

५९. प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रत्याख्यानावरण ३ तथा संज्वलन ४ इस प्रकार ७ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीन वेदोंमे-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका भी वर्णन जानना चाहिए।

६० सज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात्

णियमा बंध० । इत्थि० सिया बं० । पुरिस० सिया बं० । णपुंस० सिया बं० । तिण्णि वेदाणं एक्कदरं बंध० । अथवा तिण्णं पि अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युग० एक्कतरं बं० अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णं संजलणाणं । णवरि माणं बं० मायालो० णियमा बंध० । तेरसक० भयदुगुं० सिया बं० । मायं बंधं० लोभं णियमा बंध० । चोद्दसक० भयदु० सिया बं० । लोभसंज० बंधं० पण्णारसक० भयदु० सिया [बंधगो] ।

६१. इत्थिवेदं बंधंतो मिच्छत्त सिया [बं०] । सोलसक० भयदु० णियमा बं० । हस्सरदि सिया० । अरदिसोग० सिया० । दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंध० णव (?) चेव अबं० ।

६२. पुरिसवेदं बंधंतो मिच्छत्तं बारसक० भयदु० सिया बं० हस्सरदि सिया बं० अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बं० । अथवा दोण्णं पि अबं० । चदुसंज० णियमा बं० ।

६३. णपुंसं बंधं० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगु० णियमा बं० । हस्सरदि सिया० [बं०] अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एकतरं बं०, ण चेव अबं० ।

६४. हस्सं बंधं० मिच्छत्त० बारसक० सिया बं० । चदुसंज० रदि-भय-दुगुं णियमा बं० । इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया बं० । तिण्णि वेदाणं एक० [बंधगो] ण चेव अबं० । एवं रदि ।

६५. अरदिं बंधं० मिच्छ० बारसक० सिया [बं०] । चदुसंज० सोग-भयदुगु० णियमा बं० । इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया० । तिण्ण वेदाणं एकद० बंध०, ण चेव अबंध० । एवं सोगं ।

६६. भयं बंधंतो मिच्छत्त-बारसक० सिया० [बंधगो] । चदुसंजल० दुगु० णियमा बं० । इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया० । तिण्णं वेदाण एकद० [बंधगो]

विशेषार्थ—पुरुषवेदके बन्धकके सज्वलन ४ का [illegible]
नियमसे बन्ध होता है। अतः यहाँ सज्वलनचतुष्कको छोड़कर [illegible]
रूपसे बन्ध कहा है।

हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् [illegible]
एक युगलका बन्धक है। अथवा दोनोंका अबन्धक है। [illegible]

६३ नपुंसकवेदको बाँधनेवाला—मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा [illegible]
है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। [illegible]
तरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—नपुसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धकोंके १६ कषायोंका [illegible]
है, किन्तु पुरुषवेदके बन्धकोंके संज्वलनको छोड़कर शेष १२ कषायोंका स्यात् [illegible]
इसका कारण यह है कि नपुसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धक क्रमशः मिथ्यात्व, [illegible]
होते है, वहाँ १६ कषायोंका बन्ध होता है। पुरुषवेदका बन्ध अनिवृत्तिकरणगुण[illegible]
होता है, इस कारण पुरुषवेदके बन्धकोंके १२ कषायोंके कथंचित बन्धका [illegible]
है, किन्तु सज्वलन ४ का नियमसे बन्ध कहा है।

६४ हास्यका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व तथा १२ कषायका स्यात् बन्धक है।

विशेषार्थ—हास्यका बन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त होता है, किन्तु मिथ्यात्व [illegible]
१२ कषायोंका उसके नीचे पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण हास्यके बन्धकके मिथ्यात्वादिका
बन्ध विकल्प रूपसे बताया है।

चार संज्वलन, रति, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक-वेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार रति प्रकृतिमे जानना चाहिए।

६५. अरतिका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बन्धक है। ४ संज्व-लन, शोक, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमें-से एक वेदका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार शोकमे जानना चाहिए।

६६ भयका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बन्धक है। ४ सज्वलन तथा जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनो वेदोंमें-से

ण चेव अबं०। हस्सरदी सिया [बं०], अरदिसोग० सिया [बं०]। दोण्णं युग० [illegible] ण चेव अबं०। एवं दुगु०।

६७. णिरयायुगं बंधंतो तिरिक्खायुगं मणुसायुगं देवायुगं अबंधगो। [illegible] अबंधगो।

६८. णिरयगतिं [दिं] बंधंतो पंचिंदि०वेउव्विय-तेजाक० हुंडसंठाणं वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणुपु० अगु०४ अपस० तस०४ अथिरादिछ० णिमिण० णियमा बं०। एवं णिरयाणुपुव्वि०।

६९. तिरिक्खगतिं बंधंतो ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ तिरक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णियमा बंध०। एइंदियजादि सिया०। एवं बेइं० तेइं० चदु० पंचिंदि० सिया [बंधगो]। पंचण्णं जादीणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो। एवं छसंठा० [illegible] बंधगो। ण चेव अबंधगो। ओरालि० अंगो० परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं०। छसंघ० सिया०। दो विहाय० सिया०। दो सरं सिया बंधगो,

---

[illegible] अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका [illegible]। दोनों युगलोंमें-से एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। जुगुप्साका [illegible] इसी प्रकार जानना चाहिए।

६[illegible] नरकायुका बन्ध करनेवाला-तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायुका अबन्धक है। [illegible] अन्य आयुका बन्ध करनेवाला शेषका अबन्धक है। जैसे तिर्यंचायुका [illegible] आयुओंका अबन्धक होगा। कारण एक समयमें बध्यमान एक [illegible]

सिया अबंधगो। अथवा छण्ण दोण्णं दोण्णं पि अबं०। तस० सिया०। थावरं सिया०। दोण्णं पगदी० एक्कतरं बं०, ण चेव अबं०। एवं अट्ठयुगलाणं। एवं तिरिक्खाणु०।

७०. मणुसगदिं बं० पंचिंदि० ओरालिय-तेजाक० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संठा० छसंघ० पज्जत्ता० अपज्ज० थीरादि-पंच-युग० सिया बं०, सिया अबं०। एदेसिं एक्कतरं बं०, ण चेव अबं०। परघादुस्सा० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। दो विहा० दो सर० सिया बंध०, सिया अ०। अथवा दोण्णं दोण्णं पि अब०। एवं मणुसाणु०।

७१. देवगदिं बंधंतो पंचिदि० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० णियमा बं०। आहारदुग-तित्थय० सिया० [बं० सिया] अबं०। थिरादितिण्णि यु० सिया बं०, सिया अबंध०। तिण्णि युगलाणं एक्कतरं बंध०, ण चेव अब०। एवं देवाणुपु०।

दो विहायोगतिका स्यात् बन्धक है। दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा दो स्वरोंका भी अबन्धक है।

विशेषार्थ--एकेन्द्रियोंमें संहननके समान विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इस कारण ६, २, २ का अबन्धक भी कहा है।

त्रसका स्यात् बन्धक है। स्थावरका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और स्थिर इनके आठ युगलोंका इसी प्रकार वर्णन समझना चाहिए अर्थात् प्रत्येक युगलमें से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तिर्यंचानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके तिर्यंचगतिके समान भंग है।

७० मनुष्यगतिका बन्ध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंचयुगलका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा दो विहायोगति, दो स्वरका भी अबन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमें मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए।

७१ देवगतिका बन्ध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, तीर्थंकरका [स्यात् बन्धक] स्यात् अबन्धक है। स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक स्यात् अबन्धक है। तीन युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान जानना चाहिए।

७२. एइंदियं बंधंतो तिरिक्खग० ओरालिय-तेजाक० हुंड० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०उप० थावर-दूभग-अणा० णिमि० णियमा० । पर० उस्सा० आदाउज्जो० सिया बं०, सिया अबं० । बादरसुहुम० सिया [बं०] । दोण्णं० एकदरं बं०, ण चेव अबं० । एवं पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अज० सिया एकतरं बं०, ण चेव अ० । एवं थावरं० ।

७३. बीइंदि० बंध० तिरिक्खग० ओरालि० तेजाकम्म० हुंडसं० ओरालि० अंगो० असंपत्त० वण्ण०४ तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तस० बादरपत्ते० दूभग-अणा० णिमि० णियमा० [बंधगो] । परघादुस्सा० उज्जोव० अप्पसत्थ० दुस्स० सिया [बं०] सिया अबं० । पज्जत्ता अपज्ज० सिया [बं०] सिया [अबं०] । दोण्ण युगलो० (?) एग० बं०, ण चेव अबं० । एवं थिरादि-तिण्णियुगलाणं एकतरं बं०, ण चेव अबं० एवं तीइंदि० चतुरिंदि० ।

७४. पंचिंदिय-जादिणामं बंधंतो णिरयगदि सिया बं०, सिया अबं० । एवं तिरिक्ख-मणुस देवगदि० । चदुण्णं गदीण एकदरं० बं०, णव चेव अबं० । एवं दो सरीर० छस्संठा० दो-अंगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि पंचयुगलाणं । आहारदुग परघादुस्सा० उज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अ० । तेजाक० वण्ण०४

अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संघ० दोविहा० [illegible] सिया बंधगो। छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं०, अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि [illegible]

७५. ओरालियसरीरं बंधं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण णियमा बंध०। तिरिक्खमणुसगदि सिया [बं०]। दोण्णं एक्कदर बंधगो, ण [illegible] एवं भंगो पंचजादि-छस्संठाणं दो आणु० तसथावरादि णव-युगलाणं। ओरालि० [illegible] परघादु० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० दोविहा० दो-सरं सिया बंध०, सिया अबं०। अथवा [छण्णं] दोण्णं दोण्णं पि अबं०।

७६. वेगुव्वियस० बंधंतो पंचिंदि० तेजाक० वेगुव्विय० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं णियमा बं०, णिरयगदि-देवगदी० सिया बं०। दोण्णं एक्कदरं बं०, ण चेव अबंध०। एवं समचदु० हुंडसंठा० दोण्ण आणुपु० दो [illegible]

तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस-बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन, ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है, अथवा ६, २, २ का भी अबन्ध है।

७५ औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला – तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे बन्धक है। तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—देवगति, नरकगतिका सन्निकर्ष वैक्रियिक शरीरके साथ है औदारिकके साथ नहीं है इससे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

पाँच जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे भी तिर्यंच मनुष्यगति-के समान जानना चाहिए।

औदारिक अंगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत और तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—औदारिक शरीरको धारण करनेवाले एकेन्द्रियके औदारिक अगोपाग नही पाया जाता है। इस कारण औदारिक अगोपागका बन्ध यहाँ विकल्प रूपसे कहा गया है।

छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा [६] २, २ का भी अबन्धक है।

७६ वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवाला – पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ और निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपागका नियमसे बन्ध होता है। इस कारण यहाँ औदारिक शरीर और औदारिक अगोपागके समान विकल्प नहीं है।

नरकगति, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दोमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नही है। समचतुरस्र सस्थान, तथा हुंडक सस्थानमें इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमे अन्यतर-का बन्धक है, अबन्धक नहीं।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरधारी देवोंमें समचतुरस्र संस्थान होता है और नारकियोंमे हुंडक सस्थान पाया जाता है। अन्य संस्थानोंका वैक्रियिक शरीरके साथ सन्निकर्ष नहीं है।

७२. एइंदियं बंधंतो तिरिक्खग० ओरालिय-तेजाक० हुंड० वण्ण०४ तिरि-क्खाणु० अगु०उप० थावर-दूभग-अणा० णिमि० णियमा०। पर० उस्सा० आदाउज्जो० सिया बं०, सिया अबं०। बादरसुहुम० सिया [बं०]। दोण्णं० एकदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अज० सिया एदरं बं०, ण चेव अ०। एवं थावरं०।

७३. बीइंदि० बंध० तिरिक्खग० ओरालि० तेजाकम्म० हुंडसं० ओरालि० अंगो० असंपत्त० वण्ण०४ तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तस० बादरपत्ते० दूभग-अणा० णिमि० णियमा० [बंधगो]। परघादुस्सा० उज्जोव० अप्पसत्थ० दुस्स० सिया [बं०] सिया अबं०। पज्जत्ता अपज्ज० सिया [बं०] सिया [अबं०]। दोण्ण गमणं (?) एद० बं०, ण चेव अबं०। एवं थिरादि-तिण्णियुगलाणं एदरं बं०, ण चेव अबं० एवं तीइंदि० चतुरिंदि०।

७४. पंचिंदिय-जादिणाम बंधंतो णिरयगदि सिया बं०, सिया अबं०। एवं तिरिक्ख-मणुस-देवगदि०। चदुण्णं गदीण एकदरं बं०, णव चेव अबं०। एवं दो सरीर० छस्संठा० दो-अंगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि पंचयुगलाणं। आहार दुग परघादुस्सा० उज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अ०। तेजाक० वण्ण०४

[illegible] चदुग० सिया एदेसिं एक्कदरं बंध० ण चेव अबं०। आहारदुगं सिया [बं०] तित्थयरं सिया [बं] एवं वेगुव्विय अंगो०।

७७. आहारसरीरं बंधंतो देवगदिपंचिंदियजादि-तिण्णं सरीरं० समचदु० दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु० पसत्थ० तस०४ थिरादिछ० णिमि० णियमा बं०। तित्थयरं सिया [बं०] एवं आहारंगोव०।

७८. तेजागसरी० बं० चदुगदि० सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। पंचजादि-दोसरी० छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगलं गदि-[illegible]। आहारदुगं पर० उस्सा० आदाउज्जोव-तित्थय० सिया बं०। दो अंगो० छसंघ० दो विहाय-दोसर० सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि [illegible] बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। एवं कम्मइय०।

७९. वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० समचदु० बंधंतो तिरिक्ख-मणुस-देवगदि

असपत्त बंधंतो दो-गदि सिया बंध० । दोण्णं गदीणं एक्कदर ब० । ण चेव अब०। एवं चदुजादि-छस्संठा० दो-आणु० पज्जत्तापज्ज० थिरादिपंचयुगलाणं । तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण४ अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा ब० । परघा-दुस्सास० उज्जो० सिया [बंधगो०] । दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया [ब०] । दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अब० ।

८३. परघादं बंधंतो चदुगदि सिया ब० सिया अब० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं ब०, ण चेव अब० । एस भंगो पंच-जादि-दो-सरीरं छसंठा० चदु-आणु० तस-थावरादि-णवयुगलाणं पज्जत्तापज्जत्तवज्जं । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० उस्सास-पज्ज० णिमिणं णियमा बंधगो । आहारदुगं आदा-वुज्जो० तित्थय० सिया ब० सिया अब० । दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० सिया ब० सिया अब० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं ब० अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अब० । एवं भंगो उस्सास पज्जत्त० थिर(?)सुभ(?)णामाणं च ।

क्रम है । विशेष यह है कि यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिको छोड देना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका सन्निकर्ष न बतानेसे ज्ञात होता है कि संहनन चतुष्टयके साथ तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता । वज्रवृषभ संहननके साथ तीर्थंकरका बन्ध हो सकता है । तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीमें होता है । अत मिथ्यात्व-सासादनमें बँधने-वाले असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन तथा वज्रवृषभको छोड शेष ४ संहननका अभाव होगा ।

असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननका बन्ध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्यंचगति) का स्यात् बन्धक है । दो गतियोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । ४ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, स्थिरादि पंचयुगलोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास तथा उद्योतका स्यात् बन्धक है । दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है । दो-दोमें-से अन्यतरका बन्धक है । अथवा दो-दोका भी अबन्धक है ।

८३ परघातका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन चारोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक रहित त्रस स्थावरादि ९ युगलोंमें भी इसी प्रकार है । अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है, अन्यका बन्धक नहीं है । तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, पर्याप्त तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । आहारकद्विक, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन २, ६, २, २ में-से किसी एकका बन्धक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है ।

उच्छ्वास, पर्याप्तक, नामकर्ममें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—स्थिर तथा शुभका वर्णन आगे किया गया है, इससे यहाँ पाठमें 'थिर सुभ'-का उल्लेख अधिक पाठ प्रतीत होता है ।

८३ आदावं बंधं० तिरिक्खग० एइंदि० तिण्णि सरी० हुंडसंठा० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-दूभ० अणा० णिमि० णियमा बं०। थिरादि-तिण्णि युग० सिया बं०। तिण्णि युगलाणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०।

८४ उज्जोवं बंधंतो तिरिक्खगदि० तिण्णं सरी० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० णियमा बंधगो। पंच-जादि-छस्संठा० तसथाव० थिराथिर-सुभासुभ-सुभगदूभग-आदेज्जअणादेज्ज-जस०-अजस० सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। ओरालिय० अंगो० सिया बं०। सिया अबं०। छस्संघ० दो विहा० दो सरीर (सरं) सिया बं०। छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं०। अथवा [illegible] दोण्णं दोण्णं पि अबंध०।

८५ अप्पसत्थ-विहाय० बंधंतो तिण्णि गदि सिया बं०, तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं संगो चदुजादि० दो सरी० छस्संठा० दो अंगो० णिग्ग-

तिरिक्ख-मणुसाणुपु० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादे० जस० अज्जस० । तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० णियमा बं० । छस्संघ-सिया बं० । छण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं पि अबं० । उज्जोव० सिया बं० सिया अबं० । एवं दुस्सर० ।

८७. तसं बंधंतो चदुगदि सिया बं० । चदुण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं भंगो चदुजादि-दोसरी० छस्सठा० दो अंगो० चदु-आणुपु० पज्जत्तापज्ज० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-आदेज्ज-अणादेज्ज-जस०-अज्जस० । आहारदुगं परघादु० उज्जोवं तित्थय० सिया बं०, सिया अबं० । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० बादर-पत्ते०-णिमि० णियमा बं० । छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्ण पि अबं० ।

८८. बादरणामं बंधंतो चदुगदि सिया बं०, सिया अबं० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं गदिभंगो पंचजादि-दो सरी० छस्संठा० चदुआणुपु० तसादिणवयु० । आहारदु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं

अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमे पूर्ववत् है अर्थात् स्यात् बन्धक है, एकतरके बन्धक है, अबन्धक नहीं है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है, ६ सहननका स्यात् बन्धक है, ६ मे से किसी एकका बन्धक है, अथवा ६ का भी अबन्धक है ।

विशेष—यहाँ नरकगति तथा एकेन्द्रियकी अपेक्षा संहननका अबन्धक भी कहा गया है ।

उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दुस्वरमे ऐसा ही वर्णन जानना चाहिए ।

८७ त्रसका बन्ध करनेवाला—चार गतिका स्यात् बन्धक है, ४ मे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । ४ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमें इसी प्रकार भग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है । ६ सहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है । अथवा ६, २, २ का भी अबन्धक है ।

८८ बादर नामकर्मका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । चार गतियोंमे-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि नवयुगलमे गतिके समान भंग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक

अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। परघादुस्सा० आदाउज्जो० [illegible] सिया [बं०], सिया अबंध०। एवं असुभ-अज्जसगित्ति।

९१. थिरं बंधंतो तिण्णि-गदि सिया बं०। तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं पंच-जादि दो सरीरं-छसंठा० तिण्णि-आणु० तसथावरादि दोण्णि युग०-सुभादि-चदुयुगलं सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बंधगो। ण चेव अबं०। आहारदु० आदावुज्जोव० तित्थयरं सिया बं०, सिया अ०। दो-अंगो० छस्संघ० दोविहा० दो-सरं सिया बं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंध०। तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पज्जत्त णिमि० णियमा बंधगो। एवं सुभ-जसगित्ति। णवरि जसगित्तीए सुहुम-साधारणं वज्जं।

९२. तित्थयरं बंधंतो दो-गदि सिया बंध०। दोण्णं गदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं दो-सरीरं० दो अंगोवं० दो आणु०-थिरादि-तिण्णि यु० एक्कदरं बंधगो। ण चेव अबंध०। पंचि तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु० ४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्स०-आदे० णिमिणं णियमा बं०। आहारदुगं वज्जरिसभसंघ० सिया [बंधगो]।

बन्धक है। २, ६, २, २ में से एकतरका बन्धक है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

अशुभ तथा अयशःकीर्तिके बन्ध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

९१. स्थिरका बन्ध करनेवाला—३ गति (नरकको छोडकर) का स्यात् बन्धक है। ३ गतिमें-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि दो युगल, शुभादिक चार युगलका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। आहारकद्विक, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो अंगोपाग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन २, ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है। अथवा २, ६, २, २ का भी अवन्धक है। तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, पर्याप्तक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है।

शुभ तथा यशःकीर्तिके बन्ध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यशःकीर्तिके वन्धकके सूक्ष्म तथा साधारण प्रकृतिको छोड देना चाहिए। अर्थात् इनका वन्ध इसके नहीं होगा।

९२ तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध करनेवाला—मनुष्य, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दो गतियोंमे-से किसी एकका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीके ही होता है। अत मिथ्यात्वमें बँधनेवाली नरकगति तथा सासादनमे बँधनेवाली तिर्यंचगतिका बन्ध इसके नहीं होगा।

दो शरीर, २ अगोपाग, २ आनुपूर्वी, स्थिरादि तीन युगलमे-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, वज्रवृषभसहननका स्यात् बन्धक है।

९३. उच्चागोदं बंधंतो णीचागोदस्स अबंधगो। णीचा-गोदं बंधंतो उच्चागोदस्स अबंधगो।

९४. दाणंतराइगं बंधंतो चदुण्णं अंतराइगाणं णियमा बंधगो। एवमण्णमण्णस्स बंधगो।

९५. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदि० तस तेसिं चेव पज्जत्ता पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालिय० इत्थि-पुरिस-णपुंस० कोधादि०४ चक्खुदं० अचक्खुदं० भवसिद्धि० सण्णि-आहारगित्ति, णवरि मणुस०३ ओरालिका० इत्थि० तित्थयरं बंधंतो देवगदि०४ णियमा बंधगो।

९६. आदेसेण णेरइ० एइंदिय-विगलिंदिय-संजुत्त-आहारदुगं वेगुव्वियछक्कं णिरय-देवायुगं च अपज्जत्तगं च वज्जं सेसं गोदव्वं। एवं सव्व-णेरइएसु। णवरि चउत्थी याव सत्तमा त्ति तित्थयरं वज्जं। सत्तमाए मणुसायुगं णत्थि।

९७. तिरिक्खेसु–आहारदुगं तित्थयरं वज्ज, सेसं ओघं। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु वेगुव्वियछक्कं च णिरयदेवायुगं वज्ज-

---

९३. उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—नीच गोत्रका अबन्धक है। नीच गोत्रका बन्ध करनेवाला उच्चगोत्रका अबन्धक है।

विशेष—दोनों गोत्र परस्पर प्रतिपक्षी है। अतः एक जीवके एक साथ दोनोंका बन्ध नही होता है। इस कारण नीचके बन्धकके उच्च अबन्ध होगा अथवा उच्चके बन्धकके नीचका अबन्ध होगा।

९४. दानान्तरायका बन्ध करनेवाला—लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यान्तरायका नियमसे बन्धक है। एकका बन्ध करते समय अन्य चतुष्कका नियमसे बन्ध होता है। अर्थात् दानान्तरायके बन्ध होनेपर अन्य लाभान्तरायादिका नियमसे बन्ध होता है।

९५ मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, त्रस तथा पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रसपर्याप्त, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुसंक वेद, क्रोधादि ४ कषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, भव्यसिद्धिक, संज्ञी, आहारक पर्यन्त इसी प्रकार अर्थात् ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष यह है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोग तथा स्त्रीवेदमे तीर्थकरका बन्ध करनेवाला देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अगोपागका नियमसे बन्धक है।

९६ आदेशसे—नारकियोंमे एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय सयुक्त प्रकृति, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क, नरकायु-देवायु तथा अपर्याप्तकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंको जानना चाहिए। इसी प्रकार सम्पूर्ण नारकियोंमे जानना चाहिए। विशेष, चौथीसे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त तीर्थंकरका बन्ध छोड देना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बन्ध नहीं है।[1]

९७ तिर्यंचगतिमें—आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता है। शेषका ओघवत् वर्णन है। पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमे इसी

---

१ "घम्मे तित्थ बधदि वसा मेघाण पुण्णगो चेव। छट्ठोत्तिय मणुवाऊ ।"–गो० क० गा० १०६।

सेसं तं चेव । एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्ज-त्तसव्वपंचकायाणं । णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि ।

९८. देवेसु णिरयभंगो । णवरि एइंदिय-तिगं जाणिदव्वं । एवं भवणवासिय याव सोधम्मीसाण त्ति । णवरि भवणादि याव जोइसिया त्ति तित्थयरं णत्थि । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोघं । आणद याव णवगेवेज्जा त्ति एवं चेव । णवरि तिरिक्खायुगं तिरिक्खग० तिरिक्खाणु० उज्जोवं णत्थि । अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्तपगदीओ णत्थि । सेसं भाणिदव्वं ।

९९. ओरालि०मिस्से–णिरयगदितिगं देवायुगं आहारदुगं णत्थि । सेसं ओघभंगो । वेगुव्वियका० देवगदिभंगो । एवं वेगुव्वियमि० । णवरि आयुगं णत्थि । आहार० आहारमि० असंजद-पगदीओ आहारदुगं णत्थि । कम्मइगका०

प्रकार जानना चाहिए ।[1]

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे—वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायुको छोडकर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् सन्निकर्ष जानना चाहिए । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक तथा सम्पूर्ण पच कार्योमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगतिचतुष्क नहीं है ।

९८ देवगतिमे नरकगतिका भग है । विशेष, देवोंमे एकेन्द्रिय स्थावर आतापका बन्ध होता है । यह बात भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म, ईशान स्वर्गपर्यन्त है । विशेष भव-नत्रिकमे तीर्थंकर नहीं है ।

विशेषार्थ—देवोंका एकेन्द्रियोंमे भी जन्म होता है, किन्तु नारकी जीव मरण कर नियमसे संज्ञी, पर्याप्तक कर्मभूमिज मनुष्य वा तिर्यंच होते हैं । इससे देवगतिमे विशेषता कही है । सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त नरकगतिके ओघ समान भग है । आनतसे ग्रैवेयकपर्यन्त इसी प्रकार है ।] विशेष–तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है ।

विशेष—आनतादि स्वर्गवासी देवोंका तिर्यंच रूपसे उत्पाद नहीं होनेके कारण तिर्यंचायु आदि शतार चतुष्कका बन्ध नहीं कहा गया है ।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं है, [कारण वहाँ सभी सम्यक्त्वी ही होते है ।] अतः शेष प्रकृतियोंको कहना चाहिए ।

९९ औदारिकमिश्रकाययोगमें—नरकगतित्रिक, देवायु, आहारकद्विक नहीं है । शेष ११४ बन्ध योग्य प्रकृतियोका ओघवत् वर्णन जानना चाहिए ।[2]

वैक्रियिक काययोगमे—देवगतिके समान जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ आयुके बन्धका अभाव है ।

आहारक-आहारकमिश्रयोगमे—असंयतसम्बन्धी प्रकृतियाँ तथा आहारकद्विकके बन्धका अभाव है । आहारककाययोगमें ६३ और आहारकमिश्र काययोगमे ६२ बन्धयोग्य प्रकृतियाँ है ।

---

१ "ओराले वा मिस्से । णहि सुरणिरयायुहारणिरयदुग ।"–गो० क० गा० ११६ ।

आयुचदुकणिरयगादेदुगं आहारदुगं च णत्थि। सेसं ओघभंगो।

१००. अवगदवेदे याओ पगदी [ओ] बज्झंति ताओ पगदीओ जाणिदूण भाणिदव्वाओ। मदि० सुद० विभंग० अब्भव० मिच्छादि० असण्णि० तिरिक्खोघो। आभिणि० सुद० ओधि० ओघभंगो। णवरि मिच्छत्त-सासण-पगदीओ णत्थि। एवं ओधिदं० सम्मा० खइय०। एवं चेव मणपज्जव-संजद० सामाइ० छेदो० परिहार०। णवरि असंजदपगदीओ णत्थि। अकसा० केवलणा० यथाखाद० केवलदंस० सण्णियासो णत्थि। सुहुमसंप० पंचणा० चदुदंस० पंचंतराइगाणमण्णमण्णस्स बंधदि।

१०१. संजदासंजदा संजदभंगो। णवरि आहारदुगं णत्थि। पच्चक्खाणा०-४ अत्थि। असंजदेसु ओघभंगो। णवरि आहारदुगं णत्थि।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्त दशामे होता है और यह योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमे होता है। अत. आहारकद्विकके बन्धका यहाँ अभाव कहा गया है।

कार्माणकाययोगमे–आयु ४ तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वीका अभाव है। शेपका ओघवत् भग जानना चाहिए।

१००. अपगत वेदमे—जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनको जानकर वर्णन करना चाहिए।

विशेष—४ संज्वलन, ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र तथा सातावेदनीय इन २१ प्रकृतियोंका यहाँ बन्ध होता है।

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असज्ञीका तिर्यंचोके ओघवत् है। आभिनिबोधिक, श्रुत तथा अवधिज्ञानमे ओघवत् भंग है। विशेष – यहाँ मिथ्यात्वसम्बन्धी १६ और सासादनसम्बन्धी २५ प्रकृतियोका अभाव है।

इसी प्रकार अवधिदर्शन, सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्वमे जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञान, संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असंयमगुणस्थानवाली प्रकृतियाँ नहीं है।

अकपाय, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवल दर्शनमें सन्निकर्ष नहीं है।

विशेष—इन मार्गणाओंमें एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। इस कारण यहाँ सन्निकर्षका वर्णन नहीं किया गया है। एक प्रकृतिमें सन्निकर्ष नहीं हो सकता है। किसका किसके साथ सन्निकर्ष कहा जायेगा ? अतः सन्निकर्ष नहीं बताया है।

सूक्ष्मसाम्परायमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण (निद्रापंचकरहित) तथा ५ अन्तरायोंका एकके रहते हुए शेप अन्यका बन्ध होता है।

विशेष—यद्यपि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे सातावेदनीय, उच्चगोत्र तथा यशःकीर्तिका भी बन्ध होता है, किन्तु ये वेदनीय, गोत्र तथा नामकर्मकी अकेली ही प्रकृतियाँ हैं, इस कारण स्वस्थानसन्निकर्पकी दृष्टिसे इनका ग्रहण नहीं किया गया है।

१०२. एवं तिण्णि लेस्सा० । णवरि किण्ण-णील० तित्थयरं बंधं० देवगदि०४ णियमा बंधगो। काऊए सिया देवगदि सिया मणुसगदि । तेऊए सोधम्मभंगो। णवरि देवायु देवगदि०४ आहारदुगं अत्थि । एवं पम्माए। णवरि एइंदियतिगं णत्थि । सुक्काए णिरयगदितिगं तिरिक्खगदिसंयुतं च णत्थि । सेसं ओघभंगो ।

१०३. वेदगे० आभिणि०भंगो । एवं उवसम० । णवरि आयु णत्थि । सासणे मिच्छत्तसंयुतं तित्थयरं आहारदुगं च णत्थि । सेसं ओघभंगो । सम्मामि० उवसम-सम्मा० भंगो । णवरि आहारदुगं तित्थयरं च णत्थि ।

१०४. अणाहारा० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

---

१०१ संयतासयतोंमे—सयतोंका भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आहारकद्विक नहीं है। इनमे प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध पाया जाता है। असयतोंमें-ओघवत् भग है।[1] विशेष आहारकद्विक नहीं है।

१०२ कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्यामें—इसी प्रकार जानना चाहिए।[2] विशेष-कृष्ण-नील लेश्यामे-तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला नियमसे देवगति ४ का बन्धक है। कापोत लेश्यामे-स्यात् देवगति, स्यात् मनुष्यगतिका बन्ध होता है। तेजोलेश्यामे-सौधर्म स्वर्गके समान भग है। विशेष, देवायु, देवगति ४ तथा आहारद्विकका बन्ध है।[3] पद्मलेश्यामे-इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ एकेन्द्रिय, स्थावर, आतापका बन्ध नहीं है। शुक्ललेश्यामे-नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, नरकायु तथा तिर्यंचगति संयुक्तका बन्ध नहीं है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है।

१०३ वेदक सम्यक्त्वमें-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है।[4]

उपशमसम्यक्त्वमे-इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ आयुका बन्ध नहीं होता है।

सासादन सम्यक्त्वमें—मिथ्यात्वसम्बन्धी प्रकृतियाँ तीर्थंकर, तथा आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। शेप प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे उपशमसम्यक्त्वीका भग जानना चाहिए। विशेप, यहाँ आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नहीं है।

१०४ अनाहारकमे-[5] कार्माण काययोगीके समान भंग है।

इस प्रकार स्वस्थानसन्निकर्ष पूर्ण हुआ।

---

१ "सम्मेव तित्थबंधो आहारदुग पमादरहिदेसु ।" –गो० क० गा० ९२। २ "अयदोत्ति छलेस्साओ सुह-तियलेस्सा हु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाण अलेस्स तु ॥" –गो० जी० गा० ५३१। ३ "मिच्छस्मतिमणवय वार णहि तेउ पम्मेसु" –गो० क० गा० १२०। "सुक्के सदरचउक्क वामतिमवारस च णव अत्थि।" –गो० क० गा० १२। ४ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।" –गो० क० गा० १२०। ५ 'कम्मेव अणाहारे।"–गो०क०गा० १२१।

[परत्थाणसण्णियास-परूवणा]

१०५. परत्थाणसण्णियासे पगदं दुविधो ओघे० आदे० । ओघे० आभिणिबोधियणा० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंसणा० पंचंत० णियमा [बंधगो] । पंचदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदुगुं० चदुआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिणं तित्थयरं सिया बं०, सिया अबं० । सादं सिया बं०, सिया अबं० । असादं सिया बं०, सिया अबं० । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अबं० । इत्थि० सिया बं०, पुरिस० सिया [बं०], णपुंस० सिया० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । अथवा तिण्णंपि अबंधगो । वेदभंगो हस्सरदि-अरदि-सोग-दोयुगला० चदुगदि० पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो विहा० तस-थावरादि-णवयुगलाणं । जस० अजस० दोगोदं सादभंगो । यथा आभिणिबोधियणा० तथा

[परस्थान सन्निकर्ष]

१०५ यहाँ परस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते है । यहाँ सजातीय तथा विजातीय एक साथमे बंधनेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणा की गयी है ।

ओघसे-आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला-श्रुतादि ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४ तथा अन्तराय ५ का नियमसे बन्धक है ।

विशेषार्थ—यशःकीर्ति उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध न होनेके कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।

निद्रादि पॉच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—दोनोंका अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती होगा, वहाँ मतिज्ञानावरण ही नहीं है । अतः दोनोंके अबन्धकका अभाव कहा है ।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है । पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है । नपुंसक वेदका स्यात् बन्धक है । तीनोंमे-से एकतरका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है ।

विशेषार्थ—वेदका बन्ध नवमे गुणस्थान पर्यन्त होता है और मतिज्ञानावरणका सूक्ष्मसाम्पराय तक बन्ध होता है । अतः मतिज्ञानावरणके बन्धकके वेदका बन्ध हो तथा न भी हो । इससे यहाँ तीनोंका अबन्धक भी कहा है ।

हास्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपाग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ९ युगलका वेदके समान भंग है । अर्थात् इनमें-से एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रका सातावेदनीयके समान भग है अर्थात् अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है ।

चदुणाणा० चदुदंस० पंचंतरा० ।

१०६. णिद्दाणिद्दं बंधंतो पंचणा० अट्ठदंसणा० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया [बं०], असादं सिया [बं०] । दोण्णं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । एवं वेदणीयभंगो तिण्णि वे० हस्सरदि-अरदिसो० चदुगदि० पंच [जादि] दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं । मिच्छत्त-चदुआयुग परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया [बं०], सिया अबं० । दो-अंगो० छस्संघ० दो विहा० दोसरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्ण दोण्णं पि अबं० । एवं पचलापचला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि०४ ।

१०७. णिद्दं बंधंतो पंचणा० पंचदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारस० चदु-आयु० आहारदुगं पर०उस्सा० आदावुज्जो० तित्थ० सिया० [बं०] सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया [बंधगो] । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं तिण्णि वे० हस्सरदिदोयु० चदुग० पंचजा० दोसरी० छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च । दोअंगो० छसंघ दोविहा० दोसरं सिया [बं०]

श्रुतादि ४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान भंग जानना चाहिए ।

१०६ निद्रा-निद्राका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रमें वेदनीयके समान भंग है अर्थात् एकतरके बन्धक है । अबन्धक नहीं है । मिथ्यात्व, ४ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका बन्धक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है । प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकका निद्रानिद्राके समान भंग है ।

१०७ निद्राका बन्ध करनेवाला–५ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय (४ संज्वलनको छोडकर), ४ आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । साता-वेदनीयका स्यात् बन्धक है । असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक

दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो । एवं पचला० ।

१०८. सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगु० तिण्णि-आयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णि वे० हस्सादि-दोयुग० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिदसयुग० दोगो० सिया बं० सिया अबं० । एदेसिं एक्कदरं बं०, अथवा एदेसिं अबंधगो । असादं बंधंतो-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगु०-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०४ (३) मिच्छ० बारसक० तिण्णिआयु परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अबं० । एवं चदुगदि-पंचजादि-दोसरी०-

---

है । इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका वन्धक है अथवा २, [६,] २, २ का भी अवन्धक है । प्रचलाका बन्ध करनेवालेके निद्राके समान भग है ।

१०८ साताका वन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, नरकायुको छोडकर ३ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर तथा ५ अन्तरायोका स्यात् वन्धक है, स्यात् अबन्धक है ।

विशेष—साताका बन्धक सयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है, किन्तु ज्ञानावरणादिका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त होता है अतः साताके वन्धकके ज्ञानावरणादिका वन्ध हो, तथा न भी हो ।

तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपाग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल तथा दो गोत्रका स्यात् वन्धक है । स्यात् अबन्धक है । इनमे-से किसी एकका वन्धक है अथवा इनका भी अबन्धक है ।

असाताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक विना), ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे वन्धक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कपाय, ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । तीन वेदोंका स्यात् बन्धक है तथा इनमें-से किसी एकका बन्धक है अवन्धक नहीं है ।

विशेष—असाता प्रमत्तसयत पर्यन्त बँधता है, तथा वेदका अनिवृत्तिकरणपर्यन्त बन्ध होता है । अतः असाताके बन्धकको वेदोंका अबन्धक नहीं कहा है, कारण यहाँ वेदका बन्ध सदा होगा ।

हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से अन्यतर युगलका वन्धक है अबन्धक नही है । ४ गति, ५ जाति, २ शरीर,

छस्संठा० चदुआणु० तसादिणवयुग० दोगोदं च। दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा एदेसिं चेव अबं०। एवं अरदिसोग-अथिर-असुभ-अज्जसगित्तीणं।

१०९. मिच्छत्तं बंधंतो—पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं० असादं सिया बं०। दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णं वेदाणं हस्सरदि० अरदिसो० दोयुग० चदुग० पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं च। चदुआयु० परघा०-उस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर०सिया बं०, सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०, अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो।

११०. अपच्चक्खाण० कोधं बं०—पंचणा० छदंसणा० एक्कारसक०-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि०पंचंत० णियमा बं०। सेसं मिच्छत्तभंगो।

---

६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका भी इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ में से एकतरका बन्धक है, अथवा इनका भी अबन्धक है।

[1]अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्तिका इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—असाताके समान अरति शोकादिकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है। इस कारण असाताके बन्ध करनेवालेके समान इनका भी वर्णन कहा है।

१०९ मिथ्यात्वका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है अबन्धक नहीं है।

३ वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए, अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। चार आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है।

विशेष—एकेन्द्रियके अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा इन प्रकृतियोंका अबन्धक कहा है।

११० अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बन्धकके समान भंग जानना

---

१ "छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदि सोगं च।"—गो० क० गा० ९८।

णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणुबं०४ चदुआयु० पर०-उस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। एवं तिण्णं कसाया०। पच्चक्खाणावरणी० कोध बं०-पंचणा० छदंस० सत्तक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं अट्ठकसा० पर० उस्सा० चदु आयु० आदावुज्जो० तित्थय०सिया बं०, सिया अबं०। सेसं मिच्छत्तभंगो। एवं तिण्णं कसायाणं। कोधसंज० बंधंतो-पंचणा० चदुदंस० तिण्णं संज० पंचंतरा० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदु० चदुआयु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। दोवेदणी० सिया बं०। दोण्णं एक्कद० [बंधगो]। ण चेव अबं०। एवं जस० अज्जस० दोगोदाणं। इत्थिवे० सिया०, पुरिस० सिया० णपुंस० सिया बं०। तिण्णं वेदाणं एक्कदरं [बंधगो]। अथवा तिण्णंपि अबं०। एवं हस्सरदि-अरदिसोग-दोयुगला० चदुग०-

---

चाहिए। विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, आयु ४, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभका अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४), परघात, उच्छ्वास, ४ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रकृतियोंके विषयमे मिथ्यात्वके बन्धकके समान वर्णन जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका बन्ध करनेवालेके प्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

संज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ संज्वलन, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण (निद्रापचक), मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो वेदनीयका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् इनमें-से अन्यतरके बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—संज्वलन क्रोधका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध पाया जाता है तथा यशःकीर्ति, उच्चगोत्रका सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण यहाँ इनका अबन्धक नहीं कहा गया है।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनमें-से एकतरका बन्धक है। तीनका भी अबन्धक है।

विशेष—वेदका बन्ध ९वे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा संज्वलन क्रोधका बन्ध ९वे गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है। इस कारण यहाँ वेदोंका अबन्धक भी कहा है।

पंचजादि-दो-सरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो विहा० तसादिणव-युगलाणं। एवं माणसंज०। णवरि दोसंज० णियमा बं०। एवं चेव मायासंज०। णवरि लोभसंज० णियमा बंध०। लोभसंजलणं बंधंतो-पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं०। मिच्छत्तं पण्णारसकसा० सिया बं०। सेसं कोधसंजलण० भंगो।

- १११. इत्थिवेदं बंधंतो पंचणा० णवदंसणा० सोलसक० भयदुगुं० पंचिं० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णियमा बंध०। सादासादं सिया बं०। दोण्णं वेदणीयाणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोयुग० तिण्णि-गदि-दो-सरीर-छस्संठाणं दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। मिच्छत्तं तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० सिया बं०। छण्णं एक्कदरं बं०। अथवा छण्णंपि अबं०।

११२. पुरिसवेदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदुगु० तिण्णि आयु० पंचिदिं-आहारदु० तेजाक०

हास्य-रति, अरति-शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका बन्धक है तथा अबन्धक भी है।

संज्वलन मानका बन्ध करनेवालेके संज्वलन क्रोधके समान भंग है। विशेष, संज्वलन माया तथा लोभका नियमसे बन्धक है। संज्वलन मायाका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है। विशेष, संज्वलन लोभका नियमसे बन्धक है। संज्वलन लोभका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। मिथ्यात्व, १५ कषायोंका स्यात् बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका संज्वलन क्रोधके समान भंग है।

१११ स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। साता, असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोडकर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमे एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, मनुष्य-तिर्यंच-देवायु, उद्योतका स्यात् बन्धक है स्यात् अबन्धक है। ६ संहननका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा ६ का भी अबन्धक है।

११२ पुरुषवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है।

विशेष—पुरुषवेदका बन्ध नवमे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है और ज्ञानावरणादिका इसके आगे तक बन्ध होता है अतः पुरुषवेदके बन्धकको ज्ञानावरणादिका नियमसे बन्धक कहा है।

५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायु बिना ३ आयु, पंचेन्द्रिय,

वण्ण०४ अगु०४ उज्जोव-तस०४ णिमि० तित्थय० सिया बं० । सिया अबं० । सादं सिया बं० । असादं सिया बंध० । दोण्णं वेदणी० एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं जस० अज्जस० दोगोदाणं । हस्सरदि सिया० । अरदिसो० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कद० । अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णिगदि-दोसरीर-छस्संठाणं दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दोविहा० थिरादिपंचयु० ।

११३. णपुंस० बंधंतो पंचणाणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलस० भयदुगु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । साद सिया० बं । असादं सिया० । दोण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव० [अबंधगो] ।' एवं हस्सरदि० अरदिसोगाणं दोयु० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरी०-छसंठाण० तिण्णि आणु० तसथावरादि-णवयुगलाणं दोगोदाणं । तिण्णिआणु०[आयु०]परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं० । दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा एदेसिं अबं० ।

आहारकद्विक, तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उद्योत, त्रस ४, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है । हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अथवा दोनो युगलोंका भी अबन्धक है । नरकगतिको छोड़ शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पंच युगलका इसी प्रकार है अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है अथवा सबका भी अबन्धक है ।

११३ नपुंसकवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है ।

विशेष—नपुंसकवेदका बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है इस कारण यहाँ मिथ्यात्वका भी नियमसे बन्ध कहा है ।

साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक ये दो युगल, देवगतिको छोडकर ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भंग है । देवायुको छोडकर शेष ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । २, ६, २, २ में से अन्यतर बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का अबन्धक है ।

विशेष—यहाँ तीन आनुपूर्वीका पहले कथन आ चुका है, अतः पुनः आगत 'तिण्णि आणु०' के स्थानमें तीन 'आयुका द्योतक 'तिण्णि आयु' पाठ उपयुक्त जँचता है ।

११४. हस्सं बंधं० पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० रदिभयदु० पंचंत० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० तिण्णिआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० [णिमि०] तित्थय० सिया बं०, सिया अबंधगो। सादं सिया बं०, असादं सिया बं०। दोण्णं एक्कदरं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णि वेद० जस० अजस० दोगोदाणं। तिण्णिगदि सिया०, सिया अबं०। तिण्णं एक्कदरं बं० अथवा अबं०। एवं गदिभंगो पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिणवयुग०। एवं रदीए०।

११५. भयं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० दुगुं० पंचंत० णियमा बं०। पंचदं० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० आहारदुगं तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। सादं सिया०। असादं सिया०। दोण्णं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबं०। एवं तिण्णिवे०-जस-अज्ज०-दोगोदं०। चदुगदि सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्क०। अथवा चदुण्णंपि अबंध०। एवं गदिभंगो

---

११४. हास्यका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, रति, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, नरकायुको छोड़कर तीन आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, आताप, उद्योत [निर्माण] तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, दो मे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और दो गोत्रोंमे वेदनीयके समान भंग है। ३ गति (नरक बिना) का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीनमे-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है।

विशेष—अपूर्वकरणके अन्तिम भ ग तक हास्यका बन्ध होता है किन्तु गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठवे भाग पर्यन्त होता है। इस कारण हास्यके बन्धकको गतित्रयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भग है अर्थात् एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक हैं।

रतिका बन्ध करनेवालेके हास्यके समान भंग है।

११५ भयका बन्ध करनेवालेके—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारक-द्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान जानना चाहिए। चार गतिका स्यात् बन्धक है। चारमे से एकतरका बन्धक है। अथवा चारोंका भी अबन्धक है।

पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो-छस्संघ० चदुआणु० दोविहा० तसादिणवयुगलं। एवं दुगुंछाए।

११६. णिरयायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० असादावे० मिच्छ० सोलसक० णपुंसक० अरदिसोगभयदु० णिरयगदि-पंचिं० वेगुव्विय० तेजाकम्म० हुंडसंठा० वेगुव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणु० अगुरु०४ अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्कं णिमिणं णीचागोदं पंचंत० णियमा बं०।

११७. तिरिक्खायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगु० तिरिक्खगदि-तिण्णिसरी०-वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णीचागो० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं०, असादं सिया बंध०। दोण्णं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एस भंगो तिण्णिवेद-हस्सादिदोयुग० पंचजा० छस्संठा० तस-थावरादिणव-युगलाणं०। मिच्छत्तं ओरालि० अंगो० परघाउस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। छस्सघ० दोविहा० दोसरं सिया बंध०। एदेसिं एक्कदर० बं० अथवा अबं०।

११८. मणुसायुगं बंधंतो पंचणा० छदंसणा० बारसक० भय-दुगुंछा०-मणुसग०

विशेष—गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त होता है तथा भयका अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तक बन्ध होता है। इस कारण भयके बन्धकको गतिचतुष्टयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अंगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भग जानना चाहिए। जुगुप्साका बन्ध करनेवालेके भयके समान भंग जानना चाहिए।

११६ नरकायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुंडकसस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क, निर्माण, नीचगोत्र, तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है।

११७. तिर्यंचायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, ३ शरीर (औदारिक तैजस-कार्माण), वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे वेदनीयके समान जानना चाहिए। अर्थात् एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, औदारिक अंगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इनमे से एकतरका बन्धक है, अथवा किसीका भी बन्धक नहीं है।

११८ मनुष्यायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय,

पंचिंदि० तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उपघा० तस-बादर-पत्तेय०-णिमिण-पंचंत० णियमा बंध०। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ परघाउस्सा० तित्थय० सिया बंध०, सिया अबं०। साद सिया०। असादं सिया०। दोण्णं एक्कद० बं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दो युग० छस्संठा० छस्संघ० पज्जत्तापज्ज० थिरादि-पंचयुग० दोगोदाणं०। दोविहाय० दोसरं सिया०। दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध०। अथवा दोण्णं दोण्णंपि अबं०।

११९. देवायुगं बंधंतो० पंचणा० छदंसणा० सादावे० चदुसंज० हस्सरदि-भयदुगु० देवगदि० पंचिंदि० तिण्णिसरीर०-समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिछक्कं णिमि० उच्चागो० पंचंत० णियमा बं०। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदु० तित्थय० सिया०। इत्थि० सिया०। पुरिस० सिया०। दोण्णं वेदाणं एक्कदरं०। ण चेव अबं०।

१२०. णिरयगदि बंधंतो णिरयायुभंगो। णवरि णिरयायुं सिया बंधदि। एवं

जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पॉच युगल तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन है। अर्थात् एकतरके बन्धक है। अबन्धक नहीं है। दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। दो, दोमे-से अन्यतरका बन्धक है। अथवा २, २ का भी अबन्धक है।

११९ देवायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, ४ संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर (वैक्रियिक-तैजस-कार्माण), समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यान-गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आहारकद्विक, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। दो वेदोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नही है।

१२०. नरकगतिका बन्ध करनेवालेके नरकायुके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, नरकायुका स्यात् बन्ध करता है।

विशेष—नरकायुके बन्धकके नियमसे नरकगतिका बन्ध होता है, किन्तु नरकगतिके बन्धकके नरकायुके बन्धका ऐसा कोई नियम नहीं है। नरकायुका बन्ध हो अथवा बन्ध न भी हो। गति बन्ध तो सदा होता रहता है, किन्तु आयुका बन्ध तो सदा नहीं होता है।

णिरयाणुपु० । तिरिक्खगदि तिरिक्खायुभंगो । णवरि तिरिक्खायुं सिया० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि मणुसायुभंगो । णवरि मणुसायुं सिया बं० । एवं मणुसाणुपु० । देवगदिं बंधंतो पंचणाणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया० । असादं सिया० । दोण्णं वेदणी० एक्कदरं० । ण चेव अबं० । एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोण्णं युगलाणं । देवायु सिया०, सिया अबं० । हेट्ठा उवरि देवायुभंगो० । णामं सत्थाण०भंगो । एवं देवाणु० ।

१२१. एइंदियं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० णपुंस० भयदुगुं० णीचा० पंचंत० णियमा बं० । सादासादं चदुणोकसाय० तिरिक्खगदिभंगो० । तिरिक्खायुं० सिया० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आदाव-थावराणं । विगलिंदिय-सुहुम-अपज्ज० साधारणा हेट्ठा उवरि एइंदियभंगो । णामं (णामाणं) अप्पप्पणो

नरकानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए।

तिर्यंचगतिका बन्ध करनेवालेके तिर्यचायुके समान भग जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। तिर्यंचानुपूर्वीमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—तिर्यंचायुके बन्धकके नियमसे तिर्यंचगतिका बन्ध होता है, किन्तु तिर्यंचगतिके बन्धकके तिर्यंचायुके बँधनेका कोई निश्चित नियम नहीं है। ऐसा ही मनुष्यगतिमे भी है।

मनुष्यगतिका बन्ध करनेवालेके मनुष्यायुके समान भंग है। विशेष, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमें भी इसी प्रकार है।

देवगतिका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दो वेदनीयमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंमे-से अन्यतर युगलका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। देवायुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। अधस्तन उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोंमे देवायुका भग जानना चाहिए। नाम कर्मकी प्रकृतियोंमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग है।

विशेषार्थ—देवायुके बन्धकके तो देवगतिके बन्ध-सन्निकर्षका नियम है, किन्तु देवगतिके बन्धकके साथ देवायुके बन्धका ऐसा नियम नहीं है। दूसरी बात यह है कि देवायुका बन्ध अप्रमत्त संयत पर्यन्त है, जब कि देवगतिका अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण देवगतिके बन्धकके देवायुका अबन्ध भी कहा है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान भंग जानना चाहिए।

१२१ एकेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता, असाता, ४ नोकषायमे तिर्यंचगतिके समान भंग है। तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। नाम कर्मकी प्रकृतिके बन्धके विषयसे स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग जानना चाहिए। आताप तथा स्थावरके बन्धकके इसी प्रकार भंग है। विकलेन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणमे—अधस्तन,

सत्थाणभंगो कादव्वो। पंचिंदियं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० पंचंत० णियमा बं०। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० सिया बं०। सिया अबं०। दोवेद० सत्तणोक० दोगोदा० सिया बं०, सिया अबं०। एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

१२२. ओरालियं बं० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० पंचतरा० णियमा बं०। दोवेदणी०-तिण्णि वे० हस्सरदि-दोयुग० दोगोदाणं सिया बं० सिया अबं०। एदेसिं एक्कदरं०। ण चेव०। थीणगिद्धिति० मिच्छ० अणंताणुबं०४ दो आयु० सिया०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

१२३. वेगुव्विय बंधंतो हेट्ठा उवरि देवगदिभंगो। णवरि तिण्णि वेदं दोगोदं सिया०, सिया अबं०। एदेसि०एक्कदरं०। ण चेव अबं०। णिरय-देवायु० सिया०।

उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है। विशेष, नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

पचेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है।

विशेष—पचेन्द्रिय जातिका बन्ध आठवे गुणस्थान तक होता है तथा निद्रादि दर्शनावरण ५ आदिका उसके नीचे तक होता है। इस कारण यहाँ स्यात् अबन्धक कहा है।

दो वेदनीय, सात नोकषाय, तथा २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान जानना चाहिए।

१२२ औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक रहित) १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध असयत गुणस्थान पर्यन्त है। इससे उसके बन्धकके ६ दर्शनावरण, १२ कषायादिका नियमसे बन्ध कहा गया है।

दो वेदनीय, ३ वेद, हास्य-रति, अरति-शोक दो युगल, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमे एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का स्यात् बन्धक है। नाम कर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए।

१२३ वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवालेके उपरितन तथा अधस्तन बँधनेवाली प्रकृतियोंमे देवगतिके समान भंग है। विशेष, ३ वेद, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमे-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवगतिमें पुरुषवेद, स्त्रीवेद, एवं उच्चगोत्रका ही सद्भाव है, किन्तु यहाँ वैक्रियिकशरीरके बन्धकोंके वेदत्रय, तथा गोत्रद्वयका वर्णन किया है, कारण वैक्रियिकशरीरके साथ देवगति या नरकगतिका बन्ध होता है। इसी दृष्टिसे नपुंसकवेद, और नीचगोत्रका भी बन्ध कहा है।

णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एवं वेगुव्विय० अंगो०।

१२४. आहारसरीरं बंधंतो पंचणा० छदंस० सादावे० चदुसंज० पुरिसवे० हस्सरदिअरदि (?) भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं०। देवायु० सिया बं०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं आहारस० अंगो०। पंचिंदिय० जादिभंगो तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ थिरादि पंचण्णं पगदीणं। हेट्ठा उवरि०। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो। णवरि समचदु० पसत्थवि० थिरादिपंचण्णं पगदीणं णिरयायुगं णत्थि।

१२५ णग्गोदं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० पंचंतरा० णियमा बं०। दोवेदणीय० सत्तणोक० दोगोदं सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। मिच्छत्त-तिरिक्खमणुसायुगं सिया बं०। णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एसभंगो सादियसंठा० कुज्जसं० वामणसं० चदुसंघडणाणं।

नरकायु-देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थानसन्निकर्पवत् भंग है।

वैक्रियिक अंगोपागमें वैक्रियिक शरीरवत् भंग जानना चाहिए।

१२४ आहारकशरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता वेदनीय, ४ सज्वलन, पुरुपवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंके विपयमें स्वस्थान सन्निकर्षमे वर्णित भंग है।

विशेष—आहारकशरीरका बन्ध अप्रमत्त दशामें होता है। अरति प्रकृतिकी बन्ध-व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है, अतः आहारक शरीरके बन्धके साथ अरतिका सन्निकर्प नहीं होगा। इस कारण मूल पाठमे 'अरदि' अयुक्त प्रतीत होती है।

आहारकशरीर-अंगोपागके बन्ध करनेवालेके आहारक शरीरवत् भंग है।

तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोंका उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंके विषयमे पचेन्द्रिय जातिके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्पवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, समचतुरस्र-सस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोंके नरकायुका बन्ध नहीं है।

१२५ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। २ वेदनीय, ७ नोकषाय, दो गोत्रका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, तिर्यंचायु, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामनसंस्थान, वज्रवृपभनाराच तथा असम्प्राप्ता-सृपाटिका संहननको छोड़कर शेप ४ संहननके बन्धकके इसी प्रकार भंग जानना चाहिए।

विशेष—संस्थान ४ और संहनन ४ सासादन गुणस्थान पर्यन्त बँधते है। अतः इनका समान रूपसे वर्णन किया है।

१२८. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदिय तस०२ पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालियकाजो० लोभ० चक्खु० अचक्खु० सुक्क० भवसि० सण्णि-आहारगत्ति। ओरालियमिस्स० सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देवगदि-चदुसरीर० दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु०४ आदावुज्जोव० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं०, सिया अबं०। सेसाणं वेदादीणं सव्वाणं सिया बं०। एदाणं एक्कदरं बं०। अथवा अबं०। एवं कम्म०-अणाहारगेसु। णवरि आयुवज्ज० इत्थिवेद०। आभिणिबोधि० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। सेसाणं ओघभंगो। एवं पुरि० णपुंस० कोध-माणमाया०। णवरि माणे तिण्णि संजल०। मायाए दो संज०। सेसाणं ओघो। अवगदवेदे ओघं।

१२८ आदेशसे—मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, सञ्ज्ञी, आहारक तक ओघवत् जानना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, साताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य-तिर्यंचायु[1], देवगति, औदारिक-वैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, २ अंगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है।

विशेष—साताका सयोगीजिन पर्यन्त बन्ध है। ज्ञानावरणादिका सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बन्ध है। इस कारण साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिके बन्धका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है।

वेदादि शेष सर्व प्रकृतियोंका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है। अथवा सबका अबन्धक है।

[2]कार्माण काययोग तथा अनाहारकोंमे औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आयुओंको छोड देना चाहिए। स्त्री वेदमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका ओघके समान भग जानना चाहिए।

पुरुषवेद, नपुसकवेद, क्रोध, मान, माया कषायोमें इसी प्रकार भग जानना चाहिए। विशेष, मानमे, तीन संज्वलन और मायामे दो संज्वलन है। शेपका ओघवत भग जानना चाहिए।

अपगत वेदमे—ओघके समान भग जानना चाहिए।

---

१ "ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयायुहारणिरयदुग ॥"—गो० क० गा० ११६।

२ "कम्मे उरालमिस्स वा णाउदुगपि णव छिदी अयदे।"—गो० क० गा० ११९।

दोण्णं एक्कदरं० । ण चेव अबं० । एवं दोगोद० । तिण्णि वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । अथवा अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो। तित्थयरं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । णिद्दा-पचला-अट्ठक० दो आयु सिया बं० सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया बं० । दोण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२७. उच्चागोदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० दोआयु० पंचिंदि० तिण्णिसरी०-आहार० अंगो० वण्ण० ४ [अगु०४] तस०४ णिमिणं तित्थयरं सिया बं० सिया अबं० । दो वेदणी० जस० अजस० सिया बं० । एदेसिं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि वेदं सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । अथवा अबं० । एस भंगो चदुणोक० दोगदि० दोसरीरं छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिपंच-युगलाणं । णीचागोदं बंधंतो थीणगिद्धिभंगो। देवायु-देवगदिदुगं उच्चागोदं वज्जं० ।

असाताका स्यात् बन्धक है [स्यात् अबन्धक है] दोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। दो गोत्रका वेदनीयके समान भंग है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है। इनमे-से अन्यतमका बन्धक है। अथवा तीनोंका भी अबन्धक है। हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण रूप कषायाष्टक, देव-मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। हास्यादि ४ नोकषायोंका वेदनीयके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

१२७ उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु (मनुष्य-देवायु), पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, [अगुरुलघु ४], त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक, स्यात् अवन्धक है। दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। तीन वेदोंमे-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका अबन्धक है। हास्यादि ४ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पांच युगलोंका इसी प्रकार भंग है।

नीचगोत्रका बन्ध करनेवालेके स्त्यानगृद्धिवत् भंग है। विशेष, यहाँ देवायु, देवगति-त्रिक तथा उच्चगोत्रको छोड़ देना चाहिए।

१२८. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदिय तस०२ पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालियकाजो० लोभ० चक्खु० अचक्खु० सुक्क० भवसि० सण्णि-आहारगत्ति। ओरालियमिस्स० सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देवगदि-चदुसरीर०-दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु०४ आदाबुज्जोव० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं०, सिया अबं०। सेसाणं वेदादीणं सव्वाणं सिया बं०। एदाणं एक्कदरं बं०। अथवा अबं०। एवं कम्म०-अणाहारगेसु। णवरि आयुवज्ज० इत्थिवेद०। आभिणिबोधि० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। सेसाणं ओघभंगो। एवं पुरि० णपुंस० कोध-माणमाया०। णवरि माणे तिण्णि संजल०। मायाए दो संज०। सेसाणं ओघो। अवगदवेदे ओघं।

१२८ आदेशसे—मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, सञ्ज्ञी, आहारक तक ओघवत् जानना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, साताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य-तिर्यंचायु[1], देवगति, औदारिक-वैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, २ अंगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है।

विशेष—साताका सयोगीजिन पर्यन्त बन्ध है। ज्ञानावरणादिका सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बन्ध है। इस कारण साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिके बन्धका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है।

वेदादि शेष सर्व प्रकृतियोंका स्यात् बन्धक है। इनमे-से एकतरका बन्धक है। अथवा सबका अबन्धक है।

[2]कार्माण काययोग तथा अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आयुओंको छोड देना चाहिए। स्त्री वेदमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका ओघके समान भग जानना चाहिए।

पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोध, मान, माया कषायोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। विशेष, मानमे, तीन संज्वलन और मायामे दो संज्वलन है। शेषका ओघवत् भंग जानना चाहिए।

अपगत वेदमे—ओघके समान भंग जानना चाहिए।

१ "ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयायुहारणिरयदुग ॥"—गो० क० गा० ११६।
२ "कम्मे उरालमिस्स वा णाउदुगपि णव छिदी अयदे।"—गो० क० गा० ११२।

दोण्णं एकदरं० । ण चेव अबं० । एवं दोगोद० । तिण्णि वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । अथवा अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो। तित्थयरं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । णिद्दा-पचला-अट्ठक० दो आयु सिया बं० सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया बं० । दोण्णं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२७. उच्चागोदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० दोआयु० पंचिंदि० तिण्णिसरी०-आहार० अंगो० वण्ण० ४ [अगु०४] तस०४ णिमिणं तित्थयरं सिया बं० सिया अबं० । दो वेदणी० जस० अजस० सिया बं० । एदेसिं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि वेदं सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । अथवा अबं० । एस भंगो चदुणोक० दोगदि० दोसरीरं छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिपंच-युगलाणं । णीचागोदं बंधंतो थीणगिद्धिभंगो । देवायु-देवगदिदुगं उच्चागोदं वज्जं० ।

असाताका स्यात् बन्धक है [स्यात् अबन्धक है] दोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। दो गोत्रका वेदनीयके समान भंग है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतमका बन्धक है। अथवा तीनोंका भी अबन्धक है। हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण रूप कषायाष्टक, देव-मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। हास्यादि ४ नोकषायोंका वेदनीयके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

१२७ उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु (मनुष्य-देवायु), पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, [अगुरुलघु ४], त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। तीन वेदोंमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका अबन्धक है। हास्यादि ४ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पांच युगलोंका इसी प्रकार भंग है।

नीचगोत्रका बन्ध करनेवालेके स्त्यानगृद्धिवत् भंग है। विशेष, यहाँ देवायु, देवगति-त्रिक तथा उच्चगोत्रको छोड़ देना चाहिए।

[भंगविचयाणुगम-परूवणा]

१३०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविधो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघे० पचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० आहारदुगं वण्ण०४ अगुरु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थयरं पंचंत० अत्थि बंधगा अबंधगा च। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं पगदीणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० चदुग० पंचजादि-दोसरीर-छसंठाणं दोअंगो० छसंघ० चदुआणु० दोविहाय० तसादिदसयुगलं दोगोदाणं। दो अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० अत्थि बंधगा य अबंध०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अत्थि बंधगा य अबंधगा य। णिरय-मणुस-देवायूणं सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगे (गो) य, सिया अबंधगा य बंधगा य। तिरिक्खायु अत्थि बंधगा य अबंधगा य। चदुण्णं आयुगाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१३१. एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-भवसिद्धि० आहारगत्ति०।

[भंगविचयानुगम]

१३० नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है।

विशेषार्थ—भगविचयका अर्थ है अस्ति नास्ति रूप भंगोंका विचार। यहाँ कर्म-प्रकृतियोंके सद्भाव, असद्भावका विचार किया गया है।[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्त-रायके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है।

साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। असाताके अनेक बन्धक और अबन्धक हैं। दोनों प्रकृतियोंके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। ७ नोकपाय (भय जुगुप्साको छोडकर), ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अंगोपाग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि १० युगल, २ गोत्रमें वेदनीयके समान भग है। २ अगोपाग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक बन्धक और अनेक अवन्धक है। अथवा २, ६, २, २ के अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक है। नरक, मनुष्य, देवायुके किसी अपेक्षा सब अवन्धक है, स्यात् अनेक अबन्धक, एक बन्धक है। स्यात् अनेक अवन्धक तथा अनेक वन्धक हैं। तिर्यंचायुके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। चारों आयुके अनेक वन्धक और अनेक अबन्धक है।

१३१ काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारकमार्गणामे इसी प्रकार

---

[1] विचयो विचारणा। केमि ? अत्थि णत्थि त्ति भगाण। — खुद्दाबंध पृ० २३७, सूत्र १ की टीका।

णवरि भवसिद्धिय-सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणी० सिया सव्वे सिं० बंधगा य। सिया बंधगा य। अबंधगा य। सिया बंधगा य अबंधगा य। सेसाणं सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि (?)

१३२. आदेसेण णेर० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० पंचिंदि० ओरालिय० तेजाकम्म० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबंधि०४ उज्जोवं तित्थय० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सादस्स अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादस्स अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० दोगदि-छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। दो-आयुगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगो य। एवं सव्व-णिरयाणं सणक्कुमारादि उवरिमदेवाणं।

ओघके समान भंग समझना चाहिए। विशेष, भव्यसिद्धिकमे—साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोंके कदाचित् सर्व बन्धक है। कदाचित् अनेक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। शेषमें साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोंके सब बन्धक है। अबन्धक नहीं है। (?)

विशेषार्थ—अयोगी जिनके बन्धके कारण योगका अभाव हो जानेसे बन्धका अभाव है। अतः यहाँ साता असाताके अबन्धक नहीं है यह कथन विचारणीय है।

१३२ आदेशकी अपेक्षा-नारकियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके सब बन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी, उद्योत और तीर्थंकरके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोंके सब बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—नरकगतिमे आदिके ४ गुणस्थान होनेसे दोनों वेदनीयके अबन्धक नहीं पाये जाते है।

७ नोकषाय, २ गति, ६ संस्थान, ६ संहनन २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रोंमे वेदनीयका भग जानना चाहिए। २ आयु (मनुष्य तिर्यचायु) के स्यात् (कदाचित्) सब अवन्धक है। कदाचित् अनेक अबन्धक और एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अवन्धक और अनेक वन्धक है। इसी तरह सम्पूर्ण नरकोंमे जानना चाहिए। सनत्कुमारादि ऊपरके देवोंमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

दुस्सर उच्चागोदाणि। असादभंगो णवुंसकवे० अरदिसो० तिरिक्खगदि० एइंदिय० हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं। तिण्णिवेद-हस्सादि-दोयुग० दोगदि० पंचजादि-छस्संठा० दोआणुपुव्वि-तसथावरादिणवयुगला० दोगोदाणं सिया बंधगो। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि। दोआयु-छस्संघ० दोविहा० दोसर० सादभंगो कादव्वो पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं मणुस-अप्पज्जत्तभंगो वेउव्वियमिस्स० आहारकाय० आहारमिस्स० सासण० सम्मामिच्छ०। णवरि अप्पप्पणो धुविगाओ णादव्वाओ भवंति। वेउव्वियमिस्स मिच्छत्त असादभंगो। तित्थयरं सादभंगो। आहार० आहारमिस्स तित्थयरं सादभंगो। सासणे तिरिक्खगदि-संयुता असादभंगो। सेसाणं सादभंगो। सम्मामि० मणुसगदि-संयुताओ असादभंगो। सेसाणं सादभंगो।

१३८. देवेसु-भवणवासिय याव ईसाणत्ति णिरयभंगो। णवरि ओरालि० अंगो० आदावुज्जोवं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। छस्संघड० दो विहाय० दोसर० ओघ-भंगो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य, अबंधगा य। थीणगिद्धितिय मिच्छत्त० बारसक० आहारदु० परघाउस्सा-

---

दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, ४ स्थावरादि, अस्थिरादि पचक, नीच गोत्रका असाताके समान भग है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, २ गति, ५ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नवयुगल और २ गोत्रके स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। २ आयु, ६ सहनन, २ विहायोगति और २ स्वरके प्रत्येकसे ओर सामान्यसे साताके समान भंग करना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्र, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सासादनसम्यक्त्व, तथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वगुणस्थानमे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यकी तरह भग है। विशेष, यहाँ अपनी-अपनी मार्गणामे सम्भवनीय ध्रुव प्रकृतियोंको जानना चाहिए। वैक्रियिक मिश्रमे–मिथ्यात्वका असाताके समान भग होता है। तीर्थंकरका साताके समान भग होता है। आहारक-आहारकमिश्रमे–तीर्थंकरका साताके समान भंग है। सासादनमे–तिर्यंचगति मिलाकर असाताके समान भग है। शेपमे साताके समान भंग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे–मनुष्यगति मिलाकर असाताके समान भग जानना चाहिए। शेपमे साताके समान भंग है।

१३८ देवोंमे—भवनवासियोंसे ईशान स्वर्ग पर्यन्त नरकगतिके समान भंग है। विशेप यह है कि औदारिक अगोपाग, आतप, उद्योतके अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक हैं। छह सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके ओघके समान भग हैं।

दो मन-दो वचनयोगमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण ४ संज्वलन भय जुगुप्सा तैजस, कार्माण, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सर्व बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक हैं।

तिण्णिमण० तिण्णिवचि० संजद-सुक्कलेस्सियाणं। णवरि योगलेस्सासु दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि।

१३७. मणुस-अपज्जत्ते-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया बंधगो य, सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। सादं सिया अबंधगो। सिया बंधगो। सिया अबंधगा। सिया बंधगा। सिया अबंधगो य, बंधगो य। सिया अबंधगो य बंधगा य। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। असादं सिया बंधगो। सिया अबंधगो। सिया बंधगा। सिया अबंधगा। सिया बंधगो य अबंधगो य। सिया बंधगो य अबंधगा य। सिया बंधगा य, अबंधगो य। सिया बंधगो (गा) य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सिया बंधगो। सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-दोआयु० मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्क-

विशेष[1]—शंका-भंगविचयमें नानाजीवोंकी प्रधानतासे कथन करनेपर एक जीवकी अपेक्षा भंग कैसे बन सकते हैं ?

समाधान—एक जीवके बिना नानाजीव नहीं बन सकते है। इससे भंगविचयमें नाना जीवोंकी प्रधानता रहनेपर भी एक जीवकी अपेक्षा भी भंग बन जाते है।

इसी तरह पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ३ मनोयोग, ३ वचनयोग, संयत और शुक्ल लेश्यावालोंके भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि योग और लेश्यामें-दोनों वेदनीयके सर्व बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

१३७ मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माणशरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायका स्यात् एक बन्धक है स्यात् अनेक बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। साताका स्यात् एक अबन्धक है। स्यात् एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। स्यात् एक अबन्धक, एक बन्धक है। स्यात् एक अबन्धक, अनेक बन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक, एक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक अनेक बन्धक है। असाताके-स्यात् एक बन्धक है। स्यात् एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है। स्यात् एक बन्धक, तथा एक अबन्धक है। स्यात् एक बन्धक, अनेक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है स्यात् अनेक बन्धक अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोंका स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, ४ त्रस, स्थिरादिषट्क,

१ "णाणाजीवप्पणाए कधमेकभगुप्पत्ती ? ण एगजीवेण विणा णाणाजीवाणुप्पत्तीदो।" –जयध० पृ० ३२१।

तित्थय० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो।

१४०. एवं कम्मइगे। णवरि आयुगं णत्थि।

१४१. इत्थि० पुरिस० णवुंस० कोधादि०४ सामाइ० छेदो० धुवपगदीओ मोत्तूण सेसाणं दोण्णं मणभंगो।

१४२. अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगित्ति उच्चा० पंचंत० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगो (गा) य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१४३ अकसा०-सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं केवलिणा० केवलिदं०।

१४४. मदि-सुद० विभंग० असंज० किण्ण-णील-काउ०-अब्भव० मिच्छादि० असण्णित्ति तिरिक्खभंगो। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वाओ। परिहार-संजदासंजदेसु अप्पप्पणो पगदीओ णिरयभंगो।

(मनुष्य तिर्यंचायु) का ओघके समान भंग है। देवगतिचतुष्क और तीर्थंकरके स्यात् सर्व अवन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक तथा एक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है और अनेक वन्धक है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरमें ओघवत् भग जानना चाहिए।

१४० इसी प्रकार कार्माणकाययोगमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका वन्ध नहीं है।

१४१ स्त्रीवेद, पुरुपवेद, नपुसकवेद, क्रोधादि ४, सामायिक, छेदोपस्थापनासंयममे ध्रुव-प्रकृतियोंको छोडकर शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगके समान भंग जानना चाहिए।

१४२ अपगतवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके स्यात् सर्व अवन्धक है। स्यत् अनेक अबन्धक और एकजीव बन्धक है। स्यात् अनेक अवन्धक है, और एक जीव बन्धक हैं (?) **विशेषार्थ**—यहाँ अनेक अवन्धक तथा एक जीव वन्धक है यह कथन हो चुका है अतः पुनः आगत इस पाठमे यह सशोधन सम्यक् प्रतीत होता है कि अनेक वन्धक हैं और अनेक अबन्धक है।

साताके नाना जीव बन्धक हैं और अनेक अबन्धक है।

१४३ अकषायियोंमे—साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। केवलज्ञान और केवलदर्शनमे—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१४४ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, असयत, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, अभव्य-सिद्धिक मिथ्यादृष्टि तथा असज्ञी जीवोंमे तिर्यचोंके समान भग जानना चाहिए। और इनमें जो कुछ विशेपता है वह भी जाननी चाहिए। परिहारविशुद्धि सयम और सयतासंयतोंमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंका नरकवत् भग जानना चाहिए।

१४५. सुहुमसं० पंचणा० चदुदंस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० सिया बंधगो। सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। यथाक्खादे-सादं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। तेउ० सोधम्मभंगो। पम्म० सणक्कुमारभंगो। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो। सम्मादि० खइगसं० अप्पप्पणो पगदीओ ओघेण साधे(धे)दव्वा। वेदगस० परिहारभंगो। णवरि असंजद-संजदासंजद-पगदीओ णादव्वो। उवसमस्स-पंचणा० छदंसणा० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थय० उच्चा०-पंचंत०-अट्ठभंगो। सादासादादीणं परियत्तीणं सव्वाणं पत्तेगेण साधारणेण वि अट्ठभंगो। णवरि वेदणीयाणं साधारणेण सिया बंधगो य। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि।

१४५ सूक्ष्मसाम्परायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका स्यात् एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक जीव बन्धक है। अबन्धक नहीं है। यथाख्यातमें—सातावेदनीयके स्यात् सर्व बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक तथा एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं और स्यात् अनेक अबन्धक है। तेजोलेश्यामे—सौधर्म स्वर्गके समान भंग जानना चाहिए। पद्मलेश्यामे—सनत्कुमारवत् भंग जानना चाहिए। इनका किंचित् विशेष भी जान लेना चाहिए।

विशेष—इस लेश्यामें एकेन्द्रिय, आताप, तथा स्थावरका बन्ध नहीं होता।

सम्यक्दृष्टि, क्षायिकसम्यक्दृष्टिमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंको ओघके समान जानना चाहिए।

वेदकसम्यक्त्वमें—परिहारविशुद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ असंयत और संयतासंयतकी प्रकृतियोंको भी जानना चाहिए।

उपशम सम्यक्त्वमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तरायोंके आठ भग जानना चाहिए। साता असातादिक सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंके अलग-अलग और सम्मिलित रूपमे[1] आठ भंग होते है। विशेष यह है कि वेदनीययुगलके सामान्यसे स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

---

१ "णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण, आदेसेण य। तत्थ ओघेण पेज्ज दोसो च णियमा अत्थि। सुगममेद। एव जाव अणाहारए त्ति वत्तव्व। णवरि मणुसअपज्जत्तएसु णाणेगजीव पेज्ज-दोसे अस्सिऊण अट्ठभगा। त जहा—सिया पेज्ज। सिया णोपेज्ज। सिया पेज्जाणि। सिया णोपेज्जाणि। सिया पेज्ज च णोपेज्ज च। सिया पेज्ज च णोपेज्जाणि च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्ज च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्जाणि च।" —जयध० पृ० ३९०-३९१।

यहाँ आठ भग इस प्रकार होंगे—१ एक बन्धक, २ एक अबन्धक, ३ अनेक बन्धक, ४ अनेक अबन्धक, ५ एक बन्धक एक अबन्धक, ६ अनेक बन्धक अनेक अबन्धक, ७ एक बन्धक अनेक अबन्धक, ८ अनेक बन्धक एक अबन्धक।

१४६. अणाहारगेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदाबुज्जो० णिमि० तित्थय० पंचंत० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं सेसाणं पगदीणं एदेण बीजेण साधेदूण भाणिदव्वं।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं

विशेषार्थ—वेदनीयके अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानमें पाये जाते हैं और उपशम सम्यक्त्व ११वे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है इस कारण उपशमसम्यक्त्वमे साता असाता युगलके अबन्धकोंका अभाव कहा है।

१४६ अनाहारकोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर ५ अन्तरायोंके अनेक बन्धक है और अनेक अबन्धक है।

विशेष—सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानोंमें भी अनाहारक जीव होते है उन गुणस्थानोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अबन्धक कहे गये हैं।

सातावेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। असातावेदनीयके भी अनेक बन्धक है तथा अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक हैं। इसी बीजसे अर्थात् इस दृष्टिसे शेष प्रकृतियोंके भी भग जानना चाहिए।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

[भागाभागाणुगम परूवणा]

१४७. भागाभागाणुग० दु०, ओ० आ० । त ओघे० पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा । अबंधगा सव्वजीवाणं केव० ? अणंतभा० । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्ज० भागो० । अबंध० सव्व० संखेज्जा भागा । असाद० [बंधगा] सव्वजी० केव० ? सखेज्जा० भागा । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्ज० [भा] गो० (?) दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागा । अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदु-जाति-पंचसंठा० तस०४ थिरादिपंचगं उच्चागोदं च । असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-एइंदि०-हुंडसंठा० थावरादिचदु०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदाणं च । सत्तणोक०

[भागाभागानुगम प्ररूपणा]

१४७ भागाभागानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते है ।

विशेषार्थ—भागाभागानुगमके शब्दार्थपर धवलाटीकामें इस प्रकार प्रकाश डाला गया है – "अनन्तवॉ भाग, असंख्यातवॉ भाग और संख्यातवॉ भाग इनकी भाग संज्ञा है । अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग, सख्यात बहुभाग इनकी अभाग संज्ञा है । 'भाग और अभाग' इस प्रकार द्वन्द्व समास होकर भागाभाग पद निष्पन्न हुआ । उन भागाभागोंका जो ज्ञान है, वह भागाभागानुगम है ।[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । साता वेदनीयके वन्धक सब जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है । अवन्धक सर्व जीवोंके सख्यात बहुभाग है । असाताके वन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात वहुभाग है । अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं । दोनों वेदनीयके वन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ?

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्र-का साताके समान भग है । नपुसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुडक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग हैं । सात नोकषाय, ५ जाति,

---

१ अणतभाग-असखेज्जदिभाग-सखेज्जदिभागाण भागसण्णा, अणताभागा, असखेज्जाभागा, सखेज्जा-भागा एदेसिमभागसण्णा । भागो च अभागो च भागाभागा, तेसिमणुगमो भागाभागाणुगमो ॥ —खु० ब० टीका पृ० ४९५ ॥

णेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० मणुसाणु० उज्जोव० पसत्थ० थिरादिछक्कं उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदि-सोग० तिरिक्खग० हुंडसं० असंपत्तसेव० तिरिक्खाणु० अप्पस० अथिरादिछक्कं णीचागोदं च। सत्तणोक० दोगदि० छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछक्क-युगलं दोगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगा० केवडि० ? असंखेज्जदिभा०। तिरिक्खायुबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभा०। सव्वणेरइ० केव० ? संखेज्जदिभा०। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केवडिओ० ? संखेज्जा भागा। मणुसायु-तित्थय० बंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्व-

असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा अबन्धक भी अनन्तवे भाग है। इसका कारण नारकी जीवोकी संख्या है, वह इतनी है कि बन्धक भी बृहत् जीवराशिके अनन्तवे भाग होते हैं तथा अबन्धक भी इतने ही होते है।

दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि षट्क तथा उच्चगोत्रमे साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिरादि षट्क, तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग जानना चाहिए। सात नोकषाय, दो गति, ६ संस्थान, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं अबन्धक नहीं है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। मनुष्यायु, तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है।

वेउव्विय-आहारसरी० अंगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंता भागा। तिण्णि अंगो० बंध० सव्वजीवा० केव० ? संखेज्जदि-भागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। छस्संघ० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० दोसर० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। तित्थयरं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा।

१४८. आदेसेण णेरइगेसु० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि०-तिण्णिसरी०-ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा (?) सव्व-णेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। असाद० सव्व० केव० ? अणं० भागो। सव्व-

---

विशेषार्थ—शंका – जब औदारिक शरीरके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं, तब औदारिक अंगोपांगके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके संख्यातवे भाग क्यों है ? समाधान – औदारिक शरीरके बन्धक अधिक है, तथा औदारिक अंगोपांगके बन्धक कम हैं। अंगोपागका बन्ध केवल त्रसोंके साथ पाया जाता है तथा औदारिक शरीरका बन्ध त्रस-स्थावर दोनोंके साथ पाया जाता है।

वैक्रियिक-आहारक शरीरांगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। तीनों अगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। छह संहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति तथा २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। सामान्यसे छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? तथा अबन्धक कितने भाग हैं ? इनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धक संख्यातवे भाग हैं और अबन्धक संख्यात बहुभाग हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है।

१४८. आदेशसे–नरकगतिमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं।

साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं (?) सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

विशेष—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग कहे गये है, तब साताके अबन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग होना चाहिए अतः साताके अबन्धकोंमे अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । असादबं० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जा भागा । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदि-भागो । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभा० । दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छस्संघ० पर०उस्सा० आदावुज्जो० तस०४ थिरादिपंच-उच्चागोदं च । असादभंगो णपुंस० अरदिसो० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च । सत्तणोक० पंचजादि छस्संठा० तसथावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । चदुआयु-चदुगदि-दोसरी० दोअंगो० छसंघ० चदुआणु० दोविहा० दोसर० ओघं । णवरि गदि-सरी० आणुपु० सव्वे बंधा । अबंधगा णत्थि । पंचिदिय-तिरिक्खेसु–पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जाभा० । अबंध० सव्व० केव० ? अणतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । सादावेद० बंध० सव्व० केव० ?

भाग है ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । असाता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक नहीं है ।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, परघात, उच्छ्‌वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है । नपुंसक-वेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाता वेदनीयके समान भंग है । ७ नोकषाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं । अबन्धक नहीं हैं ।

चार आयु, ४ गति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, दो अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, दो स्वरका ओघवत् भंग है । विशेष, गति, शरीर तथा आनुपूर्वीके सब बन्धक है । अबन्धक नहीं हैं ।

णेरइगाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। दोण्णं आयुगाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। एवं पढमाए पुढवीए। बिदियादि याव छट्ठित्ति णिरयोघो। णवरि आयु मणुसायुभंगो। एवं सत्तमाए। णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचागोदं थीणगिद्धितिगभंगो। मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चागोदं मणुसायुभंगो। दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदा० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि।

१४९. तिरिक्खेसु—पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजीवाणं केवडिया ? अणंताभागा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त० अट्ठक० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागो। सादबंध० सव्व० केवडि० ? संखेज्जदिभागो।

सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है।

इस प्रकार पहली पृथ्वीमे जानना चाहिए। दूसरी पृथ्वीसे छठी पृथ्वी पर्यन्त नारकियोंके सामान्यवत् जानना चाहिए। विशेष, आयुके विषयमें मनुष्यायुके समान भंग है। अर्थात् वन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके असंख्यातवे भाग हैं। अवन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग है। सातवीं पृथ्वीमे इसी प्रकार है। विशेष, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, नीच गोत्रके विषयमे स्त्यानगृद्धित्रिकवत् भंग है।

विशेषार्थ—बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा सर्व नारकियोंके असंख्यातवे भाग है।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है। मनुष्य-तिर्यंचगति, २ आनुपूर्वी तथा दो गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक नहीं है।

१४९ तिर्यंचगतिमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, (स्त्यानगृद्धित्रिक बिना) प्रत्याख्यानावरण ४ तथा संज्वलन चार रूप कषायाष्टक, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं। अनन्त बहुभाग हैं। अवन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण) के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहु भाग है। सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ? सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। सर्व तिर्यचोंके कितने भाग है ? संख्यातवे

चदुण्णं आयुगा० बं० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव०? संखेज्जा भागा। णिरयगदिदेवगदिबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खगदि० असादभंगो। मणुसगदि० सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केवडि० ? अणंत-भागो। अबंधगा णत्थि। ओरालियस० बंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो। वेगुव्वियस० देवगदिभंगो। दोण्णं सरीराणं बंधगा सव्व० के० ? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। ओरालियअंगो० सादभंगो। वेगुव्वियअंगो० देवगदिभंगो। दोण्णं अंगो० सादभंगो। छस्संघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण सादभंगो।

१५०. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु। णवरि णिरय-

---

चार आयुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है? सख्यातवे भाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवें भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोके कितने भाग है? सख्यात बहुभाग है। नरकगति, देवगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है? असख्यातवे भाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है? असख्यात बहुभाग है। तिर्यचगतिका असाताके समान भग है। मनुष्य गतिका साताके समान भग है। चार गतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। अवन्धक नहीं है। औदारिक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग हैं? असख्यात बहुभाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है? असख्यातवे भाग हैं। वैक्रियिक शरीरका देवगतिके समान भग है। औदारिक-वैक्रियिक शरीरोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्त बहुभाग है (?)। अवन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग होना उचित जँचता है। पचेन्द्रिय तिर्यच राशि ही जब सम्पूर्ण जीव राशिके अनन्त बहुभाग प्रमाण नहीं है तब शरीरद्वयके बन्धक अनन्त बहुभाग कैसे होंगे? अत अनन्तवें भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

औदारिक-शरीर-अगोपागके विषयमें साताके समान भग है। वैक्रियिक अगोपागका देवगतिके समान भग है। औदारिक-वैक्रियिक अगोपागोंका साताके समान भग है। छह सहनन, २ विहायोगति तथा स्वरयुगलका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है।

१५० पचेन्द्रिय-तिर्यच-पर्याप्तक पचेन्द्रिय-तिर्यच-योनिमतियोंमें इसी प्रकार है। विशेष

अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागो (गा)। असादं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडिया भागा ? संखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदि-भागो। दोवेदणीयं बं० सव्व० केवडि० ? अणंता (त) भागो। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छस्संघ० पर० उस्सा०-आदावुज्जो० तस०४, थिरादिपंच-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंचणीचागोदं च। सत्तणोक० पंचजादि-छस्संठा० तसथावरादिणवयुगल० दोगोदाण बंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिदिय-तिरिक्खा० केव० ? असंखेज्जदिभा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खायुबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागा।

अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। सातावेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है।

असाताके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य-रति, ४ जाति, ५ सस्थान, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है। नपुसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग है। ७ नोकषाय ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है।

मनुष्य-देव-नरकायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। तिर्यचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यचोके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग हैं।

आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादि-छक्क-दुस्सर-उच्चागोदं० सादभंगो। एइंदियजादि-हुंडसंठा० थावरादि०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदं च असादभंगो। पंचजादि-बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। एवं तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-सव्वपुढवि-आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय०। णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि।

१५१. मणुसेसु–पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। णवरि धुविगाण अबंध० अत्थि। दोवेदणीयाणं बंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव ? अणंतभागो। सव्वमणुयाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जोव० दोविहा० तस०४ थिरादिछ०–दुस्सर उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० तिरिक्खगदि-एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच णीचागोदं च। तिण्णिवेद-हस्सरदिदोयुग० पंचजादिछस्संठा० तसथावरा-

---

६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। ५ जातिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं है। त्रस, स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। छह संहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग है।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, सम्पूर्ण पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, बादर वनस्पति, प्रत्येकमें–इसी प्रकार अर्थात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान जानना चाहिए। विशेष, तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु तथा उच्चगोत्र नहीं हैं।

१५१ मनुष्योंमें–पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भंग है। विशेष, यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक भी पाये जाते हैं। दो वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति ४ जाति ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप उद्योत दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि-षट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। नपुंसकवेद अरति-शोक तिर्यंचगति एकेन्द्रिय जाति हुण्डकसंस्थान तिर्यंचानुपूर्वी स्थावरादि ४ अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। तीन वेद, हास्यरति अरतिशोक पंच जाति,

मणुसायुबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तजोणिणीणं केव० ? असंखेज्जदि० (?)। तिरिक्खदेवायूणं सादभंगो। चदुण्णंपि आयुगाणं सादभंगो। णिरयगदि असादभंगो। तिण्णं दिण्णं सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। एवं आणुपुव्वी०। चदुजादि सादभंगो। पंचिंदियजादीणं असादभंगो। पंचण्णं जादीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। वेगुव्विय० वेगुव्वियअंगो० सादभंगो। दोण्णंपि असादभंगो। छस्संघ० आदावुज्जो० सादभंगो। परघादुस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क-णीचागोदं च असादभंगो। तप्पडिपक्खाणं सादभंगो। दोविहा० दोसर० असादभंगो। तसादिणवयुगलं दोगोदं च वेदणीयभंगो। पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तेसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरी० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। सेसाणं णिरयोघं। णवरि चदुजादि–ओरालि० अंगो० छस्संघ० परघादुस्सा०

यहाँ नरकायु-मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक-योनिमतियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिमतियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं।

विशेष—यहाँ असख्यात बहुभाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

तिर्यंच-देवायुका साताके समान भंग जानना चाहिए। चारों आयुका साताके समान भंग जानना चाहिए। नरकगतिका असाताके समान भंग है। शेष तीन गतियोंका साताके समान भंग है। चारों गतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। आनुपूर्वीका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। ४ जातियोंका साताके समान भंग है। पंचेन्द्रिय जातिका असाताके समान भंग है। पाँच जातियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपागका साताके समान भंग है। दोनोंका सामान्यसे असाताके समान भंग है। ६ संहनन, आतप, उद्योतका सातावत् भंग है। परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६ तथा नीच-गोत्रका असाताके समान भंग है। इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे प्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६, उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। दो विहायोगति, दो स्वरका असाताके समान भंग है। त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भंग है।

पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका नारकियोंके ओघवत जानना चाहिए। विशेष, ४ जाति, औदारिक-अंगोपाग,

तिरिक्खायु-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-पंचसंठा० ओरालि०-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० आदाउज्जो० दोविहा० तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोगो तिरक्खग०-एइंदि०-हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदं च। वेदणीय भंगो सत्तणोक० दोगदि-दोजादि०-छस्संठा० दोआणु० तसथाव०-थिरादिपंच-युगला०दोगोदाणं च। छस्संघ० दोविहा० दोसरं० साधारणेण वि सादभंगो। एवं भवण-वा०-वे०-जोदिसि०। णवरि तित्थय० णत्थि। जोदिसिय-तिरिक्खायु-मणुसायुभंगो। सोधम्मीसाण जोदिसियभंगो, णवरि तित्थयरं अत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो। आणद याव णवके(गे)वज्जात्ति धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ तित्थयरं बंधा० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जा भागो (गा)। सादभंगो इत्थि० णपुंस० हस्सरदि-पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थवि० थिर-सुभग-(सुभ) दूभगदुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति णीचागोदं च। असाद-

---

हास्य, रति, तिर्यचायु, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भग है। नपुसकवेद, अरति, शोक, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान जानना चाहिए। ७ नोकषाय, २ गति, २ जाति, ६ सस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावर, स्थिरादि ५ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भग है। ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे भी साताके समान भग है। भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ तीर्थकर प्रकृति नही है। ज्योतिषी देवोमे तिर्यचायुका मनुष्यायुके समान भग है। सौधर्म और ईशानमे–ज्योतिषियोके समान भग है। विशेष, यहाँ तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध होता है। सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त—दूसरे नरकके समान भग है। आनत-प्राणतसे नव ग्रैवेयक पर्यन्त—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक सब जीवोके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है (?)। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे देवोकी सख्या सर्व जीवोके अनन्तवे भाग कही है—देवगदीए देवा सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणंतभागो (भागाभा० ८, ६)। अतः यहाँ अनन्त बहुभागके स्थानमे अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिक मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थकरके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है (?)।

विशेष—यहाँ सख्यात बहुभाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्रीवेद नपुसकवेद हास्य रति ५ सस्थान ५ सहनन अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर

दिणवयुग०-दोगोदाणं च वेदणीयभंगो। तिण्णिआयु-आहारदु० वेउव्वियछक्कं तित्थय० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। मणुसाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। ओरालिस० पत्तेयेण धुविगाणं भंगो। चदुगदि-दोसरी० चदुआणु० वेदणीयभंगो। दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणाणं सादभंगो।

१५२. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु - एसेव भंगो। णवरि ये असंखेज्जा भागा ते संखेज्जा कादव्वा। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-दोसरीर-पंचसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० आदाउज्जो० पसत्थ० थावरादि०४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि० पंचिंदि० वेगुव्वि० हुंडसं० वेगुव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क० णीचागोदं च। सत्तणोक० चदुगदि-पंचजादि तिण्णिसरीर छस्संठा० तिण्णि अंगो० चदुआणु० दोविहा० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदाणं वेदणीयभंगो। चदुआयु० छस्संघ० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो।

१५३. देवेसु णिरयोघं। णवरि विसेसो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-

---

६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। ३ आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है।

औदारिक शरीरका प्रत्येकसे ध्रुवप्रकृतिसदृश भंग है। चार गति, २ शरीर, ४ आनुपूर्वीका वेदनीयके समान भंग है। दो अंगोपाग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे साताके समान भग है।

१५२ मनुष्य-पर्याप्तक मनुष्यनियोंमें मनुष्यके समान भंग है। विशेष, पूर्वमें जो असख्यात बहुभाग कहे गये है, उनके स्थानमे 'संख्यात बहुभाग' कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्य-तिर्यच-देवगति, ४ जाति, दो शरीर, ५ संस्थान, दो अगोपाग, नरकानुपूर्वीके बिना शेष तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ तथा उच्चगोत्रका साताके समान भग है। नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति वैक्रियिक शरीर, हुण्डकसंस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है। ७ नोकषाय, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संस्थान, ३ अगोपाग, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस स्थावरादि १० युगल और दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। चार आयु ६ संहननका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भग है।

१५३ देवगतिमे - नरकगतिके ओघवत जानना चाहिए। विशेष - स्त्रीवेद, पुरुषवेद,

केव० ? असंखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरि० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्कं दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-तिरिक्खग०-एइंदियजा०-हुंडसं०-तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च। मणुसायु-बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदि-भागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जात्ताणं केव० ? अणंतभागा। दोआयु० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण सादभंगो। सेसाणं परियत्ताणं युगलाणं वेदणीयभंगो।

१५५. सुहुमे०—धुविगाणं बंधगाण-सव्व० केव० ? असंखेज्जा भागा०। अबंधगा णत्थि। सादाबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमे-इंदियाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। सव्वसुहुमाणं केव० ? संखेज्जा भा०। असादं पडिलोमे० भाणिदव्वं। दोवेदणीयाणं बंध० सव्व० केव ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ परियत्तीओ वेदणीयभंगो। छण्णं

जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। अबन्धक नही हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भग जानना चाहिए। नपुसकवेद, अरति, शोक, तिर्यचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग है। मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवों-के कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग हैं। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। दो आयु, छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके सामान्यसे साताके समान भग है ? शेष परिवर्तमान युगलरूप प्रकृतियोका वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

१५५ सूक्ष्म-एकेन्द्रियमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं। असख्याते बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग हैं। सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके सख्यात बहुभाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों-के सख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके सख्यातवे भाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके सख्यातवे भाग हैं।

दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोमे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

भगो पुरिस० अरदिसोग० चमचदु [समचदु०] वज्जरिसभ० पसत्थ० अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० अजस० उच्चागोदाणं च। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव०? ...भागो। अबंधगा णत्थि। एवं सेसं (साणं) परियत्तमाणयाणं। आयु ओघि-...भंगो। अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति अणाद (आणद) भंगो। णवरि सव्वट्ठे आयु माणुसिभंगो।

१९४. एइंदियेसु-पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागो (भागा)। अबंधगा णत्थि। सेसं तिरिक्खोघं। बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्तेसु-दुविगाणं ... केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? असंखे... भागो। ...बादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव०? संखेज्जदिभागो। अबंधगा ... केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भाग। एवं असादं पटिलोमेण भाणिदव्वं। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व०

केव० ? असंखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरि० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्कं दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-तिरिक्खग०-एइंदियजा०-हुंडसं०-तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च। मणुसायु-बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जात्ताणं केव० ? अणंतभागा। दोआयु० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण सादभंगो। सेसाणं परियत्ताणं युगलाणं वेदणीयभंगो।

१५५. सुहुमे०—धुविगाणं बंधगाण-सव्व० केव० ? असंखेज्जा भागा०। अबंधगा णत्थि। सादाबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमे-इंदियाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। सव्वसुहुमाणं केव० ? संखेज्जा भा०। असादं पडिलोमे० भाणिदव्वं। दोवेदणीयाणं बंध० सव्व० केव ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ परियत्तीओ वेदणीयभंगो। छण्णं

जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। दो आयु, छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके सामान्यसे साताके समान भंग है ? शेष परिवर्तमान युगलरूप प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

१५५ सूक्ष्म-एकेन्द्रियमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं। असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भंग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके संख्यातवें भाग हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यातवें भाग है।

दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

सादभंगो। मणुसायुबंध० सव्व० केव० ? अणता(त)भागो। सव्वसुहुमअपज्जत्ता० केव०? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुम-अपज्जत्ता० केव० ? अणंता भागा। दोआयु-तिरिक्खायुभंगो। एवं वणप्फति(दि)णियोदाणं।

१५७. पंचिंदिया मणुसोघं। पंचिंदियपज्जत्तेसु–पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि धुविगाणं मणुसोघं। साधारणेण दोवेदणीयबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियपज्जत्त० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-पज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-देवायु-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ तिण्णिआणु० पसत्थवि० थावरादि४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असाद-भंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि-पंचजा०-वेउव्वि० हुंडसंठा०-वेउव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थवि० तस०४ अथिरादिछक्कं णीचागोदं। णिरयमणु-सायुआहारदुग० तित्थयरं बंधा सव्व० केव० ? अणंता भागा। सव्वपंचिंदि-

प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका साताके समान भंग है। मनुष्यायुके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? ? अनंतवें भाग हैं। सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वसूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। मनुष्य-तिर्यंचायुका तिर्यंचायुके समान भंग हैं।[1] वनस्पति कायिकों तथा निगोदोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१५७ पंचेन्द्रियोंका–मनुष्योंके ओघवत् भंग है। पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें–पंचेन्द्रिय तिर्यंच-पर्याप्तकोंके समान भंग है। विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्यसे दो वेदनीयके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, देवायु, तिर्यंच-मनुष्य-देवगति, ४ जाति, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ और उच्चगोत्रमें साताके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पंचजाति, वैक्रियिक शरीर, हुंडक संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६, नीचगोत्रमें असाताके समान भंग हैं। नरक-मनुष्यायु, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं। अनन्त बहुभाग हैं (?)।

---

१ वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंता भागा ॥–खु० बं० ७५,७६।
२ पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा, मणुस-पज्जत्ता, मणुसिणी मणुस-अपज्जत्ता, सव्वजीवाण केवडिया भागा ? अणंतभागो ॥ –खु० बं० ६ ७।

तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभा० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदि० । दोवेदणीय-सत्तणोक० मणुसोघं । णवरि वेदणीयअबंधगा णत्थि । तिण्णिआयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० । असंखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खायु सादभंगो । चदुआयु० साधारणेण सादभंगो । णिरयगदिबंधगा सव्व० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्ज० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खगदि असादभंगो । मणुसदेवगदि सादभंगो । चदुण्णं गदीणं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भा० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । णिरयगदिभंगो तिण्णिजादि-आहारदुगं णिरयाणुपु० सुहुमअप० साधारण० तित्थयरं च । तिरिक्खगदिभंगो एइंदि० ओरालि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च । देवगदिभंगो पंचिंदिय० वेगुव्विय० पंचसंठाणं ओरालियअंगो०

अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। सेसाणं परियत्तियाणं वेदभंगो।

१६३ इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदि (ज्जा) भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस अजस० दोगोदाण पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिदिय-तिरिक्खिणीभंगो। आयुगाण जोणिणीभंगो। हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्विय० पंचसंठा० दोअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-थिरादि-पंच-दुस्सर-उच्चागोदं च पत्तेगेण सादभंगो। अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-एइंदिय-ओरालिय-हुंडसंठा०-तिरिक्खाणु० परघादुस्सा० थावर बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-अथिरादि०४ णीचागोदं च असादभंगो। एवं पत्तेगेण साधारणेण पंचिदियभंगो। आहारदुगं तित्थयरं च पंचिदियभंगो। तिण्णिअंगो० छसंघ० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभंगो। एवं पुरिसवेदस्स वि।

भंग है। औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे साता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भंग है।

१६३ स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके बन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं, अबन्धक नहीं हैं। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। दो वेदनीय, ३ वेद यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचिनीके समान भंग है। आयुओंमें योनिमतीके समान भंग है। हास्य, रति तीन गति चार जाति वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान दो अंगोपांग, ६ संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, सूक्ष्म अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पाँच, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका प्रत्येकसे साताके समान भंग है। अरति शोक तिर्यंचगति एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर हुंडक संस्थान तिर्यंचानुपूर्वी परघात उच्छ्वास स्थावर बादर पर्याप्तक, प्रत्येक शरीर अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बन्धकके असाता वेदनीयके समान भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रियके समान भंग है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका पंचेन्द्रियके समान भंग है। तीन अंगोपांग ६ संहनन दो विहायोगति सुस्वर दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भंग है।

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भंग है।

---

१ वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो [illegible] ।–खु० बं० भा० सू० ४५-४६।

आहारमि० सव्वट्ठभंगो । णवरि असंजदपगदीओ णत्थि ।

१६२. कम्मइ०–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्व-कम्मइ० केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो (संखेज्जा भागा)। असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं । दोण्ण वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागो (असंखेज्जदिभागो)। अबंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० सादभंगो पत्तेगेण । णवुंस० असादभंगो । साधारणेण धुविगाणं भंगो । देवगदि०४ तित्थय० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागा । साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो । ओरालिय-

वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे-देवोंके ओघवत् है। आहारक, आहारकमिश्र-काययोगमे–सर्वार्थसिद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असंयत अवस्थावाली प्रकृतियाँ नहीं है।

१६२ कार्माणकाययोगियोंमें–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है।[1] सम्पूर्ण कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? असंख्या-तवें भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है (?)

विशेष—यहाँ अबन्धक सर्व कार्माण काययोगियोंकी संख्या 'संख्यात बहुभाग' उचित प्रतीत होती है।

असाता वेदनीयका सातासे विपरीत क्रम जानना चाहिए। दोनो वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ कार्माण काययोगमे दोनो वेदनीयके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके 'असंख्यातवें भाग' उपयुक्त प्रतीत होते हैं। क्योंकि इस योगवालोंकी संख्या सर्वजीव राशिकी असंख्यातवें भाग कही गयी है।

स्त्रीवेद पुरुषवेदमे प्रत्येकसे साताके समान भंग है। नपुंसकवेदमे असाताका भंग है। सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग जानना चाहिए। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवें भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंके

---

१ कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखेज्जदिभागो । –खु० बं० भा० ४३-४४ ।

अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। सेसाणं परियत्तियाणं वेदभंगो।

१६३ इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदि (ज्जा) भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस-अजस० दोगोदाणं पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदिय-तिरिक्खिणीभंगो। आयुगाणं जोणिणीभंगो। हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्विय० पंचसंठा० दोअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-थिरादि-पंच-दुस्सर-उच्चागोदं च पत्तेगेण साद-भंगो। अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-एइंदिय-ओरालिय-हुंडसंठा०-तिरिक्खाणु० परघादुस्सा० थावर बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-अथिरादि०४ णीचागोदं च असादभंगो। एवं पत्तेगेण साधारणेण पंचिंदियभंगो। आहारदुगं तित्थयरं च पंचिंदियभंगो। तिण्णिअंगो० छसंघ० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभंगो। एवं पुरिसवेदस्स वि।

भंग है। औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे साता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भंग है।

१६३ स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके बन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं[1], अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। दो वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचिनीके समान भंग है। आयुओंमें योनिमतीके समान भंग है। हास्य, रति, तीन गति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपांग, ६ संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पाँच, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका प्रत्येकसे साताके समान भंग है। अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक शरीर, अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बन्धकके असाता वेदनीयके समान भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रियके समान भंग है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका पंचेन्द्रियके समान भंग है। तीन अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति, सुस्वर, दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भंग है।

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भंग है।

---

[1] वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतो भागो—॥—खु० बं० भा० सू० ५५, ५६।

१६४. णवुंसगवेदस्स–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा। सव्वणवुंसगवेदाणं केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणवुंसग० केव० ? अणंतभागो। दो-वेयणी० तिण्णिवेद० जस० अजस० दोगोदं च पत्तेगेण साधारणेण च तिरिक्खोघं। हस्सरदि-अरदिसोगाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। आयुचत्तारि वि तिरिक्खोघं। एवं णाम-पगडीणं परियत्तमाणीणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। णवरि अंगोवं० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो।

१६५. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० सादावे० चदुसंज० जसगि० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअवगदवे० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-अवगदवे० केव० ? अणंतभागा।

१६६. कोधे–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० तेजाक०

१६४ नपुमकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। सम्पूर्ण नपुमकवेदियोंके कितने भाग हैं। अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व नपुंमकवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। दो वेदनीय, तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, २ गोत्रका प्रत्येक तथा सामान्यसे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। हास्य-रति अरति शोकमें प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् भंग हैं। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भंग हैं। चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ-समान भंग हैं। परिवर्तमान नामकर्मकी प्रकृतियोंका प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् भंग हैं। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भंग हैं। विशेष, अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका सातावेदनीयके समान भंग हैं।

१६५ अपगतवेदमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं।

१६६ क्रोधकषायमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं। अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण,

१ णवुंसगवेदा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंता भागा। ४७,४८ खु० ब०। २ कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? चदुब्भागो देसूणा। –सू० ४९-५०।

(आभागा) । असादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वलोभे केव० ? संखेज्जा भागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वलोभे केव० ? संखेज्जदिभागो । एवं जस० अजस० दोगोदं च । तिण्णिवे० [हस्सादि] दोयुगल० चदुआयु० चदुगदि-पंचजादि-सव्वसरीर-छस्संठा० तिण्णिअंगो० छस्संघ० चदुआणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० तसथावरादिणवयुगलाणं कोधभंगो । णवरि यं हि चदुभागे देसूणे तं हि चदुभागो सादिरेयो कादव्वो । एवं णाणत्तं कोधादू० । अकसाई-केवलि(ल)णा० केवलदंसणा० सादावे० अवगदवेदभंगो ।

१६७. मदि० सुद०–धुविगाणं मिच्छत्तं वज्ज एइंदियभंगो । मिच्छत्त सेसाणं च तिरिक्खोघं ।

१६८. विभंगे–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा णत्थि । मिच्छत्त-परघादुस्सास-बादरपज्जत्त-पत्तेयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वविभंगा केव०? असंखेज्जा भागा । अबन्धगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो । सव्वविभंगे केव० ? असंखेज्जदिभागो । दोवेदणीय-तिण्णिवेदणीय (वेद) सव्वयुगलाणं

असाताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग है । तीन वेद, हास्य रति अरति, शोक, चार आयु, चार गति, ५ जाति सर्व शरीर ६ संस्थान तीन अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास आतप, उद्योत दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ९ युगलका क्रोधके समान भंग जानना चाहिए । विशेष जहाँ पर देशोन चार भाग हो, वहाँ इसमें साधिक चार भाग कर लेना चाहिए । यही क्रोधसे यहाँ विशेषता है । अकषायी, केवलज्ञानी केवलदर्शनीमें साता वेदनीयका अपगतवेदके समान भंग है ।

१६७ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें–मिथ्यात्वको छोड़कर ध्रुव प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है । मिथ्यात्व तथा शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् भंग है ।

१६८ विभंगज्ञानमें ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अबन्धक नहीं हैं । मिथ्यात्व परघात उच्छ्वास बादर पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । सर्वविभंग ज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । सर्व विभंगज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । दो वेदनीय तीन वेदनीय (वेद) तथा सम्पूर्ण युगल प्रकृतियोंके प्रत्येक तथा सामान्यसे देवगतिके ओघवत् जानना चाहिए ।

[illegible]

आयुगाणं तिरिक्खायुभंगो। तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० असादभंगो। मणुसगदि-ओरालि० अंगो छसंघड० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण वि साधारणेण वि सादभंगो। चदुगदि-चदुआणु० साधारणेण वेदभंगो। ओरालिय० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो। सव्वकोधेसु केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो। तिण्णिसरीराणं साधारणेण वेदभंगो। एवं माणमायावि। लोभेसु-पचणा० चदुदंसणा० पंचंतरा० बंधगा० सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। सव्वलोभाणं केव० ? अणता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वलोभाणं केव० ? अणंतभागो। सादासादं पत्तेगेण कोधभंगो। साधारणेण दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। अथवा सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोभे केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। सव्वलोभे केव० ? संखेज्जदिभागो

आयुओंका तिर्यंचायुके समान भंग है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वीका असाताके समान भंग है। मनुष्यगति, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत २ विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है। चार गति, चार आनुपूर्वीका सामान्यसे वेदके समान भंग है। औदारिक शरीरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। तीनों शरीरका साधारणसे वेदके समान भंग है ? मान तथा मायाकषायमें – क्रोधके समान भंग है। लोभकषायमें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार[१] भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४ अगुरुलघु उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं। सम्पूर्ण लोभियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। साता-असाताका प्रत्येकसे क्रोधके समान भंग है। सामान्यसे दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। अथवा साताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?)।

विशेष – यहाँ अबन्धक सर्वलोभियोंकी संख्यामें 'संख्यात बहुभाग' उपयुक्त प्रतीत होता है

१ लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? चदुब्भागो सादिरेगो। –खु० बं० भा० ५१ ५२ ।

आहारदुगं तित्थयरं विभंगणाणं च देवगदिभंगो। मणुसगदि-पंचगं धुविगाणं भंगो। पत्तेगेण साधारणेण त्ति गदिधुविगाणं भंगो। एवं दोसरीर दोअंगो० दोआणु०। एवं ओधिदं०। मणपज्जव०-मणुसिभंगो। णवरि वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। एवं संजदेपि। वेदणीयस्स अबंधगा अत्थि। सामाइ० छेदो०-पंचणा० चदुदंस० लोभसंजलण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं केवडिओ भागो? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसं मणपज्जवभंगो। परिहार०-आहारकाजोगिभंगो। सुहुमसंप०-पंचणा० चदुदं० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। यथाक्खाद०-सादबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव० ?

आहारकद्विक, तीर्थकरके विभंगज्ञानियोंमे देवगतिके समान भंग है। मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। दो शरीर, दो अंगोपांग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अवधिदर्शनमें उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है।

मनःपर्ययज्ञानमे – मनुष्यनियोंके समान भंग है। विशेष, यहाँ वेदनीयके अबन्धक नहीं है। संयतोंमें इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अबन्धक भी है।

सामायिक-छेदोपस्थापना संयममें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-संज्वलन, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका मनःपर्ययज्ञानके समान भंग है।

परिहारविशुद्धिसंयममे – आहारककाययोगीके समान भंग है।

सूक्ष्म साम्पराय-संयममें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं हैं।

यथाख्यात संयममें – साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवे भाग हैं। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवें भाग हैं। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं (?)

विशेष – यहाँ सर्व यथाख्यात सयमियोंमें अबन्धकोंकी गणना संख्यातवें भाग सम्यक् प्रतीत होती है।

---

१ दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी – ओहिदंसणी केवडिओ [illegible] केवडिओ भागो? अणंत-भागो। अचक्खुदंसणी सव्वजीवाण केवडिओ भागो? अणंता भागा॥ —६३-६६ ख० बं० सू०।

२ संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदासंजदासंजदा सव्वजीवाण केवडिओ भागो? अणंतभागो। असंजदा सव्व-जीवाण केवडिओ भागो? अणंता भागा॥ —५९-६२ खु० बं० सू०।

संखेज्जा भागा (संखेज्जदिभागो)। संजदासंजदस्स अणुत्तरभंगो। णवरि देवायुतित्थयरं च ओधिभंगो। असंजदा तिरिक्खोघं। तित्थयरं मूलोघं। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० कायजोगिभंगो।

१७० किण्णाए-पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागा सादिरेया। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंतभागो। एवं लोभभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि। णवरि दुपगदीणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। एवं परियत्तमाणीणं सव्वाणं। आयुगाणं अंगोवंग-संघडण-विहायगदिसरवज्जाणं पि। एदासिं पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। एवं णीलकाऊणं। णवरि तिभागो देसूणो। तेऊए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादरपज्जत्ते (?) णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा

संयमासंयममें – अनुत्तरवासी देवोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, देवायु और तीर्थंकरप्रकृतिका अवधिज्ञानके समान भंग है। असंयतोंमें – तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। तीर्थंकरका मूलके ओघवत् भंग जानना चाहिए।

चक्षुदर्शनमें—त्रस-पर्याप्तकका भंग है। अचक्षुदर्शनमें काययोगियोंके समान भंग है।

१७० कृष्णलेश्यामें[1]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक तीन भाग प्रमाण हैं। अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। साता-असाताका प्रत्येक तथा सामान्यसे लोभकषायके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, साता-असातारूप दो प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार परिवर्तमान सर्व प्रकृतियोंमें जानना चाहिए, किन्तु आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगति तथा स्वरको छोड़ देना चाहिए। इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे सातावेदनीयके समान भंग है। नील तथा कापोतलेश्यामें – ऐसा ही जानना चाहिए। विशेष, यहाँ देशोन त्रिभाग जानना चाहिए।

१७१ तेजोलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, [3]अगुरुलघु ४, बादर पर्याप्त (प्रत्येक) निर्माण, ५ अन्तरायके

---

१ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? तिभागो सादिरेगो। २ णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? तिभागो देसूणो॥ ३ तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो। —खु० बं० सू० ६७-७०।

णत्थि। दोआयु आहारदुगं० तित्थयरं च ओधिभंगो। बारसकसायाणं थीणगिद्धिभंगो। देवगदिचदुक्कं सादभंगो। सेसाणं देवोघं। पम्माए—पंचणाणावरणीय-छदंसणा० चदुसंजलण० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितय मिच्छत्तं बारसक० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलाणं थिरादितिण्णियुगलाणं तेउभंगो। इत्थि० णवुंस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। पुरिस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। तिण्णिवेदाणं सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। एवं णवुंसगभंगो तिण्णि आयु-दोगदि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो० छसंघ०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो०। पुरिस० वेदभंगो देवगदि० वेगुव्वियस० समचदु०

बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक नहीं हैं। दो आयु, आहारकद्विक, तीर्थंकरका अवधिज्ञानके समान भग है। बारह कपायोंका स्त्यानगृद्धिके समान भग जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका साता वेदनीयके समान भंग है। शेष प्रकृतियोका देवोंके ओघवत् है।

पद्मलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग है। अवन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अवन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग है। दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति शोक स्थिरादि तीन युगलोंका तेजोलेश्याके समान भग है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अवन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अवन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। पुरुषवेदके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अवन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। तीन वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक नहीं है। तीन आयु, २ गति, आहारक शरीर ५ संस्थान औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग दुस्वर अनादेय नीच गोत्रका नपुंसक वेदके समान भग है। देवगति, वैक्रियिक शरीर,

वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। आहारदुगं तित्थयरं देवायुभंगो। साधारणेण वि तिण्णिवेदाणं भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० थिरादिछयुगलं दोगोदं च। तिण्णिआयु-छसंघ० साधारणेण वि इत्थिभंगो। सुक्काए-पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ तित्थयरं बंधगा केव० ? अणंताभागो (अणंतभागो)। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जदि-भागा (गो)। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जा भागा। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलं-थिरादितिण्णियुगलं च मणजोगिभंगो। इत्थि० णवुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर अणादेज्ज णीचागोदं च थीणगिद्धि-भंगो। पुरिस० पसत्थवि० सुभग सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं असादभंगो। दोआयु-दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो। मणुसगदि०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि तिण्णिवेद-दोगदि-

---

समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भंग है। आहारकद्विक, तीर्थंकरका देवायुके समान भंग है। तीन गति, दो शरीर, ६ संस्थान, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल, दो गोत्रका सामान्यसे वेदत्रयके समान भंग जानना चाहिए। तीन आयु, छह संहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भंग है।

शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय तैजस-कार्माण वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ललेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्या-वालोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलका मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए। स्त्रीवेद नपुंसकवेद ५ संस्थान ५ संहनन अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका स्त्यानगृद्धिके समान भंग है। पुरुष वेद प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है। दो आयु दो गति, आहारकद्विकका अवधिज्ञानके समान भंग है। मनुष्य गति ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं।

अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो(गा)। एवं सव्वपगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि एस भंगो कादव्वो। वेदगसम्मादिट्ठि-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पत्तेगेण-ओधिभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। उवसम०-ओधिभंगो। णवरि विसेसो जाणिदव्वा। सासणसम्मा०-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयु० देवगदि०४ पत्तेगेण सुक्काए भंगो। सेसाणं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणेण देवोघं। सम्मामिच्छा०-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। दोवेदणीयं हस्सादिदोयुगलं थिरादितिण्णियुगलं देवभंगो। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ सुक्काए भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वेदणीयभंगो। मिच्छादिट्ठि मदिभंगो।

उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं (?)।

विशेष—अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है।

सामान्य तथा प्रत्येकसे सर्व प्रकृतियोंका इसी प्रकार भंग है।

वेदकसम्यक्त्वीमें – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानके समान भंग है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सब सम्यक्त्वियोंकी संख्या समस्त जीवोंके अनन्तवें भाग कही गयी है।

उपशमसम्यक्त्वीमें—अवधिज्ञानके समान भंग है। इसमें जो विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए।

विशेष—जैसे मनुष्यायु तथा देवायुका बन्ध उपशमसम्यक्त्वमें नहीं होता है। तिर्यंचायु तथा नरकायुका बन्ध तो सम्यक्त्वी मात्रके नहीं होगा, कारण नरकायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वमें और तिर्यंचायुकी सासादनमें हो जाती है।

सासादनसम्यक्त्वीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। नरकायुको छोड़कर शेष ३ आयु, देवगति ४ का पृथक् रूपसे शुक्ललेश्याके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानवत् भंग है। सामान्यसे देवोंके ओघवत् है।

सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। दो वेदनीय हास्य, रति, अरति शोक, स्थिरादि तीन युगलका देवके समान भंग है। मनुष्यगतिपंचक देवगति ४ का शुक्ललेश्याके समान भंग है।

[illegible] सम्माइट्ठी [illegible] वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मा-मिच्छाइट्ठी [illegible] भागो। —[illegible]।

भागा। असाद-पडिलोमं भाणिदव्वं। दोण्णं बंधगाणं णाणावरणीयभंगो। देवगदि०४ तित्थयराणं आहारभंगो। सेसाणि कम्माणि पत्तेगेण साधारणेण य कम्मइगभंगो।

एवं भागाभागं समत्तं।

असाता-साताके बंधकोंका ज्ञानावरणके समान भंग है। देवगति ४, तीर्थंकरका आहारके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे कार्माण काययोगीके समान भंग है।

इस प्रकार भागाभाग-प्ररूपणा समाप्त हुई।

[परिमाणाणुगम-परूवणा]

१७४. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण-पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगंच्छा-तेजाकम्मइग-वण्ण०४ अगु०४ आदा-उज्जोव-णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवडिया? अणंता। सादबंधगाबंधगा केव०? अणंता। असादबंधा(धगा) अबंधगा केव०? अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं बंधा(धगा) अबंधगा अणंता। एवं सत्तणोक० पंचजादि-छसंठाणं छसंघ० दोविहाय० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदं च। तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क तित्थयरं बंधगा केव०? असंखेज्जा। अबंधगा केत्तिया? अणंता। तिरिक्खायु-दोगदि-

[परिमाणानुगम]

१७४. परिमाणानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं।

विविध मार्गणाओंमें स्थित जीवोंके किस प्रकृतिके बन्धकोंकी कितनी संख्या है, इस बातका ज्ञान परिमाणानुगम प्ररूपणा-द्वारा होता है। खुद्दाबन्धकी धवलाटीकामें वीरसेनाचार्यने लिखा है "एदाओ मग्गणाओ सव्वकालमत्थि, एदाओ च सव्वकालं णत्थित्ति णाणाजीवभंगविचयाणुगमेण जाणाविय संपहि मग्गणासु ट्ठिदजीवाणं पमाणपरूवट्ठं दव्वाणिओगद्दारमागदं (पृ० २४४)" ये मार्गणाएँ सर्वकाल हैं, ये मार्गणाएँ सर्वकाल नहीं हैं। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयाणुगमसे कहकर अब उन मार्गणाओंमें स्थित जीवोंके प्रमाणके निरूपणार्थ द्रव्यानुयोग-द्वार प्राप्त होता है।

शंका—क्षेत्रानुगम-प्ररूपणाके पूर्व परिमाणानुगम-प्ररूपणाका कथन क्यों किया गया?

समाधान—'दव्वपमाणे अणवगदे खेत्तादिअणियोगद्दाराणमधिगमोवाओ णत्थित्ति दव्वाणिओगद्दारस्स पुव्वणिद्देसो कदो।' (खु० ब० टीका पृ० २७) द्रव्य प्रमाणके जाने बिना क्षेत्रादि अनुयोग द्वारोंके जाननेका उपाय नहीं है, इससे द्रव्यानुयोगद्वारका पहले कथन किया है, क्षेत्रादिका कथन बादमें किया गया है।

ओघसे-५ ज्ञानावरण ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, [illegible] शरीर वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक और अबन्धक कितने हैं? अनन्त हैं। साता वेदनीयके बन्धक और अबन्धक कितने हैं? अनन्त हैं। असाताके बन्धक-अबन्धक कितने हैं? अनन्त हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक-अबन्धक अनन्त हैं। ५ नोकषाय (भय-जुगुप्साको छोड़कर), ५ जाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, [illegible] त्रस स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रके बन्धकों-अबन्धकोंका भी इसी प्रकार [illegible] चाहिए।

[illegible] देव-मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक कितने हैं? असं-

---

[illegible] ॥"–षट्खं० टी० पृ० [illegible]।

ओरालिय० ओरालि० अंगो० दोआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता । चदुआयु-चदुगदि-दोसरीर-दोअंगो० चदुआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता । आहारदुगस्स बंधगा केत्तिया ? संखेज्जा । अबंधगा केत्तिया ? अणंता ।

१७५. आदेसेण–णिरयेसु–धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खायु-उज्जोव-तित्थयराणं (?) बंधगा अबंधगा असंखेज्जा । सादासादबंधगा असंखेज्जा । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । मणुसायुबंधगा केत्तिया ? संखेज्जा । अबंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसाणं परियत्तमाणियाणं वेदणीयभंगो कादव्वो । एवं सव्वणेरइगाणं ।

१७६. तिरिक्खेसु–धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? अणंता । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा केत्तिया ? अणंता । अबंधगा असंखेज्जा । सादासादबंधगा-अबंधगा केत्तिया ? अणंता । दोण्णं वेदणीयाणं

ख्यात है । अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं । तिर्यंचायु, दो गति (तिर्यंच-मनुष्यगति), औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, २ आनुपूर्वी (तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी) के बन्धक-अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं । चार आयु, ४ गति, दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), दो अंगोपांग (औदारिक वैक्रियिक अंगोपांग), ४ आनुपूर्वीके बन्धक-अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं । आहारकद्विकके बन्धक कितने हैं ? संख्यात हैं । अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं ।

विशेष—[1]आहारकद्विकके बन्धक अप्रमत्त संयत होते हैं । उनकी संख्या संख्यात है ।

१७५. आदेशसे—नरकगतिमें, ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अबन्धक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं[3] । साता-असाताके बन्धक असंख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं । अबन्धक नहीं हैं । मनुष्यायुके बन्धक कितने हैं ? संख्यात हैं । अबन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं[4] । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए । सम्पूर्ण नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१७६. तिर्यंचगतिमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं । अबन्धक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी४ अप्रत्याख्यानावरण ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं । अबन्धक असंख्यात हैं[5] । साता-असाताके बन्धक-

---

१ "अपमत्त-संजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥" —षट्खं० द० सू० ८ । २ "घादितिमिच्छकसाया भयतेगुरुदुगणिमिणवण्णचओ । सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥" —गो० क० गा० १२४ । ३ "णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ।"—षट्खं० द० सू० १५ । ४ दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? [illegible] —खु० बं० टीका पृ० २४४ सूत्र १-२ । ५ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ? [illegible] —खु० बं० सू० १४-१५ ।

बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णि-आयु० वेउव्वियछक्कं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा अणंता। एवं वेदणीय-भंगो सव्वाणं परियत्तमाणियाणं। णवरि चदुआयु-दो अंगो० छसंघ० परघादुस्सा० दोविहा० दोसर० बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि असंखेज्जं कादव्वं।

१७७. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु–धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। एवं सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय। एइंदिय-वणप्फदि-णियोदाणं एवं चेव। णवरि अणंतं कादव्वं। णवरि मणुसायुबंधगा अबंधगा असंखेज्जा।

१७८. मणुसेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक०

अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं। दोनों वेदनीयके बन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं। अबन्धक नहीं हैं। तीन आयु (तिर्यंचायुको छोड़कर), वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवानुपूर्वी, नरक-गति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग) के बन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं। अबन्धक अनन्त हैं।

विशेष—आयुत्रिकमें यदि तिर्यंचायु सम्मिलित की जाती, तो बन्धक असंख्यात न होकर अनन्त हो जाते, अतः आयुत्रिकको तिर्यंचायु विरहित समझना चाहिए।

इस प्रकार सर्व परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग समझना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयु, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक-अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमें इसी प्रकार समझना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तके स्थानमें 'असंख्यात' को ग्रहण करना चाहिए।

१७७. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक असंख्यात हैं। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमें पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंके समान भंग समझना चाहिए। सम्पूर्ण विकलेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकमें ऐसा ही जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, वनस्पति निगोदमें भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि असंख्यातके स्थानमें यहाँ 'अनन्त' कहना चाहिए। विशेष, मनुष्यायुके बन्धक अबन्धक असंख्यात हैं।

विशेष—यह कथन सामान्यकी अपेक्षा है। तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायुके बन्धा-बन्धकका [illegible] नियम यहाँ भी लागू रहेगा।

१७८. मनुष्योंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय-

---

१. [illegible] – [illegible] – पंचिदियतिरिक्खजोणिणी – पंचिदियतिरिक्ख – [illegible] – खु० बं० सू० १८ १६। २. "मणुसगदीए मणुस्सेसु मिच्छाइट्ठी [illegible] – षट्खं० द० सू० ४०। "मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठी दव्व [illegible]

१८१. एवं पंचमण० पंचवचि० चक्खुदंस० सण्णि त्ति। णवरि दोवेदणीएसु अबंधगा णत्थि। काजोगीसु–पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अणंता, अबंधगा संखेज्जा। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराण बंधगा अणंता, अबंधगा असंखेज्जा। सादासाद-बंधगा अबंधगा अणंता। दोण्ण वेदणीयाणं बंधगा अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णिआयु-वेगुव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थयरं च ओघं। सेसाण पत्तेगेण बंधगा अबंधगा अणंता। साधारणेण बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। चदुआयु-दोअंगोवंग-छस्संघ० परघा-

दुस्सर-आदाउज्जोव-दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा अणंता । एवं ओरालियकायजोगि-अचक्खुदंसणी-आहारगत्ति । ओरालियमिस्सका०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तित्थयराणं (?) [पंचंतराइगाणं] बंधगा अणंता । अबंधगा संखेज्जा । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा असंखेज्जा । देवगदि०४ तित्थय० बंधगा संखेज्जा । अबंधगा अणंता । सेसं ओरालिय-काजोगिभंगो । एवं कम्मइगे । णवरि थीणगिद्धि३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ अबंधगा असंखेज्जा । वेउव्वियकाजोगि-वेउव्वियमिस्स० देवोघं । णवरि वेउव्वियमिस्स० तित्थय० बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा । आहार० आहारमिस्स० मणुसभंगो । एवं मणपज्जव० संजद-

सामाइय० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० यथाक्खाद० ।

१८२. इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि दोवेदणीय-जस० अजस० दोगोदाणं बंधगा असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । तित्थयरकम्मस्स बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा । एवं पुरिसवेदे । णवरि तित्थयरस्स बंधगा अबंधगा असंखेज्जा । णवुंस०–पंचणा० चदुदंस० [चदुसंज०] पंचंतराइगाणं० अणंता । अबंधगा णत्थि । सेसं कायजोगिभंगो । णवरि जस-अजस० दोगोदाणं अबंधगा णत्थि । एवं कोधादि०४ । णवरि अप्पप्पणो धुविगाणं णादव्वाओ ।

१८३ मदि० सुद०–धुविगाणं बंधगा अणंता । अबंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता । अबंधगा असंखेज्जा । सेसं तिरिक्खोघं । एवं अब्भ० सिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मिच्छत्तस्स अबंधगा णत्थि । अवगदवेदेसु–पंचणा०

---

[1]मनःपर्ययज्ञान, सयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यातसयतमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—सयत सामायिक छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयत कोटि पृथक्त्व प्रमाण है। परिहारविशुद्धिसयत सहस्रपृथक्त्व है। सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसयत शतपृथक्त्व है। यथाख्यातविहारशुद्धिसयत शत सहस्र पृथक्त्व प्रमाण है

१८२ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन और ५ अन्तरायके बन्धक असख्यात है, अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोका पचेन्द्रियके समान वर्णन है। विशेष, दो वेदनीय यशःकीर्ति अयशःकीर्ति, दो गोत्रोंके बन्धक असख्यात हैं, अबन्धक नहीं हैं। तीर्थंकर कर्मके बन्धक सख्यात हैं अबन्धक असख्यात है। पुरुषवेदमे इसी प्रकार है। विशेष, तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक असख्यात है। नपुसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण [४ सज्वलन] ५ अन्तरायके बन्धक अनन्त है, अबन्धक नही हैं। शेष प्रकृतियोंमे काययोगीके समान भंग है। विशेष यह है कि यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा दो गोत्रोंके अबन्धक नहीं हैं। क्रोधादि ४ मे इसी प्रकार है। विशेष अपनी ध्रुव प्रकृतियोंकी विशेषताको यहाँ जान लेना चाहिए।

१८३ मत्यज्ञान श्रुताज्ञानमे—ध्रुवप्रकृतियोके बन्धक अनन्त है, अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धक अनन्त हैं। अबन्धक असख्यात है।

विशेष—अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा यह गणना की गयी है।

शेष प्रकृतियोमे तिर्यचोके ओघवत भग जानना चाहिए।

अनन्तसिद्धिक मिथ्यादृष्टि असज्ञीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ

---

१ [illegible] दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा। केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? [illegible] ॥ –खु० [illegible] । [illegible] सजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावण सुद्धि-सजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? [illegible] परिहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सहस्सपुधत्त । सुहुमसापराइयसुद्धिसजदा [illegible] । जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सदसहस्सपुधत्त । [illegible] केवडिया ? [illegible] ॥ –खु० ब० सू० १२८-१३७ ।

चदुदंस० चदुसंज० साद० जस० उच्चागोद० पंचंतराइगाणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। अकसाइ-सादबंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता [एवं] केवलणा० केवलदंस० विभंग० पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो। आभिणि० सुद० ओधि०—पंचणा० छदंस० अट्ठकसाय-पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग० सुस्सर-आदेज्ज० णिमि० उच्चा० पंचंत० बंधगा० केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। सादासादबंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा णत्थि। चदुणोकसायाणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं युगलाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगोवंग-दोआणुपुव्वि० थिरादितिण्णियुगलाणं। मणुसायु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। अपच्चक्खाणावरण०४ देवायु० वज्जरिसभ० तित्थयराणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। एवं ओधिदं० उवसम०। णवरि उवसम० तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा।

अबंधगा णत्थि। सेसं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणे अबंधगा णत्थि। आयु-वज-रिसहाणं ओधिभंगो। सासणे–मणुसायुबंधगा संखेज्जा। सेसभंगा असंखेज्जा। सम्मामिच्छे–सव्वभंगा असंखेज्जा। अणाहारगेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा अणंता। सादासादबंधगा अबंधगा अणंता। एवं सेसाणं पि। णवरि देवगदिपंचगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता।

एवं परिमाणं समत्तं

अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भंग है। साधारणमें अबन्धक नहीं है। आयु तथा वज्रवृषभसंहननका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। सासादनमें – मनुष्यायुके बन्धक संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके भंग असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें – सर्व भंग असंख्यात जानना चाहिए। अनाहारकोंमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक अनन्त हैं। साता-असाताके बन्धक-अबन्धक अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवगति ५ के बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक अनन्त हैं।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

सम्मादिट्ठि धुविगाणं बंधगा असखेज्जा, अबंधगा अणंता। सेसाणं धुविगाणं भंगो। पनगेन साधारणेण वि मणुसायुआहारदुगं बंधगा संखेज्जा। एवं खइगसम्मादिट्ठीणं। णवरि देवायुबंधगा सखेज्जा, अबंधगा अणंता। वेदग०-धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा।

अबंधगा णत्थि। सेसं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणे अबंधगा णत्थि। आयुवज्ज-रिसहाणं ओधिभंगो। सासणे–मणुसायुबंधगा संखेज्जा। सेसभंगा असंखेज्जा। सम्मामिच्छे–सव्वभंगा असंखेज्जा। अणाहारगेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा अणंता। सादासादबंधगा अबंधगा अणंता। एवं सेसाणं पि। णवरि देवगदिपंचगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता।

एवं परिमाणं समत्तं

अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भंग है। सामान्यसे अबन्धक नहीं है। आयु तथा वज्रवृषभसंहननका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। सासादनमें – मनुष्यायुके बन्धक संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके भंग असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें – सर्व भंग असंख्यात जानना चाहिए। अनाहारकोंमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक अनन्त हैं। साता-असाताके बन्धक-अबन्धक अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवगति ५ के बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक अनन्त हैं।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

अन्य सूत्रकी टीकामें लोकको पचविध कहा है, "एत्थ लोगो पंचविहो उड्ढलोगो अधोलोगो तिरियलोगो मणुसलोगो सामण्णलोगो चेदि। एदेसिं पचण्ह पि लोगाणं लोगग्गहणेण गहणं कादव्व (पृ० ३०१) - यहाँ लोक ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक सामान्य लोक इस प्रकार पचभेदरहित है। लोकके ग्रहण करनेसे पाँचों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए। मनुष्य लोकका तिर्यग्लोकमे अन्तर्भाव होनेसे लोकत्रयकी मान्यताका सर्वत्र प्रचार है। धवला-टीकाकारने पचविध लोकोंको लक्ष्यमे रखकर तत्त्व प्रतिपादन किया है। तीनसौ तैतालीस घनराजु प्रमाण सामान्य लोक है। एकसौ छ्यानवे घनराजु प्रमाण अधोलोक है, एकसौ सैतालीस घनराजु प्रमाण ऊर्ध्वलोक है। एक लाख योजन ऊंचा, पूर्व पश्चिममें एक राजू चौडा तथा उत्तर दक्षिणमें सात राजू लम्बा तिर्यग्लोक है। पैतालीस लाख योजन लम्बे तथा चौडे और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहा गया है।

इस पचविधलोकमें जीवका सचार होता है। खुद्दाबन्ध क्षेत्रानुगम प्ररूपणामे स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपादकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन किया है। धवलाटीकामे यह महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी कथन किया गया है। स्वस्थान पद स्वस्थान-स्वस्थान तथा विहारवत्स्वस्थानके भेदसे दो प्रकार है। अपने-अपने उत्पन्न होनेके ग्रामादिकोंकी सीमाके भीतर परिभ्रमण करनेको स्वस्थान-स्वस्थान कहते है। इससे बाह्य प्रदेशमे घूमनेको विहारवत्स्वस्थान कहते है।

नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुने प्रमाण विसर्पणको वेदना समुद्घात कहते हैं। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुने प्रमाण (शरीर-तिगुण) प्रसर्पणको कषाय समुद्घात कहा है। वैक्रियिक शरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोडकर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिक समुद्घात है। अपने वर्तमान शरीरको नहीं छोडकर ऋजुगति-द्वारा या विग्रहगति द्वारा आगे जिसमे उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीरसे तिगुने विस्तार-से अथवा अन्य प्रकारसे (शरीरतिगुण-बाहल्लेण अण्णहा वा) अन्तर्मुहूर्त तक रहनेको मारणान्तिक समुद्घात कहा है। मारणान्तिक समुद्घात निश्चयसे आगामी जहाँ उत्पन्न होना है, उसी क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। अन्य समुद्घातोंमें दशों दिशाओमे गमन पाया जाता है। जिसने आगामी भवकी आयु बाँध ली है, ऐसे बद्धायुष्क जीवके ही मारणान्तिक समुद्घात होता है। इस समुद्घातका आयाम अर्थात्, विस्तार उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है इतर समुद्घातोंमे यह नियम नहीं है।

तैजस शरीरके विसर्पणको तैजस समुद्घात कहते हैं। यह निस्सरणात्मक तथा अनि-स्सरणात्मक भेदसे दो प्रकारका है। निस्सरणात्मक तैजसके प्रशस्त तैजस, अप्रशस्त तैजस ये दो भेद है। अप्रशस्त-निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात बारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला सूच्यगुल सख्यातवे भाग मोटाईवाला, जपापुष्पके समान लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके दहन करनेमे समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बाये कन्धेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्र प्रमाण विसर्पण करनेवाला होता है। जो प्रशस्त निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात है यह भी विस्तार आदिमे अप्रशस्त तैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हसके समान धवलवर्णवाला है। सीधे कन्धेसे उत्पन्न होता है। प्राणियों-पर अनुकम्पाके निमित्तसे उत्पन्न होता है। मारी रोग आदिके प्रशमन करनेमे समर्थ होता है। अप्रशस्त तैजसके विषयमें राजवार्तिकमे लिखा है कि वह उग्र चारित्रवाले तथा अत्यन्त क्रुद्ध मुनिके निकलता है (यतेरुग्रचारित्रस्यातिक्रुद्धस्य)।

पुढवि० आउ० तेउ० बादरवणप्फदि पत्तेयाणं तेसिं चेव अपज्जत्ता, बादरवणप्फदिणि-गोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता। णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदि-भागो कादव्वो। बादरवाउकाइय-पज्जत्ते सव्वे भंगा लोगस्स संखेज्जदिभागे।

एवं खेत्तं समत्तं।

गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर दो बटे पाँच भाग कम उनहत्तर रूपों-से घनलोकके भाजित करनेपर लब्ध एक भाग प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उसमे सख्यात योजन बाहल्य रूप जग प्रतर प्रमाण लोक पर्यन्त स्थित बात क्षेत्रको, संख्यात योजन बाहल्य-रूप जग-प्रतर प्रमाण ऐसे बादर जीवोंके आधारभूत आठ-पृथिवी क्षेत्रको और आठ पृथि-वियोंके नीचे स्थिति संख्यात योजन बाहल्य रूप जग-प्रतर प्रमाण वातक्षेत्रको लाकर मिला देनेपर लोकके संख्यातवे भाग मात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय-पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय-अपर्याप्त जीवोंसे परिपूर्ण क्षेत्र होता है। इस कारण ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यात भागमें एवं मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असख्यात गुणे क्षेत्रमें रहते है, ऐसा कहा है। —खु० ब० पृ० ३२२, ३२३।

[1]बादर वायुकायिक (पर्याप्तकों) और बादर वायुकायिक अपर्याप्तकोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। [2]बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वनस्पति-कायिक, प्रत्येक तथा इनके अपर्याप्तकोंमे एव [3]बादर वनस्पतिकायिक-निगोदके पर्याप्त-अपर्याप्त भेदोमे इसी प्रकार जानना जाहिए। इतना विशेष है कि जहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग कहा है, वहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग करना चाहिये। [4]बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमे सम्पूर्ण भग लोकसे संख्यातवें भाग जानना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्र प्ररूपणा समाप्त हुई।

१ वादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा तस्सेव अप-ज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। २ वादरपुढविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ३ वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। बादर-वणप्फदिकाइया वादर-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए।—३४-४६ सूत्र खु० बं०। ४ वादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स सखेज्जदिभागे।

[फोसणाणुगमपरूवणा]

१६०. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण-

[स्पर्शनानुगम]

१६० ओघ तथा आदेशसे स्पर्शानुगमका दो प्रकार निर्देश करते है।

विशेषार्थ—स्पर्शनके छह भेद कहे है। **णामफोसणं, ठवणफोसण, दव्वफोसणं, खेत्त-फोसणं, कालफोसण, भावफोसणं चेदि छव्विहं फोसणं**'- नाम स्पर्शन, स्थापना स्पर्शन, क्षेत्र स्पर्शन, काल स्पर्शन, भाव स्पर्शन ये स्पर्शनके छह प्रकार हैं। इन छह स्पर्शनोंमे-से यहॉ किस स्पर्शनसे प्रयोजन है ?

समाधान—"**एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणं पयदं**"—इन स्पर्शनोमे-से यहॉ जीव द्रव्य सम्बन्धी क्षेत्र स्पर्शन प्रकृत है। शेष द्रव्योंका आकाशके साथ जो संयोग है वह क्षेत्र स्पर्शन है।

शंका—अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

समाधान—वह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवगाह्य-अवगाहक भावको ही उपचारसे स्पर्श संज्ञा प्राप्त है। अथवा सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है। (जी० फो० टी०)

पूज्यपाद स्वामीने स्पर्शनको त्रिकाल गोचर कहा है किन्तु धवला टीकाकारने लिखा है 'जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमे स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कह-लाता है। (अस्पर्शि, स्पृश्यत इति स्पर्शनम्)

सब द्रव्योंको निवासभूमि प्रदान करनेकी क्षमता आकाश द्रव्यमे है। यद्यपि एवंभूत-नयकी अपेक्षा सर्व द्रव्य स्वप्रतिष्ठ हैं, किन्तु धर्मादिका अधिकरण आकाश है यह कथन व्यव-हार नयसे किया गया है। जैसे कहा जाता है "**क्व भवानास्ते ?**" आप कहॉ रहते है ? '**आत्मनि**' - मैं अपनी आत्मामें रहता हूँ, क्योंकि एक वस्तुकी अन्य वस्तुमे वृत्ति नहीं पायी जाती है। यदि एक वस्तुकी अन्य पदार्थमें वृत्ति हो, तो आकाशमे ज्ञानादिक तथा रूपादिककी वृत्ति हो जाये (स० सि० ५८)[१]

जो व्यक्ति एकान्त नयका पक्ष पकडता है, वह तत्त्वको नहीं समझ पाता है। पूज्यपाद स्वामी इन सप्त नयोंपर विवेचन करते हुए कहते हैं "**एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः**" (स० सि० पृ० ५९) ये नय मुख्य तथा गौणरूपता धारण करते हुए सम्यग्दर्शनके हेतु हैं। स्वतन्त्रता धारण करनेपर ये असमर्थ हो जाते हैं। इसीसे सर्व द्रव्योंको अवकाश देनेवाले आकाश द्रव्यके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामी कहते है :

१ धर्मादीना पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात्। एवभूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव तथा चोक्त क्व भवानास्ते ? आत्मनीति धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहि सन्तीत्येतावदत्राधाराधेय-कल्पना साध्य फलम्। -स० सि० पृ० १२९, अध्याय ५, सूत्र १२। यथा क्व भवानास्ते ? आत्मनीति कुत' ? वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्। यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकाशे वृत्ति स्यात्-(पृ० ५८ स० सि० अ० १, सू० ३३)।

पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइ-गाणं बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जा वा भागा वा, सव्वलोगो वा। सादबंधगा अबंधगा केवडि[यं]खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। असादबंधगा अबंधगा केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च।

जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥ पंचास्तिकाय।

जो सर्व जीवोंको, पुद्गल आदि शेष द्रव्योंको स्थान देता है, वह समस्त आकाश इस लोकमें होता है।

इस स्पर्शनानुयोगद्वारको लक्ष्य कर धवलाकार यह शंका-समाधान करते हैं :

शंका—यहाँ स्पर्शनानुयोग द्वारमें वर्तमानकाल सम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्रनिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीत काल विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है ? किन्तु वर्तमान और अतीनकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है।

समाधान—यहाँ स्पर्शनानुयोगद्वारमे वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है। किन्तु पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमे प्ररूपित उस उस वर्तमान क्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है। अतएव स्पर्शनानुयोग द्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है यह सिद्ध हुआ। (जी० फो० टीका पृ० १४६)[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके वन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक स्पर्शन किया है। अबन्धकोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—[2]ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय तथा अयोगकेवली-की अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है। सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है। प्रतरसमुद्घातगत सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है।

साताके वन्धकों-अबन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक। असाताके

---

१ त्रिकालविषयार्थोपश्लेषण स्पर्शन मतम्। क्षेत्रादन्यत्वभाग्वर्तमानार्थश्लेपलक्षणात् ॥४१॥" – त० श्लो० पृ० १६०। 'एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयद। अस्पर्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम्। फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण। णिद्देसो कहण वक्खाणमिदि एयट्ठो। सो दुविहो जहा पयई। ओघेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो। आदेसेण भेदेण विसेसेणेत्ति समाणट्ठो।"– ध० टी० फो० पृ० १४४, १४५। क्षेत्र निवासो वर्तमानकालविषय। तदेव स्पर्शन त्रिकालगोचरम् स० सि० ५-१०। निर्ज्ञातसख्यस्य निवासविप्रतिपते क्षेत्राभिधानम्। अवस्थाविशेषस्य वैचित्र्यात् त्रिकालविषयोपश्लेप निश्चयार्थं स्पर्शनम्। अवस्थाविशेषो विचित्रस्त्रयस्त्र – चतुरस्त्रादिस्तस्य त्रिकालविपयमुपश्लेषण स्पर्शनम्। कम्यचित् क्षेत्रमेव म्पर्शन कस्यचित् द्रव्यमेव, कस्यचिद्रज्जवः पडष्टौ वेति। एक-सर्वजीवसन्निधौ तन्निश्चयार्थं तदुच्यते—त० रा० पृ० ३०। २ "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।"–षट्खं० फो० सू० १७०, १७२। "पदरगदो केवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जेसु भागेसु। लोगपूरणगदो केवली केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे।"–ध० टी० फो० पृ० ५०, ५४।

एवं चदुआणुपुव्वि० । ओरालि० बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा बारहचोद्दसभागो वा, केवलिभंगं च । वेउव्वियस० बंधगा बारह० । अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा केवलिभंगो । ओरालिय० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । वेउव्विय० अंगो० बंधगा बारहभागा वा । अबंधगा सव्वलोगो । दोअंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । छसंघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसरबंधगा अबंधगा सव्वलोगो । तित्थय० बंधगा अट्ठचोद्दसभागो वा । अबंधगा सव्वलोगो ।

१६१. आदेसेण–णेरइएसु धुविगाणं बंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि ।

सर्वलोक है । अबन्धकोंका केवली भग है । चार आनुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए । औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है । अबन्धकोंके १/१४ भाग, वा केवली भंग है । वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ भाग, अबन्धकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका केवली भंग है ।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त, वैक्रियिक शरीरका अपूर्वकरण छठे भाग पर्यन्त बन्ध होता है । दोनोंके अबन्धकोंके अयोगिकेवली पर्यन्त लोकका असख्यातवॉ भाग है, सयोगी जिनकी अपेक्षा लोकका असख्यात बहुभाग तथा सर्वलोक भी भंग है ।

औदारिक अंगोपागके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपागके बन्धकोंका १२/१४ है, अवन्धकोंके सर्वलोक है । दोनों अंगोपागोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है ।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धकों तथा औदारिक शरीरके अबन्धकोंका स्पर्शन १२/१४ कहा है, किन्तु उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकों तथा औदारिक अगोपांगके अबन्धकोंका १२/१४ नहीं कहा है । इसका कारण यह है कि जिस प्रकार औदारिक शरीरका अबन्धक वैक्रियिक शरीरका बन्धक होता है अथवा वैक्रियिक शरीरका अबन्धक औदारिकका वन्धक होता है वैसा नियम औदारिक अंगोपाग और वैक्रियिक अगोपागका नहीं है । एकेन्द्रियमे अंगोपागका अभाव होनेसे शरीरके समान यहॉ व्याप्ति नहीं है ।

छह सहनन, परघात, उच्छ्‌वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका ८/१४ है । अबन्धकोंका सर्वलोक है ।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक अविरतसम्यक्त्वीकी अपेक्षा ८/१४ कहा है । विहार[1]-वत् स्वस्थान, वेदना-कपाय वैक्रियिक-मारणान्तिक समुद्धात गत असयतसम्यक्त्वी जीवोंमे मेरुके मूलसे ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू प्रमाण स्पर्शन किया है (ध टी. पृ १६७) ।

१६१ आदेशसे–नारकियोंमे–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके ६/१४ है, अवन्धक नहीं है ।

विशेप—मारणान्तिक समुद्धात तथा उपपाद पद्वाले मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीत कालमे ६/१४ स्पर्श किया है । (पृ० १७५) सातवीं पृथ्वीके नारकीकी मारणान्तिक समुद्धात अथवा उपपादकी अपेक्षा कर्मभूमिया सज्ञी मनुष्य या तिर्यंचपर्याप्तपर्याय प्राप्तिकी दृष्टिसे छ राजू

---

१ असजदसम्माइट्ठीहि विहारवदिसत्थाण–वेदण-कसाय-वेउव्वियमारणतिय समुग्घादगदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । उवरि छ रज्जू हेट्ठा दोरज्जु त्ति –ध० टी० पृ० १६९ ।

थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा छच्चोद्दसभागो, अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा-अबंधगा छच्चोद्दसभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा छच्चोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि। एवं सत्तणोक० छसंठा० छसंघ० दोविहा० थिरादिछयुगलं। मिच्छत्तबंधगा छच्चोद्दस-भागो, अबंधगा पंचचोद्दसभागो। दोआयु० खेत्तभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागा। एवं तित्थयरं। तिरिक्खगदिबंधगा छच्चोद्दस०, अबंधगा खेत्तभंगो। मणुसगदिबंधगा खेत्त-भंगो। अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदिबंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। एवं दोआणुपुव्वि दोगोदं च। उज्जोव० बंधगा अबंधगा छच्चोद्दस०। एवं सव्वणेरइयाणं।

स्पर्शन है। ध्रुव प्रकृतियोंका सभी नारकी बन्ध करते हैं अतः ६/१४ ध्रुव प्रकृतिके बन्धकोंका स्पर्श कहा है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके ६/१४ भाग है, अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग हैं। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है[2]। साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंके ६/१४ है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—नरकगतिमें साता अथवा असाताके पृथक्-पृथक् रूपसे अबन्धककी अपेक्षा ६/१४ भाग कहा है। इसका अर्थ यह है कि साताके अबन्धक किन्तु असाताके बन्धक अथवा असाताके अबन्धक किन्तु साताके बन्धक जीवोंका सप्तम पृथ्वीकी अपेक्षा ६/१४ भाग है।

भयद्विक बिना सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके ५/१४ भाग है।[3]

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा छठी पृथ्वीकी दृष्टिसे मारणान्तिक समुद्घातमें ५/१४ भाग है। सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है, अतः उसकी यहाँ अपेक्षा नहीं की गयी है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धकोंके क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।[4] अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोके लोकका असंख्यातवाँ भाग, अबन्धकोंके ६/१४ भाग है।

तिर्यंचगतिके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके क्षेत्रवत् भंग है। मनुष्यगतिके बन्धकोंके क्षेत्रसमान भंग है। अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। दोनोंके बन्धकोके ६/१४ भाग है। अबन्धक नहीं है। दो आनुपूर्वी (मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी) तथा २ गोत्रोंमें भी इसी प्रकार भंग है। उद्योतके बन्धको अबन्धकोंका ६/१४ भाग है।

इस प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए। विशेष, अपना-अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए।

---

१ 'णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० ११,१२। २ "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदि भागो।"–षटखं० फो० सू० १३, १४, १५। ३ "विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। एग वे तिण्णि चत्तारि पच चोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं० फो० सू० १७, १८। ४ णेरइएसु सव्वेभगा लोगस्स असखेज्जदिभागे।—खेत्ताणुगम० पृ० १८७।

सव्वलोगो। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा। तिण्णि आयुखेत्तभंगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। णिरयगदिदेवगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्ख-मणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दस०। वेउव्वि० बंधगा बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्व-लोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारहचोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो।

तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार है।[1] मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ भाग है।[2]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंके $\frac{7}{14}$ भाग स्पर्शन है।

नरक-तिर्यंच-देवायुका क्षेत्रके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग, वा सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। नरकगति, देवगतिके बन्धकोंका $\frac{6}{14}$ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचगति मनुष्यगतिके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{12}{14}$ भाग है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धक तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{12}{14}$ भाग कहा है।

औदारिक-वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपागके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपागके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—जिस प्रकार वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपागका भी वर्णन है, किन्तु औदारिक शरीरके समान औदारिक अंगोपागका वर्णन नहीं है। कारण, एकेन्द्रियोमे औदारिक अंगोपांगके अभावमें भी औदारिक शरीर पाया जाता है, किन्तु वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका सदा सम्बन्ध पाया जाता है। इस कारण इनका स्पर्शन तुल्य है तथा औदारिक शरीर एवं औदारिक अंगोपागका स्पर्शन समान नहीं कहा गया है।

छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे क्षेत्रवत् भंग है

---

१ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो —खु० ब० सू० १२, १३। २ "तिरिक्खेसु सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा देसूणा।" –षट्खं० फो० सू० २३, २५।

तेरह० सव्वलोगो। पंचिंदि० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। पंचजा० तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०, अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह०, सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। समचदु० बंधगा छच्चोद्द०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। चदुण्णं संठाणाणं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। हुंडसंठाणस्स तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो वा। छसंठाणाणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय-अंगो० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो। दोण्णं अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचो०, सव्व-

---

विशेष—लोकाग्र भागमे विद्यमान एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेकी अपेक्षा $\frac{७}{१४}$ स्पर्शन है। एकेन्द्रियके अबन्धकोंका स्पर्शन सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू तथा अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ६ राजू प्रमाण होनेसे $\frac{१२}{१४}$ कहा है।

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिके वन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। अवन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सवलोक है।

विशेष—विकलेन्द्रियके अबन्धकोंका लोकाग्रमे स्थित एकेन्द्रियका स्पर्शन तथा अधो-लोकमे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{१३}{१४}$ कहा है।

पचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$ है। अवन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है। पंच जातियोंके बन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। औदारिक शरीरके बन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ हैं, वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$ है।

विशेष—लोकाग्रके एकेन्द्रियोंके स्पर्शनकी अपेक्षा वन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ है। अवन्धकोंके वैक्रियिक शरीरकी अपेक्षा ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{१२}{१४}$ है।

वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है। दोनो शरीरोंके वन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। समचतुरस्र सस्थानके वन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ तथा अवन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—इस सस्थानके वन्धकोंके अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ है। अवन्धकोंके अधोलोकके ६ तथा ऊर्ध्वके ७ राजू मिलाकर $\frac{१३}{१४}$ भाग कहा है।

चार सस्थान अर्थात् समचतुरस्र तथा हुण्डकको छोडकर शेपके वन्धकोंका क्षेत्रवत भग है। अवन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। हुण्डक संस्थानके वन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अवन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ भाग है। छह संस्थानोंके वन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अवन्धक नहीं है। औदारिक अगोपागके वन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। अवन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपागके वन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है, अवन्धकोंका $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक भग है।

विशेष—इसके वन्धकोंके ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार $\frac{१२}{१४}$ भग है। यह वैक्रियिक अगोपागके अवन्धकोंके लोकाग्रके एकेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा $\frac{७}{१४}$ कहा है।

दोनो अगोपागोंके वन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ तथा अवन्धकोंका $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है।

लोगो। छसंघ० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। परघादुस्सा० बंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। आदावस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। पसत्थवि० बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलो० अप्पसत्थवि० बंधगा छच्चोद्दस०। अबं० सत्तचोद्द० सव्वलो०। दोण्णंपि बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलो०। एवं दूसर०। तसबंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचो० सव्वलो०। थावरबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दस०। दोण्णंपि बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। बादरं बंधगा तेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सुहुमबंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा। अबंधगा तेरह० चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। पज्जत्त-पत्तेग० बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा लोगस्स असंखे० सव्वलो०। अपज्जत्त साधारण-बंधगा लोग० असंखे०, सव्वलो०। अबंधगा तेरह० सव्वलो०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि।

छह संहननोका पृथक्-पृथक् अथवा समुदाय रूपसे क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग है अथवा सर्वलोक है। आतपके बन्धकोके क्षेत्रके समान है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ अथवा सर्वलोक भग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{7}{14}$, अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक भंग है। प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{6}{14}$ कहा है, कारण देवोंके प्रशस्त विहायोगति पायी जाती है। प्रशस्तविहायोगतिके अबन्धक अर्थात् अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धक अथवा दोनोंके अबन्धककी अपेक्षा अधोलोकके ६ राजू तथा ऊर्ध्वके ७ इस प्रकार $\frac{13}{14}$ है।

अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका $\frac{6}{14}$, अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—सप्तम पृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$ है। विहायोगतिके अबन्धककी अपेक्षा लोकाग्रके तिर्यंचोंके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{7}{14}$ भाग है, कारण एकेन्द्रियके साथ विहायोगतिके बन्धका सन्निकर्षपना नहीं पाया जाता है।

दोनों विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। दो स्वरोंमे भी इसी प्रकार है। त्रसके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। स्थावरके बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{12}{14}$ हैं। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। बादरके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ है, अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। सूक्ष्मके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ भाग है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। पर्याप्तक तथा प्रत्येकके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। पर्याप्त अपर्याप्त तथा प्रत्येक साधारणके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं

सुभग-आदेज्ज-समचदु० भंगो। दूभग-अणादेज्जहुंडसंठाणभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। जसगित्तिस्स बंधगा सत्तचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। अज्जस० बंध० तेरह० सव्वलो०। अबंधगा सत्तचोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। दो गोदाणं संठाण-भंगो।

१६३. पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। दोवेदणी० हस्सादि० दोयुगल-थिरादि०४ बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। दोण्हं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा पडिलोमं भाणिदव्वं। तिण्णि वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थिवेदभंगो दोआयु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि०

है। सुभग तथा आदेयका समचतुरस्र संस्थानके समान भग है। दुर्भग, अनादेयका हुण्डक-संस्थानके समान भग है। सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। यशःकीर्तिके बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ है, अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अयशःकीर्तिके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$, सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ है। यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—तिर्यंचोंमे तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है।

दो गोत्रोंके विषयमे संस्थानके समान भग है।

१६३ पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है[1]। अबन्धक नहीं है। दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, स्थिरादि ४ के बन्धकों-अबन्धकोंका लोकके असख्यातवे भाग वा सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। स्त्री-पुरुष वेदके बन्धकोंका क्षेत्र भग है अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका लोकके असख्यातवे भाग वा सर्वलोक भग है। नपुसकवेदका प्रतिलोम क्रम है अर्थात् नपुसकवेदके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक भग है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग है। तीनो वेदोंके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु), मनुष्यगति, दोइन्द्रियादि

---

१ "पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा।"–पट्खं० फो० सू० ३२, ३३। पंचिंदियतिरिक्ख–पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा —खु० बं०, सू० १४-१७।

अंगो० छसंघ० मणुसाणु० आदाउज्जो० (?) दोविहा० [तस] सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चागोदं च। णवुंसगवेद-भंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि हुंडसंठाण-तिरिक्खाणु-पुव्वि-थावर-पज्जत्तापज्ज० पत्तेग-साधारण-दूभग-दूसर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। दोआयु० छसंघ० दोविहा० दोसर० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। गदि-जादि-संठाण-आणुपुव्वि-तसथावरादिसत्तयुगलदोगोदाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। परघादुस्साणं बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दस-भागो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। एवं बादरजसगित्ति। तत्पडिपक्खं सुहुमं अजसगित्ति।

१६४. एवं मणुसापज्जत्त० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-बादरपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ता। णवरि बादरवाउपज्जत्ते जं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो कादव्वो। मणुस०३-पंचणा०

चार जाति, हुण्डक विना ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, (?) २ विहायोगति, [त्रस] सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है।

विशेष—उद्योतका वर्णन आगे आया है अतः यहाँ आतापके साथ उद्योतका पाठ अधिक प्रतीत होता है।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है। दो आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है।

विशेषार्थ—दो आयु, छह संहनन तथा दोविहायोगतिका पहले वर्णन आ चुका है कि उनमें स्त्रीवेदके समान भंग है। उनका फिरसे उल्लेख होना चिन्तनीय है।

अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। गति, जाति, संस्थान, आनुपूर्वी त्रस-स्थावरादि सप्त युगल, २ गोत्रके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। परघात, उच्छ्वासके बन्धकों-अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{७}{१४}$, अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। बादर, यशःकीर्ति इसी प्रकार है। सूक्ष्म और अयशःकीर्तिमें इनका प्रतिपक्षी अर्थात् बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{७}{१४}$ है।

१६४ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सर्व विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस-अपर्याप्तक, बादर-पृथ्वी जल-तेज-वायु-बादरवनस्पति प्रत्येक-पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भंग है। विशेष, बादर-वायुकायिक पर्याप्तकोंमें जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

णवदंस० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। मिच्छत्तस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागो वा केवलिभंगो। सादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। असाद-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखे० भागो केवलिभंगो, दोण्णं पगदीणं

---

[1]मनुष्यत्रिक अर्थात् मनुष्य, मनुष्य-पर्याप्त मनुष्यनीमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका केवली भग है[2]। मिथ्यात्वके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवॉ भाग वा ७/१४ अथवा केवली-भग है।

विशेष - मिथ्यात्वके बन्धकोंके मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन कहा है। (ध० टी० फो० पृ० २१७)

साताके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवॉ भाग वा केवली-भंग है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्व-लोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा केवली-भग है। दोनो प्रकृतियोके

---

१ "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।"–षट्खं० फो० सू० ३४–४१। २ मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्था-णेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा—खु० बं० सू० १८-२३। मणुस-अपज्जत्ताण पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ताण-भगो पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिदियतिरिक्ख अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा—सू० १४–१७। बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा (५५-५८)। पंचिंदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। (६५ ६९)। तसकाइय-तसकाइय पज्जत्ता-अपज्जत्ता पंचिदिय-पंचिदियपज्जत अपज्जत्तभगो (९८)। बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा (७७ ८१)। बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो। समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो (८७-९०)।

बंधगा केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा केवलिभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णं वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो चदुआयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेउव्वि०-आहार० पंचसंठा० तिण्णिअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाव० दोविहा० तस-सुभग० दोसर (?) [सुस्सर] आदे० उच्चागोदं च। णवुंसकवेदभंगो हस्सरदि-अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-ओरालि० हुडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-पज्जत्त-अपज्जत्त० पत्तेय साधारण० थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। परघादुस्साणं हस्सभंगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं बादरजसगित्ति। सुहुम बंधगो लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। अजसगित्तिस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो केवलिभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। तित्थयरस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो।

बन्धकोंका केवली भंग है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष – दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा असंख्यातवाँ भाग कहा है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। चार आयु, तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक, आहारक शरीर, ५ संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर (?) [सुस्वर], आदेय तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है।

विशेषार्थ – यहाँ 'दोसर' (दो स्वर) के स्थान में सुस्वर पाठ सम्यक् प्रतीत होता है कारण आगे दुस्वरका उल्लेख किया है। सुस्वर में स्त्रीवेदके समान भंग है। दुस्वर में नपुंसकवेद के समान भंग है।

हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे भी वेदके समान भंग है।

परघात, उच्छ्वासका हास्यके समान भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवली भंग है। उद्योतके बन्धकोंका ७/१४ है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। बादर तथा यशःकीर्तिमें इसी प्रकार है। सूक्ष्मके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। अयशःकीर्तिके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ७/१४ वा केवली-भंग है। बादर सूक्ष्म तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवलीभंग है।

१६५. देवेसु-धुविगाणं बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो

१६५ देवोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ भाग हैं। अब ध क नहीं हैं।

विशेषार्थ—विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातसे परिणत मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतमें देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातगत मिथ्यात्वी तथा सासादन सम्यक्त्वी देवोंने ९/१४ भाग स्पर्श किया है ([1]ध० टी० फो० पृ० २२५)।

खुद्दाबन्ध टीकामें देवोंका सामान्य रूपसे स्पर्शन इस प्रकार कहा है। देवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। देवों-द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग तथा अढाई द्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पष्ट है।

शका—तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि चन्द्र, सूर्य, बुध, बृहस्पति, शनि, शुक्र, मगल, नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकारके व्यन्तर विमानोंसे रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण पाये जाते है। विहारकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पष्ट है। मेरु मूलसे ऊपर छह राजुमात्र और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रमे देवोंका विहार है इससे ८/१४ भाग कहा है।

शंका—ये आठ बटे चौदह भाग किससे कम है "केग ते ऊणा" ?

समाधान—तृतीय पृथ्वीके नीचे एक सहस्र योजनसे कम है।

प्रश्न—देवों-द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ?

उत्तर—समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह वा नौ बटे चौदह भाग (८/१४, ९/१४ भाग) स्पष्ट हैं। लोकका असंख्यातवाँ भाग यह कथन वर्तमान क्षेत्र प्ररूपणाकी अपेक्षासे है। अतीतकालकी अपेक्षा वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पष्ट है। क्योंकि विहार करनेवाले देवोंके अपने विहार क्षेत्रके भीतर वेदना, कषाय, और वैक्रियिक समुद्घात रूप पद पाये जाते है। मारणान्तिककी अपेक्षा ९/१४ भाग स्पष्ट है, क्योंकि मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रके भीतर सर्वत्र अतीत कालमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त देव पाये जाते है।

प्रश्न—उपपादकी अपेक्षा देवों-द्वारा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ?

उत्तर—वर्तमान क्षेत्रकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग तथा अतीत काल सम्बन्धी उपपादकी अपेक्षा देशोन ६/१४ भाग स्पष्ट है। कारण **"आरणच्चुदकप्पोत्ति तिरिक्ख-मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उववादुवलंभादो"**—आरण अच्युत कल्प पर्यन्त तिर्यंच व मनुष्य असयत सम्यग्दृष्टियों और सयतासंयतोंका उपपाद पाया जाता है (खु० ब० टीका पृ० ३८२-३८४)

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, या ९/१४ भाग है। अबन्धकोंका ८/१४ भाग है।[2]

१. "देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि-भागो, अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।"-पट्खं० फो० सू० ४२, ४३। २. "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजद सम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।"-पट्खं० फो० सू० ४४, ४५।

वा। एवं णवुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर० दूभग-अणादेज्ज-णीचागोदं च। मिच्छत्तस्स बंधगा अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। एवं उच्चागो० (?) सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अवंधगा णत्थि। एवं हस्सादिदोयुगलं थिरादि-तिण्णि-युगलं च। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दसभागा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। तिण्णं वेदाणं अट्ठणव-चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। इत्थिभंगो दोआयुमणुसगदि-पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० मणुसाणु० आदाव० दोविहाय० तस-सुभग-आदेज्ज० दोसर० तित्थयर० उच्चागोदं च (?) एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि आयुभंगो छसंघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं।

विशेष—यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी, अविरतसम्यक्त्वी जीवोंके विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्शन है। यह विशेष है कि अविरत सम्यक्त्वी देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी ८/१४ भाग है।

नपुसकवेद,-तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है। इसी प्रकार उच्चगोत्रमे भी है। साता तथा असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है। साता असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है। अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—देवोंमे आदिके चार गुणस्थान ही होते हैं अतः अयोगकेवलीमे अबन्ध होनेवाले इन साता-असाता युग्मका अबन्धक यहाँ नहीं कहा है। असाताका प्रमत्तसंयत तक तथा साताका सयोगी जिन पर्यन्त बन्ध होता है इसी कारण देवोंमें इनके अबन्धक नहीं है।

हास्यादि दो युगल तथा स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके ८/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—जब देवोंमे वेदोंके अबन्धक नहीं है, तब स्त्रीवेद, पुरुषवेदके अबन्धकोंका तात्पर्य नपुंसकवेदके बन्धकोंसे है। नपुंसकवेदका बन्ध मिथ्यात्वी जीवोंके ही होगा अतः उनके ८/१४ वा ९/१४ कहा है।

तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, दो स्वर, तीर्थंकर और उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके ८/१४ तथा अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है।

विशेष—उच्चगोत्रका पहले कथन आया है। यहाँ पुनः उसका वर्णन किया गया है। इनमें-से एक पाठ अशुद्ध होना चाहिए। यह विषय चिन्तनीय है।

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे भी वेदोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, छह संहनन दो विहायोगति दो स्वरका प्रत्येक तथा साधारणसे दो आयु (तिर्यंच-मनुष्यायु) के समान भंग जानना चाहिए।

विशेष—छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका पहले स्त्रीवेदके समान भंग

१९८. बादरेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोकसा० परघादुस्सा० थिराथिरसुभासुभाणं । इत्थि० पुरिस० बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वलोगो । णवुंस० बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो। एवं इत्थिभंगो तिरिक्खायु-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदा०दोविहाय०तस-सुभग-दोसर-आदेज्ज० । णवुंसक-भंगो एइंदिय हुंडसंठा०थावर-दूभग-अणादेज्ज० । मणुसायु-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । दो-आयु-बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । एवं छसंघ० दोविहा० दोसर० । तिरिक्खगदिबंधगा सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मणुसगदिबंधगा [लोगस्स] असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । एवं दो-आणु० दो-गोदाणं । उज्जोवस्स बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा । अबंधगा सव्वलोगो। एवं बादर-जस० । पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेगं

---

१९८ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकन्द्रिय अपर्याप्तकोमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंके[1] सर्व लोक स्पर्शन है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नही है। हास्यादि चार नोकषाय, परघात, उच्छ्वास, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमे इसी प्रकार जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग, अबन्धकोंके सर्वलोक है। नपुसकवेदके बन्धकोंके सर्वलोक है तथा अबन्धकोके लोकका सख्यातवॉ भाग है।[2] तिर्यंचायु, चार जाति, पॉच संस्थान, औदारिक अगोपाग, छह सहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर तथा आदेयमे स्त्रीवेदका भंग जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, हुण्डकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमे नपुंसकवेदका भग जानना चाहिए। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। मनुष्य-तीर्यंचायुके बन्धकोंका लोकका संख्यातवॉ भाग है। अवन्धकोंका[3] लोकका सख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरमे इसी प्रकार है। तिर्यंचगतिके वन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग है। मनुष्यगतिके वन्धकोंके [लोकका] असख्यातवॉ भाग है, अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यगति तिर्यंचगतिरूप दोनो प्रकृतियोंके वन्धकोके सर्वलोक है। अबन्धक नही है। मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी तथा दो गोत्रोंमे इसी प्रकार है। उद्योतके वन्धकोंका लोकका सख्यातवॉ भाग वा $\frac{7}{14}$ भाग है। अबन्धकोके सर्वलोक है। बादर तथा

---

१ बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो।–(५१-५४ सू० खु० बंध)। २ "बादरवाउपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"–पट्खं० फो० सू० ६६, ७२। ३ "मारणतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। एव बादरतेउकाइयपज्जत्ताण पि वत्तव्व। णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो वत्तव्वो।"–ध० टी० फो० पृ० २५२।

१६६. एइंदिएसु-धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं वेदणीयभंगो। णवरि मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० ओरालि० अंगो० परघादुस्सासआदाउज्जोव-दोविहाय-दोसर०।

१६७. एवं सव्वसुहुम-एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-णिगोद एदेसिं० सव्वसुहुमाणं च।

उपपाद परिणत असंयत सम्यग्दृष्टि देवोंने देशोन ५/१४ भाग स्पर्श किये है। आरण-अच्युतवाले देवोंने उपपादसे ६/१४ भाग स्पर्श किया है, कारण वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीपसागरोंमें विद्यमान असंयतसम्यग्दृष्टि तथा संयतासंयत तिर्यंचोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है।[1] नव ग्रैवेयकवासी देवोंका मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असंयत सम्यक्त्वी देवोंके स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक तथा उपपादरूप परिणमनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। सर्वार्थसिद्धिमें मारणान्तिक तथा उपपादपदोंको छोड शेष पदोंकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रका संख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। (खु० बं० पृ० ३६२)।

१६६. एकेन्द्रियोंमें—[2] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—स्वस्थान स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक तथा उपपादकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत-अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है। खुद्दाबंध टीकामें लिखा है वैक्रियिक समुद्घात पदसे लोकका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि सूक्ष्म जीवोंके वैक्रियिक समुद्घात नहीं होता। **"णवरि सुहुमाण वेउव्वियं णत्थि।"** (३६२ पृ०)।

साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका स्पर्शन सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है। विशेष, मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों आयुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति तथा दो स्वरमें इसी प्रकार भंग है।

१६७ सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें इसी प्रकार है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, इनके सर्वसूक्ष्म भेदोंमें भी इसी प्रकार है।[3]

---

१ "णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाणसमुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो"— खु० बं० सू० ४७-४८। २ "इंदियाणुवादेण एइंदिय बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।"—षटखं० फो० सू० ५७। ३ "बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"—सू० ६७-६८।

बंधगा अट्ठ-तेरह-चोद्दस० केवलि-भंगो ।] अबंधगा अट्ठ तेरह० सव्वलोगो वा । असाद-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० केवलिभंगो । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० चोद्दसभागो केवलिभंगो । दोण्णं अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो ।

विशेषार्थ—पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान पदकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्श करते है। देवोंके विहारका आश्रय कर कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्शन है। समुद्घातोकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग, देशोन ८/१४, संख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट होता है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्शन है, क्योंकि विहार करनेवाले देवोके उक्त समुद्घातोके विरोधका अभाव है। तैजस और आहारक समुद्घात पदोसे चार लोकोका असंख्यातवाँ भाग और मानुप लोकोंका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। दण्ड तथा कपाट समुद्घातोंको प्राप्त जीवो-द्वारा चार लोकोका असंख्यातवाँ भाग और मानुष क्षेत्रसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि कपाट समुद्घातमें तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग क्षेत्र स्पृष्ट है। क्योंकि इस अवस्थामे वातवलयोंको छोडकर सम्पूर्णलोकमे जीवोके प्रदेश व्याप्त होते है। मारणान्तिक तथा लोक पूरण समुद्घात पदोसे सर्वलोक स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट[1] है। सर्वलोकमे स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें-से पंचेन्द्रिय जीवोमे आकर उत्पन्न होनेवाले प्रथम समयवर्ती जीवोके सर्वलोकमे व्याप्त देखे जानेसे उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट कहा गया है। (खुदा बंध टीका पृ० ३६६—३६६)।

सप्तम पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्य लोकको स्पर्श करते है। मध्य लोकसे जीव लोकाग्रमें जाकर बादर पृथ्वी कायिकों आदिमे उत्पन्न होते है। इस प्रकार छह और सात राजू मिलकर तेरह राजू स्पर्शन कहा है। जीवट्ठाणकी धवला टीकामे लिखा है[2]। मारणान्तिक समुद्घात पद परिणत वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोने देशोन १३/१४ भाग स्पर्श किये है जो मेरुतलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए।

[साता वेदनीयके वन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है।] अवन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। असाताके वन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्व लोक है। अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके वन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। दोनोंके अवन्धकोका लोकके असख्यातवें भाग है।

विशेष—[3]दोनोके अवन्धक अयोगकेवलीका स्पशन लोकका असख्यातवाँ भाग कहा है।

मिथ्यात्वके वन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अवन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग

---

१ विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्ति उपपाद —गो० जी० १९९ पृ० ४४४। २ मारणतियपरिणदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा। हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू।—जीव० फो० पृ० २३६। ३ पमत्तसजदप्पहुटि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।—सू० ९।

साधारणं वेदणीय-भंगो। सुहुम अजस० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं बादर-वाउ० अपज्जत्तात्ति। बादर पुढवि-आउ० तेउ०-तेसिं च अपज्जत्ता बादर-वणप्फदि णिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता बादर-वणप्फदि० पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त बादरएइंदिय-भंगो। णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कायव्वो।

१९९. पंचिंदिय-तस-तेसिं पज्जत्ता–पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ तेरह-चोद्दसभागो वा सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो केवलिभंगो। [साद०

यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें वेदनीयके समान भंग है। सूक्ष्म तथा अयश कीर्तिके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग वा $\frac{७}{१४}$ है। बादर-सूक्ष्म तथा यश कीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार है। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर-अप्कायिक अपर्याप्तक, बादर-तेजकायिक-अपर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर-निगोद-अपर्याप्तक, बादर वनस्पति प्रत्येक, बादर वनस्पति प्रत्येक अपर्याप्तमें बादर एकेन्द्रियके समान भंग है। विशेष, जहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग है वहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग करना चाहिए।

विशेषार्थ—स्वस्थान पदों-द्वारा लोकके संख्यात भाग स्पर्शके विषयमें खुद्दा बन्ध टीकामें कहा है। वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण पाँच राजू बाहल्यरूप राजुप्रतर बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण सात पृथिवियों, उन पृथिवियोंके नीचे स्थित वीस-वीस हजार योजन बाहल्यरूप तीन-तीन वातवलय क्षेत्रों तथा लोकान्तमें स्थित वायुकायिक क्षेत्रको एकत्रित करनेपर तीनों लोकोंका संख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र विशेष उत्पन्न होता है। इसलिए अतीत व वर्तमान कालोंमें लोकका संख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है। (खु० बं० पृ० ३९३)।

१९९. [1]पंचेन्द्रिय, त्रस, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस-पर्याप्तकोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, आठ कषाय भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक लोकके असंख्यातवें भाग, $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोकका स्पर्शन करते हैं। अबन्धकोंका केवली-भंग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$ भाग वा केवलीके समान भंग जानना चाहिए।

---

१ "पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।"–षट्ख० फो० सू० ६०-६१। "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।" –सू० ६२।

अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोगदि बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। तिरिक्खगदि बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलि-भंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदिय० बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा अबंधगा। अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। पंचिंदि० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० केवलिभंगो। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० बंधगा अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा बारस० केवलिभंगो। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलि-भंगो। दोण्णं बंधगा धुविगाणं भंगो। ओरालि० अंगो० अट्ठबारह-चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। वेउव्वि० अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगाणं अट्ठबारह-भागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो केवलिभंगो। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उज्जोवस्स बंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा अट्ठतेरह-भागो केवलिभंगो। पसत्थ-अप्पसत्थविहायगदिबंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा० अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० केवलिभंगो। तसबंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० केवलिभंगो। थावर-

---

८/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगति देवगतिके बन्धकोंका ६/१४ है, अब-न्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अब-न्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा केवली-भग है। चारों गतिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंमे केवली-भंग है। आनुपूर्वियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

एकेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४ १२/१४ वा केवली-भंग है। पचेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भग है। पचजातियो-के बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके केवली-भग है। औदारिक शरीरके बन्धकों-के ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके १२/१४ वा केवली-भग है।

विशेष—औदारिक शरीरके अबन्धकों अर्थात् वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके मेरुतलसे ऊपर अच्युत पर्यन्त ६ राजू तथा सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू, इसी प्रकार १२/१४ है।

वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके १२/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४, लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके समान है। अबन्धकोंके केवली-भग है। औदारिक अगोपागके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अब-न्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। वैक्रियिक अगोपागके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भग है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भग जानना चाहिए। उद्योतके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली भग है।

विशेष—एकेन्द्रिय जातिके साथ विहायोगतिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है अत

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छचोद्दसभागो केवलि-भंगो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। णवुंस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारह० केवलि-भंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो पंचसंठा० छस्संघ० सुभग-दोसर-आदे०। णवुंसकभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे०। साधारणेण वेदभंगो। णवरि संघडणसरणामाणं बंधगा अट्ठ-बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। हस्सरदि-अरदि-सोग-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० भागो, केवलिभंगो। चदुण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलि-भंगो। एवं थिराथिरसुभासुभ०। दो-आयु तिण्णिजादि। आहारदुगं खेत्तभंगो। अबं-धगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दो-आयु० मणुसगदि-आदाव-तित्थय० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। चदु-आयुबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो।

है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ वा केवली भंग है।

विशेष—[1]अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमीके अच्युत स्वर्गपर्यन्त मारणा-न्तिककी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ कहा है। (ध० टी० फो० पृ० १७०)

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा केवलीभंग है।

विशेष—मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार $\frac{८}{१४}$ है। ७वीं पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्यलोकका स्पर्श करते है। अच्युत स्वर्गके देवोंने मध्यलोकका स्पर्शन किया इस प्रकार $\frac{१२}{१४}$ राजू स्त्री-पुरुषवेदके बन्धकोंके हुए।

नपुंसकवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ वा केवली भंग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। ५ संस्थान, ६ संहनन, सुभग, दो स्वर, आदेयका स्त्रीवेदके समान भंग है। हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेय-का नपुंसक वेदके समान भंग है। इनका सामान्यसे वेदके समान भंग है। विशेष, संहनन, स्वर नामक प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ भाग है, अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक भंग है।

विशेष—तीसरी पृथ्वीमें विक्रिया द्वारा पहुँचा हुआ देव मारणान्तिक-द्वारा लोकाग्रका स्पर्श करता है इस प्रकार $\frac{९}{१४}$ भाग होता है।

हास्य-रति अरति-शोकके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक स्पर्श है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा केवली भंग है। सामान्यसे हास्यादि ४ के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अब-न्धकोंका केवली भंग है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, मे इसी प्रकार जानना चाहिए।

दो आयु ३ जाति तथा आहारकद्विकमें क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकका असं-ख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ $\frac{१३}{१४}$ वा केवली भंग है। दो आयु, मनुष्यगति, आतप तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा केवलीभंग है। चार आयुके बन्धकोंका

---

[1] 'सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा'—सू० ७८।

२०१ ओरालियकाजोगीसु–पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। सेसाणं तिरिक्खोघो कादव्वो। णवरि अबंधा धुविगाणं भंगो आयु-संघडण-विहायगदिसरं मोत्तूण।

२०२. ओरालियमिस्स-वेगुव्वियमिस्सआहार० आहारमिस्स खेत्तभंगो। णवरि ओरालियमिस्स-मणुसायुबंधगा लोगस्स असं- खेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो।

२०३. वेगुव्विय-काजोगीसु–पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त० पत्तेय-णिमिण-पचंतराइगाणं बंधगा अट्ठ-

समुद्घातकी अपेक्षा वर्तमानकालकी प्रधानतामे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पृष्ट हे। आहारक और तैजस समुद्घात पदोकी अपेक्षा चार लोकोंका असख्यातवॉ भाग और मानुप क्षेत्रका सख्यातवॉ भाग स्पृष्ट हे। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे कुछ कम ८/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि आठ राजु आयत लोक नालीमे सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा वेदना कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है। इन योगोंमे उपपाद पद नही होता, क्योंकि उपपाद पदमे मन योग व वचन योगका अभाव है। (खुद्दा वध टीका पृ० ४११–४१३)।

काययोगीमें[1]—ओघके समान है। यहॉ वेदनीयके अवन्धक नहीं है।

२०१ औदारिक काययोगियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरण ४ तथा सज्वलन ४ रूप कषायाष्टक, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग है।[2] शेप प्रकृतियोका तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेप, आयु, सहनन, विहायोगति तथा स्वरको छोडकर अबन्धकोंमे ध्रुव प्रकृतियोंका भग जानना चाहिए।

२०२ [3]औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारकमिश्रमे क्षेत्रके समान लोकका असख्यातवॉभाग जानना चाहिए। विशेष, औदारिक मिश्र काययोगमे–मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

२०३ [4]वैक्रियिक काययोगियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणादि १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त,

१ कायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्व-लोगो –(खु०व० पृ० १०६-१०७)। २ "ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ (सव्वलोगो)। पमत्तसजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।-पट्खं० फो० सू० ८१–८७। ३ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी-सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"–सू० ९४। "आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"–सू० ९५। "ओरालिमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।"—सू० ८८। "सासणसम्माइट्ठि-असजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"-सू० ८९। ४ "वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठतेरहचोद्दसभागा वा देसूणा।"सू०–९०।

बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। बादर-बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा केवलिभंगो। पज्जत्तपत्तेय० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। सुहुम-अपज्जत्त-साधारणबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। बादर-सुहुम-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। जसगित्ति उज्जोव (?) बंधगा, अज्जस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उच्चागोदं मणुसायुभंगो। णीचागोदं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दस० केवलिभंगो।

२००. एवं पंचमण० पंचवचि०। णवरि केवलिभंगो णत्थि। वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। कायजोगि-ओघो। णवरि वेदणी० अबंधगा णत्थि।

विहायोगतिद्विकके अबन्धकोंके मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजूकी अपेक्षा $\frac{8}{14}$ तथा मेरुतलसे ऊपर सात राजू तथा नीचे दो राजू, इस प्रकार $\frac{9}{14}$ भाग जानना चाहिए।

त्रसके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{6}{14}$ वा केवली भंग है। स्थावरके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ अथवा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली भंग है। बादरके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ वा $\frac{13}{14}$ है। अबन्धकोंके केवली-भंग है। पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है।[1] अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली-भंग है। बादर, सूक्ष्मके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भंग है। यशःकीर्ति, उद्योत (?) के बन्धकों, अयशःकीर्तिके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंके केवली-भंग है।

विशेष—यहाँ यशःकीर्तिके साथ उद्योतका पाठ अधिक है, कारण परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंके अनन्तर उद्योतका वर्णन किया जा चुका है।

उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, $\frac{8}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$ वा केवली-भंग है।

२०० पंच मन, पंच वचनयोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है। वेदनीयके अबंधक नहीं हैं।

विशेषार्थ—पंच मनोयोगी, पंच वचनयोगियोंमें स्वस्थान पदोंसे वर्तमानकालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है क्योंकि मनोयोगी और वचनयोगी और जीवोंका विहार आठ राजु प्रमाण त्रस लोक नालीमें पाया जाता है।

---

१ "पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।"—षट्खं० फो० सू० ६०, ६१।

सादस्स बंधगा अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० । अबंधगा णत्थि । एवं हस्सादि-दोयुगलं, थिरादि-तिण्णियुगलं । इत्थि० पुरिसवेदाणं बंधगा अट्ठबारह-भागो । अबंधगा अट्ठतेरहभागो । णवुंसग-वेदस्स बंधगा अट्ठ-तेरहभागो । अबंधगा अट्ठ-बारहभागो । तिण्णि वेदाणं अट्ठतेरहभागो । अबंधगा णत्थि । इत्थिभंगो पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० सुभग० आदेज्ज० । णवुंसगवेदभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे० । साधारणेण वेदभंगो । दोआयु० मणुसग० मणुसाणु० आदाव तित्थियरं उच्चागोदं बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । अबंधगा अट्ठतेरहभागो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचा-गोदं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो । अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० भागो । अबंधगा णत्थि । एवं दोण्णं आउ० (णु०) (?) दोगोद० । एइंदि० बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अबंधगा अट्ठबारहभागो । पंचिंदियबंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो । अबंधगा णत्थि । एवं तस-थावर० । उज्जोव-बंधगा-अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दसभागो वा । पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारहभागो । अबंधगा अट्ठतेरह-

---

साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । अबन्धक नहीं है । हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ हैं । अवन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । नपुंसकवेदके वन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । अवन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ हैं । तीनों वेदोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । अबन्धक नहीं है । ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भंग है । हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेयमें नपुंसकवेदके समान भंग है । सामान्यसे वेदके समान भंग है । मनुष्य तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ भाग है ।

विशेष—वैक्रियिक काययोगी अविरतसम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घात-द्वारा ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू, इस प्रकार $\frac{8}{14}$ स्पर्शन करता है । तीर्थंकर आदि प्रकृतियोंके अबन्धक मिथ्यात्वी जीवने मेरुतलसे नीचे ६ राजू तथा ऊपर ७ राजू इस प्रकार $\frac{13}{14}$ भाग स्पर्श किया है ।

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ भाग हैं । अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$ भाग है । दोनों गतियोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । अबन्धक नहीं हैं । दोनों आनुपूर्वी तथा दोनों गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए । एकेन्द्रियके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ हैं । अब-न्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ हैं । अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ हैं । दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ भाग हैं । अबन्धक नहीं हैं ।

विशेष—वैक्रियिक काययोगियोंके विकलत्रयका बन्ध नहीं होनेसे दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिका वर्णन नहीं किया गया है ।

त्रस, स्थावरोंका इसी प्रकार जानना चाहिए । उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । प्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ हैं । अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ हैं । अप्रशस्तविहायो-

तेरहभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। णवरि मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठबारहभागो। सादा-

---

प्रत्येक निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—काययोगी और औदारिक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्वलोकका स्पर्शन करते है वर्तमान तथा अतीत कालोंमें उन जीवोंके सर्वत्र गमनागमन और अवस्थानमें कोई विरोध नहीं है। औदारिक मिश्रकाय योगमें विहारवत् स्वस्थान, वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात नहीं होते।

औदारिक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन करते है। यहाँ उपपाद पद नहीं होता।

वैक्रियिक काययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श करते है। समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे उक्त वैक्रियिक काययोगी जीवोंने ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे कुछ कम १३/१४ भाग स्पर्श किये है, क्योंकि मेरु मूलसे ऊपर सात और नीचे छह राजु आयामवाली लोक नालीको पूर्ण कर वैक्रियिक काययोगके साथ अतीत कालमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त जीव पाये जाते है। इस योगमें उपपाद नहीं है।

वैक्रियिक मिश्र काययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। उनके विहारवत् स्वस्थान नहीं होता। इस योगमें समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते।

आहारक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे आहारक काययोगी जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवे भाग और मानुष क्षेत्रके संख्यातवे भागका स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुष क्षेत्रसे असंख्यात क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहाँ उपपाद पदका अभाव है।

आहारक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। उनके विहारवत् स्वस्थान पद नहीं होता है। समुद्घात और उपपाद पद भी नहीं होते है। (खुद्दाबंध टीका पृष्ठ ४१३-४१९)।

विशेष—मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगियोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिकसमुद्घात पद परिणत जीवोंने ऊपर ६ राजू तथा मेरुतलसे नीचे २ राजू इस प्रकार ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर ७ तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार १३/१४ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी० फो० टी० २६६)।

स्त्यानगृद्धित्रिक मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४ है। विशेष मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४ १२/१४ है।

विशेष—स्त्यानगृद्धित्रिकादिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा अविरत सम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान वेदना कषाय वैक्रियिक, मारणान्तिक परिणत जीवोंके ८/१४ स्पर्शन किया है। मिश्र गुणस्थानमें मारणान्तिक नहीं है। (ध० टी० फो० पृ० २६७)।

एक्कारहभागो, केवलिभंगो। इत्थि० पुरिस० णवुंस० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णं वेदाणं भंगो चदुणोक० पंच-जादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च। तिरिक्खगादि-मणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। देवगदिबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं गदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णि आणु०। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि० वा भागा वा सव्वलोगो वा। वेउव्वियबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० अंगोवंगस्स बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय० अंगो खेत्तभंगो। दो-अंगोवंगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दोविहा० दोसर०। तित्थय० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो।

२०५. इत्थिवेदे-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठतेरह०

सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। णिद्दापयला [पच्चक्खाणावरण४] भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। सादबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। असादबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ बंधगा

[illegible] $\frac{१३}{१४}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।[1]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात परिणत देवोंमे आठ राजू बाहल्यवाले राजू प्रतर प्रमाण क्षेत्रमे भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे $\frac{८}{१४}$ स्पर्शन कहा है। मारणान्तिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सर्वलोकको स्पर्श करते है, कारण मारणान्तिक और उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदेशका अभाव है। ऊपर सात राजू तथा नीचे छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिसे $\frac{१३}{१४}$ भाग है। (२७२) स्त्रीवेदमे तैजस तथा आहारक समुद्घात नहीं होते।[2]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी४ के बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।[3] अबन्धकों- के $\frac{८}{१४}$ है।

विशेष—स्त्यानगृद्धि ३ तथा अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी वा [illegible]-सम्यक्त्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय [illegible]क, मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर छह और नीचे दो इस प्रकार $\frac{८}{१४}$ स्पर्शन [illegible]। मिश्र गुणस्थानमे उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्घात नही होते है। स्त्रीवेदी [illegible]में असंयत सम्यक्त्वीका उपपाद नही होता है।[4] (२७४)

निद्रा-प्रचला, प्रत्याख्यानावरण४ भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, [illegible] निर्माणके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् [illegible] असंख्यातवे भाग है।[5] साता वेदनीयके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। अब[illegible] [illegible] वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकों- [illegible] वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक [illegible]। मिथ्यात्वके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है।[6]

---

1. [illegible] इत्थिवेदपुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि- [illegible] भागा देसूणा सव्वलोगो वा।"—षट्खं० फो० सू० १०२, १०३। 2. इत्थिवेदे तदुभय [illegible] णत्थि—मु० ध० टी० पृ० ४२१। 3. "सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि [illegible] अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।" —सू० १०६। 4. [illegible] उववादो णत्थि—ध० टी० पृ० २७४। 5. "सासणसम्मादिट्ठि [illegible] असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।" – षट्खं० फो० [illegible] केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा [illegible]।"—सू० १०८।

अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। हस्सरदि सादभंगो। अरदिसोगं असादभंगो। दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं थिराथिर-सुभासुभ०। णिरय-देवायु-तिण्णिजादि० (गदि) आहारदुगं तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठ-तेरह-भागो सव्वलोगो वा। दोआयु-मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-आदाउज्जोवं दोगोदं (?) बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोगदि-दोआणुपुव्वि-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु-

---

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ भाग स्पर्श किया है, कारण ८ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतरके भीतर देव स्त्री सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने नीचे दो और ऊपर ७ राजू अर्थात् $\frac{९}{१४}$ भाग स्पर्श किये हैं। (२७२)

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक स्पर्श है, अबन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ है।

विशेष—अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक देशव्रती स्त्रीवेदीने मारणान्तिक-द्वारा $\frac{६}{१४}$ भाग स्पर्श किये, कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंका उत्पाद नहीं होता है। (२७५)[1]

स्त्रीवेद-पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिमें साता वेदनीयके समान है अर्थात् $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अरति शोकमें असाता वेदनीयके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। हास्य-रति, अरति शोक इन दो युगलोंके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकके असंख्यातवें भाग है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमें इसी प्रकार है। नरकायु, देवायु, तीन जाति (?) (गति) आहारकद्विक और तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, यहाँ जातिके स्थानमें गतिका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। जातिका वर्णन आगे किया गया है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। मनुष्यायु, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत तथा दो गोत्र (?) के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—गोत्रका कथन आगे आया है। अतः यहाँ 'दोगोदं' पाठ अधिक प्रतीत होता है।

नरकगति, देवगति, नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वीके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$,

---

१ "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।" –सू० ११०।

पुव्विवंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदियबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पंचिंदियं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। [अबंधगा] अट्ठबारहभागो। वेउव्वियं बंधगा बारहभागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। पंचसंठाणं इत्थिभंगो। हुंडसंठाणं णवुंसगवेदं साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि अबंधगाणं खेत्तभंगो। ओरालिय-अंगोवंगबंधगा अट्ठचोद्दसभागो, अबं० अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। वेउव्वियसरीर-अंगोवंगबंधगा बारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। छसंघडणं बंधगा अट्ठचोद्दसभाग अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं साधारणेण वि। परघादुस्सासं बंधगा बारहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो उच्चागोदं (?) बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो

अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठभागो। दोण्णं गोदाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२०६. एवं पुरिसवेदस्स। णवरि तित्थयर बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा।

२०७. णवुंसगवेद०–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधिचदुक्कं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। णिद्दा-पयला-पच्चक्खाणाव०४ भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एव जस-अजसगित्ति-दोगोदाणि (?) मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारहभागो। अपच्चक्खाणावरण-चउक्कं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० णवुंसग-वेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। हस्सादि०४ बंधगा अबंधगा। [एवं] दोण्णं युगलाणं बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो। एवं पंचजादि-छसंठा० तसथावरादि-अट्ठयुगलं दो-आयु० आहारदुगं तित्थयरं खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायु-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० दोविहा० दोसर०। दोगदि० दोआणु० बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरस्स बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

कि वैक्रियिक पदसे तीन लोकोंके संख्यातवे भाग तथा मनुष्य लोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है क्योंकि विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीवोके ५/१४ भाग स्पर्शन पाया जाता है (खु० बं० टी० पृ० ४२२)।

अबन्धकोंका १२/१४ भाग है।[1]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोने १२/१४ भाग स्पर्श किया, कारण नारकियोके ५ राजू तथा तिर्यंचोंके ७ राजू इस प्रकार १२ राजू बाहुल्यवाला राजू प्रतर प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र है (२७७)।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका ६/१४ है।[2]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत संयतासंयतोंने ६/१४ स्पर्श किया है कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है (२७८)।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों और अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीनों वेदोके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्यादि चारके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों, अबन्धकोका इसी प्रकार है। दोनों युगलोंके बन्धको अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। इसी प्रकार पॉच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ८ युगल तथा २ आयुमे जानना चाहिए। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका क्षेत्रवत् भंग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोका लोकका असख्यातवॉ भाग है, वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धकों अवन्धकोका सर्वलोक है। छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, इसी प्रकार है। दो गति, दो आनुपूर्वीके बन्धकोका ६/१४ भाग है। अबन्धकोका सर्वलोक है। दो गति, २ आनुपूर्वीके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक है। चार गति, चार आनुपूर्वीके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। औदारिक शरीरके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंका १२/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोका १२/१४ है। अबन्धकोका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अब-

---

१ "सामणमम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।" — षट्खं० फो० सू० ११२, ११३। २ "णउसयवेदेसु असजदसम्मादिट्ठि-सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फासिद ? लोगम्स असखेज्जदिभागा, छचोद्दसभागा देसूणा।" — सू० ११५।

[illegible]भंगो। ओरालिय-अंगोवंगं बंधगा, अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगोवंगं, बंधगा बारहभागो, अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। परघादुस्सास आदावुज्जोवं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं णीचुच्चागोदाणं। अवगदवेदे खेत्त-भंगो। एवं अकसाइ० केवलिणा० संज० सामाइ० छेदो० परिहा० सुहुमसं प० (सुहुम-संप०) यथाक्खाद० केवलदंसण त्ति। कोधादि०४ ओघभंगो। णवरि धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। यं हि अबंधगा अत्थि तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

[illegible]का क्षेत्रके समान है। औदारिक अंगोपांगके बन्धको और अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकों अब[illegible]कोंका सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। इसी प्रकार नीच गोत्र, उच्च गोत्रका है।

अपगतवेदमें क्षेत्रके समान भंग है।[1]

विशेषार्थ—अपगतवेदी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। दण्ड, कपाट वा मारणान्तिक समुद्घातोंको प्राप्त अपगत वेदियों-द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा स्पृष्ट है। विशेष कपाट समुद्घातगत अपगतवेदियों-द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग [illegible]संख्यातगुणा (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो संखेज्जगुणो वा फोसिदो) क्षेत्र स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घात अपगत [illegible] अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है। इनमें उपपाद पदका अभाव है। (खु० ब० टीका पृ० [illegible])

२०८. मदि० सुद०—धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दोयुगलं पंचजादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च। मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। दो-आयुबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो तिरिक्खायुबंधगा अबं० सव्वलोगो। मणुसायु-बंधगा अट्ठबारह० सव्वलोगो। अबंधगा सव्वलोगो। चदुआयुबंध० अबं० सव्वलोगो। एवं छसंघ० दोविहा० दोसर०। णिरयगदि-णिरयाणु० बंधगा छच्चोदस०। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंध० अबं० सव्वलोगो। देवगदि-देवगदिपाओ० बंधगा पंच-चोद्दस०। अबं० सव्वलोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्वियाणु० (?) (वेउव्विय) बंधगा एक्कारहभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय०

अंगोवंगं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेगुव्विय० अंगोवंगं बंधगा [अबंधगा] वेगुव्विय० भंगो। दोण्णं बंधगा अबं० सव्वलोगो।

२०९. एवं अब्भवसिद्धि० मिच्छादिट्ठिम्हि [वि] भंगे धुविगाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। सादासाद० बंधगा अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणो० ४ (?) थिराथिर-सुभासुभाणं। मिच्छत्त-बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठबारह-चोद्दस०। अबं० अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा अट्ठबारह०। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थिवेदभंगो पंचिंदिय-जादि पंचसंठा० छसंघ० तससुभग० आदेज्ज०। णवुंसगभंगो एइंदिय-हुंडसंठा० थावरदूभग-अणादेज्जाणं। णवरि एइंदिय-थावर-बंधगा अट्ठणव० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पत्तेगेण साधारणेण वेदभंगो। दोआयु० तिण्णिजादि-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोआयु० मणुसगदि० मणुसाणु० आदाव० उच्चा-

---

[illegible] शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{11}{14}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका [illegible] है। अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—उपपादकी अपेक्षा नीचेके ५ राजू तथा ऊपरके छह राजू इस प्रकार $\frac{11}{14}$ भाग [illegible] ([illegible])।

[illegible] शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके [illegible] बन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकों [अबन्धकों] का वैक्रियिक [illegible] के समान है अर्थात् बन्धकोंका $\frac{11}{14}$, अबन्धकोंका सर्वलोक भंग है। दोनोंके बन्धकोंका [illegible] सर्वलोक है।

२०९. [illegible] भव्यसिद्धिकोंमें और मिथ्यादृष्टियोंमें इसी प्रकार है।

[illegible]—इन प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—[illegible] ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार $\frac{8}{14}$ है तथा मेरुतलसे [illegible] नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{13}{14}$ भाग है।

[illegible] के बन्धकों अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका [illegible] सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक ये ४ नोकषाय, स्थिर, [illegible] इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है, अब[illegible] है। स्त्रीवेद पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। [illegible] वेदोंके बन्धकोंका [illegible] वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, [illegible] त्रस सुभग आदेयमें स्त्रीवेदका भंग है। एकेन्द्रिय हुंडक संस्थान, स्थावर, दुर्भग, [illegible] अनादेयमें नपुंसकवेदका भंग है। विशेष एकेन्द्रिय, स्थावरके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ वा सर्वलोक है। [illegible] है। प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदके समान भंग है। दो आयु [illegible] बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

गोदं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि० णीच० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठेकारस०। णवरि णीचा० अट्ठभागो। देवगदिबंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चेव आणुपुव्वि-णीचुच्चागो०। ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्विय-बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरहभागो [सव्वलोगो वा]। दोण्णं वे० (बं०) अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। वेउव्विय० अंगो० बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचो० सव्वलोगो वा। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोव-बंधगा अट्ठतेरहभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं जसगित्ति०। पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबं० अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। एवं दोसर० बादरबंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं सुहुमं। दोण्णं बंध०

दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४ हैं। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगतिके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। तिर्यंच गति, नीच गोत्रके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है। विशेष, नीच गोत्रका ८/१४ है। देवगतिके बन्धकोंके ५/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार आनुपूर्वियों तथा नीच, उच्च गोत्रोंमें जानना चाहिए।

औदारिक शरीरके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ११/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका ११/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका ११/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। उद्योतके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त-विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना चाहिए। बादरके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा

गोदं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि० णीच० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठेक्कारस०। णवरि णीचा० अट्ठभागो। देवगदि-बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चेव आणुपुव्वि-णीचुच्चागो०। ओरालिय-सरीरं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्विय-बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरहभागो [सव्वलोगो वा]। दोण्णं बे० (बं०) अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। वेउव्विय० अंगो० बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचो० सव्वलोगो वा। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोव-बंधगा अट्ठतेरहभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं जसगित्ति०। पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबं० अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। एवं दोसर० बादरबंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं सुहुमं। दोण्णं बंध०

दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। नरकगतिके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। तिर्यंच गति, नीच गोत्रके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{11}{14}$ है। विशेष, नीच गोत्रका $\frac{8}{14}$ है। देवगतिके बन्धकोंके $\frac{5}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार आनुपूर्वियों तथा नीच, उच्च गोत्रोंमें जानना चाहिए।

औदारिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{11}{14}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{11}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{11}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त-विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ वा सर्वलोक है। इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना चाहिए। बादरके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा

-अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० णत्थि। पज्जत्त० पत्तेग० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं अपज्ज० साधारण०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। अज्जस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबं० अट्ठतेरह०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२१०. आभि० सुद० ओधि०–पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभगादि-तिण्णि णिमिण-उच्चागोदं-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचो०। अबं० खेत्तभंगो।

सर्वलोक है। सूक्ष्मके विषयमे विपरीत क्रम है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{5}{14}$, वा $\frac{13}{14}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अवन्धक नहीं है। पर्याप्त प्रत्येकके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अवन्धकोंमे लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त तथा साधारणमें इसके विपरीत क्रम है अर्थात् वन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। अयशःकीर्तिके वन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ है। दोनोंके वन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमें विभगज्ञानीके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है — विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन $\frac{5}{14}$ भाग स्पर्श किया है। स्वस्थान पदोंसे विभंगज्ञानी जीवोंने तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यातवाँ गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा देशोन $\frac{5}{14}$ भाग स्पर्श किया है। समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन $\frac{5}{14}$ भाग स्पर्श किया है। विहार करनेवाले विभंगज्ञानियोंने वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे देशोन $\frac{5}{14}$ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पदका आश्रय कर सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि विभगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अतीत कालमे सर्वलोक स्पर्श पाया जाता है। देव तथा नारकियोंके मारणान्तिक समुद्घातका आश्रय कर $\frac{13}{14}$ भाग होते है। इनके उपपाद पदका अभाव है।[1]

२१० आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि ३, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, अबन्धकोंमे क्षेत्रके समान भग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष—अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातगत सम्यक्त्वी जीवोंने $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्शन किया, जो कि मेरुके मूलसे ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू प्रमाण है। (१६७)[2]

१ विभगणाणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सव्वलोगो वा। उववाद णत्थि। — खुद्दा बंध सू० १५१–१५८। २ सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –षट्खं० फो० सू० ७।

सादासाद-बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० णत्थि । अप्पच्चक्खाणा०४ वज्जरिसह० बंधगा अट्ठचो० । अबं० छचोद्दस० । हस्सरदि-अरदि-सोगाणं बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठचो० । अबं० खेत्तभंगो । एवं थिराथिर-सुभासुभ-जसअजसगित्तीणं । मणुसायुतित्थयरं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । देवायु० आहारदुग० बंधगा खेत्तभंगो । अबं० अट्ठचो० । दोण्णं आयुगाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । मणुसगदि०४ बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० छचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस० । अबं० अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बं० अट्ठ-चोद्दसभागो । अबंधगा खेत्तभंगो । एवं दोसरी० दोअंगो० आणु० । एवं ओधिदं० ।

साता-असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है । दोनोके बन्धकोंका ८/१४ है । अबन्धक नहीं है । अप्रत्याख्यानावरण ४ वज्रवृषभसहननके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंका ६/१४ है ।

विशेष—मारणान्तिकसमुद्घातगतसंयतासयतोंने अच्युतकल्प पर्यन्त ६/१४ भाग स्पर्श किया है ।

हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है । दोनो युगलोंके बन्धकोंका ८/१४ है । अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है । इस प्रकार स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमे भी जानना चाहिए । मनुष्यायु तथा तीर्थंकरके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४ है ।[२] देवायु तथा आहारकद्विकके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकके असख्यातवे भाग है । अबन्धकोंके ८/१४ है ।

दो आयुके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है । मनुष्यगति ४ के बन्धकोंका ८/१४ है । अब-न्धकोंका ६/१४ है । देवगति ४ के बन्धकोंका ६/१४ है । अबन्धकोंका ८/१४ है ।

विशेष—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपागके अबन्धक देशव्रतीकी अपेक्षा ६/१४ कहा है ।

मनुष्यगति, देवगतिके बन्धकोंका ८/१४ है । अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवॉ भाग है । दो शरीर, दो अगोपांग तथा दो आनुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

अवधिदर्शनमे – ऐसा ही जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी तथा अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है । अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है । उक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंने स्वस्थान पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवॉ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवॉ भाग तथा अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । तैजस और आहारक समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्रके समान निरूपण है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है ।

---

१ पमत्तसजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । –पट्खं० फो० सू० ९ । २ असजदसम्माइट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा –सू० ५–६ ।

मणपज्ज० संजद० सामा० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० खेत्तभंगो।

२११ संजदासंजद–धुविगाणं बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधा अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णियुगल०। देवायु-तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबं० छच्चोद्दसभागो। असंजदेसु–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबं०४ बंधगा सव्वलो०। अबंधगा अट्ठचोद्दस०। मिच्छत्त-

उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवाँ भाग तथा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{6}{14}$ भाग स्पर्श किया है। आरण, अच्युत आदिके देवोंमे उत्पन्न होनेवाले तिर्यच असयन सम्यग्दृष्टि और सयतासयत जीवोका उपपाद क्षेत्र देशोन $\frac{6}{14}$ भाग है।

शंका—नीचे दो राजु मात्र मार्ग जाकर स्थित अवस्थामे आयुके क्षीण होनेपर मनुष्यमे उत्पन्न होनेवाले देवोंका उपपाद क्षेत्र क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नही, क्योंकि प्रथम दण्डसे कम उसका $\frac{6}{14}$ भागोंमे ही अन्तर्भाव हो जाता है तथा मूल शरीरमें जीव प्रदेशोंके प्रवेश बिना उस अवस्थामे उनके मरणका अभाव भी है। (खु० बं० टी० पृ० ४२८-४३०)[1]

[2]मनःपर्ययज्ञानी, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्परायमे-[3]क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष—सयम, सामायिक छेदोपस्थापना तथा सूक्ष्मसाम्परायका वर्णन पहले अपगतवेदके साथ आ चुका है। यहाँ पुनः उनका कथन चिन्तनीय है।

२११ सयतासयतोंमे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{6}{14}$ है। अवन्धक नही है। साता-असाताके वन्धको अबन्धकोंका $\frac{6}{14}$ है। दोनों प्रकृतियोंके वन्धकोका $\frac{6}{14}$ है। अवन्धक नहीं है। हास्य-रति, अरति शोक तथा स्थिरादि तीन युगलोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। देवायु तथा तीर्थंकर प्रकृतिके वन्धकोंका क्षेत्रके समान है। अबन्धकोंका $\frac{6}{14}$ है।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। धवला टीकामे लिखा है कि वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। अतीत कालमे तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढाई द्वीपसे असख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है।

शका—विहारवत् स्वस्थान पदकी अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शनका प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि वैरी देवोके सम्बन्धसे अतीत कालमें सर्वद्वीप समुद्रोमे संयतासंयत जीवोंकी सम्भावना है, किन्तु स्वस्थान पदकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन नहीं बनता। कारण स्वस्थानमे स्थित संयतासयत जीवोंका सर्वद्वीप समुद्रोंमे अभाव है।

समाधान—यह कोई दोप नही है, क्योकि यद्यपि सर्वत्र संयतासंयत जीव नहीं है, तथापि तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण स्वयप्रभ पर्वतके पर भागमे स्वस्थान स्थित

---

१ आभिणिबोहिय – सुद ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा देसूणा। –खु० व० सूत्र १५६–१६४। २ मणपज्जवणाणी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। उववाद णत्थि।—खु० व० १६५–१६६। ३ पमत्तसजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –पट्खं० फो० सू० ९।

बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। वेउव्विय-छक्कं आयुचदुक्कं तित्थयरं च ओघं। सेसं मदि-अण्णाणिभंगो। चक्खुदं० तस-पज्जत्त-भंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अचक्खुदं० ओघं। णवरि केवलिभंगो णत्थि।

सयतासयत पाये जाते है।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संयतासंयतोने लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ६/१४ भाग स्पर्श किया है। वेदना, कपाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोसे तीन लोकोंके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रको स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन ६/१४ भागोका स्पर्श किया है, क्योंकि तिर्यंचोंमे-से अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले सयता-संयत जीवोंके उपर्युक्त स्पर्शन पाया जाता है। संयतासंयत गुणस्थानके साथ उपपादका विरोध होनेसे यहॉ उपपाद पद नही होता।[1]

असयतोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धि त्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका ६/१४ है। मिथ्यात्वके बन्धकों-का सर्वलोक है। अबन्धकोका ६/१४, १२/१४ है[2]। वैक्रियिकपट्क, आयु ४ तथा तीर्थंकरका ओघवत् भंग है। शेप प्रकृतियोका मत्यज्ञानके समान भग है। चक्षुदर्शनमे – त्रस पर्याप्तके समान भग है। विशेष, केवली भग नहीं है। अचक्षुदर्शनमे ओघवत् जानना चाहिए। विशेप, केवली-भग नही है।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। इन जीवोंने स्वस्थानसे तीन लोकोंके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवो-द्वारा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि आठ राजु बाहुल्यसे युक्त राजुप्रतरके भीतर चक्षुर्दर्शनी जीवोके विहारका कोई विरोध नही है।

चक्षुर्दर्शनी जीवों-द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है क्योंकि विहार करनेवाले देवोंमे उत्पन्न वेदना कपाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे स्पर्श किया जानेवाला ८/१४ भाग प्रमाण क्षेत्र देखा जाता है। मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण है, देव व नारकियों-द्वारा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा १३/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर इनके उत्पादका अभाव होनेसे मारणान्तिक समुद्घातके द्वारा गमन नहीं होता। तिर्यंच व मनुष्यो-के द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर और भीतर मारणान्तिक समुद्घातसे उनका गमन पाया जाता है।

इन चक्षुदर्शनी जीवोंमे उपपाद कथचित् पाया जाता है, कथचित् नहीं भी पाया जाता है (**उववाद सिया अत्थि, सिया णत्थि**) चक्षु-इन्द्रियावरणके क्षयोपशम रूप लब्धिकी अपेक्षा उपपाद है, वह अपर्याप्त कालमे भी पाया जाता है। गोलकरूप चक्षुकी निष्पत्तिका

---

१ संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। उववाद णत्थि। –खु० ब० सू० १७१–१७६।

२१२. किण्ह-णील-काउ – धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि३ अणंताणु०४ बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो। मिच्छत्तबंधगा सव्वलोगो। अबंधगा पंच-चत्तारि-बे-चोद्दसभागो वा। दो आयु-देवगदि-देवाणु० तित्थयर-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो।

नाम निवृत्ति है। वह अपर्याप्त कालमें नहीं है। इसलिए – **"लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि।"** (सू० १८६ खु० बं०)। लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। यह वर्तमान कालकी अपेक्षासे है। अतीत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

चक्षुदर्शनी तिर्यंच और मनुष्योंमें से चक्षुदर्शनियोंमे उत्पन्न हुए देव व नारकियों-द्वारा $\frac{१२}{१४}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर चक्षुदर्शनी जीवोंका अभाव है, तथा आनतादि उपरिम देवोंका तिर्यंचोंमे उत्पाद भी नहीं है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। एकेन्द्रिय जीवोमें-से चक्षु-इन्द्रिय सहित जीवोंमे उत्पन्न हुए जीवों-द्वारा प्रथम समयमे सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि वे अनन्त है तथा सर्व प्रदेशोंसे उनके आगमनकी सम्भावना भी है। (**खु० व० पृ० ४३४-४३७**)।[1]

अचक्षुदर्शनीमे असयतके समान भंग है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्वन करनेपर अचक्षुदर्शनी जीवोकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके तुल्य नहीं है, क्योंकि अचक्षुदर्शनियोंमें तैजस तथा आहारक समुद्घान पद पाये जाते है।

विशेषार्थ—कृष्णादि लेश्यात्रयमे असंयतोंके समान भग है। असंयतोंमे नपुंसक वेदके समान भग है। नपुंसक वेदमे स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपादसे सर्वलोग स्पृष्ट है।[2]

२१२ कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नही ह। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के वन्धकों अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। मिथ्यात्वके वन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{५}{१४}$, $\frac{४}{१४}$, $\frac{२}{१४}$ है।[3]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद-पद परिणत छठे नरकके नारकी सासादन गुणस्थानीने कृष्णलेश्यायुक्त हो $\frac{५}{१४}$, नील लेश्यावाले ५वी पृथ्वीवालोंने $\frac{४}{१४}$ तथा कापोत लेश्यावाले तीसरी पृथ्वीके नारकी सासादनसम्यक्त्वी जीवोंने $\frac{२}{१४}$ भाग स्पर्श किया है (पृ० २६१)।

देवायु, नरकायु, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान लोक-

---

१ दसणाणुवादेण चक्खुदसणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। सव्वलोगो वा उववाद सिया अत्थि सिया णत्थि। लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि। जदि लद्धि पडुच्च अत्थि, केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सव्वलोगो वा। –खु० व० सू० १७८–१८६। अचक्खुदसणी असजदभगो। सू० १९०। असजदाण णवुसयभगो १७७। णवुसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो –सू० १३८, १३९। २ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाण असजदभगो –सू० १९३ खु० व०। ३ सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठबारहचोद्दसभागा वा देसूणा। सू० ३–४। सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचत्तारिवेचोद्दस-भागा वा देसूणा। सू० – १४७, १४८।

अबंधगा अट्ठणवचो० । णवुंस० बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा अट्ठचोद्दस० । तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा णत्थि । इत्थिभंगो दोआयु-मणुसगदिदुगं पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदा० दोविहा० तस-सुभग-आदे० तित्थयरं उच्चागोदं च । णवुंसगभंगो तिरिक्खगदिदुगं एइंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादे० णीचागोदं च । देवायु-आहारदुगं बंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा दिवड्ढ-चोद्दसभागो । अबंधगा अट्ठणवचो० । ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । एवं पत्ते० साधारणेण वि । सव्वपगदीणं बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो । अबंधगा णत्थि । आयु० अंगोवंग-संघडण-विहाय० [एवं] । पम्माए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंजल० भयदु० पंचिदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा अट्ठ० । अबंधगा णत्थि ।

असख्यातवॉ भाग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ हैं । नपुंसक वेदके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ हैं । अबन्धकोंके ८/१४ है । तीनों वेदोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ हैं । अबन्धक नहीं है । मनुष्य-तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पच सस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान जानना चाहिए । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, हुण्डकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका नपुसकवेदके समान भग है । देवायु, आहारकद्विकके बन्धकोंके क्षेत्रके समान लोकका असख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है । देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकोंके १½/१४, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है । औदारिक शरीरके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है, अबन्धकोंके १½/१४ है । प्रत्येक तथा सामान्यसे भी इसी प्रकार है । शेष सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है । अबन्धक नहीं हैं । आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगतिमे (इसी प्रकार जानना चाहिए) ।

पद्मलेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके ८/१४ हैं । अबन्धक नहीं है ।

विशेष—पद्मलेश्यावाले मिथ्यात्वसे अविरत सम्यक्त्वी पर्यन्त जीवोंने विहारवत-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिककी अपेक्षा ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू, ८/१४ भाग स्पर्श किया है । उपपाद परिणत उक्त जीवोंने ५/१४ स्पर्श किया है । विशेष, मिश्र गुणस्थानमे उपपाद मारणान्तिकपनेका अभाव है । (पृ० १९८)[1] ।

खुद्दाबन्ध टीकामें लिखा है, पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है । अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श किये हैं । स्वस्थान पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे परिणत इन जीवों-द्वारा कुछ कम ८/१४

१ "पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागो वा देसूणा ।" –षट्खं० फो० सू० १५४-१५५ ।

णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णि-युगलं। मिच्छत्त-उज्जोव-बंधगा अट्ठणवचोद्दस०। अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो। पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा खेत्तभंगो। इत्थि०, पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दस०।

उपपादकी अपेक्षा वर्तमान कालकी दृष्टिसे लोकका असंख्यात भाग स्पर्शन है। अतीत-कालकी अपेक्षा कुछ कम डेढ बटे चौदह $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ भाग स्पृष्ट है क्योंकि मेरु मूलसे डेढ राजु मात्र ऊपर चढकर प्रभा पटलका अवस्थान है।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके प्रथम इन्द्रक विमानमें स्थित तेजोलेश्यावाले देवोंमे उत्पन्न करानेपर $१\frac{१}{२}$ राजूसे अधिक क्षेत्र क्यों नही पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सौधर्म कल्पसे थोडा ही ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्पका प्रथम पटल अवस्थित है। ऐसा न माननेपर उपर्युक्त $१\frac{१}{२}$ राजू क्षेत्रमें जो कुछ न्यूनता वतलायी है, वह बन नहीं सकती।[1] **(खु० बं० टीका पृ० ४३८-४४०)**

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है।

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने पीत लेश्यामे $\frac{८}{१४}$ स्पर्शन किया है। विशेष, मिश्र गुण-स्थानमे मारणान्तिक नहीं होता है। उपपादपरिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंके $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ भाग होता है।[3] (२६६)

साता, असाताके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अवन्धक नहीं है। हास्यरति, अरतिशोक, स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए। मिथ्यात्व तथा उद्योतके वन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धकोंके $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के वन्धकोके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धकोंके $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ है।

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पदसे परिणत मिथ्यात्वी तथा सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंने $\frac{८}{१४}$, मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने $\frac{९}{१४}$ तथा उपपाद परिणत उन जीवोंने $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ स्पर्श किया है। मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमे भी $\frac{८}{१४}$, $\frac{८}{१४}$ भाग है। विशेष, मिश्रमे मारणान्तिक नही होता है। उपपाद परिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोने $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ स्पर्श किया है।

प्रत्याख्यानावरण ४ के वन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका

---

१ तेजोलेस्सियाण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादगदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। दिवड्ढ-चोद्दसभागा वा देसूणा —खु० वं० सू० १९४-२०२। २ सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। —पट्खं० फो० सू० १५२-१५३। ३ सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा। —सू० १५४-१५५।

थीणगिद्धितियं मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं दोआयु० उज्जोवं तित्थयरं च। सादासादाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं बंधगा (?) वेदणीयभंगो। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण। णवरि देवायु-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं आयु० बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० बंधगा (?) छसंघ० साधारणेण अबंधगा पंचचोद्दस०। पच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा खेत्तभंगो। आहारदुगं देवायुभंगो। सुक्काए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा०

भाग स्पृष्ट है, क्योंकि पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमे मारणान्तिक समुद्घातका अभाव है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ५/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि मेरु मूलसे पाँच राजु मात्र मार्ग जाकर सहस्रार कल्पका अवस्थान है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों अबन्धकोंका ६/१४ है। मनुष्य तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरका इसी प्रकार है। साता, असाताके बन्धको अबन्धकोंका ६/१४ है। दोनोके बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे इसी प्रकार वेदनीयका भंग है। विशेष, देवायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका ६/१४ है। तीन आयु (नरकायु बिना) के बन्धकों अबन्धकोंका ६/१४ है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागके बन्धकोंका ५/१४ है। अबन्धकोंका ६/१४ है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाग, ६ सहननके बन्धकों अबन्धकोंका सामान्यसे ५/१४ है।

विशेष—देशसयमी पद्मलेश्यावाले जीवोंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा शतार सहस्रार कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे ५/१४ कहा है।[2]

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग भग है।

विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक प्रमत्तसंयतोकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।[3]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंके ६/१४ है।

शुक्ल लेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-

---

१ पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचोद्दसभागा वा देसूणा। खु० ब० सू० २०३-२०८। २ "सजदासजदेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचोद्दसभागा वा देसूणा।" -षट्खं० फो० सू० १५९-१६०। ३ 'प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभाग।" -स० सि० १।८।

भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुसायु-तित्थयरं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो, केवलिभंगो। साद-बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। असाद-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो०। एवं णेदव्वं। भवसिद्धि ओघं।

जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ६/१४ है।[1] अबन्धकोंके केवली-भग है।[2]

विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असंयत सम्यक्त्वी शुक्ललेश्यावालोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोंने ६/१४ स्पर्श किया है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पद परिणत संयतासंयतोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत शुक्ल-लेश्यावालोंने ६/१४ भाग स्पर्श किया है। कारण तिर्यंच सयतासयतोका शुक्ललेश्याके साथ अच्युत कल्पमे उपपाद पाया जाता है। मिश्र गुणस्थानमे उपपाद तथा मारणान्तिक पद नहीं होते हैं। (पृ० ३००)

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषाय, मनुष्यायु, तीर्थंकरके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली भंग है। साताके बन्धकोंके ६/१४ भाग तथा केवली-भग है। अबन्धकोंके ६/१४ है। असाताके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। अबन्धक नहीं है। देवगति ४ के बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ तथा केवली-भंग है। शेष प्रकृतियोका इसी प्रकार निकालना चाहिए।

भव्यसिद्धिकोंमें[3] ओघवत् भग है।

विशेषार्थ—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है। स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद पदोंमे अतीत व वर्तमान कालमें भव्यसिद्धिक एवं अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा वर्तमानकालमे क्षेत्रके समान प्ररूपणा है। अतीत कालमें ८/१४ भाग स्पृष्ट है। वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असख्यातवाँ भाग और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। भव्यसिद्धिक जीवोमे शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है। (खु० बं० टी० पृ० ४४५)।

---

१ "सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा।" –सू० १६२–१६३। २ सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा असखेज्जा वा भागा। सव्वलोगो वा। –खु० बं० सू० २०९–२१६। ३ "भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति ओघ।" –पट्खं० फो० सू० १६५। भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो –खु० बं० सू० २१७-२१८।